बीसवीं शताब्दी में भारतीय महिलाओं
का
सामाजिक एवं राजनीतिक जागरण

प्रयाग विश्वविद्यालय की डॉक्टर ऑफ फ़िलासफ़ी
उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

•

कु० मधु राका सक्सेना

•

निर्देशक
श्री हर्षनाथ मिश्र

राजनीति-विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय
१९७२

प्राक्कथन

नारी जागरण की समस्या एक विश्वव्यापी समस्या रही है । वास्तव में देश की सभ्यता एवं संस्कृति का यथार्थ प्रतिबिंब वहाँ की स्त्रियों की स्थिति जा सकता है । विश्व का इतिहास नारी समाज के उत्थान और पतन का इतिह जब सभ्यता एवं संस्कृति की उन्नति होती है समाज में नारी का स्थान उठ जाता तथा इनके विनाश के साथ नारी का गौरव तथा उसकी प्रतिष्ठा विलीन हो जा अतः नारी की स्थिति वह मापदण्ड है जिससे किसी देश अथवा काल का वास्तवि प्राप्त किया जा सकता है । नारी-जागरण के संबंध में पिछले सौ वर्ष अत्यन्त रहे हैं । प्रजातंत्र की स्थापना के साथ, स्वतंत्रता, समानता तथा न्याय जैसे सिद्ध पर बल दिया गया है । इस प्रजातांत्रिक लहर ने केवल पुरुष-वर्ग को ही नहीं नारी-वर्ग को भी समानरूप से प्रभावित किया है । प्रजातंत्र के प्रभाव में आकर सं प्रायः प्रत्येक देश में नारी ने अपने को सदियों से लगी हुई शृंखलाओं से मुक्त कर प्रयास किया है । नारी के इस मुक्ति-प्रयास को ही नारी जागरण का आन्दोल गया है । इस विश्वव्यापी आन्दोलन का प्रभाव भारतवर्ष पर भी पड़ना अत्यन् चित था जहाँ पुरुष-वर्ग ने स्त्रियों पर अनेकानेक प्रतिबंध लगा उन्हें पराश्रय तथा बना रखा था । भारत में नारी का जागरण एक निकट अतीत की बात है । स पददलित नारी ने, बीसवीं शताब्दी में आकर प्रथम बार अपने अस्तित्व की पहच एक गंभीर प्रयास किया है । स्वतंत्र भारत के संविधान ने स्त्रियों से सम्बन्धित सभ अविवेकी परंपरागत प्रतिबन्धों की छुट्टी कर नारी जगत का अपूर्व अभिनंदन किय साथ भारतीय नारी को भी, पुरुषों के समान ही अपने व्यक्तित्व के विकास समस्त अवसर उपलब्ध हैं । फिर भी रूढ़ियों और परंपराओं का एकाएक टूट जान सरल कार्य नहीं । चिर संचित धारणाओं तथा मनोविज्ञान में रातोंरात क्रान्तिका परिवर्तन, विशेष कर ऐसे देश में जहाँ की अधिकांश जनता अशिक्षित है, संभव न यही कारण है कि इतनी सामाजिक प्रगति एवं संवैधानिक आश्वासनों के उपरान् भारत का अधिकांश नारी समाज आज भी उस स्वतंत्रता का अनुभव करने में असमर्थ

संसार के अन्य प्रगतिशील देशों में दृष्टिगोचर होती है, अथवा जो उसे स्वयं भारत में वैदिक काल में उपलब्ध थी । फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि समय ने करवट ले ली तथा बहुत दिनों तक इस शोचनीय स्थिति का टिक सकना संभव नहीं । नारी जागरण आधुनिक भारत की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है । नारी जागरण के इस आन्दोलन के प्रत्येक पक्ष का अध्ययन सामान्य जनता एवं स्वयं नारी के लिये एक रुचि एवं जिज्ञासा का विषय है ।

इस शोध-प्रबन्ध में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित सरकारी रिपोर्टों तथा सर-कारी प्रोसीडिंग्स का मुख्य प्रयोग किया गया है । प्राचीन तथा मध्ययुग की नारी स्थिति पर प्रकाश डालने के लिए तत्कालीन मौलिक भारतीय ग्रन्थ तथा विदेशी विवरण की भी सहायता ली गई है । स्वतंत्रता संग्राम में नारी के योगदान को जानने के लिए मुख्य स्रोत रहे हैं तत्कालीन समाचार पत्र, जरनल्स तथा नेताओं के भाषण आदि । शोध-प्रबन्ध में इस सामग्री का यथेष्ट प्रयोग किया गया है । शैक्षिक प्रगति के क्षेत्र में शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित रिपोर्टों को मुख्य माध्यम बनाया गया है । सामाजिक विधान के क्षेत्र में मौलिक अधिनियमों और उनपर लिखी टीकाओं का तथा विभिन्न लॉ जरनल्स का सहारा लिया गया है । इसके अतिरिक्त विभिन्न पत्रिकाएं, विभिन्न दलों द्वारा प्रकाशित पत्रिकाएं तथा विभिन्न आयोगों की रिपोर्ट इस शोध-प्रबन्ध के प्रमुख आधार रहे हैं ।

अपने पूज्य अध्यापक तथा राजनीति विभाग के अध्यक्ष डा० अम्बादत्त पन्त के प्रति मैं कृतज्ञ हूं, जिनके अनुग्रह से इस शोध कार्य के प्रारंभ तथा पूर्ण करने में मुझे प्रत्येक सुविधा सुलभ रही । मैं श्रद्धेय श्री रघुनाथ मिश्रा की अत्यन्त आभारी हूं, जिनके योग्य निर्देशन और सहयोग के अभाव में यह शोध-प्रबन्ध पूर्ण नहीं हो सकता था ।

मधु राका सक्सेना

(कु० मधु राका सक्सेना)
राजनीति-विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

तिथि— २०-८-१९६२

सूची-पत्र

अध्याय - १

विषय प्रवेश

अध्याय- १

विषय-प्रवेश

(अ) प्राचीन भारत में नारी की स्थिति

किसी भी युग की सभ्यता का सही मूल्यांकन करने के लिए एक बहुत मह
पूर्ण कसौटी तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति है । इतिहास इस बात का साक्ष
है कि नारी कि स्थिति युग, देश व समाज के साथ-साथ बदलती रही है । इस परि
वर्तनशीलता का कारण नगरीय सभ्यता का विकास भी है । मनुष्य की प्रारंभिक
अवस्था जटिल न थी परन्तु नगर निर्माण के साथ-साथ नारी की स्वतंत्रता के ऊपर
अनेक बंधन लग गए । वैदिक युग की जागृत, सक्षम, कर्मठ, ऋचाओं की रचयिता, ब्रह्म
वादिनी, दार्शनिक तथा तत्ववेत्ता, राजसभाओं में पुरुष विद्वानों को भी चुनौती
देने वाली विदुषी व आचार्या पद को सुशोभित करने वाली सुधी-नारी से मध्ययुग
की परम्परागत कुसंस्कारों में जकड़ी, पर्दे में पली, अशिक्षित नारी का कोई साम्य
नहीं है । अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में नारी की यह सामाजिक अवनति
बढ़ती ही गई । बीसवीं शताब्दी के उदारचेता सुधारकों की कृपादृष्टि पाकर भारती
नारी का पुनर्जागरण हुआ ।

सभ्यता के प्रथम चरण में भारतीय आर्यों के संगठन का आधार कबीला
था । इन स्वच्छन्द कबीलों का जीवन अत्यन्त सरल व सादा था । कबीले के जीवन में
रूप ही नारी उनके लिए आभूषण मात्र न होकर जीवन के प्रत्येक कार्य-क्षेत्र में पुरु
की सहभागी थी । नारी के ऊपर किसी भी प्रकार के बंधन नहीं थे । पर्दा प्रथा उ
समय अज्ञात थी । अनेक वैदिक ऋचाओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वैदिक युग
में नारी सार्वजनिक मेलों तथा त्यौहारों में स्वतंत्रतापूर्वक भाग लेती थी[1]। "समाना"

---

1. "The Sister quitteth for the elder sister her place and havi
looked on her departeth. She decks her beauty, shining forth
with sunbeams, like women trooping to the festal meeting."

वैदिक युग का सर्वप्रचलित सार्वजनिक त्यौहार था, जिसका कोई धार्मिक ध्येय न होकर मात्र मनोरंजन था । ऋग्वेद में अनेक स्थल पर इसका वर्णन आया है । नारी इस उत्सव में अदम्य उत्साह से, सुसज्जित होकर भाग लेती थी ।[१]

वैदिक युग की प्रसिद्ध समिति "विदथ" थी ।[२] जिसका निर्देशन ऋग्वेद में १२२ तथा अथर्ववेद में २२ बार आया है । श्री जायसवाल[३] के अनुसार "विदथ" सभा तथा समिति, वैदिक युग की दो प्रसिद्ध समितियों से भिन्न थी । इस भिन्नता का कारण "विदथ" में नारी सदस्यों का समावेश था । ऋग्वेद में केवल एक ही निर्देश ऐसा मिलता है, जहाँ नारी का प्रवेश सभा में दिखाया गया है ।[४] परन्तु "विदथ" के लिए सात ऐसे निर्देश आए हैं जिनके अनुसार नारी न केवल इसमें प्रवेश की अधिकारिणी ही थी वरन् "विदथ" की प्रक्रिया तथा वाद विवाद में भी महत्वपूर्ण भाग लेती थी । योषा "विदथ" में जाती हुई प्रदर्शित की गई है ।[५] एक अन्य स्थल पर पुरुषों द्वारा नारी की नियुक्ति का निर्देश मिलता है ।[६] विवाह संस्कार

---

1. Shastri, Shakuntala Rao, Women in Vedic Age, p. 6.
2. Sharma, R.S., Aspects of political ideas and institutions in ancient India, p. 63.
3. Jaiswal, K.P., Hindu Polity, p. 21.
4. Rv, 1.167.3.

५. "गुहा चरंती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक्" Rv. 1/167/3
६. आस्थापयन्त युवतिं युवान: शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् Rv. 1/167/6

के समय भी यह आशा व्यक्त की गई है कि वधू "विदथ" में बोलने योग्य हो ।[१] दूसरी ओर यह भी कहा गया है कि वधू अपनी परिपक्व आयु में "विदथ" में बोले[२]।

सार्वजनिक कार्यों में नारी के भाग लेने की "विदथ" की यह परम्परा उत्तरकालीन संहिताओं के युग में भी प्रचलित थी । तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।७।३) बारह "रत्निन" की एक सूची देता है जिसमें तीन नाम (महिषी, वावाता तथा परिवृक्ति) नारियों के भी हैं ।

वैदिक युग में विवाह परिपक्व आयु में होते थे तथा नारी अपने पति के चुनाव में पूर्ण स्वतंत्र थी ।[३] वैवाहिक मंत्रों के अध्ययन से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है ।[४] इस समय नारी पुरुष के साथ यज्ञ में समान भाग लेती थी क्योंकि वैदिक धारणा के अनुसार पत्नी के बिना पुरुष अपूर्ण है और अपूर्ण तथा आधा पुरुष यज्ञ का अनुष्ठान नहीं कर सकता है ।[५] एक स्थल पर एक नारी सोम शाखा से इन्द्र के यज्ञ में कर्म बढ़ाती हुई प्रदर्शित है ।[६] विश्ववारा प्रातःकाल से यज्ञ का अनुष्ठान करती है ।[७]

शिक्षा व ज्ञान के क्षेत्र में भी स्त्री और पुरुष समान अधिकारी थे

---

१. गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि । Rv. X /85/26, Av. XIV /1/20

२. एना पत्या तन्वं सं स्पृशस्वाथ जिर्विर्विदथमा वदासि । Av. XIV /1/21

३. एयमगन्पतिकामा जनिकामोऽहमागमम् ।
अश्वः कनिक्रदद्यथा भगेनाहं सहागमम् ।। Av. II /30/5
अभि त्वा योषणो दश जारं न कन्याऽनूषत । Rv. IX /56/3

४. अन्यामिच्छ प्रफर्व्यं सं जायां पत्या सृज । X /85/22
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविता ददात् । X /85/9

५. तस्मात्पुरुषो जायां वित्त्वा कृत्स्नतरमिवात्मानं मन्यते । A.Br. 1/1/25

६. कन्या वारवायती सोममपि स्रुताविदत् ।
अस्तं भरन्त्यब्रवीदिन्द्राय सुनवै त्वा ।। VIII /91/1

७. एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची । V /28/1

अथर्ववेद में बालिकाओं द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत के पालन का स्पष्ट निर्देश मिलता है ।[1] यहाँ तक कि वैदिक मंत्र तथा ऋचाओं की रचयिता के रूप में नारी को पाते हैं । इनमें प्रमुख नाम हैं — विश्ववारा (५,२८ की रचयिता) तथा अपाला (८,९१ की रचयिता) जिन्होंने क्रमशः अग्नि तथा इन्द्र की प्रशस्ति लिखी । लोपामुद्रा १,१७९,१ तथा शाश्वती २,५,६६७,५-८ मंत्रों के कुछ अंश की रचयिता मानी गई हैं । घोषा, कक्षीवती, सूर्या सावित्री, इन्द्राणी, श्रद्धा, उर्वशी, शचीपौलोमी आदि कुछ अन्य विदुषियाँ थीं जिनके वास्तविक रचयिता होने में संदेह है ।[2] उपनिषद् कालीन नारी न केवल उच्च शिक्षिता ही थी वरन् शास्त्रार्थ में भाग लेती हुई तथा पुरुष विद्वानों के ज्ञान को चुनौती देती हुई हम उसे पाते हैं । राजा जनक के यज्ञ के अवसर पर जो दार्शनिक शास्त्रार्थ हुआ था उसमें गार्गी वाचक्नवी के प्रश्न सबसे दुरूह थे ।[3] ऋषि याज्ञवल्क्य की विदुषी पत्नी मैत्रेयी ऐसी ही ज्ञानी थी । वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करते समय ऋषि ने अपनी सम्पत्ति दोनों पत्नियों के मध्य विभाजित करना चाहा, इस पर ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी ने जो प्रश्न किए, वह साधारण नारी स्वभाव के परे की वस्तु है ।[4]

पाणिनि के युग में भी अनेक उच्च शिक्षित नारियों के नाम मिलते हैं । इस समय नारी-शिक्षिकाओं की संख्या इतनी अधिक थी कि उनके लिए एक पृथक शब्द का प्रयोग मिलता है — उपाध्यायी तथा आचार्या । यह शब्द उपाध्यायनी तथा आचार्यानी से भिन्न अर्थ रखता है, जो गुरु-पत्नी के लिए प्रयुक्त होता था । पाणि

---

१. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् — ११-५-१८

२. Shastri, Shakuntala Rao, page 26.

३. अतिप्रश्न्यां वै देवतामति पृच्छसि । बृह०उप० ३-६,१

४. सा होवाच मैत्रेयी । येनाहं नामृता स्याम् किमहं तेन कुर्याम्
यदेव भगवान् वेद तदेव मे ब्रूहीति ।

— बृह०उप० २-४,३

ने विभिन्न वैदिक-शाखाओं में शिक्षा देने वाली संस्थाओं में अध्ययनरत नारी शिष्याओं का उल्लेख किया है --यथा कठ स्कूल की छात्राएं कठी कहलाती थी।[१] वैदिक युग के पश्चात् तथा मौर्यवंश के उदय के पूर्व नारी-स्थिति पर बौद्ध साहित्य तथा धर्मसूत्र सूक्ष्म प्रकाश डालते हैं। बौद्ध धर्म का आविर्भाव ब्राह्मण धर्म के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया स्वरूप था। अतः अन्य सभी धार्मिक अंधविश्वासों के साथ ही ब्राह्मण धर्म की यह धारणा कि नारी प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष से हीन है, महात्मा बुद्ध द्वारा निर्मूल घोषित की गई। बुद्ध का दृष्टिकोण उदारवादी था। उन्होंने यह घोषणा की कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार जन्म पाता है। इस घोषणा ने इस बात पर सीधा आघात किया कि मोक्ष प्राप्ति के लिए पुत्र का होना अनिवार्य है। द्वितीय, बुद्ध ने निर्वाण प्राप्ति का मार्ग नारियों के लिए भी रखा[२] तथा सभी जाति की नारियों को संघ में प्रवेश का अधिकार देकर ब्राह्मण धर्म की इस धारणा को अमान्य सिद्ध किया कि नारियाँ आध्यात्मिक सत्य को प्राप्त करने की क्षमता नहीं रखती हैं। बुद्ध ने प्रतिपादित किया कि संसार "कष्ट" का स्थान है। इस सांसारिक "कष्ट" से पीड़ित नारियाँ संघ की ओर आकृष्ट हुईं। इसिदासी, भद्राकुंडलकेशा, उत्पलवर्णा आदि नारियाँ कलहपूर्ण पारिवारिक जीवन से छुटकारा पाने के लिए संघ की शरण में गई थीं।

वैदिक युग में विदुषी नारियों ने वैदिक ऋचाओं की रचना में महत्वपूर्ण भाग लिया था। बौद्ध भिक्षुणियों ने इस परम्परा को धार्मिक गीतों की रचना द्वारा पुनः जीवित किया। इन गीतों का संग्रह थेरी गाथा नाम से प्रसिद्ध है। बुद्ध की शिक्षाओं के प्रसार में इनका प्रमुख हाथ था। धम्मा दीना, सुक्का, तथा पटाचार्य शिक्षिकाएं थीं। विनय पिटक (चतुर्थ भाग) में थुल्लनन्दा धम्म तीन स्थलों पर महान् शिक्षिका कही गई है। भद्राकुंडलकेशा, कजंगला, शुभा, अनुपमा, सुमेधा,

---

१. पाणिनि -- ४, १।६३

२. इत्थिभावो नो किं कयिरा चित्तम्हि सुसमाहिते।
   ञानम्हि वत्तमानम्हि सम्माधम्मं विपस्सतो।।
   --थेरी गाथा --६१

राजकुमारी सुमन तथा नन्दी आदि अन्य विदुषियाँ थीं जो बुद्ध के साथ धार्मिक परिचर्या में भाग लेती थीं ।

जातक कथाओं तथा अन्य बौद्ध साहित्य में प्राप्त सामग्री के आधार पर पता चलता है कि इस समय बाल विवाह की प्रथा अज्ञात थी । भद्राकुंडलकेशा सोलह-वर्ष की आयु तक अविवाहित रही थी ।[१] थेरी गाथा में वर्णित सीला, चलाविका तथा सुमेधा बड़ी आयु तक अविवाहित थीं । बौद्ध साहित्य में महात्माबुद्ध के विवाह का वर्णन मिलता है जो इस बात की पुष्टि करता है कि विवाह के समय यशोधरा युवती थीं ।

स्वयंवर की प्रथा इस समय प्रचलित थी । कुणाल जातक[२] राजकुमारी कन्हा का तथा कुलवाकू जातक[३] सुजाता के स्वयंवर का निर्देश देता है । नाग राजकुमारी इरन्दति ने भी स्वयंवर द्वारा वर का चयन किया था ।[४]

जाति तथा कुल की परम्परा को बनाए रखने के लिए इस समय विवाह अधिकतर अपनी ही जाति के अन्तर्गत करने की प्रथा थी ।[५] अत: स्वयंवर का क्षेत्र सीमित था । पर्दे के प्रचलन का निर्देश यदा-कदा ही मिलता है । जातक कथाओं में रानियाँ मंत्रियों तथा अन्य पदाधिकारियों से स्वतंत्रता पूर्वक वार्तालाप करती हुई प्रदर्शित हैं ।[६] बौद्ध भिक्षुणियाँ भी भिक्षा माँगने की अधिकारिणी थीं । बहु-

---

१. Dhammapada Com. 102-13.

J.V. pp. 426-7.

३. सुजातम् अलङ्कारित्वा सन्निपातोस्थानम् आनेत्वा सिदापेसितम् सामिकम् गृह्णाति आह सु । J. I PP. 205 16

4. J.V. pp. 264-5.

5. Fick, The Social organisation in North-East India in Buddha's time, p. 52.

6. J. VI. pp. 293-4, 300.

विवाह का सर्वथा अभाव था तथा सती आदि दूषित प्रथाएँ अभी तक समाज में प्रवेश न कर सकी थीं। विधवा स्त्री पुनर्विवाह की अधिकारिणी थी।[१]

महात्मा बुद्ध ने नारी को समानता का अधिकार देकर, नारी स्थिति को ऊँचा उठाने में अत्यधिक सहायता पहुँचाई थी, परन्तु उनके उपदेशों का प्रभाव अस्थायी रहा और उससे समाज का अत्यंत अल्प भाग ही प्रभावित हो सका। धर्मसूत्रों में एक ऐसे समाज का चित्र मिलता है जो इस बात की पुष्टि करता है कि मौर्यवंश के प्रादुर्भाव के पूर्व ही नारी-दशा अवनति की ओर अग्रसर हो चुकी थी। धर्मसूत्रकारों ने नारियों के कर्तव्य निर्धारण तथा विवाह सम्बन्धी जो नियम बनाये हैं उनके ऊपर ऐसे बंधनों को लगाते हैं जो वैदिक युग में अज्ञात थे।

वर्तमान धर्मसूत्रों में गौतम धर्मसूत्र सबसे अधिक प्राचीन है। इसमें विवाह संस्कार को सबसे अधिक महत्ता प्रदान की गई है। गौतम के अनुसार युवा होने के पूर्व ही कन्या का विवाह कर देना चाहिए।[२] यदि पिता ऐसा करने में असमर्थ है तो कन्या स्वयं विवाह की अधिकारिणी है। इससे प्रतीत होता है कि बाल-विवाह की कुरीति अभी प्रचलित नहीं थी। नियोग द्वारा पुत्र की प्राप्ति एक सामाजिक संस्था के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी।[३]

गौतम चूँकि सबसे प्रारंभिक सूत्रकार थे, अतः उनके नियम वैदिक प्रथाओं से अधिक साम्य रखते हैं। बाद के सूत्रकार बौधायन आदि नारी-स्वतंत्रता पर अनेक बंधन लगा देते हैं, जिसका कारण उनका परिवर्तित युग ही था। बौधायन के मत में स्त्री स्वतंत्रता के योग्य नहीं है।[४] उसका सम्मान वहीं तक है, जब तक वह पुत्र की माता है, ऐसी स्त्री जो कन्या को ही जन्म देती है, त्याज्य है। बौधायन ने नियोग प्रथा पुनर्विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाहों को भी मान्यता

---

1. Mehta, R.N., Pre-Buddhist India, p. 277.

२. १८,२०,२३

३. बौ०ध०सू०, १८-६।१४

४. बौ०ध०सू० २।३।४५

दी है ।[१]

आपस्तम्ब नियोग प्रथा के विरुद्ध थे । इस समय नारी के लिए विवाह संभवतः अनिवार्य हो गया था । आपस्तम्ब विवाहित नारी को अत्यधिक मान्यता देते हैं ।[२] वैवाहिक बंधनों का पालन कठोरतापूर्वक होना चाहिए, ऐसा विधान बनाकर विवाह-विच्छेद का अधिकार छीन लिया गया है ।

वसिष्ठ के धर्मसूत्र में ऐसे समाज का चित्र है, जहाँ नारी का कोई पृथक व्यक्तित्व नहीं था तथा समाज की कुछ अन्य कुरीतियाँ भी अपना स्थान बना चुकी थीं । वसिष्ठ के धर्मसूत्र में प्रथम बार बाल-विवाह का निर्देश मिलता है ।[३]

धर्मसूत्रों में "स्त्रीधन" तथा सम्पत्ति के वैध उत्तराधिकार का प्रश्न भी चर्चा का विषय रहा है । परन्तु लगभग सभी सूत्रकार पिता तथा पति की सम्पत्ति से नारी को वंचित कर आर्थिक क्षेत्र में भी उसे पुरुष वर्ग की अधीनता पर विवश छोड़ देते हैं । आपस्तम्ब के अनुसार पुत्री पिता की सम्पत्ति की तभी उत्तराधिकारिणी होगी जब सपिंड, आचार्य तथा अन्य निकटसम्बन्धी न हों ।[४] इसीप्रकार वसिष्ठ (XV ,७) तथा गौतम (XXVIII, २१) भी उत्तराधिकार से पुत्री को वंचित करते हैं । नारद के अनुसार पुत्री का अधिकार विवाह के पूर्व है, बाद में नहीं ।[५]

---

१. बौ०ध०सू० २।३।१०

२. Apa.D.S. १।४।१४।२१ तथा II १०।२६।२८

३. "Let the father marry his daughter while she still runs about naked. For, if she stays in the house after her marriageable age, sin falls on the father" Vais-D.S.XVII.70.

४. पुत्राभावे यः प्रत्यासन्नः सपिण्डः । तदभावे आचार्यः । आचार्याभावे अन्तेवासी हृत्वा धर्मकृत्येषु योजयेत् । दुहिता वा । II १४।२-४

५. या तस्य दुहितातस्याः पित्र्यो ऽंशो भरणे मतः ।
आसंस्कारं भजेत्तां परतो बिभृयात्पतिः ।। XIII ,२७

विष्णु पुत्रहीन विधवा को पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी मानते हैं ।[1] याज्ञ-वल्क्य भी इस अधिकार का समर्थन करते हैं ।[2] परन्तु "स्त्री धन" का अधिकार लग-भग सभी सूत्रकार प्रदान करते हैं । यहाँ तक कि बौधायन, जिन्होंने पत्नी के उत्तरा-धिकार की मान्यता नहीं दी है, "स्त्रीधन" पर उसका असंदिग्ध अधिकार मानते हैं।[3]

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में अपने समय की एक स्पष्ट झाँकी प्रस्तुत की है जिसमें सामाजिक जीवन विशेषकर नारी स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है । अर्थशास्त्र में चित्रित समाज में नारी प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के अधीन थी । विवाह नारी के लिए सबसे उपयुक्त कार्य समझा जाता था । कन्या को धन के बदले क्रय करके विवाह की दूषित प्रथा अत्यधिक प्रचलित थी । कौटिल्य ने अनेक स्थलों पर कन्या के बदले "शुल्क" देने का वर्णन किया है । "शुल्क" न केवल निम्नप्रकार के विवाह में ही प्रचलित था वरन् संभवतः आठों प्रकार के विवाहों में इसका प्रयोग होता था यहाँ तक कि धर्म विवाह भी इससे अछूता न था ।[4] शुल्क लेने की प्रथा चारों वर्णों में प्रचलित थी ।[5]

बहुविवाह इस समय तक स्थान पा चुका था ।[6] प्रथम पत्नी के जीवनकाल में ही व्यक्ति उसके लिए उपयुक्त व्यवस्था करके दूसरा विवाह कर सकता था ।[7]

---

१. अपुत्रस्य धनं पत्न्यभिगामि । तदभावे दुहितृगामि ।। १७।४३

२. पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा ।
तत्सुता गोत्रजा बन्धु शिष्यसब्रह्मचारिणः ।।
एषामभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तरः ।
स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधिः ।। २।१३५-६

३. मातुरलंकारं दुहितरः साम्प्रदायिकं भवेदन्यथा ।। —बौ०ध०सू० २।२।४४

४. धर्मं विवाहात्कुमारी ..... एकदेशदत्त शुल्कं स्त्रीधनं लब्धानि ..... कन्याहु०शील ।
दत्त शुल्कं चैव ...... । कौ०अ० ३।४।३१-३४

५. विवाहानां तु सर्वेषां पूर्वेषां वर्णानां पाणिग्रहणात् सिद्धमुपावर्तनम् शूद्राणां च प्रकर्मणः । कौ०अ० ३।१५।११

६. **Thapar, Romila, Asoka and the decline of Mauryas, p. 87.**

विवाह विच्छेद का अधिकार स्त्री-पुरुष दोनों को प्राप्त था ।[१] परन्तु यह विधान केवल निम्नचार प्रकार के विवाहों के लिए ही था, अतः उसका क्षेत्र सीमित था । प्रथम चार प्रकार के विवाह में विच्छेद की अनुमति नहीं थी ।[२] विधवा नारी संभवतः अधिक स्वतंत्रता का उपभोग करती थी । अर्थशास्त्र में 'छन्दवासिनी विधवा'-वह विधवा जो स्वतंत्रतापूर्वक रहती है, का निर्देश है ।[3] ब्राह्मण विधवा अधिकतर 'परिव्राजिका' (भ्रमणशील भिक्षुणी) का जीवन अपना लेती थी ।[४]

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में सम्पत्ति के उत्तराधिकार के प्रश्न पर भी विचार किया है तथा उत्तराधिकारियों की एक संक्षिप्त सूची प्रस्तुत की है जिसमें पत्नी को कोई स्थान नहीं मिला है । आगामी युगों में नारी की स्थिति और भी अधिक शोचनीय हो गई थी । मनु आदि स्मृतिकार एक अनुदारवादी युग का प्रतिनिधित्व करते हैं । जहाँ जाति प्रथा के बंधन अत्यधिक कठोर हो गए थे तथा समाज में नारी की स्वतंत्रता पर अनेक सीमाएं थीं । एक प्रकार से प्राचीन ब्राह्मण आदर्शों की पुनः स्थापना का प्रयत्न हो रहा था । नारी जाति की निरन्तर अधीनता का सिद्धान्त मनु तथा याज्ञवल्क्य द्वारा पुनः जीवित किया गया ।[५]

---

१. परस्परं द्वेषान् मोक्षः । ३।३।१६

२. अमोक्षो धर्म विवाहानाम् — ३।३।१६

३. ३।२०।१६

४. Kangley, p. 153.

५. पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
रक्षन्ति स्थाविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ।। मनु - ६।३
बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता ।
न स्वातंत्र्येण कर्तव्यं किंचित्कार्यं गृहेष्वपि ।।
बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत् पाणिग्राहस्य यौवने ।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत् स्त्री स्वतंत्रताम् ।। मनु-५ ।१४७।१४८
याज्ञ. १।८५।६

कन्या का जन्म एक दुखद घटना माना जाता था । हर्षचरित में प्रभाकरवर्धन कहता है कि पुत्री के जन्म पर व्यथित आँसू बहाते थे ।[1] बालविवाह का प्रचलन अभी तक दृढ़ता प्राप्त नहीं कर सका था । राजश्री, महाश्वेता, कादम्बरी तथा कालिदास की प्रमुख पात्री शकुन्तला विवाह के समय युवती थीं । परन्तु जहाँ पर स्मृति आदेशों का पालन होता था । सर्वसाधारण तथा पुरातनपंथी हिन्दू परिवारों में विवाह की आयु अवश्य घटा दी गई थी । उदाहरणार्थ मनु लिखते हैं कि तीस वर्षीय युवक को बारह वर्ष की तथा चौबीस वर्षीय युवक को आठ वर्ष की कन्या से विवाह करना चाहिए ।[2] कालान्तर में बाल विवाह की प्रवृत्ति और भी अधिक बढ़ गई थी । योग्य वर न मिलने पर, कुपात्र से ही विवाह कर देना चाहिए, परन्तु प्रत्येक दशा में छोटी आयु में विवाह कर देना चाहिए ।[3] इस समय आयु के अनुसार बालिका के अनेक नाम पड़े[4] तथा क्रम से छोटी आयु में विवाह करने का विधान उचित माना गया ।

डा० अल्टेकर ने बाल-विवाह की व्यापकता के अनेक कारण बताए हैं — उनके अनुसार समाज के उच्च वर्गों ने भी निम्नवर्ग के आदर्शों को अपनाना आरंभ कर दिया था । द्वितीय जाति प्रथा के बंधन कठोर होने के कारण पिता के सामने योग्य वर के चुनाव का क्षेत्र अत्यन्त सीमित हो जाता था तथा अल्पआयु में विवाह करने से पिता पुत्री के भविष्य की ओर से निश्चिंत हो जाता था । अल्टेकर के मत से संयुक्त परिवार प्रणाली भी बाल विवाह को प्रोत्साहन देने का एक कारण था क्योंकि वर के जीविकोपार्जन योग्य होने की आवश्यकता कम अनुभव की जाती

---

१. H.C. Ch. IV pp. 140-41

२. त्रिंशद्वर्षो वहेत् कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् ।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥ मनु, ९।९४

३. दद्याद्गुणवते कन्यां नग्निकां ब्रह्मचारिणे ।
अपि वा गुणहीनाय नोपरुन्ध्याद् रजस्वलाम् ॥ S.C.S. P. 216

४. अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा तु रोहिणी ।
दशवर्षा भवेत् कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ Br. Yama III २१।२२

थी[1]। संभवत: जनसंख्या में वृद्धि करने का उद्देश्य भी इस प्रथा में निहित था।[2]

यद्यपि उच्च वर्ग में विवाह उचित आयु में होते थे, तथापि वर के चुनाव में पुत्री का कोई हाथ न था। अपनी पुत्री राज्यश्री के लिए गृहवर्मन का चुनाव कर प्रभाकरवर्धन ने रानी की सलाह माँगी। परन्तु रानी का उत्तर था कि पिता इस विषय में पूर्ण अधिकारी है।[3] इस वार्तालाप के समय राज्यश्री कहीं भी दृष्टिगत नहीं होती। इस समय निश्चित दहेज की प्रथा नहीं थी, परन्तु विवाह के समय वधू के साथ अतुल धनराशि दी जाती थी। राज्यश्री के विवाह में प्रभाकरवर्धन ने हाथी, घोड़े, विभिन्न बहुमूल्य आभूषण तथा वस्त्र दहेज रूप में दिए थे।[4] महाकवि कालिदास ने भी अनेक स्थलों पर दहेज का विवरण दिया है।[5]

मनु के युग में बहुविवाह की प्रथा उच्च वर्ग के विशेषाधिकार के रूप में स्थापित हो गई थी। इस क्रम के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रमश: चार, तीन, दो व एक पत्नी रखने के अधिकारी थे। कालिदास के नाटकों के सभी राजा पात्रों के अनेक रानियाँ थीं।[6]

विधवाओं की स्थिति अधिक शोचनीय हो गई थी। मनुस्मृति में विधवा नारी के लिए कठोर नियम मिलते हैं। पुनर्विवाह की अनुमति उन्हें नहीं थी।[7]

---

१. Altekar, A.S., Position of Women in Hindu Civilisation, p.59-61.
2. Sharma, B.N. Social life in northern India, p. 16.
3. H.C. Cowell Thomas ch. IV, p. 123.
4. H.C. ch. IV.
५. Raghu. VII. 32. of Mallinathe हरणं कन्यायै देयं धनम् । यौतुकादि तु यद्देयं सुदायो हरणं च तत् इत्यमरः ।
६. अवरोधे महत्यपि Raghu. I ३२, बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते Sak. P. 105 बहुपत्नीकेन Ibid २१६, ज्येष्ठमातरम्
७. न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य वै । मनु. ५।१५६

मनु लिखते हैं कि साध्वी नारी के लिए द्वितीय पति वर्जित है ।[१] यही नहीं, मनु उस कन्या को भी विवाह का अधिकार नहीं देते जिसका निर्धारित पति विवाह के पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ।[२] इसके ठीक विपरीत पुरुष पत्नी की मृत्यु के तुरन्त बाद विवाह का अधिकारी है ।[३] हर्ष के समय दो विभिन्न प्रवृत्तियों का उल्लेख मिलता है । हर्षचरित उदारवादी विचारों का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ सती प्रथा का उल्लेख विधवा नारी के लिए सर्वोत्तम मार्ग के रूप में हुआ है । प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के उपरांत उसकी रानी ने चिता में जलने की इच्छा व्यक्त की थी । हर्ष ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की, क्योंकि उसके अनुसार यह उच्चकुल की मर्यादा के अनुरूप प्रथा है ।[४] राजश्री ने भी इस विषय में इन्हीं विचारों को मान्यता दी थी ।[५] कालिदास के ग्रन्थों में भी सती प्रथा का निर्देश मिलता है ।[६] एक स्थल पर रति का उदाहरण है जो पति के साथ जलने को तैयार है ।[७] कालिदास ने नारियों के लिए इस मार्ग को स्वाभाविक माना है ।[८]

---

१. न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद् भर्तोपदिश्यते । मनु ५।१६२

२. यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः ।
   तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ।। मनु : ९।६९

३. भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्वाग्नीं त्यक्तिं पूर्वकम् ।
   पुनर्दार क्रियां कुर्यात्पुनराधान मेव च ।। मनु ५।१६८

४. H.C. V P. 168

५. Ibid. VIII P. 253.

६. मरणाव्यवसाय बुद्धि - Ku. 4.5

६. त्वामनुयामि — Ibid. 21

७. शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित्प्रलीयते ।
   प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि ।। Ibid. IV 33

परन्तु यह प्रथा अभी तक दृढ़ता प्राप्त नहीं कर सकी थी । वैधव्य जीवन के कठोर नियमों का पालन करती हुई अनेक नारियाँ हर्षचरित तथा कालिदास के ग्रन्थों में वर्णित हैं ।[1] ऐसी नारियाँ या तो भिक्षुणी जीवन अपना लेती थीं अथवा घर में ही जीवन के सुखों का त्याग कर व्रत-उपवास का अनुष्ठान करती थीं ।[2]

साधारणतया नारी के लिए पर्दे का बंधन कठोर नहीं था । कालिदास द्वारा चित्रित समाज युवतियों को घर की चहारदीवारी में बंद नहीं करता, परन्तु स्थान-स्थान पर पर्दे की प्रथा के लिए आए शब्द इस बात के परिचायक हैं कि उच्चकुलों में शीलतावश नारियाँ पर्दे का पालन अवश्य करती थीं ।[3] बाण के अनुसार राजघरानों में नारियाँ इसका पालन कठोरता से करती थीं ।[4]

नारी शिक्षा का प्रचलन इस समय लगभग समाप्त सा हो गया था । अल्प आयु में विवाह होने के कारण शिक्षा का क्षेत्र सीमित हो गया था । मनु के अनुसार विवाह ही नारी का उपनयन है, तथा पति सेवा ही गुरुकुल में निवास करने के समान है ।[5] मनु और याज्ञवल्क्य जिन्होंने अपनी संहिताओं में अनेक अध्याय बालक शिष्यों के कर्तव्यों पर लिखे हैं, कहीं भी ब्रह्मचारिणी शब्द का प्रयोग नहीं किया है । शुक्र (III – १७७) जो कि वर के लिए शिक्षित होना आवश्यक बताते हैं, कहीं भी यह विचार व्यक्त नहीं करते हैं कि कन्या भी शिक्षित हो । इसी प्रकार हारीत नारी शिक्षा को प्राचीन युग की बात कह कर उल्लेख

---

१. नव वैधव्यमसह्यवेदनं । Ku. IV. 1; पुनर्नवीकृतस्य वैधव्य दुःखस्य Mal. पृ.०६६, कथमनया तु पत्न्या केन सह भवता भवितव्यं । Sak. P. 219.

२ H.C. V P. 171, Kad. P. 42.

३. अवरोध Sak. VI. १२, अन्तःपुर Ragho. XVI ५६, Ku. VII २, Sak. P. 1..
Mal. II. 44. शुद्धान्त, Ragho. III. 16. VI. 45. Sak. I. 15.

४ Kad. PP. 166 – 302.

५. वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिको मतः ।
पतिसेवा गुरौवासो गृहार्थोऽग्नि परिक्रिया । २।६७

करते हैं । यहाँ तक कि तक्षशिला के नालन्दा विश्वविद्यालय में जहाँ हजारों की संख्या में विद्यार्थी शिक्षा पाते थे, नारी शिक्षा के लिए कोई भी निर्देश नहीं मिलता है । परन्तु घरेलू कलाओं में नारियाँ अवश्य पारंगत होती थीं । कादम्बरी तथा महाश्वेता गाने, बजाने तथा नाच में प्रवीण थीं[१]। कादम्बरी में महाश्वेता "संध्या" का अनुष्ठान भी करती हुई प्रदर्शित है ।[२]

इस प्रकार मौर्य युग के पश्चात् नारी स्थिति निरन्तर अवनति की ओर अग्रसर होती गई तथा मध्ययुग में -- मुसलमानों के राजत्वकाल में नारी स्वतंत्रता एकदम सीमित कर दी गई थी तथा समाज की अनेक कुप्रथाएँ दृढ़तापूर्वक स्थापित हो गईं ।

(ब) मध्ययुग में नारी की स्थिति

भारत पर मुसलमानों के आक्रमण तथा मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना के कारण मध्ययुग में हिन्दुओं की सामाजिक व्यवस्था में कुछ परिवर्तनों का आना स्वाभाविक ही था । आक्रमणकारी मुसलमानों के हाथों अपनी सभ्यता-संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए हिन्दू-समाज में कुछ नवीन प्रवृत्तियों का आविर्भाव हुआ, जिसका प्रभाव तत्कालीन नारी-स्थिति पर विशेषरूप से पड़ा ।

मध्ययुगकी सामाजिक प्रवृत्ति एक अनुदारवादी समाज का प्रतिनिधित्व करती है, विशेषकर मुसलमानकालीन भारत, नारी को उनके प्राचीन गौरव व सम्मान से वंचित कर अपेक्षाकृत निम्न सामाजिक स्तर प्रदान करता है । मध्यकालीन भारत में नारी का सम्पूर्ण जीवन तथा विभिन्न क्षेत्रों में उसके कार्य घर की चहारदीवारी तक ही सीमित थे । पर्दा के कठोर नियंत्रण ने उन्हें बाह्य समाज से सम्पर्क स्थापित करने में असमर्थ बना दिया था । नारी पर इस कठोर नियंत्रण का कारण मुस्लिम आक्रान्ता से हिन्दू जाति की रक्षा करना था । मुस्लिम युग में इन सामाजिक प्रथाओं का पालन कठोरतापूर्वक होता था ।

प्रारम्भिक मध्ययुग में नारी को कुछ अंशों में अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थी ।

---

1. H.C. ch. IV. p. 140.

तुर्की नारी न केवल सामाजिक क्षेत्र में ही वरन् राजनीतिक क्षेत्र में भी पुरुष-वर्ग के साथ भाग लेती हुई पाई जाती है । इब्नबतूता के अनुसार "गोल्डनहार्ड" के खान की रानियाँ राजदरबार लगाती थीं तथा आगन्तुकों का स्वागत करती थीं[१]।

सल्तनत काल में इल्तुतमिश की योग्य पुत्री रज़िया का नाम विशेष उल्लेखनीय है । रज़िया न केवल एक सुशिक्षित नारी ही थी, अपितु कुशल शासन-कर्त्री भी थी । इल्तुतमिश ने उसकी योग्यता और कुशलता को देखते हुए, पुत्रों के होते हुए भी उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था ।[२] रज़िया ने जिस कुशलता से अपने विरोधी तुर्क सरदारों के दल को छिन्न-भिन्न करके उन्हें आत्म-समर्पण पर विवश किया था वह उसकी कूटनीतिज्ञता का प्रत्यक्ष प्रमाण है ।[३] पर्दे को त्याग कर रज़िया खुले दरबार में बैठती थी ।[४] वह प्रजा के दुखों को सुनती तथा शासन के सूक्ष्म से सूक्ष्म कार्यों का स्वयं निरीक्षण करती थी । रज़िया का उदाहरण इस बात का प्रमाण है कि राज्य में नारी के लिए "सर्वोच्च पद" का द्वार भी खुला था ।

रज़िया के उपरान्त लगभग आधी शताब्दी के अनन्तर जलालुद्दीन की पत्नी मलिका-ए-जहाँ का निर्देश मिलता है । जलालुद्दीन की मृत्यु के उपरान्त उसने अपने पुत्र को गद्दी पर आसीन करने का प्रयत्न किया था तथा शासन की सम्पूर्ण-शक्ति अपने हाथों में ले ली थी ।[५]

लोदी साम्राज्य में भी इस प्रकार की रानियों के नाम मिलते हैं, जिन्होंने शासन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भाग लिया था जैसे सुलतान महमूद शर्की की माँ

---

१. Gibb, H.A.R., Selections from the Travels of Ibn Batuta, pp. 146-8.

२. मिनहाज सिराज- तबकाते नासिरी, १८६ (आदि तुर्ककालीन भारत द्वारा सैयद अतहर अब्बास रिज़वी, पृष्ठ ३४)

३. Pandey, A.B., p. 58.

४. मिनहाजे सिराज - तबकाते नासिरी, १८८ (आदितुर्क कालीन भारत, द्वारा सैयद अतहर अब्बास रिज़वी, पृष्ठ ३५)

५. बरनी- तारीख-ए-फीरोजशाही (खिलजी कालीन भारत), पृ० १६

"बीबी राजी" जौनपुर की राजनीति की प्रमुखपात्री थी तथा राजकुमार हुसैन को गद्दी दिलाने में उसका बड़ा हाथ था।[1] बीबी अम्बा, सुलतान बहलोल की हिन्दू रानी ने अपने पुत्र के उत्तराधिकार के पक्ष में पर्दे के पीछे से असेम्बली में प्रभावपूर्ण भाषण किया था।[2] तथा अंत में उसे गद्दी दिलाने में सफल हुई थी।

राजनीति में भाग लेने वाली इन कतिपय नारियों के अपवाद को छोड़ कर तुर्की नारियों की सामाजिक स्थिति उत्तम नहीं कही जा सकती थी। पर्दा प्रथा का प्रचलन तुर्क तथा लोदी सुल्तान के युग से आरम्भ हो गया था, यद्यपि "हरम" एक संस्था के रूप में विकसित न हो सके थे। उच्च वर्ग में बहु विवाह की प्रथा अपनी जड़ जमा चुकी थी।[3] नारियां जो मात्र भोगविलास की सामग्री के रूप में एकत्र की जाती थीं, पति भक्ति व त्याग का प्रमाण अपने सम्मिलित पति की मृत देह के साथ जलकर देने पर विवश थीं। बाल-विवाह भी संभवतः प्रारम्भ हो चुका था तथा अनेक परिवारों में कन्या का जन्म अशुभ समझा जाने लगा था[4]। मुसलमान सरदार अनेक पत्नियां तथा वेश्यायें रखना गौरव की बात समझते थे। वेश्यावृत्ति इस समय चरम सीमा पर पहुंच चुकी थी। खिलजी सुल्तान ने अपने सरदारों के कहने पर अन्य सामान्य उपभोग की वस्तुओं के साथ साथ वेश्याओं का मूल्य निर्धारण भी कर दिया था।[5] अलाउद्दीन खिलजी के समय इनकी संख्या इतनी बढ़ गई थी कि सुल्तान ने बलपूर्वक अनेक वेश्याओं का विवाह करवा कर उन्हें पारिवारिक जीवन व्यतीत करने पर बाध्य किया था।[6] कुतुबुद्दीन मुबारक खिलजी तथा कैकुबाद की प्रवृत्ति इस ओर इतनी अधिक थी कि तत्कालीन समाज का अत्यंत भ्रष्ट सरदार वर्ग भी इसे देख कर स्तब्ध था।[7]

---

1. Niamatullah (Tr.) Makhzan-i-Afghana, p. 45.
2. Ferishta, Vol. I, p. 563.
3. Kindersley L. No. XXXI.
4. Kindersley L. No. XXXI.
5. Kindersley L. No. XXXI.
6. Asraf - Life and condition of the People of Hindustan p. 320, and Thomas, P., Indian Women through the ages, p. 251.
7. Pandey, A.B., p. 324.

हिन्दू परिवारों में नारियों को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। पर्दे का पालन उन्हें नहीं करना पड़ता था तथा स्वेच्छा से विवाह करने की अनुमति उन्हें प्राप्त थी। पुनर्विवाह तथा विवाह विच्छेद का भी उन्हें अधिकार था।[१]

उच्च वर्ग में पर्दे का प्रचलन होते हुए भी नारी शिक्षा की ओर समुचित ध्यान दिया गया था। राजघरानें की स्त्रियां मुसलमान विधवाओं तथा वृद्ध पुरुषों द्वारा अपने घर में ही शिक्षा ग्रहण करती थीं।[२] रज़िया उच्च शिक्षित नारी थी। घुड़सवारी, युद्धकला तथा शासन संचालन की शिक्षा भी उसे दी गई थी।[३] संभवत: कराजल पहाड़ी पर आक्रमण करने में मोहम्मद तुगलक का उद्देश्य उस स्थान की सुशिक्षित नारियों को प्राप्त करना भी था।[४] सुलतानों की ओर से भी नारी शिक्षा की प्रगति के लिये प्रयत्न किये गये थे। गयासुद्दीन खिलजी ने सारंगपुर में एक मदरसा स्थापित किया था जिसमें नारियों को कलाकौशल की शिक्षा दी जाती थी।[५] देवलरानी की प्रतिभा इस बात का प्रमाण है कि हिन्दू रानियां भी उचित शिक्षा ग्रहण करती थीं।[६] नारियों को नाच गाने, सिलाई बुनाई, बढ़ई गिरी जूते बनाना तथा युद्ध सम्बन्धी शिक्षा भी दी जाती थी।[७]

जहाँ तक समाज के निम्नवर्ग का प्रश्न है, प्रारंभिक मध्ययुग में निम्न-वर्गीय नारी उच्चवर्ग की नारी को आदर्श मानकर उनका अनुकरण करती थी।[८] बहुविवाह का प्रचलन इस वर्ग में भी था।[९] मुसलमानों के आगमन के कारण पर्दे

---

1. Pandey, A.B., p. 324.
2. Hussain, Yusuf, Glimpses of medieval Indian Culture, p. 92 & Jafar, Education in Muslim India, p. 85.
3. Hussain, Yusuf, p. 92, Asraf, p. 243 (Vol. I).
4. Asraf, p. 243.
5. Hussain, Yusuf, p. 92.
6. Asraf, p. 243.
7. Hussain, Yusuf, p. 92.
8. Asraf, p. 243.
9. Pandey, A.B., Early medieval India, p. 324.

का पालन कठोरता से होने लगा था । बाल-विवाह की प्रथा व्यापक हो गई थी तथा हिन्दू नारियों में सती तथा जौहर की प्रथायें और भी दृढ़ हो गई थीं।[1] फ़ीरोज़ तुग़लक़ तथा सिकन्दर लोदी ने नारी स्वतंत्रता पर और भी बन्धन लगा दिये थे । फ़ीरोज़ अपनी आत्मकथा मे लिखता है कि उसने नारियों का तीर्थ स्थानों पर जाना भी निषिद्ध कर दिया था ।[2]

मुसलमानों के शासन काल में नारी की स्थिति और भी पतनोन्मुख होती गई । मुस्लिम समाज में पर्दा सर्वप्रचलित था । पर्दे के चलन ने नारी की समस्त क्षमताओं, शक्तियों और इच्छाओं का दमन कर दिया था । बाह्य समाज, विशेष-कर पुरुषवर्ग के सम्पर्क से वंचित होने के कारण उनका मानसिक तथा बौद्धिक ह्रास हो गया । पर्दे का पालन इतनी कठोरता से होता था कि यदि कोई नारी सार्वजनिक स्थान में बिना पर्दे के पाई जाती थी तो सभ्य समाज से उसे बहिष्कृत कर दिया जाता था ।[3] इसका ज्वलंत उदाहरण शाहजहाँ के एक सरदार अमीर खाँ की पत्नी साहिबजी है । साहिबजी बिगड़े हाथी से अपनी प्राणरक्षा के लिये पालकी से कूदकर एक दुकान में जा घुसी थी । इस आपत्काल में भी उस सरदार ने पर्दे का उल्लंघन अवांछनीय माना तथा साहिब जी का त्याग कर दिया था ।[4]

बहुविवाह की अनुमति मुसलमान पुरुषों को उनके धर्म की ओर से प्राप्त है । इसका लाभ उठाकर मुग़ल बादशाह तथा सरदार वर्ग अनेक पत्नियाँ रखते थे । अकबर प्रथम सम्राट् था जिसने इस ओर सुधार का प्रयत्न किया था ।

मुगल काल में "हरम" का होना सर्वविदित है , इस समय तक "हरम" एक संस्था के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे । सम्राट की रानियों के अतिरिक्त उसमें राजा की माँ, बहनें, पुत्रियाँ तथा बाँदियों का जमघट रहता था । हरम का सर्वोच्च

---

1. Asraf, p. 256, 26.

2. Pandey, A.B., p. 324.

3. Thomas, P., Indian Women through the ages, p. 250.

4. Thomas, p. 251-252.

पदाधिकारी सम्राट स्वयं था परन्तु इसके प्रबन्ध के लिए विभिन्न विभागों में नारियों की नियुक्ति की जाती थी । संक्षेप में हरम एक छोटा राज्य था जिसका प्रबन्ध राज्य के आधार पर ही होता था । मालवा राज्य का शाही "हरम" इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है ।[1]

मुगल समाज की यह दूषित प्रथाएं तत्कालीन हिन्दू समाज में भी प्रविष्ट हो गई थीं । निकोलीकोन्सी के विवरण के अनुसार विजयनगर राज्य में बहु-विवाह सर्वव्यापक था, तथा पति की मृत्यु के उपरान्त उसकी अनेक पत्नियां सती होने पर बाध्य थीं ।[2] पेस ( ) लिखता है कि राजा के बारह वैध रानियां थीं जिनमें विभिन्न पड़ोसी राज्यों की राजकुमारियों से लेकर वैश्याएं तक सम्मिलित थीं । इन पर पर्दे का कठोर नियंत्रण था । बाहर जाने के लिए बंद पालकियों का प्रयोग होता था ।[3] हरम जीवन के नारकीय वातावरण से बचने के लिये एक साधारण कृषक कन्या ने सम्राट् के विवाह प्रस्ताव को ठुकरा दिया था ।[4]

पर्दे के कठोर बंधन के साथ वैश्यावृत्ति भी बढ़ती आ रही थी । मुगल-काल में वैश्याओं की संख्या तथा मांग इतनी अधिक थी कि सम्राट अकबर को उनके लिए शहर से दूर एक पृथक नगर बनवाने पर विवश होना पड़ा । इस नगर का नाम उसने "शैतानपुर" रखा तथा इसके प्रबन्ध के लिए कर्मचारियों की पृथक नियुक्ति की गई थी ।[5]

इस समय तक सती तथा जौहर की प्रथाएं भी दृढ़ हो चुकी थीं । यद्यपि मुगल सम्राट् इस प्रथा के विरुद्ध थे, परन्तु हिन्दुओं में विशेषकर राजपूत जाति इसे गौरव का स्थान देती थी । मारवाड़ के राजा अजितसिंह की मृत्यु के बाद उसकी चौंसठ रानियों ने सती का अनुष्ठान किया था । इसी प्रकार राजा बुद्धसिंह

---

1. Asraf, p. 150.
2. Thomas, p. 266.
3. Thomas, p. 267.
4. Thomas, p. 268.
5. Asraf, p. 321.

की चिता में चौरासी स्त्रियों ने जलकर प्राण दिये थे। मदुरा में नायकवंश के दो राजाओं की मृत्यु के बाद क्रमश: चार सौ तथा सात सौ स्त्रियों ने चिता तक उनका अनुसरण किया था।[१]

राजपूत राज्यों में जौहर की प्रथा सर्व प्रचलित थी जिसके अनुसार युद्ध में असफलता निश्चित होने पर राजपूत सिपाही अपने परिवार की नारियों को एक कोठरी में बंद करके उसमें अग्नि प्रज्ज्वलित करवा देते थे। चन्देरी राज्य के राजा मेदिनीराय के सभी सिपाहियों ने इसी प्रकार अपने परिवार की नारियों तथा बच्चों की हत्या की थी।[२] कभी कभी राजपूत नारियां पराजय की सूचना पाते ही आक्रमणकारियों के हाथों में पड़ने के पूर्व ही धधकती ज्वाला में प्रवेश कर जाती थीं। मेवाड़ के राणा रतनसिंह की रानी पद्मिनी के नेतृत्व में अनेक राजपूत नारियों ने जौहर का अनुष्ठान किया था।[३]

पर्दे की इतनी अधिक कठोर व्यवस्था होते हुए भी राजघरानों तथा समाज के उच्च वर्गों में नारियों की शिक्षा की ओर समुचित ध्यान दिया गया था। नारियों की शिक्षा घर पर ही उच्चशिक्षित वृद्ध महिलाओं द्वारा होती थीं। अकबर ने नारी-शिक्षा के प्रसार के लिए पृथक मदरसे खुलवाये थे। शाही घरानों में अनेक विदुषियों के नाम उनके मध्य उच्च शिक्षा के प्रचलन के द्योतक हैं। बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम का "हुमायूं नामा" न केवल साहित्यिक दृष्टि से ही वरन् ऐतिहासिक दृष्टि से भी एक उच्चकोटि की रचना है।[४] नूरजहाँ, मुमताज़महल[५] तथा जहाँनारा शिक्षित नारियां थीं। जहाँनारा की प्रशंसा में मीर मोहम्मद अली माहिर ने एक "मसनवी" की रचना की थी जिसमें उसकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय मिलता है।[६] औरंगजेब की पुत्री जबुन्नीसा बेगम अरबी तथा फारसी की ज्ञाता

---

1. Altekar, A.S., Position of Women in Hindu Civilisation, p.131.
2. Asraf, p. 262.
3. Majumdar and Madhavanand, Great mf Women of India (ed.), p.321.
4. Ibid, p. 383.
5. Prasad, Beni, A few aspects of Education and literature under the Great Mughuls, p. 48.

थी । उसने एक अनुवाद विभाग की स्थापना करवाई थी जहाँ अनेक पुस्तकों का अनुवाद होता था ।[१]

शाही महलों में स्त्रियों को कुछ अन्य सुविधायें व विशेषाधिकार भी प्राप्त थे । उन्हें सम्राट की ओर से जागीरें प्राप्त होती थीं । नूरजहाँ तथा जहाँनारा अनेक ग्रामों तथा बगीचों की स्वामिनी थीं, जो साम्राज्य के विभिन्न भागों में थे ।[२] उनकी सेवा में अनेक दासियाँ रहती थीं तथा राजसी "सवारी" में, जो विभिन्न अलंकारों से सुसज्जित रहती थीं, पर्दे का प्रबन्ध इस प्रकार किया जाता था कि बाहर के व्यक्ति उन्हें न देख सकें, यद्यपि स्वयं वे सबको देख सकती थीं ।[३]

राजनीति तथा शासन के क्षेत्रों में भी मुग़ल रानियाँ तथा हरम की अन्य महत्वाकांक्षिणी नारियाँ महत्वपूर्ण भाग लेती थीं । बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम केवल साहित्यिक प्रतिभा ही नहीं थी, वरन् राजनीतिक समस्याओं के समाधान में बादशाह को सलाह देती थी ।[४] महान् सम्राट अकबर की महान् सेविका महाम-अंगा शासन के कार्यों को अत्यन्त चतुरता से करती थी । लगभग दो वर्षों तक शासन में उसका असीमित प्रभाव रहा ।[५] जहाँगीर की पत्नी तथा इत्मादउद्दौला की पुत्री प्रसिद्ध नूरजहाँ बेगम तत्कालीन राजनीति की प्रमुख पात्री थी । उसके नाम से फ़रमान जारी किए जाते थे तथा सिक्कों पर भी उसका नाम आया है । महाबत खाँ के विद्रोह दमन में नूरजहाँ का प्रमुख हाथ था ।[६] शाहजहाँ की दो पुत्रियाँ, साधुप्रकृति जहाँनारा तथा दुष्प्रकृति रौशनआरा का राजनीतिक मामलों में भाग लेना सर्वप्रसिद्ध है । रौशनआरा ने शाहजहाँ के विरुद्ध षड्यंत्र में औरंगजेब का साथ दिया था तथा उसे गद्दी दिलाने में उसका प्रमुख हाथ था । शाहजहाँ के शासन काल में काबुल के गवर्नर

---

1. Hussain, Yusuf, p. 193.

2. Ansari, M.A., The court life of the Great Mughuls, p. 85.

3. Mannucci, II, p. 73.

4. Madhavanand & Majumdar, Great Women of India, p. 383.

5. Von Noer, The Emperor Akbar, Vol. I, p. 90.

अमीर खाँ की पत्नी साहिब जी महत्त्वपूर्ण मामलों में अमीर खाँ की सलाहकार थी। यहाँ तक कि अमीर खाँ की मृत्यु के बाद उसे काबुल का भार सौंपने का प्रस्ताव भी रखा गया था।[1] औरंगजेब की पुत्रियाँ जेबुन्निसा तथा जीनतुन्निसा, औरंगजेब जैसे कठोर सम्राट के ऊपर भी भारी प्रभाव रखती थीं।

मुगल हरम से दूर, तत्कालीन राजपूत तथा मराठा राज्यों का इतिहास अनेक वीरांगनाओं के शौर्य और पराक्रम के गुणगान से युक्त है। चित्तौड़ के समरसिंह की रानी कुमाँ देवी एक कुशल शासिका थी। समर सिंह की मृत्यु के उपरांत अल्पायु पुत्र करन की रक्षिका बनकर उसने चित्तौड़ पर राज्य किया था।[2] सौलहवीं शताब्दी के आरंभ में वीर ताराबाई ने मुसलमान आक्रमणकारियों के विरुद्ध स्वयं सैन्य संचालन किया था।[3] मेवाड़ की रानी कर्नावती ने अपने अयोग्य पुत्र विक्रम जित के शासन को सुदृढ़ बनाने के लिए शासन में महत्त्वपूर्ण सुधार किए थे।[4] १५६४ ई० में सम्राट अकबर ने गौंडवाना विजित करने के उद्देश्य से आसफ़ खाँ प्रथम को भेजा। गौंडवाना का शासक वीर नरायन अल्पायु था तथा उसकी माँ रानी दुर्गावती शासन कर रही थी।[5] दुर्गावती के नेतृत्व में मुग़लसेना ने प्रथम दो बार करारी हार खाई। परन्तु अन्ततः अपनी पराजय निश्चित देखकर रानी ने राजपूत मर्यादा के अनुकूल आत्म-हत्या करना अधिक उचित समझा।[6]

मराठा इतिहास जहाँ एक ओर शिवाजी की गौरवगाथा वर्णन करता है, वहाँ दूसरी ओर उनकी वीर माता जीजाबाई के योग्य शासन का निर्देश भी देता है। शिवाजी की सम्पूर्ण सफलता जीजाबाई की शिक्षा का परिणाम थी। १६६६ में शिवाजी के आगरा प्रस्थान के बाद जीजाबाई ने पूना के छोटे से राज्य पर शासन किया था।[7] इसी कुल की एक अन्य वीरांगना ताराबाई का नाम उल्लेखनीय है,जो

---

1. Sarkar, Studies, pp. 114-117.
2. Madhavanand and Majumdar, Great Women of India (ed.),pp.320-321, Tod, Annals, I, pp. 303-4.
3. Ibid, p. 322.
4. Ibid, p. 323.
5. Cambridge History of India, Vol. IV, p. 87.

शिवाजी के पुत्र राजारामकी पत्नी थीं । औरंगजेब राजाराम की मृत्यु के बाद भी अनेक वर्षों तक दक्षिण को न जीत सका, इसका श्रेय ताराबाई को प्राप्त है ।[१] मल्हारराव की पुत्रवधू अहल्याबाई योग्य, चतुर स्त्री थी । मल्हारराव ने शासन के अनेक कार्यों का भार उसके ऊपर छोड़ दिया था । फरमान जारी करना, लगान वसूल करना तथा सैन्य प्रबन्ध की उसे उचित शिक्षा दी गई थी । अहल्याबाई ने अत्यन्त कुशलता से चन्द्रावत राजपूतों के विद्रोह का दमन किया था ।[२]

उच्च वर्ग के धनाढ्य होने के कारण हरम की नारियों को अनेक सुविधाएं प्राप्त थीं । शिक्षा व्यवस्था के साथ साथ मनोरंजन के साधन भी उन्हें उपलब्ध थे, परन्तु समाज के मध्यम तथा निम्नवर्ग के लिए यह सुविधाएं प्राप्त करना सामर्थ्य के बाहर की वस्तुएं थीं । अत: उनका मानसिक शारीरिक तथा नैतिक विकास कुंठित हो गया था । ग्रामों में निर्धन स्त्रियां आर्थिक जीवन का एक भाग थीं । अत: शैक्षिक उपलब्धि तथा मनोरंजन के लिये उनके पास न तो पर्याप्त समय ही था न मानसिक स्तर ही ।[३]

निम्नवर्गीय मुसलिम स्त्रियों में धार्मिक शिक्षा व्यापक थी । धार्मिक शिक्षा के लिए नगर में मकतब थे जहां वृद्ध महिलाएं कुरान की शिक्षा देती थीं । कभी कभी साधारण जनता के हित के लिए परोपकारवश मध्यमवर्गीय परिवार की विधवाएं व्यक्तिगत रूप से स्कूल चलाती थीं, जहां निर्धन बालिकाएं शिक्षा ग्रहण करती थीं ।[४]

मध्यमतथा निम्नवर्ग में पर्दे का बंधन अधिक कठोर न था तथा नारियां अधिक स्वतंत्रता से भ्रमण कर सकती थीं । बर्नियर ने अपनी यात्राकाल में कश्मीर की मध्यमवर्गीय मुसलमान नारियों के साथ स्वतंत्रतापूर्वक वार्तालाप किया था ।[५]

---

१. वही, पृष्ठ ३२३, ३५८

2. Ibid, pp. 359-60.
3. Asraf, p. 242.
4. Hussain, Yusuf, p. 93.
5. Thomas, p. 253.

इस समय तक बाल विवाह की व्यापकता धीरे धीरे बढ़ती जा रही थी। सम्राट् अकबर ने इसे रोकने के प्रयत्न अवश्य किए थे, परन्तु सफल न हो सका था। फिच (सोलहवीं शताब्दी के विचारक) के अनुसार बंगाल में बालिकाओं का विवाह ६ से १० वर्ष की आयु तक होता था।[१] मनुचि के मत में सत्रहवीं शताब्दी तक लड़कियों का विवाह उनके बोलने योग्य होने से पूर्व हो हो जाता था।[२] इसीप्रकार तैवरनियर लिखते हैं कि विवाह की सामान्य आयु सात या आठ वर्ष थी।[३]

संक्षेप में मुगल कालीन भारत एक ऐसे समाज का चित्र प्रस्तुत करता है जहाँ नारी के लिये स्वतंत्रता और समानता निरर्थक शब्द थे। आयु के प्रत्येक चरण में नारी पुरुष वर्ग के आधीन थी। उनकी इच्छाओं, शक्तियों तथा भावनाओं का कोई सम्मान न था। एक प्रकार से उनकी गणना भोग-विलास की सामग्री के रूप में होती थी, जिसे पुरुष वर्ग अपनी इच्छानुसार असीमित संख्या में भी उपभोग के लिये रख सकता था।

(ब) उन्नीसवीं शताब्दी में नारी की स्थिति

अठारहवीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने के कारण सम्पूर्ण देश में जो राजनैतिक अस्पष्टता फैली उसने नारी जीवन की पतनोन्मुख दशा को और भी अधिक शोचनीय बना दिया था। परिणामस्वरूप, अंग्रेजों के भारत आगमन के समय भारतीय नारी की दशा देश के इतिहास में सबसे अधिक पतित अवस्था में थी। मार्गेट कजिन के अनुसार, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक स्थिति तथा आर्थिक स्वतंत्रता की दृष्टि से देश की नारी इस समय पतन के सबसे अधिक निकृष्ट रूप में थी।[४]

---

1. Das Gupta, p. 131.
2. Manucci, Vol. III, pp. 59-60.
3. Tavernier, Vol. II, p. 197.
4. Cousin, M.B., Indian Womanhood today, p. 15.

मध्ययुग की कुछ सामाजिक प्रथाओं पर्दा, सती आदि के अतिरिक्त इस समय कुछ नवीन कुप्रथाओं का जन्म हुआ जिनके पीछे कोई धार्मिक पृष्ठभूमि नहीं थी, तथा जिनके आविर्भाव का एकमात्र कारण कुछ सामाजिक समस्याओं का समाधान था। "कन्यावध" ऐसी ही एक प्रथा थी जो उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब तथा गुजरात आदि प्रदेशों में सामाजिक प्रथा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। कुछ जातियाँ, विशेषकर राजपूतों में विवाह कुछ निर्दिष्ट कुलों के अन्तर्गत ही हो सकते थे। अतः वर प्राप्ति का क्षेत्र अत्यन्त सीमित था। पुत्री के विवाह में न केवल आत्म सम्मान की भावना को ठेस लगती थी, वरन् विवाह का भारी व्यय भी असहनीय था, जो दहेज के रूप में सामाजिक प्रथा का रूप ले चुका था। इसके अतिरिक्त मोक्ष प्राप्ति के लिए, तथा वंश की निरन्तरता को बनाए रखने के लिए पुत्र का होना अनिवार्य था यह विश्वास अब भी दृढ़ था। टाड के अनुसार पुत्री का जन्म राजपूत के लिए एक दुखद समाचार था।[1] स्त्री जाति से सम्बन्धित इन समस्याओं के समाधान के रूप में "कन्यावध" की प्रथा का आविर्भाव हुआ महाराज रणजीत सिंह के पुत्र दलीप सिंह लिखते हैं कि उन्होंने अपने बाल्यकाल में अपनी नवजात बहनों को बोरे में बंद कर नदी में बहाये जाते देखा था।[2] यद्यपि ब्रिटिश सरकार द्वारा (रेग्युलेशन ३, १८०२) इस प्रथा को बंद कर दिया गया था, तथापि १८५३ की रिपोर्ट के अनुसार यह प्रथा सभी जातियों में फैली थी।[3] मालवा तथा राजपूताना में प्रतिवर्ष २० हजार कन्याओं का वध होता था।[4] बड़ौदा के निकट "झारिजा" राजपूतों में यह प्रथा अधिक प्रचलित थी।[5] आज़मगढ़ के कलेक्टर श्री टाम्सन

---

1. Tod. Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol. I, p. 505.
2. Sketches, III, 207.
3. Brown, J.C., Indian Infanticide, its origin, progress and suppression (London, 1857), pp. 108-129.
4. Brown, J.C., p. 58.
5. Ibid, p. 31.

ने १८२५ की रिपोर्ट में लिखा है कि "अवध की सीमा के निकट राजपूतों की एक जाति में, जिसकी संख्या १०,००० है, उन्होंने एक भी बालिका को नहीं पाया ।[1] श्री मूर को बनारस के ६२ ग्रामों में ६ वर्ष की आयु से कम एक भी कन्या नहीं मिली ।[2] अवध की सीमा के निकट "बारा" राजपूत परिवारों में श्री मूर ने अपनी खोज के समय एक भी राजपूत कन्या को नहीं पाया । मूर लिखते हैं कि सौ वर्षों से वहाँ एक भी राजपूत कन्या का विवाह सम्पन्न नहीं हुआ था ।[3]

राजपूतों के अतिरिक्त पंजाब में भी यह प्रथा प्रचलित थी । इसका प्रमाण है बेदी जाति के लोग जो "कुड़ीमार" अर्थात् लड़की को मारने वाले कहलाते थे । अम्बाला, पटियाला तथा नाभा के सोढ़ी, मुल्तान, गुजरानवाला तथा झेलम के जाट, तथा फीरोजपुर और झेलम के मुस्लिम भी अपनी कन्याओं का वध करते थे ।[4] श्री काबेट ने अपनी खोज के समय (१८६९) उत्तर प्रदेश के १० गाँवों में १०४ लड़कों तथा केवल १ लड़की को पाया । काबेट लिखते हैं कि पिछले १० वर्षों में केवल एक लड़की का विवाह सम्पन्न हुआ था ।[5] श्री रसेल ने गुमसुर के पर्वतीय भागों का वर्णन करते हुए अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि विवाह के भारी व्यय से बचने के लिए सुरपाद के पैस्टवाई क्योंसी के लोगों में "कन्यावध" सर्व प्रचलित है । यहाँ के लोग अन्य प्रदेशों से स्त्रियों को खरीद कर अपना वंश चलाते हैं ।[6]

---

1. Abstracts of the proceeding of the Council of the Governor-General of India, 1870, Vol. IX, p. 5.
2. Ibid, p. 6.
3. Ibid, p. 7.
4. Brown, J.C., p. 143.
5. Abstracts of the proceedings, 1870, p. 8.
6. Extract from Mr. Russell's Report, dated 12th August, 1836, Selections from the Records of the Government of India, (Home Department) - History of the rise and progress of operations for the suppression of human sacrifice and

"कन्यावध" की कुप्रथा से अभी बालिकाओं का विवाह शैशवकाल में ही हो जाता था । अल्टेकर लिखते हैं कि अंग्रेजों के भारत आगमन के समय बालिकाओं का विवाह आठ या नौ वर्ष की अवस्था तक हो जाता था ।[1] बुश के अनुसार हिन्दुओं में विवाह की आयु ६ से १० वर्ष तक की थी ।[2] फुलर लिखते हैं कि बालिका अपने जन्म से मृत्यु तक बालपत्नी, बालमाता तथा बाल-विधवा के रूप में जीवन पर्यन्त कष्टों को झेलती है ।[3] बाल-विवाह की प्रथा तत्कालीन समाज में कितनी अधिक प्रचलित थी, इसका प्रमाण तत्कालीन डाक्टरों और कानून शास्त्रियों के विवरण में मिल जाता है, जो इस विषय पर प्रामाणिक साक्ष्य माने जा सकते हैं सर पी०सी० रे के अनुसार तत्कालीन "हिन्दू समाज में ६० वर्ष की आयु का पुरुष १२ अथवा १४ वर्ष की आयु की कन्या से विवाह कर सकता था और यह प्रथा सामान्य थी[4]।" डा० ऐडिथ घोष जो एक व्यक्तिगत डाक्टर तथा महिला अस्पताल की प्रबन्धक थीं, एक १३ वर्ष की कन्या का उल्लेख करती हैं, जिसका विवाह कलकत्ता के ७५ वर्ष के एक धनी तथा ख्यातिप्राप्त व्यक्ति से हुआ था ।[5] सिस्टर सुब्बालक्ष्मी लिखती हैं कि ९९ प्रतिशत ब्राह्मण कन्याओं का विवाह १० या ११ वर्ष की आयु तक हो जाता था ।[6] बनारस के कुर्मी जाति में शैशव काल में ही विवाह हो जाता था । यूनाइटेड प्राविन्स की एक रिपोर्ट के अनुसार इस स्थान का एक व्यक्ति अपनी ५ वर्ष

---

1. Altekar, A.S., Position of Women in Hindu Civilisation, p.61.
2. Buch, M.A., Rise and growth of Indian Liberalism, p. 53.
3. Fuller, M., The Wrongs of Indian Womanhood (1900), p. 36.
4. Sir P.C. Ray, University College of Science and technology, Calcutta - Vol. VI, p. 225, quoted from child marriage - The Indian Minotaur - an object lesson from the past to the future by Eleanore Rathbone, p. 27.
5. Dr. Edith Ghosh, Calcutta, Vol. VI, p. 38, quoted from Child Marriage - The Indian Minotaur - p. 30.
6. Sister Subbalakshmi, Head Mistress - Lady Willingdon Training College - Vol. IV, p.117, quoted from Child Marriage - The

की कन्या के लिए वर प्राप्त करने में असमर्थ था, क्योंकि उसकी जाति के नियमों के अनुसार बालिका विवाह योग्य आयु पार कर चुकी थी ।[१] मुस्लिम समाज भी इससे अछूता नहीं था । ढाका का काज़ी जहीरुल हक यह स्वीकार करता है कि निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज में बालिका का विवाह ४ या ४ वर्ष की आयु में भी होता था ।[२] बाल-विवाह की यह प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती ही गई । १६३१ की सैन्सस रिपोर्ट के अनुसार इस समय तक १५ वर्ष की आयु के अन्दर विवाहित कन्याओं की संख्या ८।। से १२½ लाख अधिक हो गई थी, तथा ५ वर्ष की आयु के अन्दर विवाहित बालिकाओं की संख्या इस समय तक २१८,५०० से ८०२,०००, लगभग चौगुनी हो चुकी थी ।[३]

बाल-विवाह की इस कुरीति के परिणामस्वरूप अल्पायु में ही बालिकाएं विधवा हो जाती थीं । यह बाल-विधवाएं पति के साथ चिता में जलने पर विवश थीं । सदियों से चली आई हिन्दू समाज की यह प्रथा उन्नीसवीं शताब्दी में अपने चरम रूप में थी, यद्यपि समय-समय पर इसे रोकने के प्रयत्न किए गए थे । मुग़ल सम्राट अकबर और जहांगीर ने इसे दिल्ली के आस-पास के स्थानों पर बन्द करा दिया था । १५१० में अल्बुकर्क ने गोवा में सती प्रथा को बंद कर दिया था । परन्तु यह सुधार क्षणिक थे तथा सती प्रथा को रोकने में असमर्थ थे ।

सती की यह प्रथा सम्पूर्ण देश में प्रचलित थी, परन्तु राजपूताना तथा बंगाल सबसे अधिक प्रभावित प्रदेश थे । लार्ड मिंटो लिखते हैं कि सती प्रथा कलकत्ता तथा उसके निकटवर्ती स्थानों में अत्यधिक प्रचलित थी ।[४] कलकत्ता के निकट ३०० सती केस एक वर्ष में (१८०४) में एकत्रित किए गए । बंगाल प्रदेश में ब्रिटिश सरकार

---

1. Joshi Report, p. 85.
2. Joshi Report, p. 68 - Bengal
3. Report of the 1931 Census, p. 221.
4. Lord Minto in India, p. 96.

ने १८१५ से १८२८ तक सती के अनेक आँकड़े एकत्रित किए जो इस प्रकार हैं [१]:—

वर्ष	सती की संख्या	वर्ष	सती की संख्या
१८१५	३८०	१८२२	५८३
१८१६	४४२	१८२३	५५७
१८१७	७०७	१८२४	५७२
१८१८	८३९	१८२५	६३९
१८१९	६५०	१८२६	५७१
१८२०	५९७	१८२७	५१७
१८२१	६५४	१८२८	४६३

बंगाल के पश्चात् सबसे अधिक प्रभावित प्रदेश राजपूताना था जहाँ २५ प्रतिशत विधवाएँ प्रतिवर्ष चिता में जलती थीं ।[२] दक्षिण में तंजौर सबसे प्रभावित प्रदेश था । तंजौर के राजा की मृत्यु के (१८०१) उपरांत उसकी अनेक रानियों ने सती का अनुष्ठान किया था ।[३] १८१२ में कानिका (उड़ीसा) के राजा की मृत्यु के उपरान्त ९ नारियों ने सती का पालन किया था । सिरामपुर मिशनरी की रिपोर्ट के अनुसार देश में प्रतिवर्ष १०,००० नारियाँ सती होती थीं ।[४] यद्यपि १८२९ में सरकार ने सती को अवैध घोषित कर दिया था, तथापि राजपूताना में यह प्रथा दीर्घकाल तक प्रचलित रही । १८३८ में उदयपुर के महाराणा जीवनसिंह (तथा १८४३ में जोधपुर के महाराजा मानसिंह) की मृत्यु के बाद अनेक

1. Ghose, J.C., English Works of Raja Ram Mohan Roy (ed.), Introduction, vii.
2. Thomas, P., Indian Women through the ages, p. 293.
3. Ibid, p. 293.
4. Ingham, K., Reformers in India, p. 47.

नारियों ने चिता तक उनका अनुकरण किया था ।[१]

सती की क्रूर प्रथा से भयभीत जो विधवा जलने में असमर्थ होती थीं, उन्हें समाज द्वारा अत्यंत कष्ट दिए जाते थे । विधवाओं को अछूत समझा जाता था तथा जाति से, और कभी-कभी तो परिवार से भी उनका बहिष्कार कर दिया जाता था[२]। जीवन के निम्नतम सुखों को भी प्राप्त करने की उन्हें अनुमति नहीं थी । जीवन पर्यन्त श्वेत वस्त्र धारण करने पड़ते थे तथा केवल एक समय ही भोजन का विधान था । साधारण परिवारों की विधवाओं की स्थिति एक घरेलू नौकरानी से अधिक नहीं थी ।[३] ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयत्नों के फलस्वरूप १८५६ के अधिनियम द्वारा विधवा-विवाह वैध माना जाने लगा ।

उन्नीसवीं शताब्दी में नारियों की स्थिति को शोचनीय बनाने वाली एक अन्य प्रथा थी बहु विवाह । बंगाल, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब इस प्रथा के सबसे अधिक प्रभावित प्रदेश थे । मुस्लिम समाज में तो धर्म की ओर से ही पुरुषों को बहुविवाह की अनुमति आज भी है, परन्तु हिन्दू भी इससे अछूते नहीं थे । बहुविवाह यद्यपि सभी वर्गों में था, परन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण यह प्रथा समाज के उच्च वर्ग तक ही सीमित थी, विशेषकर राज परिवारों में । बंगाल में यह प्रथा अपने चरम रूप में थी जहाँ 'कुलीन' ब्राह्मणों में अनेक पत्नियों का होना गौरव और सम्मान की बात समझी जाती थी ।[४] दूसरी ओर बंगाल में एक प्रथा के अनुसार कुलीन परिवारों की कन्याओं का विवाह केवल कुलीन ब्राह्मणों से ही हो सकता था । इस बंधन के कारण विवाह का क्षेत्र अत्यन्त सीमित था । फलस्वरूप एक बड़ी संख्या में—लगभग ५० और ६०, तथा कभी-कभी इससे भी अधिक बालिकाओं

---

1. Altekar, A.S., Position of Women in Hindu Civilisation, p.141.
2. Tavernier, J.B., Travels in India (New York 1889), Vol.II, p. 160.
3. Mullik, B., The Hindu Family in Bengal, p. 117.
4. Buch, M.A., Rise and Growth of Indian Liberalism, p. 53.

का विवाह एक ही व्यक्ति से कर दिया जाता था । इन कुलीन बालिकाओं में अधिकांश विवाह उपरांत भी अपने पिता के घरों में रहती थीं । संख्या में अधिकता होने के कारण पति को उनका निर्देश एक लिखित सूची के द्वारा ही ज्ञात होता था ।[१] यह कुलीन बालिकाएं जिन्होंने पति को देखा तक न था, उसकी मृत्यु के बाद सती होने पर बाध्य की जाती थीं । नादिया में १७९९ में एक कुलीन ब्राह्मण की मृत्यु के समय उसकी २२ पत्नियों ने सती का अनुष्ठान किया था ।[२] लगभग इसी समय श्रीरामपुर के निकट" कुल्वारा" नामक स्थान में एक अन्य कुलीन ब्राह्मण की मृत्यु का निर्देश मिलता है जिसकी ४० पत्नियों में १८ ही शेष थीं जिन्होंने सती का अनुष्ठान किया था ।[३] ईश्वरचन्द्र विद्यासागर लिखते हैं—"कुलीन ब्राह्मणों ने विवाह के पवित्र संस्कार को अत्यन्त दयनीय स्थिति तक गिरा दिया था ।"[४]

बहुविवाह का एक दूसरा स्वरूप भी है जिसका उदाहरण महाभारत युग में द्रौपदी का अपवाद है । परन्तु जौन्सर बावर के पर्वतीय कबीलों में आज भी बहुपति प्रथा प्रचलित है । श्री धर्मदेव शास्त्री ने अपनी यात्राकाल में विभिन्न स्थानों में प्रचलित इस प्रथा के अनेक रूपों का विवरण किया है । हिमाचल प्रदेश के "किन्नर" जाति में प्रथा के अनुसार अनेक भाइयों के मध्य एक ही पत्नी रह सकती है । जौन्सर बावर (देहरादून) के निवासियों में इसी प्रकार की एक प्रथा है जहाँ अनेक भाइयों के मध्य एक से अधिक पत्नियां हो सकती है । परन्तु प्रत्येक स्त्री-प्रत्येक की पत्नी समझी जाती है । इस प्रथा को वे लोग पारिवारिक एकता और सम्पत्ति के विभाजन न होने के लिए उपयोगी समझते हैं । श्री शास्त्री जब्बाल, सरमौरा तथा भड़ौच आदि स्थानों में बहुपति प्रथा के एक अन्य स्वरूप का वर्णन करते हैं, जिसके अनुसार दो भाइयों के मध्य एक पत्नी होती है ।[५] संभवत: पर्वतीय क्षेत्रों में भूमि

---

1. Majumdar, R.C., British Paramountcy and Indian Renaissan (ed.), p. 261.
2. Kaye, History of India under the East India Company, p. 123.
3. Ibid, p. 123.
4. Friend of India, March 30, 1865, p. 362.
5. Kasturba Memorial - a journal published by Kasturba Gandhi

की कमी के कारण परिवारों को विलुप्त होने से बचाने के लिए इन प्रथाओं का विकास हुआ ।

नारी से संबंधित एक अन्य प्रथा थी पर्दा की जो इस समय तक और भी दृढ़ हो चुकी थी । यह प्रथा मुसलमानों में प्रचलित थी । हिन्दुओं ने इसे मध्य युग में मुसलमानों से ग्रहण किया था । उत्तर भारत में इसका प्रचलन अधिक था तथा दक्षिण में, जहाँ मुस्लिम राज्य का प्रभाव कम पड़ा था, इसका अभाव था । पर्दा का पालन इस समय कठोरता से होता था । स्त्रियों को सार्वजनिक स्थानों में जाने की अनुमति नहीं थी । घर के अन्दर भी उनके लिए पृथक विभाग की व्यवस्था रहती थी । मुसलमानों में इसी प्रकार "ज़नाना" की व्यवस्था की जाती थी । वेरेलस्ट लिखते हैं --"पर्दा की प्रथा एक ऐसी प्रथा है जो परिवर्तित नहीं की जा सकती । सम्पूर्ण भारत में यह प्रथा प्रचलित है और व्यक्तियों के आचरण तथा धर्म से इसका गहरा सम्बन्ध है । मुसलमानों की भाँति हिन्दू भी अपनी स्त्रियों को बाहर निकालना अपमानजनक समझते हैं ।"[1]

"ज़नाना" के विषय में भी राय लिखते हैं कि" यह एक जीवन पर्यन्त कारागार है जहाँ व स्त्री असहाय अवस्था में, अस्वस्थ्य जीवन व्यतीत करती है । फलस्वरूप उसकी स्वाभाविक इच्छाओं और क्षमताओं का अज्ञानता के कारण दमन हो जाता है । अंध विश्वासों में पलती हुई वह समाज की इस प्रथा के समक्ष शहीद हो जाती है ।[2]

इसका परिणाम अन्ततः अस्वस्थता तथा असमय मृत्यु है । डा० हयूम[3] की रिपोर्ट के अनुसार "देश की १० से १५ वर्ष की आयु की बालिकाओं की मृत्यु संख्या बालकों की अपेक्षा दुगुनी थी, जिसका कारण बाल-विवाह तथा पर्दा की

---

1. Verelst, p. 138.
2. Roy, P.C., Life and Times of C.R. Das (1927), p. 4.
3. Health Officer of Lucknow - Vol. IX, p. 93, quoted from Child Marriage - The Indian Minotaur By Eleanore Rathbone, p. 29.

प्रथाएं हैं ।"

समाज के उच्च तथा धनाढ्य वर्गों में पर्दा का पालन अधिक कठोरता से होता था , परन्तु मज़दूर तथा कृषक आदि निम्नवर्गों में, जहां स्त्रियां आर्थिक जीवन का एक भाग थीं, पर्दा का बंधन कठोर नहीं था ।

"देवदासी" इस समय की एक अन्य प्रथा थी । दक्षिण भारत के मन्दिरों में अनेक "देवदासियां" रहती थीं, जिनका काम मूर्ति के समक्ष नृत्य तथा गान का प्रदर्शन करना था । कभी-कभी यह प्रदर्शन जुलूसों के रूप में भी होता था । केवल मद्रास में ही सन् १६०० में "देवदासियों" की संख्या ११,५७३ थी । यह देवदासियां पुरोहितों की सम्मिलित सम्पत्ति समझी जाती थीं ।[१]

इसी श्रेणी की वैष्णावी थीं । विधवाएं जो तीर्थ के लिए वृन्दावन जाती थीं अक्सर पुरोहितों के चंगुल में फंस कर "वैष्णावी" बना ली जाती थीं । बंगाल में में भी इन "वैष्णावी" का निर्देश मिलता है । १६२५ में बंगाल में इनकी संख्या — २,०३६१० थी ।[२]

महाराष्ट्र में देवदासी के समान "मुरली" का निर्देश मिलता है । महाराष्ट्र के एक देवता "खान्दोब" (   ) को प्रसन्न करने के लिए तथा अधिक सन्तान की इच्छा से स्त्रियां अपनी प्रथम सन्तान कन्या को शैशवकाल में ही मन्दिर की सेवा के लिए अर्पित कर देती थीं । इन्हें ही "मुरली" कहते थे । इनका काम विभिन्न स्थानों में जाकर देवताओं की स्तुति गाना तथा अपनी आजीविका कमाना था । पूना तथा सतारा प्रदेशों में इसका प्रचलन अधिक था । इन "मुरलियों" में से अधिकांश वेश्या का पेशा अपना लेती थीं ।[३] पश्चिम भारत में इसी वर्ग की "भवानी" थीं जिनका काम मन्दिर को स्वच्छ रखना, चंवर डुलाना, प्रकाश का प्रबन्ध करना तथा आगन्तुकों का स्वागत करना था । इन्हें भी शैशवावस्था से ही लाया जाता

---

1. Fuller, M., The Wrongs of Indian Womanhood, p. 101
2. Gandhi, M.K., Woman and Social injustice, p. 144.
3. Fuller, M., The Wrongs of Indian Womanhood, p. 101.

था ।[१]

दक्षिण की "देवदासी" वेश्याओं का ही प्रतिरूप थीं, परन्तु पश्चिम तथा मध्य भारत में उनका एक पृथक वर्ग था जो "कलावन्ती" कहलाता था । यह पेशेवर नर्तकी थीं परन्तु कभी-कभी मन्दिर के पुजारी भी इन्हें आमंत्रित कर लेते थे । "कलावन्ती" वेश्याओं, भवानी तथा मुरली से भिन्न वर्ग था ।[२] इन प्रथाओं का अंत १९२८ के अधिनियम के द्वारा हुआ।

नारी की इस पतनोन्मुख स्थिति का कारण उनमें शिक्षा का अभाव था । उस समय बालिकाओं को शिक्षा प्राप्त करने के योग्य नहीं समझा जाता था ।[३] नारी शिक्षा के लिए स्कूलों का भी अभाव था । समाज में प्रचलित धारणा के अनुसार पढ़ने लिखने का कार्य वेश्याओं का पेशा समझा जाता था ।[४] इसके अतिरिक्त नारी शिक्षा के विषय में कुछ अन्धविश्वासों का भी बोलबाला था जिसके कारण समाज की प्रगति का क्षेत्र सीमित हो गया था । विलियम ऐडम शिक्षा सम्बन्धी अपनी द्वितीय रिपोर्ट (१८३५) में लिखते हैं कि " लोगों का यह विश्वास था कि शिक्षित नारी विवाह के उपरान्त शीघ्र ही विधवा हो जाती थी है।"[५]

इन अंधविश्वासों के अतिरिक्त नारी शिक्षा के मार्ग में कुछ अन्य बाधाएं भी थीं । बाल-विवाह की प्रवृत्ति के कारण शिक्षा प्राप्त करने का काल अत्यन्त सीमित था । निम्नवर्ग की बालिकाएं विद्यालय में जाने में समर्थ थीं परन्तु समाज की उच्चवर्ग की प्रजा पर्दा के कठोर नियंत्रण के कारण कन्याओं को स्कूल भेजने में असमर्थ थी ।[६]

---

1. Fuller, p. 120.
2. Fuller, p. 131
3. Thomas, P., Indian Woman through the ages, p. 308.
4. Altekar, A.S., Position of Women in Hindu Civilisation, p. 24.
5. Long, J., Adam's Report on vernacular education in Bengal and Bihar, submitted in 1838, 1836, 1839, with a brief review of present conditions (Calcutta 1868), p. 132.
6. Ingham, K., Reformer in India, p. 92.

एक अन्य कठिनाई महिला शिक्षिकाओं की न्यूनता थी । भारतीय नारियाँ इस योग्य नहीं थीं कि शिक्षिका का कार्य कर सकें । अत: प्रारम्भ में यह कार्य मिश-नरी की महिलाओं के ऊपर पड़ा, जिनकी संख्या सीमित थी । अनुदारवादी हिन्दू अपनी कन्याओं को ऐसे स्कूलों में भेजना नहीं चाहते थे जहाँ पुरुष शिक्षक पढ़ाते हैं । लंदन मिशन सोसाइटी के श्री डाउसन की पत्नी ने अथक प्रयास के बाद २० भारतीय कन्याओं को शिक्षा के लिए एकत्रित किया था ।[1] परन्तु उनकी मृत्यु के बाद इन बालिकाओं को शिक्षा देने वाला कोई नहीं था ।[2]

निर्धनता एक अन्य बाधा थी । निम्नवर्गों में जहाँ पर्दा का पालन कठोरता से नहीं होता था, अधिकांश स्त्रियाँ आर्थिक जीवन का एक भाग थीं और शिक्षा के लिए उनके पास न पर्याप्त समय था और न ही मानसिक स्तर ही ।[3]

पाठ्य पुस्तकों का चयन भी इस प्रकार का था कि वह बालकों की आवश्यकताओं को तो पूरी करती थीं, परन्तु बालिकाओं की दृष्टि से उपयोगी नहीं थीं ।[4] एक ओर तो अनुदारवादी और कट्टरपंथी भारतीय, नारी शिक्षा के विरोधी थे, दूसरी ओर स्त्रियाँ स्वयं अपनी दशा को सुधारने की ओर से उदासीन थीं ।[5]

इन सभी कारणों से उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में नारी शिक्षा लगभग अज्ञात ही थी । ऐडम ने मुर्शिदाबाद जिले में केवल ६ ऐसी स्त्रियों को पाया जिन्हें अक्षर का ज्ञान था । अन्य स्थानों में शतप्रतिशत निरक्षरता थी ।[6]

मई १८१९ में लंदन मिशन सोसाइटी के श्री ट्रैवलर की पत्नी ने बेल्लरी में

---

1. Letter of J. Dowson to the Secretary of L.M.S., dated Vizagapatam, 28 Feb. 1825(quoted from K. Ingham - Reformers in India).
2. Ingham, p. 89.
3. Letter on the State of Christianity in India by J.A. Dubois (London 1823), pp. 205-6 (quoted by Ingham reformers in India).
4. Report of Indian Education Commission, 1882, p. 521.
5. Ingham, p. 86.

एक स्कूल खोला था जिसमें अनेक बालिकाएं शिक्षा प्राप्त करती थीं । परन्तु इनमें कोई भी भारतीय नहीं थीं ।[१]

नारी शिक्षा का कार्य सर्वप्रथम मिशनरियों ने ही प्रारम्भ किया, परन्तु उन्हें भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । श्री क्रिस्प लिखते हैं — "जब तक भारतीय नारियां अंधविश्वास, अज्ञानता तथा पतन की गर्त में रहेंगी, जैसा कि वे इस समय हैं, तब तक कोई भी नैतिक उत्थान संभव नहीं हो सकता ।"[२]

उन्नीसवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास के साथ-साथ नारी की स्थिति में क्रमशः सुधार-कार्य का प्रारम्भ हुआ है ।

---

1. Letter of C. Traveller to the Secretary of the L.M.S. dated, Vepery, 12 May, 1819 (quoted from Ingham - reformers in India).
2. Letter of H. Crisp to the Secretary and Treasurer of the L.M.S., dated, Salem 19 May 1828 (quoted from Ingham, reformers in India).

अध्याय- २

उन्नीसवीं शताब्दी में परिवर्तित सामाजिक व राजनैतिक वातावरण

और नारी की स्थिति पर

उसका प्रभाव।

अध्याय - २

उन्नीसवीं शताब्दी में परिवर्तित सामाजिक व राजनैतिक वातावरण और नारी की स्थिति पर उसका प्रभाव

उन्नीसवीं शताब्दी का प्रथम चरण भारत के लिए आधुनिकता की पहली किरण लेकर अवतरित हुआ । पश्चिमी सभ्यता व आचार-विचार ने देशवासियों के जीवन में नवीन आदर्शों और सिद्धान्तों की रचना करनी चाही । परन्तु देश अभी परिवर्तन के लिए पूर्णरूपेण तत्पर नहीं था । परम्परावादी भारतीय पाश्चात्य सभ्यता को शंकित दृष्टि से देखते थे -- न केवल उसके भौतिक वाद के कारण, अपितु इस कारण भी कि भारतीय समाज में उनका प्रवेश प्राचीन व्यवस्था, जो एक आदर्श व्यवस्था थी, का आमूल नाश कर देगा । देश की संस्कृति को इस भौतिकवादी तथा पाश्चात्यवादी हमले से बचाने के लिए भारतीयों ने तीव्र विरोध किया । परन्तु यह प्रारम्भिक प्रयास असंगठित, अव्यवस्थित तथा नेतृत्वहीन था । इसमें राष्ट्रीय भावना का सर्वथा अभाव था । इसकी अभिव्यक्ति १८५७ की असफल क्रान्ति के रूप में हुई ।

उन्नीसवीं शताब्दी के द्वितीय चरण का आरम्भ, भारत में आधुनिक तत्वों को अपनाने के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर चुका था । वास्तव में भारत ने इस समय ही मध्ययुगीन परम्पराओं को तोड़कर आधुनिक युग का आह्वान किया । भारतीय संस्कृति के इस बदलते हुए स्वरूप को अनेक स्रोतों से सहायता प्राप्त हुई जिनमें वाणिज्य व्यापार, डाक, तार, रेल आदि आधुनिक यातायात के साधन, पाश्चात्य शिक्षा, तथा शासन की एकता ने महत्वपूर्ण भाग लिया । प्रथम बार एक विदेशी संस्कृति ने भारतीय जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म कोनों में प्रवेश कर सामाजिक ढांचे को बदलने तथा आधुनिक प्रगति के पथ को प्रशस्त करने में अपूर्व सहयोग किया ।[१]

---

1. Mukerjee writes - "Thus India's wealth ceased to become treasure; money became capital, goods became commodities,

उन्नीसवीं शताब्दी भारत में पुनर्जागरण की शताब्दी थी । मैकाले ने शिक्षा के माध्यम से जिस नवीन युग का सूत्रपात किया, उसने बाद के सम्पूर्ण भारतीय विचार की प्रवृत्ति को निर्धारित किया । अंग्रेजी साहित्य, ब्रिटिश तथा यूरोपीय इतिहास के अध्ययन और पश्चिमी विज्ञान ने भारतवासियों का संसर्ग बुद्धिवाद और उदारवाद नामक दो महान् शक्तिशाली विचारधाराओं से कराया । उन्होंने भारत को रूढ़िवाद तथा अंधविश्वास की दलदल से निकालने में प्रमुख योग दिया और भारतीय पुनर्जागरण में गहरी छाप छोड़ी । पश्चिमी विचारों के भौतिकवादी तथा अनीश्वरवादी विचारों से ओत-प्रोत, पश्चिमी साहित्य के अध्ययन से भारतीयों ने सतीप्रथा, अस्पृश्यता, विदेशयात्रा तथा भोजन आदि पर प्रतिबन्ध, आदि कुरीतियों पर तीक्ष्ण आघात किया और भारत के प्राचीन धर्म को पुनः पवित्र किया । पश्चिम केवल अंग्रेजी भाषा द्वारा ही जाना जा सकता था । शिक्षित भारतीयों ने दोनों सभ्यताओं के तुलनात्मक अध्ययन से अपनी संस्कृति की कमियों को जाना । अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीयों में आलोचनात्मक दृष्टि का उदय किया । पाश्चात्य दर्शन तथा विज्ञान के अध्ययन ने भारतीयों की कूपमंडूकता तथा संकीर्ण विचारों को विस्तृत दृष्टिकोण में परिवर्तित करने पर बाध्य किया, उनकी तार्किक शक्ति का विकास कर अनेक परंपरागत, अप्रगतिशील प्रथाओं की अतार्किकता समझने में सहायता पहुँचाई है ।[1]

पाश्चात्य विचारों के भारतीय जनता में प्रवेश करने के फलस्वरूप प्राचीन वर्गों के स्थान पर कुछ नवीन वर्गों का उदय हुआ । यह वर्ग यद्यपि शिक्षा, सम्पत्ति, पेशे आदि में एक दूसरे से भिन्न था, परन्तु कुछ सम्मिलित

---

1. Lajpat Rai stated - " The English education imparted in schools and colleges established by the British and the Christian mission....... opened the gates of western thought and western literature to the mass of educated Indians. Some of the British teachers and professors who taught in the schools and colleges consciously and unconsciously inspired their pupils with ideas of freedom as well as nationalism."

विचारों के कारण एक वर्ग के रूप में देखा जा सकता है । इस वर्ग में नया उत्साह क्षमता तथा व्यक्तिवाद के नवीन विचारों का विकास हो चुका था । यही वर्ग भारतीय समाज का "मध्यमवर्ग" था, जिसे तत्कालीन प्रगति व जागरण के क्षेत्र में भारतीय समाज की रीढ़ कहा जा सकता है । परन्तु यह "भारतीय मध्यमवर्ग" अपनी उत्पत्ति, स्वरूप तथा दर्शन में पाश्चात्य "मध्यमवर्ग" अथवा बुर्जुआ से भिन्न था । डा० ताराचंद के अनुसार दोनों देशों के मध्यमवर्ग में केवल एक ही समानता थी — "यूरोप का मध्यमवर्ग सामन्तवादी व्यवस्था के पतन, राजा तथा चर्च की निरंकुश शक्ति के ह्रास का कारण तथा साथ ही साथ व्यक्तिवाद की धारा को प्रवाहित करने वाला था । भारतीय मध्यमवर्ग को जनता में राष्ट्रीय भावना विकसित करने वाला, उदारवादी राष्ट्रीय आन्दोलन को संगठित करने वाला तथा अंततः देश को विदेशी सत्ता के चंगुल से छुड़ाने वाला कहा जा सकता है ।"[1] इस वर्ग के ऊपर फ्रेन्च क्रान्ति, तथा रूसो, वाल्टेयर, मैजिनी आदि का प्रभाव अधिक पड़ा ।[2]

अंग्रेजी पढ़े लिखे इन भारतीयों ने जब अपने देश की तुलना पाश्चात्य देशों से की, जहाँ उदारवाद, स्वतंत्रता, समानता आदि का साम्राज्य था, तब उनको विदेशी सत्ता के आधीन होने का दुष्परिणाम दृष्टिगोचर हुआ । उन्होंने पाश्चात्य विचारों को अपने देश में व्यवहारिक रूप देने का संकल्प किया तथा स्वतंत्रता के मार्ग में बाधा पहुँचाने वाली शक्तियों के दमन का बीड़ा उठाया । इस प्रकार पाश्चात्य शिक्षा स्वयं अंग्रेजी राज्य के लिए घातक सिद्ध हुई । भारत पर अंग्रेजी प्रभाव का यह रचनात्मक पहलू था जिसने उसे आधुनिकता के मार्ग में

---

1. Chand, Tara, History of the Freedom Movement in India, Vol. II, p. 109.
2. O' Malley observes - "The growing familiarity with these has brought a new spirit into Indian life, the stirring of scepticism instead of a stagnant authoritarianism, a glimmering if not the fore-runner of what we in Europe six call democracy." -

Modern India and West, P.VI.

प्रवेश करने की दिशा दिखलाई । यदि अंग्रेज़ भारत में न आए होते तो संभव था कि भारत उन्हीं मध्ययुगीन परम्पराओं को लेकर कुछ समय तक और चलता, और तब भारत का इतिहास भी कुछ और ही होता ।

पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित, उत्साही भारतीयों ने यह अनुभव किया कि देश का ढाँचा एकाएक नहीं बदला जा सकता । जब तक देश राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र नहीं होगा, स्वतंत्रता, समानता तथा प्रगति निरर्थक शब्द मात्र होंगे । परन्तु राजनीतिक प्रगति बहुत कुछ सामाजिक प्रगति से सम्बन्धित होती है, और जब तक समाज में चेतना नहीं उत्पन्न की जायेगी तब तक कोई भी सुधार कार्य सम्भव नहीं होगा । उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आन्दोलन, बौद्धिक तथा साहित्यिक अभिव्यक्ति आदि सब इसी परिवर्तन के, जो पाश्चात्य सम्पर्क से आया था, विभिन्न रूप थे । इसका अगुआ तथा नेतृत्व करने वाला तथाकथित "मध्यमवर्ग" ही था ।

ब्रह्म समाज

अंग्रेजों द्वारा रोपित शिक्षा की पहली पौध राजा राममोहन राय थे । राजा प्रथम भारतीय थे जिन्होंने भारत के सामाजिक तथा राजनीतिक चिन्तन में उदारवादी तथा बुद्धिवाद की परम्परा का सूत्रपात किया । जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में राजा की विभिन्न क्रियाओं का स्रोत व्यक्ति की स्वतंत्रता ही थी । धर्म के क्षेत्र में इसने मूर्तिपूजा के विरोध का रूप लिया, सामाजिक सुधार के क्षेत्र में इसका परिणाम हुआ सती तथा बहुविवाह का विरोध और राजनीतिक क्षेत्र में प्रेस की स्वतंत्रता, न्यायपालिका का कार्यकारिणी से पृथक्करण की माँग । अपने विचारों को व्यवहारिक रूप देने के लिए राजा ने सर्वप्रथम १८१५ में आत्मीय सभा की नींव डाली । इसकी सदस्यता प्रत्येक वर्ग तथा धर्म के लोगों के लिए खुली थी । सभा की बैठकों में वेदों की स्तुति का गुणगान तथा पठन-पाठन होता था । बुधवार २० अगस्त १८२८ को इसके स्थान पर ब्रह्म सभा (अर्थात् ईश्वर का समाज) की रचना की गई । इसका उद्घाटन कलकत्ते में श्री रामचन्द्र शर्मा के द्वारा किया गया ।[1] बाद में यही सभा ब्रह्म समाज के नाम से विख्यात हुई । इस समाज का

---

1. Collect, Sophia D. - The Life and Letters of Raja Ram Mohan

प्रारंभिक उद्देश्य पूर्णरूप से धार्मिक था । धर्म के क्षेत्र में इसने एक नवीन आन्दोलन का सूत्रपात किया जिसकी तुलना १६ वीं शताब्दी के भक्ति आन्दोलन से की जा सकती है ।

धर्म को समाज से पृथक नहीं किया जा सकता । अत: राजा का आन्दोलन धार्मिक सुधार के कार्य से प्रारंभ हुआ । उन्होंने मूर्तिपूजा का घोर विरोध किया और उसे शास्त्रों के विरुद्ध घोषित किया । वे ईश्वर का मानवीय करण करने के पक्ष में नहीं थे । राजा का एकेश्वरवाद में विश्वास था, अत: उन्होंने बहु-देवबाद की निंदा की । उनके मत में सभी धर्म अपने मूल रूप में एक ही हैं । हिन्दू धर्म की अवनति का प्रधान कारण उसके भ्रष्ट तथा अनुभवहीन नेताओं का नेतृत्व था । यह पुजारी वर्ग स्वयं तो धर्मशास्त्रों से अनभिज्ञ था, साथ ही जनता को भी कर्मकांड और अंधविश्वास युक्त धार्मिक क्रिया कलापों के धर्मग्रन्थों द्वारा प्रति-पादित बता कर पथभ्रष्ट कर रहा था । राजा प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने पुरोहितों और पंडितों के अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाई ।[1] उनके इन विचारों ने समाज में एक क्रान्ति-सी मचा दी । यही नहीं, उन्होंने इस दिशा में कुछ ठोस कदम भी उठाए । उन्होंने अनेक धर्मग्रन्थों का अनुवाद कर जनता के परीक्षण के लिए उसे सरल बनाया । १८१५ में उन्होंने वेदान्त सूत्र का अनुवाद किया तथा १८१६ तथा १८१६ के बीच उन्होंने ईश, केन, कठ, मुण्डक तथा मान्डूक उपनिषदों का बंगाली में अनुवाद प्रकाशित कराया । १८२५ में वेदान्त कालेज की स्थापना कर राजा ने पाश्चात्य तथा भारतीय संस्कृति दोनों प्रकार की शिक्षाओं का सम्मिश्रण करने का प्रयत्न किया । धर्म भारत की रीढ़ रहा है, अत: जड़ पर ही आघात करके राजा ने निर्माण कार्य अत्यन्त प्रारंभिक चरण से आरंभ किया ।

सामाजिक सुधारों के क्षेत्र में ब्रह्म समाज का योगदान सबसे अधिक सराहनीय रहा । धर्म के समान ही इस क्षेत्र में भी कार्य का आरम्भ राजा ने ही किया ।

---

1. Buch, M.A., Rise and Growth of Indian Liberalism, p. 65.

इस समय समाज का सबसे अधिक विकृत तथा दयनीय वर्ग नारी समाज था । भारतीय नारी अपने उत्थान के लिए ब्रह्म समाज की सदैव ऋणी रहेगी । ब्रह्म समाज ने प्रथम बार पर्दा प्रथा के बंधन को तोड़ने का प्रयत्न किया । इनकी स्त्रियाँ स्वतंत्रतापूर्वक भ्रमण करने की अधिकारिणी थीं ।[1] सती प्रथा को बन्द करवाने में ब्रह्मसमाज तथा उसके नेता राजा राममोहन राय का योगदान महत्वपूर्ण है । १८२५ तक सती की संख्या १० प्रतिशत (५७७ से ६३९) अधिक बढ़ गई थी । राजा से पहले भी सती प्रथा बंद करने के कुछ असफल प्रयास हुए थे । निज़ामत अदालत ने इस ओर ध्यान दिया था । जज स्मिथ तथा जज रोज ने सती के पूर्ण बहिष्कार का सुझाव रखा था । यह सुझाव जब कौंसिल में गया तो वाइस प्रेसीडेंट बेली ने उसका समर्थन किया । परन्तु लार्ड एम्हर्स्ट इसके पक्ष में नहीं थे । श्री हैरिंग्टन ने फरवरी १८,१८२७ में सती प्रथा को बन्द करने के लिए एक ड्राफ्ट तैयार किया था ।

लार्ड एम्हर्स्ट शीघ्र ही भारत से चले गए । उनके पश्चात् लार्ड विलियम बैन्टिक वाइसराय होकर भारत आए । बैन्टिक दृढ़ निश्चयी तथा सुधारवादी स्वभाव के व्यक्ति थे, और राजा ने उनके साथ मिल कर इस क्षेत्र में ठोस कदम उठाए । विलियम बैन्टिक ने ४ दिसम्बर १८२९ को एक विज्ञप्ति द्वारा सती को अवैध करार दे दिया । यह रेगुलेशन राजा के प्रयत्नों का परिणाम था । ब्रिटिश सरकार दो विरोधी मतों के मध्य उलझी हुई थी, एक ओर तो मानवता का प्रश्न था, जो इसे रोकने पर बाध्य कर रहा था, दूसरी ओर पवित्र धार्मिक संस्कार के खंडन का प्रश्न था । राजा ने सरकार को इस उलझन से निकालने के लिये अनेक पत्रों का संपादन किया । प्रथम पत्र १८१८ में प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने सती प्रथा को धर्मशास्त्रों के विरुद्ध सिद्ध करने की चेष्टा की । १८१९ में प्रकाशित द्वितीय पत्र में उन्होंने एक विचारक श्री काशीनाथ के इन विचारों का

---

1. Coölect, Sophia D., Life and Letters of Raja Ram Mohan Roy, p. 257.

खंडन किया कि सती प्रथा "निराधार" (सदियों से चली आई प्रथा) है ।[१] उन्होंने अपनी तर्कों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि सतीप्रथा के पीछे धार्मिक पक्ष न होकर विधवा नारी के सम्बन्धियों का व्यक्तिगत स्वार्थ है, जो आजीवन विधवा के भार को संभालने की इच्छा नहीं रखते । अतः यहाँ मानवता और धर्म का कोई संघर्ष नहीं होना चाहिए ।

सती विरोधी अभियान का अनुदारवादी हिन्दुओं ने अपनी पत्रिका "समाचार चन्द्रिका" के माध्यम से डटकर विरोध किया । जनवरी १४, १८३० में "कलकत्ता के ख्याति प्राप्त अनेक व्यक्तियों[२] ने एक आवेदनपत्र प्रस्तुत किया ।" उन्होंने सरकार से अपील की कि" धर्म पुस्तकों से संबंधित नाजुक मामलों में, तथा धार्मिक प्रथाओं की शक्ति से सम्बन्धित मामलों में पंडितों, ब्राह्मणों तथा विद्वान और पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले गुरुओं को छोड़कर और किसी से सलाह नहीं लेनी चाहिए ।"[३] यही नहीं अनुदारवादी हिन्दुओं ने सतीप्रथा के पक्ष में १२० पंडितों का हस्ताक्षर युक्त आवेदन प्रस्तुत किया तथा मनु और विष्णु आदि प्राचीन धर्मशास्त्र निर्माताओं के शब्दों को उसके पक्ष में उद्धृत किया । लार्ड बैन्टिक ने अपने उत्तर में यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि उन्होंने हिन्दू धर्म पर कोई आघात नहीं किया है । यदि अनुदारवादी चाहें तो राजा की परिषद् में अपील कर सकते हैं ।[४] अपने विचारों को पुनः दोहराते हुए अनुदारवादियों की ओर से तत्काल एक अन्य आवेदन पत्र प्रस्तुत किया गया जिसमें ३४६ व्यक्तियों तथा २८ पण्डितों ने हस्ताक्षर किये थे ।[५]

---

१. Bose, N.S., Indian Awakening and Bengal, p. 131.

२. गवर्नर जनरल के मत में ८०० व्यक्तियों ने हस्ताक्षर किए थे ।

3. Collect, Sophia D. - Life and Letters of Raja Ram Mohan Roy, p. 263.

4. Ibid, p. 264.

5. Majumdar, J.K. - Raja Ram Mohan Roy and Progressive Movement in India, No. 86, p. 162.

प्रत्युत्तर में दो दिन पश्चात् ही दो पत्र गवर्नर जनरल को प्राप्त हुए— प्रथम कलकत्ता के ईसाइयों द्वारा, लगभग ८०० हस्ताक्षर युक्त था, तथा द्वितीय ३०० व्यक्तियों के हस्ताक्षर सहित, राजा राममोहन राय द्वारा प्रस्तुत किया गया था। राजा ने इस पत्र में बैन्टिक को उनके प्रयत्नों के लिए बधाई देते हुए यह सिद्ध करने की चेष्टा की थी कि "हिन्दू, विधवाओं के भार उठाने से तथा स्त्री जाति की रक्षा करने से पीछे हट रहे हैं। उन्होंने सती के रूप में स्त्रियों के विनाश का कार्य आरंभ किया है। सती का अनुष्ठान व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि है तथा उपनिषदों के सिद्धान्त के विरुद्ध है, वेद तथा भगवत गीता के विचारों का उल्लंघन है, यहाँ तक कि प्रसिद्ध धर्मशास्त्र निर्माता मनु के विचारों के भी विरुद्ध है जिसने कहा है "विधवा मृत्यु तक, कष्टों को भूल कर, पवित्र कर्तव्यों का अनुष्ठान करती हुई, शारीरिक सुखों से दूर रहे।" (मनु-५,१५८)"[1]

इस प्रकार राजा ने सती के उद्धार के लिए अथक प्रयास किया और अनेक विरोधों के होते हुए भी अपने कार्य में सफल रहे। श्री होरेस विल्सन को लिखे एक पत्र में गवर्नर जनरल ने यह स्वीकार किया कि यह कार्य उन्होंने "एक जागृत हिन्दू, सती प्रथा तथा हिन्दू धर्म के अन्य अनेक अंधविश्वासों के विरोधी राजा राममोहन राय के साथ वार्तालाप से प्रभावित होकर किया है। यह राजा की ही इच्छा थी कि कानून द्वारा सती प्रथा सदैव के लिये अवैध घोषित कर दी जाए।"[2]

सती प्रथा के अतिरिक्त ब्रह्म समाज ने नारी जाति से सम्बन्धित अन्य अनेक समस्याओं की ओर भी यथेष्ठ ध्यान दिया। विधवा विवाह को प्रोत्साहन देने के लिए तथा विधवाओं के जीवन को जीने के योग्य बनाने के लिए राजा ने अपना

---

1. Congratulatory address presented to Lord William Bentick by Raja Ram Mohan Roy and his friends on the abolition of Sati. - quoted from 'Government Gazette' Vol. XVI no. 858, January 18, 1830.
2. Collect, Sophia D. - Life and Letters of Raja Ram Mohan Roy, p. 257.

प्रसिद्ध लेख "ब्रीफ़ रिमार्क्स रिगार्डिंग द मॉडर्न एन्क्रोचमेन्ट ऑन दी एन्श्येंट राइट्स ऑफ़ फ़ीमेल्स अकॉर्डिंग टू दी हिन्दू लॉ ऑफ़ इन्हेरिटेंस" प्रकाशित कराया[१]। ब्रह्म समाज के सदस्यों ने विधवाओं से विवाह करके व्यावहारिक उदाहरण प्रस्तुत किए। १८५४ से १८६१ तक के काल में ब्रह्मसमाज के नेतृत्व में आठ विधवा विवाह सम्पन्न किए गए।[२] श्री शशीपद बैनर्जी ने अपने भाई की विधवा पुत्री के पुनर्विवाह के सम्बन्ध में अनेक परम्परावादी विरोधों के होते हुए भी कठोर कदम उठाया। उन्होंने उसका विवाह एक विधुर पुरुष से करने का बीड़ा उठाया था। यद्यपि यह पुरुष निम्न जाति का व्यक्ति था, परन्तु शशीपद एक उत्साही सुधारक थे। अनेक कठिनाइयों का सामना करने के बाद वह इस विवाह को सम्पन्न कराने में सफल रहे। यह विवाह उनके जीवन का एक क्रान्तिकारी कदम था तथा इसके उपरान्त श्री बनर्जी का घर एक प्रकार से विधवाओं का शरणागत स्थल सा बन गया। इन विधवाओं का विवाह युवक पुरुषों के साथ किया जाता था। अत्यन्त अल्पकाल में उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप लगभग चालीस विवाह सम्पन्न किए गए।[३] १८७७ में अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद उन्होंने स्वयं एक विधवा स्त्री से विवाह किया था। भारतीय स्त्रियों ने स्वयं भी इस सम्बन्ध में तथा अन्य अनेक कुरीतियों के सम्बन्ध में सुधार की माँग करते हुए प्रेस से निवेदन किया। १४ मार्च १८३५ के "समाचार दर्पण" के अंक में एक कुलीन ब्राह्मण कन्या ने संपादक से याचना की कि उसके विचारों को पत्र में स्थान दिया जाए। याचना करते हुए उसने लिखा कि बंगाल में कुलीन तथा कायस्थ घरानों की कन्याओं को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं दिया जाता यद्यपि शास्त्रों में इन विवाहों की पुष्टि हुई है।[४] तदुपरान्त

---

1. Sastri, Sivanath - History of Brahmo Samaj, Vol. I, p. 53.
2. Natrajan, S. - A Century of Social Reform in India, p. 44.
3. Ibid, p. 45.
4. Banerjee, B.N. - Sambādpatre Sekālera kathā, Part I, pp. 186-87.

इसी समर्थन में १५ मार्च १८३५ के अंक में हिन्दुस्तान की कुछ महिलाओं ने अपनी माँग रखी। उन्होंने कहा कि " नारी पति की मृत्यु के उपरान्त पुनर्विवाह क्यों नहीं कर सकती, जबकि पति स्त्री की मृत्यु के बाद पुनर्विवाह कर सकता है ? क्या पुरुषों के समान स्त्रियों को विवाह की इच्छा अनुभव नहीं होती ? प्यारे पिताओं तथा भाइयों ! इस बात को गहराई से सोचो तब तुमको हमारे दुखों का अनुभव होगा कि तुमने दासों के समान हमारा निरादर किया है।"[१] कलकत्ता प्रेस ने सुधार का बीड़ा उठाया। बम्बई में भी अनेक लघु-पुस्तिकाएँ बाँटी गई जिनमें विधवा-विवाह सम्बन्धी नियम की माँग की गई थी।

राजा के उपरान्त ब्रह्म समाज का नेतृत्व देवेन्द्रनाथ टैगोर ने ग्रहण किया (१८४३)। उन्होंने "समाज" का पुन: संगठन किया तथा "ब्रह्मों" की शिक्षा के लिये तत्वबोधिनी पाठशाला की स्थापना की। तत्वबोधिनी सभा नामक एक संगठन भी कायम किया जिसमें दर्शन तथा धर्म की परिचर्चा होती थी। साथ ही तत्वबोधिनी पत्रिका का प्रकाशन भी कराया। यह पत्रिका ब्रह्मसमाज के विचारों को प्रचार का कार्य करती थी।

१८५० से १८५६ तक का काल ब्रह्म समाज के इतिहास में कुछ नवीन विचारों के समावेश का काल है। इस समय "समाज" के युवक सदस्यों ने ब्रह्म समाज में क्रान्तिकारी विचारों का प्रतिपादन किया।" उन्होंने नारी शिक्षा का पक्ष लिया, विधवाविवाह को प्रोत्साहन दिया, बहुविवाह का निषेध किया, ब्रह्म सिद्धान्तों को अधिक बुद्धिवादी बनाया तथा समाज के नियमों का पालन कठोरता से करने पर बल दिया।"[२] इस वर्ग के सदस्यों में सबसे अधिक उल्लेखनीय केशवचन्द्र सेन थे जिन्होंने १८५७ में ब्रह्म समाज की सदस्यता स्वीकार की। १८६२ में उन्हें समाज में "आचार्य" पद मिला। केशवचन्द्र एक क्रान्तिकारी नयी पीढ़ी के सुधारक थे, अत: उनके नेतृत्व में ब्रह्म समाज में एक नवीन जीवन व स्फूर्ति पाई। १८६० में

---

1. Ibid, pp. 187-88.

2. Shastri, Sivanath - History of the Brahmo Samaj, p. 99.

उन्होंने "संगत सभा" की स्थापना की जहाँ हिन्दू आचार-विचारों पर आलोचनात्मक तर्क वितर्क किये जाते थे । केशवचन्द्र पूर्णरूप से पाश्चात्य विचारों के समर्थक थे । उन्होंने १८६१ में कलकत्ता कालेज की स्थापना की जहाँ अंग्रेजी भाषा की शिक्षा दी जाती थी तथा इंडियन मिरर नामक पत्र का[1] प्रकाशन कराया, जो मिशन की कार्यवाहियों का प्रचार करता था । उनके यह विचार अनुदारवादी देवेन्द्रनाथ टैगोर के विचारों से मेल न खा सके । अत: १८६५ में केशवचन्द्र ने आदि ब्रह्म समाज (देवेन्द्रनाथ के नेतृत्व में) से सम्बन्ध विच्छेद कर "भारतवासी ब्रह्म समाज" की नींव डाली जिसकी सदस्यता स्त्री और पुरुष दोनों के लिए खुली थी ।

नारी जाति के उत्थान के लिये इस नवीन समाज ने सम्पूर्ण शक्ति से काम किया । केशव नारी स्वतंत्रता के बहुत बड़े हिमायती थे । उनका विचार था कि "कोई भी देश, जिसका स्त्री वर्ग पिछड़ा हुआ है, प्रगति नहीं कर सकता । दूसरे शब्दों में नारी की स्थिति किसी देश की सभ्यता का सच्चा प्रतीक मानी जा सकती है ।"[2] सर्वप्रथम नारियों में जागृति लाने के लिये उन्होंने उनके मध्य शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव किया । इसके लिए उन्होंने "अंतपुर स्त्री शिक्षा सभा" की स्थापना की जो नारी शिक्षिकाओं को प्रशिक्षण देकर उन्हें इस योग्य बनाती थी कि वे व्यक्तिगत रूप से घरों में जाकर स्त्रियों को शिक्षित करें ।[3] इसी प्रकार ब्राह्मिका समाज की रचना भी की गई जो स्त्रियों को धार्मिक तथा टैक्निकल शिक्षा देती थी । बाद में अनेक पाठशालायें भी खोली गई[4]। १८८२ में केशव ने नारी शिक्षा के सम्बन्ध में एक नयी योजना बनाई और कलकत्ता विश्वविद्यालय की सिनेट के समक्ष उसको रखा । यही नहीं, ब्रह्मबोधिनी पत्रिका तथा परिचारिका नामक दो पत्रिकाएं भी प्रकाशित हुई जिनका उद्देश्य विशेषरूप से नारियों के मध्य शिक्षा

---

1. Chand, Tara - History of the Freedom Movement in India, Vol. II, p. 396.
2. Gupta, A.C. - Studies in Bengal Renainssance, p. 83.
3. Ibid, p. 84.
4. Ibid, p. 84.

का प्रचार करना था ।[१]

विवाह प्रथा के क्षेत्र में भी केशव ने अदम्य उत्साह से कार्य किया । अभी तक ब्रह्म समाज में अपनी ही जाति में विवाह होते थे, परन्तु नए नियमों के अनुरूप अब विजातीय विवाहों को भी प्रोत्साहन मिला । ब्रह्म समाज के एक सदस्य ने निम्नजाति की कन्या से विवाह कर उदाहरण प्रस्तुत किया ।[२] यही नहीं १८६४ में एक और विवाह हुआ जो न केवल विजातीय ही था, अपितु विधवा-विवाह भी था ।

१८७२ में सरकार ने केशव की प्रार्थना पर ब्रह्म विवाह को वैध रूप देने के लिये विशेष कानून पास किया । यह नवीन कानून "नेटिव मैरिज ऐक्ट" था जिसे सिविल मैरिज ऐक्ट के नाम से प्रसिद्धि मिली । इस ऐक्ट ने एक विवाह को मान्यता दी तथा विवाह की आयु कन्या तथा वर के लिये क्रम से १४ तथा १८ वर्ष नियत कर दी । अंतत: हिन्दू समाज ने पुनर्विवाह को स्वीकार कर लिया यद्यपि इसका प्रचलन अधिक नहीं हो पाया था बहुविवाह का भी क्रमश: अन्त होने लगा ।

केशवचन्द्र सेन ने ब्रह्म समाज को नया जीवन प्रदान किया । वह प्रथम व्यक्ति थे जिन्हें अखिल भारतीय धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आन्दोलन चलाने का श्रेय प्राप्त है । उन्होंने ब्रह्म समाज के प्रचार के लिये मिशनरी उत्साह से बम्बई (१८६४) मद्रास (१८६४ तथा उत्तर पश्चिम प्रान्तों (१८६८) में भ्रमण किया । केशव तथा उनके अनुयायी --यद्यपि उनकी संख्या अधिक नहीं थी ने ब्रह्म समाज के संदेश को देश के अनेक भागों में पहुँचाया ‡ तथा विभिन्न नामों से उसकी कई एक शाखायें भी स्थापित कीं । उदाहरणार्थ बम्बई में प्रार्थना समाज तथा मद्रास में वेद समाज की स्थापना हुई । स्त्रियों को इनकी बैठकों में भाग लेने के लिये

---

1. Ibid, pp. 84-85.

2. Vyas, K.C. - The Social Renainssance in India, p. 58

उत्साहित किया जाता था ।[1] डा० ताराचंद के अनुसार प्रथम बार मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवियों ने आधुनिक धार्मिक आन्दोलन का सूत्रपात कर सम्पूर्ण देश में अपने अनुयायियों को संगठित किया ।"[2]

इस प्रकार ब्रह्मसमाज ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की नींव तैयार की ।" उसने स्वतंत्रता तथा प्रजातंत्र के उदात्त सिद्धान्तों को नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया तथा घरेलू सम्बन्धों तथा सामाजिक वर्तन के लिये नयी व्यवहार संहिता प्रस्तुत की । उसने ब्र जाति प्रथा के नियमों का बहिष्कार कर न केवल समस्त मानव जाति की एकता में विश्वास पैदा करने का प्रयत्न किया, अपितु एक ऐसे समाज के निर्माण का प्रयत्न भी किया जहाँ यह एकता धार्मिक सिद्धान्तों के आधार पर टिकी थी ।"[3]

आर्य समाज

१९ वीं शताब्दी के भारत में उदारवाद के साथ-साथ पाश्चात्य विरोधी जिस नवीन आन्दोलन का आविर्भाव हुआ उसने अपनी समकालीन परिस्थितियों के प्रकाश में अतीत की पुनर्व्याख्या की । उसने पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति को तिरस्कृत करते हुए भारत के प्राचीन मूल्यों पर बल दिया । इसका महान् उद्देश्य भारत की जनता के हृदय में जातीय नव अभिमान को उत्पन्न करना था जिससे देश में राष्ट्रीय भावना जागृत हो । इस आन्दोलन के प्रमुख प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती भारतीय पुनर्जागरण के द्वितीय चरण का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

१८७५ में आर्य समाज की नींव डाल कर दयानन्द ने इस नवीन युग का सूत्रपात किया । ब्रह्म समाज के अनुयायी पाश्चात्य शिक्षा की उपज थे तथा पश्चिमी सभ्यता और विचारों के समर्थक । इसके ठीक विपरीत आर्य समाज पूर्णरूप से एक हिन्दू संस्था थी । राजा अंग्रेजी शिक्षा के प्रथम भारतीय प्रतिनिधि थे ।

---

1. Farguhar, J.N. - Modern Religious Movements, p. 34.
2. Chand, Tara - History of Freedom Movement, Vol. II, p. 398.
3. Pal, B.C. - Brahmo Samaj and the Battle of Swaraj in India,

आर्य समाज के साथ हम एक ऐसे आन्दोलन को देखते हैं जिसके नेता ने कभी अंग्रेजी नहीं पढ़ी, तथा जिसने अंग्रेजी पढ़े भारतीय वर्ग से नहीं, बल्कि साधारण जनता से अपील की । आर्य समाज पाश्चात्य भौतिकवाद के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया थी और स्वामी दयानन्द इस आन्दोलन के अग्रगण्य नेता थे । अपने मूल रूप में यह भी एक धार्मिक सुधार आन्दोलन था, परन्तु यह सुधार पाश्चात्य उदारवाद से प्रेरित न होकर प्राचीन हिन्दू धर्म को पुन: स्थापित करने की भावना से प्रेरित था । दयानन्द ने भव्य अतीत के महान् आदर्शों के अनुरूप अपने भविष्य को रचने की प्रेरणा दी । प्राचीन हिन्दू स्वर्णयुग को देखते हुए उन्होंने यह आशा की कि ऐसी ही सामाजिक संस्थाएं , धार्मिक विश्वास तथा राजनीतिक प्रथाओं की प्रतिष्ठा पुन: संभव है । उनकी पुकार थी -" वेदों की ओर लौटो" । वेदों को वह इतना पवित्र मानते थे कि उनके सम्बन्ध में किसी प्रकार की शंका तथा प्रश्न उचित नहीं । उन्होंने कहा कि वैदिक धर्म ही केवल धर्म है और उसे राष्ट्रीय धर्म के रूप में स्वीकार करना चाहिए ।

उन्होंने सभी वर्गों के व्यक्तियों को, चाहे वह किसी भी जाति, धर्म तथा भाषा के हों, वेदों के अध्ययन का तथा उनकी व्याख्या करने का अधिकार दिया । परन्तु वहीं तक जहां तक वे उनकी नैतिक तथा दार्शनिक पक्षों को ध्यान में रख कर प्राचीन प्रथाओं के प्रति श्रद्धा तथा विश्वास के साथ अध्ययन करें । यह एक क्रान्तिकारी कदम था जिसने एक झटके में ऋषियों की प्रथा को हिला दिया[1]।

अपने पूर्वगामी राजा राममोहन राय की भाँति दयानन्द ने भी निर्भीक स्वर में मूर्तिपूजा, बहुदेवोपासना तथा समाज में प्रचलित अन्य अनेक धार्मिक तत्वों को हिन्दू धर्म के विरुद्ध घोषित किया । अपने देश की प्राचीन ज्ञान निधि की ओर जन साधारण का ध्यान आकर्षित करने के लिये तथा संसार के समक्ष उसका यथार्थ रूप रखने के उद्देश्य से उन्होंने जनवाणी हिन्दी में वेदों का भाष्य प्रस्तुत करने का बीड़ा उठाया ।

---

1. Rai, Lajpat - The Arya Samaj, p. 73.

स्वामी दयानन्द ने न केवल हिन्दुओं को भौतिकवाद से रक्षा के लिए वैदिक धर्म का अनुकरण करने का उपदेश दिया, अपितु जो हिन्दू विवश होकर ईसाई बना लिये गए थे उनको पुनः धर्म में प्रवेश करने के लिए "शुद्धि" की अपूर्व व्यवस्था की ।[१]

ब्रह्म समाज की भाँति आर्य समाज ने भी सामाजिक सुधारों में अपूर्व योगदान किया, विशेष कर नारी जाति की दशा को सुधारने में । वैदिक युग को नारी इतिहास के सर्वोत्तम युग में थी जहाँ उसे सामाजिक जीवन की समस्त सुविधायें पुरुषों के समान ही उपलब्ध थीं । अतः नारी सुधार की समस्या के संदर्भ में आर्यसमाज पुनः वैदिक दशा की स्थापना करना चाहता था जिससे भारतीय नारी फिर से स्वतंत्रता का अनुभव कर सके । समाज सुधार का कार्य शिक्षा के क्षेत्र से आरंभ हुआ । आर्य समाज ने बालक तथा बालिकाओं के लिये अनेक स्कूल खोले । बालिकाओं के लिये गुरुकुलों की व्यवस्था की गई जिसका पाठ्यक्रम वैदिक प्रणाली पर आधारित था । उन्हें घरेलू कलाओं की शिक्षा दी जाती थी । साथ ही साथ धार्मिक अनुष्ठानों का भी यथेष्ठ प्रबन्ध होता था, ताकि स्त्रियाँ धार्मिक क्रिया-कलापों में पुरुषों के समान भाग ले सकें । आर्य समाज ने इस प्रकार शिक्षा का प्रसार कर नारी दशा को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया ।[२]

आर्य समाज ने बाल-विवाह की निंदा की । दयानन्द ने कहा कि बालक तथा बालिका का विवाह क्रम से २५ तथा १६ वर्ष की आयु के पहले नहीं होना चाहिए ।[३]

आर्य समाज ने पर्दा प्रथा के विरुद्ध आवाज़ उठाई । इसकी सदस्यता स्त्रियों के लिये भी खुली थी तथा यहाँ तक कि समाज के विभिन्न पदों पर भी

---

1. Majumdar, R.C. - British Paramountcy and Indian Renainssance, Vol. II, p. 111.
2. Karuna Karan, K.P. - Religion and Political Awakening in India, p. 53.
3. Zacharias, H.C.E. - Renascent India (From Ram Mohan to Gandhi), p. 37.

उनका निर्वाचन हो सकता था । नारी दशा के क्षेत्र में यह एक महान् कार्य था ।

इन सुधारों के बावजूद भी आर्य समाजवादी विधवा विवाह के विरोधी थे ।[1] न केवल विधवा की वरन् स्त्री पुरुष की समानता के आधार पर विधुरों को भी पुनर्विवाह का अधिकार नहीं होना चाहिए । परन्तु उन्होंने वेदों के सिद्धान्त के अनुरूप संतानहीन पुरुष को पुनर्विवाह की तथा विधवा स्त्रियों को "नियोग" द्वारा पुत्र प्राप्त करने की अनुमति अवश्य दी थी ।[2]

इसके अतिरिक्त आर्य समाज ने जाति प्रथा का भी बहिष्कार किया । दयानन्द ने कहा कि जन्म व्यक्ति की जाति निर्धारित नहीं करता वरन् उसका कर्म । वास्तव में ब्राह्मण वही है जो आन्तरिक शुद्धता के कारण ब्राह्मण है । अतः एक ब्राह्मण का पुत्र अपने गुणों के कारण क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र भी हो सकता है । वेद किसी एक जाति की धरोहर नहीं हैं । ईश्वर के समक्ष तो सभी समान हैं ।[3]

यद्यपि आर्य समाज पूर्णरूप से एक धार्मिक समाज था, तथापि इसके अनुयायियों में अनेक राजनीतिज्ञ भी थे तथा देश की राजनीति में उन्होंने महत्त्व-पूर्ण भाग लिया था । लाला लाजपत राय के शब्दों में "धर्म तथा सामाजिक जीवन के क्षेत्र में विचार तथा कार्य की स्वतंत्रता, जिसके लिये समाज स्थापित था, अंततः राजनीतिक इच्छाओं को बढ़ावा देने पर बाध्य थी ।"[4]

इस प्रकार आर्य समाज जो कि पंजाब और यूनाइटेड प्राविन्स में फैल रहा था, एक ओर तो परम्परावादी हिन्दू धर्म पर आघात करता है, तथा दूसरी

---

1. Desai, Neera - Women in Modern India, p. 107.
2. Majumdar, R.C. - British Paramountcy and Indian Renaissance Vol. II, p. 111.
3. Census of Punjab, 1891, Vol. XIX, Part I, p. 176.
4. Rai, Lajpat - The Arya Samaj - An account of Its Aim, Doctrine and Activities with a Biographical Sketch of the Leader.

और पाश्चात्य विचारों पर आक्षेप करता है क्योंकि इसके निर्माता दयानन्द की शिक्षाओं में आक्रमणकारी तत्व हैं, जो आर्यों की श्रेष्ठता का दावा करती हैं अर्थात् वेदों के कारण, जो कि मानवीय तथा दैवी ज्ञान के अन्तिम स्रोत हैं, हिन्दुओं की सर्वोच्चता है।[१]

स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनका आर्य समाज भी ब्रह्म समाज की ही भाँति राष्ट्रीय आन्दोलन की नींव तैयार करने वाला था। दयानन्द का भारतीय राष्ट्रीय इतिहास में वही स्थान है, जो यूरोप के इतिहास में मार्टिन लूथर का। जिस प्रकार लूथर ने ईसाई जगत में एक महान् क्रान्ति का सूत्रपात कर यूरोप को मध्ययुग की कूपमण्डूकता और पुरोहित तंत्र के चंगुल से छुटकारा दिलाया, उसी प्रकार दयानन्द ने भी अंधविश्वासों, रूढ़िवादिता और पंडे पुजारियों के जंजाल में फँसे हुए भारतीयों को एक नया आधार दिया (वेदों का) लूथर ने ईसाइयत में पैदा हो जाने वाली कुसंस्कारजनित अंधधारणाओं के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करते हुए जिस प्रकार बाइबिल की मूल शिक्षाओं की ओर वापस लौट चलने का आह्वान किया था, दयानन्द ने भी उसी प्रकार भारतीय धर्म में घुलमिल जाने वाले अधर्मी तत्वों का विरोध कर वेदों की मौलिक आधारशिला का अवलम्बन लेने के लिए उद्घोषित किया।

थियोसोफ़िकल सोसाइटी

थियोसोफ़िकल सोसाइटी का निर्माण मैडम हेलना ब्लावत्स्की तथा एच०एस० आल्काट ने न्यूयार्क में १७ नवम्बर १८७५ को किया था। यह वही समय था जब स्वामी दयानन्द ने भारत में आर्य समाज की नींव डाली थी। १८७९ में इस समाज के निर्माता भारत आए तथा अड्यार (मद्रास) में उन्होंने १८८२ में इसका स्थायी कार्यालय स्थापित किया। १८८८ में इसकी प्रमुख कार्यकर्ती श्रीमती एनी-बेसेन्ट ने इसकी सदस्यता स्वीकार की।

---

1. Chirol, Valentine - Indian Unrest, p. 27.

थियोसोफिकल सोसायटी हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान तथा नव निर्माण के आदर्श को लेकर निर्मित की गई थी । इसके सिद्धान्त हिन्दू तथा बौद्ध धर्म के आदर्शों के अधिक निकट हैं यद्यपि इसके प्रतिपादकों का कहना है कि "थियोसाफी सत्य पर आधारित ऐसा संगठन है जिसे प्रत्येक धर्म का आधार कहा जा सकता है, तथा जो किसी एक धर्म के ऊपर टिकने का दावा नहीं कर सकती ।"[1]

इसके अतिरिक्त थियोसाफी ने अन्य अनेक भारतीय परम्पराओं से अपने को मिश्रित किया है यथा — उपनिषदों से मौलिक, बुद्धि के परे तथा रूपहीन एकता, तथा मानवीय और दैवी शक्तियों का एकीकरण, सांख्य से यह विचार कि आध्यात्मिक विकास सांसारिक वस्तुओं से दूरी रखने पर संभव हो सकता है, तथा बौद्ध धर्म से विचारों और आत्मा को विजित करने के उपाय ।"[2]

थियोसोफिकल सोसायटी के तीन मुख्य सिद्धान्त हैं —(१) जाति, धर्म, लिंग भेद, रंग आदि का भेद न मानते हुये "विश्व बन्धुत्व" की भावना रखना, (२) प्राचीन धर्म, दर्शन तथा विज्ञान की प्रगति करना, (३) प्रकृति के दुर्लभ नियमों की खोज करना तथा मनुष्य में निहित दैवी शक्ति का विकास करना ।[3]

विश्व बन्धुत्व की भावना, भारतीय दर्शन के "एकजीव" विचार के अधिक निकट है । अर्थात् प्रत्येक मनुष्य उसी "अन्तिम सत्य" का प्रतीक है, अतः विभिन्न होते हुए भी एक है । अनेकता में एकता देखना इसकी विशेषता है ।

प्राचीन धर्म और दर्शन के तुलनात्मक अध्ययन से तात्पर्य संभवतः इस विचार का बाहुय रूप है कि प्रत्येक धर्म अपनेमूल रूप में उसी "प्राचीन बौद्धिकता" के विभिन्न स्वरूप हैं । यह ज्ञान केवल भारतीय मनीषियों, जिसे भारतीय अध्या-

---

1. Besant, Annie - "Theosophical Society" Encyclopaedia of Religion and Ethics, Vol. XII, p. 304.
2. Paulobetramare - "Theosophy" Encyclopaedia of Religion and Ethics, Vol. XII, p. 313-24.
3. Edger Lilian - Elements of Theosophy, p. 16.

वली में "महात्मा" कहा जाता है, के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है । मैडम ब्लावत्स्की ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि उन्होंने "महात्माओं" के संसर्ग में यह ज्ञान सीखा है ।[1]

डा० ताराचंद के अनुसार दार्शनिक दृष्टिकोण से थियोसाफ़ी आदर्शवाद के सिद्धान्तों की समर्थक प्रतीत होती है, क्योंकि यह अन्तरात्मा की सर्वोच्चता को मानती है तथा इस बात में विश्वास रखती है कि मानवीय विचार, दैवी विचार के समान ही है और निम्न इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने की सामर्थ्य रखता है । आत्मा दैवी तथा अमर है । यह अनेक जीवन का अनुभव करती हुई, एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करती है और यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक यह समस्त ज्ञान प्राप्त न कर ले और इसप्रकार अन्त में जन्ममरण के बन्धनों से मुक्त हो जाती है अर्थात् अमरत्व प्राप्त करती है ।[2]

श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने अपनी आत्मकथा में स्वयं लिखा है " मेरा यह व्यक्तिगत अनुभव है कि आत्मा का अस्तित्व है और मेरी आत्मा ही मैं हूं, न कि शरीर । आत्मा अपनी इच्छा से शरीर का त्याग करके सांसारिक शिखरों तक पहुंच कर ज्ञान प्राप्त करके मस्तिष्क तक पहुंचाती है । लेन देन की यह क्रिया अत्यन्त मन्द है, इसके द्वारा शरीर और मस्तिष्क में आत्मा के वास्तविक रूप का सम्पर्क होता है । मेरा यह अधूरा और सूक्ष्म अनुभव उसी शिशु के समान है जो अभी बोलना सीख रहा है और सिद्धहस्त वक्ता के समक्ष नगण्य है । आत्मा उसी समय अधिक क्रियाशील होती है, जबकि वह सांसारिक वस्तुओं से दूर रहती है और यह मानना पड़ेगा कि ऐसे मननशील ज्ञानी ऋषि-मुनि हैं, जिनके समक्ष प्रकृति का प्रभाव और विधियाँ शिशु के खेल के समान हैं । मैंने यह सब कुछ और इससे भी अधिक सीखा है, लेकिन मैं ज्ञान के क्षेत्र में नर्सरी कक्षा के शिशु के समान हूं ।"[3]

थीयोसाफी के ये आदर्श भारतीय संस्कृति की परम्परा के अनुरूप थे ,

---

1. Encyclopaedia Britannica (IInd Ed.) Vol. XXVI, 789-90, S.V. 'Theosophy'.
2. Chand, Tara - History of the Freedom Movement, Vol. II, p. 5

अत: भारतीयों को अपनी और आकर्षित करने में इसने अत्यधिक सफलता पाई। दूसरे अंग्रेजी शिक्षित अनेक भारतीय तत्कालीन प्रचलित धर्म तथा धर्माडंबरों से असंतुष्ट थे, परन्तु अपनी बात खुल कर कहने की सामर्थ्य नहीं रखते थे। विपिनचन्द्र के शब्दों में " यह लोग जो मानसिक तथा नैतिक अशांति की उलझन से निकलना चाहते थे, थीयोसाफी के रूप में उन्हें शांति और मुक्ति का मार्ग मिला।"[1]

थीयोसोफिकल सोसाइटी के माध्यम से एनी बेसेन्ट ने पुन: हिन्दू धर्म के उद्धार का कार्य किया।" थीयोसाफी ने हिन्दू आदर्शों तथा वेदों की महिमा का गुणगान किया। भारतीय विचार और दर्शन की बहुमूल्यता को सिद्ध किया और इस प्रकार देशवासियों के मन में अपने अतीत के प्रति गौरव का भाव जागृत किया, उनको यह विश्वास दिलाया कि हिन्दू शास्त्र शिशुओं के गुब्बारे तथा साधुओं की कथाएं नहीं हैं अपितु एक शक्तिशाली व्यवस्था की नींव है — अतीत का गौरव तथा भविष्य की जीवनदायनी हैं।"[2]

उन्होंने न केवल हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा को पुन: स्थापित किया अपितु एनी बेसेन्ट ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि" मैं यह दिखाना चाहती हूँ कि मेरे विचार में पश्चिम की तुलना में पूर्व का धर्म अधिक श्रेष्ठ है।"[3]

थियोसोफिकल सोसाइटी ने न केवल भारतीयों में उद्बोधन का कार्य ही किया, अपितु तत्कालीन नारी-वर्ग में भी चेतना उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। इसके लिये उन्होंने अनेक स्कूल खोले। नारी जाति से सम्बन्धित अनेक दोषों को दूर करने का अथक प्रयास भी किया। बाल-विवाह की प्रथा रोकने के लिये उन्होंने बनारस के हिन्दू कालेज में विवाहित कन्याओं की भर्ती किया।

बाल-विवाह के परिणामों की ओर इंगित करते हुए उन्होंने कहा — "भारत का भविष्य बाल-विवाह को रोकने पर निर्भर है। जब तक यह प्रथा रहेगी

---

1. Pal, B.C. - Memoirs of My Life and Times - II P. 11-11
2. Besant, Annie - Birth of New India, pp. 353-5.
3. Ibid, p. 355.

तबतक इसके अनेक दुष्परिणाम अवश्य होंगे, समय से पहले वृद्धावस्था आयेगी, मानसिक रोग उत्पन्न होंगे, शक्ति का ह्रास होगा — यह सभी आज भारत में उपस्थित हैं और भारत को शक्तिशाली देशों के समक्ष खड़ा करने में बाधक हैं।"[1]

श्रीमती बैसेन्ट स्त्री-पुरुष की समानता की पक्षपाती थीं। अत: उन्होंने पर्दाप्रथा का विशेष रूप से विरोध किया। उनके मत में — "भारत के विकास के लिए स्त्रियों को खुला वातावरण अवश्य मिलना चाहिए। स्त्री का जन्म पुरुष की दासत्व के लिए नहीं हुआ है, बल्कि दोनों को मिलकर जीवन पूर्ण रूप से उपयोगी बनाना चाहिए। स्त्री तथा पुरुष दोनों को मातृभूमि के लिये संगठित रहना चाहिए क्योंकि उनके संगठन में ही भारत की शक्ति, स्थायित्व और स्वतंत्रता निहित है।"[2]

इसके अतिरिक्त एनी बैसेन्ट ने बाल विधवाओं के लिए पुनर्विवाह को प्रोत्साहन दिया, परन्तु साथ ही उन्होंने बड़ी आयु की विधवाओं के लिए पुनर्विवाह को उचित नहीं माना क्योंकि यह विवाह को व्यापारिक समझौते के समान दो शरीरों का एक संघ बना देता है, साथ ही परिवार के पवित्र जीवन को जो हिन्दुओं का गौरव है, नष्ट कर देता है।"[3]

थीयोसाफिकल सोसाइटी ने हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान का जो कार्य किया उसे आलोचकों ने अंधविश्वासों का पुनरुद्धार कहा क्योंकि उन्होंने प्राचीन वैदिक धर्म को मूलरूप में स्वीकार करने की माँग की थी। इन आलोचकों के लिए एनी बैसेन्ट का उत्तर था कि "यदि धर्म अंधविश्वास का प्रतिरूप है तो थीयोसाफी अवश्य अंधविश्वासों को दोहराने वाली है। परन्तु हम थीयोसाफिस्ट ऐसा नहीं समझते हैं। साथ ही इस बात की घोषणा करते हैं कि धर्म मनुष्य द्वारा ईश्वर की खोज है, यह राष्ट्रीय प्रगति और स्थायित्व की जड़ है, क्योंकि अंधविश्वास धर्म का शत्रु है, अंधकार में रखने वाला और राष्ट्रीय जीवन को नष्ट

---

1. Besant, Annie - Wake up India, p. 30.

2. Theosophical Publishing House.

3. Theosophical Publishing House - Annie Besant

करने वाला है।[1] परन्तु साथ ही वह यह भी स्वीकार करती है कि पुनरोद्धारवादी प्रक्रिया में अंधविश्वासों का कुछ अंशों तक समावेश अवश्य रहता है। वह लिखती हैं "मैं इस बात को स्वीकार करती हूँ कि जब कभी भी धर्म का पुनरोद्धार किया जायेगा, उसमें अंधविश्वासों का समावेश अवश्य होगा। बुझती हुई अग्नि पुनः प्रज्वलित करने में धुआँ अवश्य उठेगा। परन्तु धुआँ से छुटकारा पाने का उपाय यह है कि उसे तेज करके लपटों में परिवर्तित कर दिया जाए। तब धुआँ विलीन हो जायेगा और अग्नि तेज व स्पष्ट होगी। जैसे जैसे थीयोसाफी का विस्तार होगा अंधविश्वास का धुआँ विलीन हो जायेगा और अग्नि तेज व स्पष्ट होगी। धुआँ ओझल होता जायेगा और ज्ञान की रोशनी जल उठेगी। यदि तुम ज्ञान से विमुख रहने की चेष्टा करोगे तो धुआँ निरन्तर बना रहेगा क्योंकि जितनी अधिक धुआँ वाली अग्नि मनुष्यों में होती है, किसी अन्य में नहीं।"[2]

हिन्दू आदर्शों पर टिकी होने पर भी थीयोसोफिकल सोसायटी भारत में अधिक लोकप्रियता नहीं प्राप्त कर सकी। आर्य समाज भी पुनरोद्धारवादी आन्दोलन था, परन्तु उसकी प्रसिद्धि अधिक थी। इसका कारण संभवतः यह था कि आर्य समाज जन साधारण में प्रवेश कर गया था। उसके आदर्श सामान्य जनता को अपील करते थे, विपरीत थीयोसाफी ने अंग्रेजी भाषी एक छोटे से वर्ग को ही प्रभावित किया। उन्होंने जनता तक पहुँचने की चेष्टा नहीं की। श्रीमती बेसेन्ट ने स्वयं स्वीकार किया है -- "थीयोसाफिकल सोसायटी के सदस्य लगभग सभी अंग्रेजी भाषी पुरुष और स्त्रियाँ हैं। हम लोगों ने जनता तक पहुँचने की कोशिश नहीं की। वास्तविकता यह है कि हमारा कार्य शिक्षितों से है, क्योंकि जब उच्च वर्ग जागृत होगा जनता भी धर्म को समझ सकेगी। जहाँ तक परिवर्तन और सुधार का प्रश्न है सर्वप्रथम उनके मध्य कार्य आरंभ करना चाहिए जो जनता को प्रभावित कर सकें, न कि स्वयं जनता को। परिवर्तन कार्य सदैव ऊपर से आरंभ होकर नीचे की ओर चलते हैं तभी वह शक्तिशाली और प्रभावशाली होते हैं। यदि परिवर्तन कार्य जनता से प्रारंभ किया जायेगा तो वह क्रान्तिकारी होगा, सुधारक नहीं।"[3]

---

1. Besant, Annie - The Work of Theosophical Society in India, p. 11.
2. Ibid, pp. 13-14.

ईसाई मिशनरियों का उदय

लगभग इसी समय उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में ईसाई मिशनरियों का उदय हुआ । विभिन्न सुधारवादी आन्दोलन के साथ ईसाई मिशनरियों ने भी धर्म परिवर्तन का बीड़ा उठाया, यद्यपि दोनों के उद्देश्यों में महान् अन्तर था - सुधारवादी आन्दोलन देश सेवा की भावना से प्रेरित थे और सच्चे हृदय से भारत का कल्याण चाहते थे, विपरीत मिशनरियां भारतीयों का धर्म परिवर्तन कर ईसाई धर्म का प्रचार चाहती थीं । उन्नीसवीं शताब्दी की पतनोन्मुख स्थिति ने उन्हें यह अवसर शीघ्र ही प्रदान कर दिया । परन्तु उन्हें अपने उद्देश्य में आंशिक सफलता ही मिल सकी । ईसाई और हिन्दू धर्म के तुलनात्मक अध्ययन ने भारतीयों की आँखें खोल दीं । शिक्षित भारतीयों ने अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए संयुक्त मोर्चा लिया । वास्तव में यह सुधारवादी आन्दोलन ईसाई मिशन के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया स्वरूप उठे थे । साथ ही मिशनरियों ने अनेक रचनात्मक कार्य भी किये, विशेष कर नारी दशा की प्रगति के लिए । इस दृष्टि से मिशनरियों का भारत प्रवेश विध्वंसात्मक न होकर रचनात्मक था ।

यद्यपि भारत में ईसाई मिशनरियों का आगमन बहुत पहले ही हो चुका था, परन्तु १८०० में सिरामपुर बैप्टिस्ट मिशन की स्थापना के साथ प्रथम बार उनका संगठन कार्य आरंभ हुआ । मिशन से ईसा के विचारों का प्रचार हुआ, बाइबिल का अनुवाद किया गया तथा अनेक शिक्षा संस्थाओं का उद्घाटन किया । सिरामपुर मिशन ने अनेक बंगाली पुस्तकों का प्रकाशन कराया तथा "समाचार दर्पण" और "दिग्दर्शन" नामक दो पत्रों का १८१८ में संपादन कार्य किया ।[१]

१८०३ में सिरामपुर मिशन ने सुधारवादी कार्यों का श्रीगणेश सती विरोधी अभियान से किया । मिशन ने विभिन्न सदस्यों को कलकत्ता के आस पास, लगभग ३० मील तक सती के आंकड़े एकत्र करने के लिए नियुक्त किया । इसी समय विभिन्न व्यक्तियों ने जिनमें विलियम केरे, जो फोर्ट विलियम कालेज के प्रवक्ता थे, ने अपनी स्थिति से लाभ उठाते हुए कालेज के हिन्दू पंडितों से शास्त्रों पर आधारित अनेक पुस्तकों का संग्रह किया । केरे ने उदनी से, जो गवर्नर जनरल की काउंसिल

के सदस्य थे, के माध्यम से एक प्रार्थना पत्र लार्ड वैलेज़ली के पास भेजा, जिसमें सती-प्रथा को बन्द कराने की अपील की थी ।[१] श्री एल्फिन्स्टन जो बिहार के कलेक्टर थे, ने लगभग इसी समय लार्ड वैलेज़ली का ध्यान इस ओर आकर्षित करने के लिए एक पत्र लिखा ।[२] अत: १८०५ में उसने निजामत अदालत को इस विषय में कार्यवाही करने की अनुमति प्रदान कर दी, परन्तु अभाग्यवश वैलेजली को इंगलैण्ड वापस बुला लिया गया ।

१८११ में श्री बुकानन ने पुन: सती के आंकड़े एकत्र किए तथा "क्रिश्चियन रिसर्च इन एशिया" में उन्हें उद्धृत किया । १८१३ में इस विषय में उन्होंने कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स को सूचित करते हुए लिखा कि सिरामपुर मिशन की रिपोर्ट के आधार पर प्रतिवर्ष १०,००० सती केस होते हैं ।[३]

जेम्स पेग्स ने जो कि तीर्थयात्रा सम्बन्धी कर को हटाने के पक्ष में थे, सती प्रथा की ओर भी समुचित ध्यान दिया । एक पत्र में उन्होंने सती प्रथा को शास्त्रों के विरुद्ध बतलाया और उसके ऊपर बंधन लगाने की मांग की । अपने विचारों को क्रियात्मक रूप देने के उद्देश्य से उन्होंने "दी सोसाइटी फार प्रोमोटिंग दी अबालीशन आफ ह्यूमन सैक्रीफाइसेस इन इंडिया" की स्थापना की ।[४]

१८१५ में विलियम वार्ड की पुस्तक " हिस्ट्री, लिटरेचर एंड माइथालोजी आफ दी हिन्दूज़" का द्वितीय अंक प्रकाशित हुआ । श्री वार्ड ने इसमें अनेक अध्यायों में सती प्रथा की निस्सारिता सिद्ध करते हुए उसे शास्त्र विरुद्ध घोषित किया ।[५] सतीप्रथा के विरुद्ध अनेक पत्र समय समय पर सिरामपुर मिशन द्वारा प्रका-

---

1. Ibid, p. 127.
2. Hindu Widows, pp. 23-4.
3. pp. 1812-13 - Vol. IX, Idol Jaggernaut, p. 5, Letter of Dr. Buchanan, dated 25 May, 1813. Quoted from Ingham, p. 47.
4. Ingham, K. - Reformers in India, p. 48.
5. Ibid, p. 52.

शित समाचारपत्र "फ्रेंड आफ इंडिया" में छपते थे ।

१८२१ में श्री फाउवेल बक्सटन ने कामन्स सभा से अपील की कि वह सती प्रथा से सम्बन्धित सभी कार्यवाहियों को प्रकाशित करा दे । उनका यह सुझाव स्वीकार कर लिया गया । बंगाल की सुप्रीम काउन्सिल के सदस्य श्री हैरिंग्टन ने इस विषय पर अत्यधिक सहयोग दिया ।[1] "फ्रेंड आफ इण्डिया" के सितम्बर १८२२ अंक का सुझाव कि सती प्रथा को नरहत्या की भाँति एक अपराध माना जाय, को बैन्टिक के रेगुलेशन (१८२९) में भी स्थान दिया गया ।[2]

इस प्रकार सती को कानून विरुद्ध घोषित करने में मिशनरियों का योगदान महत्वपूर्ण रहा । वास्तव में राजा राममोहन राय का सती प्रथा विरोधी पत्र लार्ड बैन्टिक तक मिशनरियों के प्रयत्न स्वरूप ही पहुँच सका था ।

सती प्रथा के विरोध के अतिरिक्त मिशनरियों ने नारी शिक्षा के विकास पर भी यथेष्ट ध्यान दिया । १९ वीं शताब्दी के प्रथम चरण में नारियों के मध्य पूर्ण निरक्षरता थी । चार्ल्स ग्रान्ट के शब्दों में "भारतीय नारी की स्थिति पर्दा और दासत्व की है । जहाँ तक मानवीय प्रयत्नों से संभव हो सके उसको सुधारना चाहिए ।"[3] लंदन मिशन सोसाइटी के श्री क्रिस्प के अनुसार "जब तक नारी समाज पतित और अंधकारमय रहेगा, जैसा कि अब तक है, तब तक कोई नैतिक सुधार कैसे संभव हो सकता है ?"[4]

शैक्षिक अभियान के क्षेत्र में सर्वप्रथम कदम लंदन मिशन सोसाइटी के राबर्ट मे ने उठाया । उन्होंने १८१८ में चिन्सुरा में एक बालिका विद्यालय की स्थापना

---

1. East India Affairs P. 8 J.H. Harington's Minute, dated 28 June, 1823. Quoted from Ingham, p. 47.
2. Bengal Regulations and Acts, Vol. II, 1806-34, pp. 878-80, London, 1854.
3. Asiatic Subjects of Great Britain, pp. 29-30.
4. Letter of H. Crisp to the Secretary and Treasurer of the L.M.S., dated : Salem 19 May, 1828. Quoted from Ingham, p. 86.

की ।[१] १८१६ में श्रीमती ट्रैवलर (लंदन मिशन सोसाइटी) के निर्देशन में एक बालिका विद्यालय की नींव डाली गई थी, परन्तु इस विद्यालय में कोई भी भारतीय बालिका नहीं थी ।[२]

सन् १८२० के प्रारम्भ में ही जेम्स ह्यूफ़ ने क्रिश्चियन मिशन सोसाइटी के नेतृत्व में पालम कोटा के दक्षिण में दो बालिका विद्यालय खोले थे ।[३] १८२४ में क्रिश्चियन मिशन सोसाइटी ने अपना प्रथम स्कूल बम्बई में खोला ।[४] कलकत्ता जुविनाइल सोसाइटी ने श्याम बाजार, जॉन बाजार आदि स्थानों पर बालिका विद्यालय खोले ।[५] अत्यन्त अल्पकाल में ही इस सोसाइटी ने ६ विद्यालयों की स्थापना की जिसमें १६० बालिकाएं शिक्षा पाती थीं ।[६]

बर्दवान, बंकुरा, कृष्णा नगर, नादिया आदि स्थानों में भी अनेक स्कूल खोले गए । इन स्कूलों का प्रबन्ध अंग्रेज महिलाओं तथा अन्य सज्जनों द्वारा होता था, जोकि "कलकत्ता लेडीज़ सोसाइटी" से सम्बन्धित थे । इन स्कूलों में वार्षिक परीक्षाओं का उत्तम प्रबन्ध था । १८२४ की परीक्षा में एक नेत्रहीन बालिका ने सबसे अधिक प्रगति दिखाई थी । इन स्कूलों की वार्षिक आय लगभग ५८०७ रुपया थी।[७] सिरामपुर मिशन ने एक स्कूल का प्रबन्ध किया था जिसमें १०० बालिकाएं

---

1. Calcutta Review 1855, p. 317.
2. Letter of C. Traveller to the Secretary of L.M.S. dated Vaprey 12 May 1819. Quoted from Ingham, p. 86.
3. C.M.S. - M.S.S. 'South Indian Mission' Vol. I, p. 108. Quoted from Ingham, p. 87.
4. Ingham, K. - Reformers in India, p. 87.
5. Mitra, P.C. - A Biographical Sketch of David Hare, 6'Referred to in Selections from Educational Records' Part II, p. 35.
6. Williams, Monier - Modern India and the Indians (Ed.III) p. 322.
7. Banerjee, B.N. - p. 11.

शिक्षा पाती थीं । इसके प्रबन्धक भी पादरी थे ।[1] कलकत्ता में लंदन मिशन सोसाइटी की ओर से तीन स्कूलों का प्रबन्ध था । उन स्कूलों में बालिकाओं को लिखना, पढ़ना गणित तथा सिलाई आदि सिखाई जाती थी, सभी स्कूलों ने स्त्री शिक्षा के मार्ग में सराहनीय प्रगति दिखलाई । भारतीयों की प्रवृत्ति भी बालिकाओं की शिक्षा की ओर बढ़ती जा रही थी । २८ जुलाई १८२७ के अंक में "समाचार चन्द्रिका" के एक समाचार द्वारा बंगाली अपनी बालिकाओं को बड़ी आयु तक शिक्षा के हेतु भेजते थे । वर्द्धमान में विशेषकर १४ तथा १५ वर्ष की आयु तक बालिकाएं शिक्षा प्राप्त करती थीं ।[2]

श्रीकृष्णमोहन बैनर्जी प्रथम ब्राह्मण थे जो ईसाई धर्म में परिवर्तित किए गए थे (१७ अक्टूबर १८३२) । बैप्टिस ईसाई धर्म का उनके ऊपर यथेष्ट प्रभाव पड़ा और उन्होंने अनेक सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया । श्रीबैनर्जी ने कलकत्ता के छात्रों में विशेष रुचि दिखलाई तथा अपने मित्र रामगोपाल घोष की सहायता से एक संघ का संगठन किया जिसमें विभिन्न शैक्षिक विषयों पर वादविवाद होते थे । श्री बैनर्जी स्वयं इसमें निबन्ध (पेपर) पढ़ते थे । इनमें एक निबन्ध "भारतीय नारी-शिक्षा" से संबंधित था । यह निबन्ध बड़ौदा के कैप्टेन पैम्सन की प्रतियोगिता के लिए लिखा गया था, तथा पुरस्कृत भी हुआ था ।[3] १४ नवम्बर १८४८ के "इंगलिश मैन" के अंक में इसकी प्रशंसा प्रकाशित हुई । श्री बैनर्जी ईसाई स्कूलों में बालिकाओं को भेजने के पक्ष में थे ।[4] मई १८५७ में उन्होंने "फैमिली लीटरेरी क्लब" की स्थापना की जिसका उद्देश्य भारतीय और यूरोपीयों को अधिक निकट लाना था । क्लब की बैठकों में बाल-विवाह, बहुविवाह, नारी शिक्षा तथा अन्य अनेक विषयों पर विचार विमर्श होता था ।[5]

---

1. Chapman, Priscillia, p. 115.
2. Banerjee, B.N. - Pt. I, p. 11.
3. Bengal Past and Present 1929, Vol. 38, p.48.
4. Ibid, p. 52.
5. Ibid, p. 55.

शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक सराहनीय कार्य इन मिशनरियों की पत्नियों ने किया । तत्कालीन समाज का हिन्दू वर्ग पर्दा प्रथा के कारण तथा पुराने विचारों के कारण अपने परिवार की बालिकाओं को मिशन पादरियों के द्वारा शिक्षा देने के विरुद्ध था । अत: मिशनरियों ने ईसाई महिलाओं के माध्यम से इस कार्य को सफल बनाने का प्रयत्न किया । इन महिलाओं ने अनेक स्कूल खोले, मरैनफर्ड ने मद्रास में एक तामिल स्कूल की स्थापना की ।[1]

श्रीमती डाउसन ने विशाखापट्टम में २० बालिकाओं को शिक्षा देने के लिये एकत्रित किया था ।[2] लंदन मिशन सोसाइटी की ओर से श्रीमती स्टीफेन्स ट्रैविन ने किदरपुर तथा श्रीमती मूडी चिन्सुरा में भारतीय बालिकाओं को शिक्षा देती थीं ।[3] इसी प्रकार विलियम कैरे की पत्नी ने कटवा में १४ बालिकाओं को शिक्षा के लिए एकत्रित किया था ।[4] श्रीमती चै०रोची ने बैप्टिस्ट मिशन की ओर से एक विद्यालय खोला था । उन्होंने अपने पति की मृत्यु के उपरान्त भी स्कूल का प्रबन्ध जारी रखा तथा मिशन का सम्पूर्ण दायित्व अपने कंधों पर ले लिया ।[5]

१८१९ में सिरामपुर बैप्टिस्ट मिशन ने कलकत्ता निवासी अंग्रेज महिलाओं की सहायता से भारतीय नारियों में शिक्षा की प्रगति के हेतु "कलकत्ता फीमेल जुवेनाइल सोसायटी" का आयोजन किया । इसी साथ ही एक नवीन संगठन सिरामपुर में स्थापित हुआ जिसका नाम था "नेटिव फीमेल सोसायटी" । इन दोनों संस्थाओं ने सम्मिलित रूप से नारी-शिक्षा प्रगति का कार्य आरंभ किया ।

विलियम वार्ड जो सिरामपुर बैप्टिस्ट मिशन के सदस्य थे, ने श्रीमती कुक को भारत भेजा । श्रीमती कुक प्रथम अंग्रेज महिला थीं जो अध्यापिका के रूप में

---

1. C.M.S. - M.S.S. 'South Indian Mission' Vol.II f.o 485. Quoted from Ingham, p. 84.
2. L.M.S. - M.S. 'South India Telugu Box I f.o 2; Jackel, B. Letter of J. Dowson to the Secretary of L.M.S. Vijagapattam, 28 Feb. 1825. Quoted from Ingham, p. 87.
3. M.R. 1824, pp. 23-55, Quoted from Ingham, p. 87.
4. M.R. 1821, p. 55 - Quoted from Ingham, p. 87.
5. [illegible] p. 87.

भारत आई थीं। श्रीमती कुक को उच्च परिवारों की महिलाओं को एकत्रित करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, क्योंकि उस समय केवल वेश्याएं और देवदासियां ही पढ़ने-लिखने के योग्य समझी जाती थीं। परन्तु राजा राधाकान्त देव की सहायता से उन्होंने अथक प्रयास के बाद कुछ ऐसी बालिकाओं को एकत्रित किया जिनके अभिभावक उन्हें स्कूल भेजने में असमर्थ थे। ये बालिकाएं एक धनी भारतीय के घर में शिक्षित की जाती थीं।

श्री इंघम लिखते हैं कि भारतीयों की ओर से यह अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य था कि उन्होंने एक विदेशी महिला को अपने घर के अन्दर प्रवेश करने की अनुमति प्रदान की।[1] श्रीमती कुक शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गईं तथा उन्होंने अपनी सफलता से प्रेरित होकर २५ मार्च १८२४ को "दी लेडीज़ सोसाइटी फार नेटिव फीमेल एजुकेशन" का निर्माण किया।[2] यह संस्था उनके द्वारा खोले गए स्कूलों के प्रबन्ध का कार्य करती थी। श्रीमती विल्सन के नेतृत्व में इस सोसाइटी ने ३० बालिका विद्यालयों की स्थापना कलकत्ता और उसके निकटवर्ती स्थानों में की जिनमें ६०० बालिकाएं अध्ययन रत थीं।[3] इसी भांति १८२५ में "लेडीज़ एसोसियेशन" की स्थापना भी की गई। यह संस्था प्रथम से भिन्न थी तथा इसकी सदस्या कलकत्ता की मध्यमवर्गीय महिलाएं थीं।[4]

जुलाई १८२७ में कलकत्ता सेन्ट्रल स्कूल की स्थापना हुई तथा १८२८ में श्री तथा श्रीमती विल्सन ने इस स्कूल का प्रबन्ध भार संभाला। इस समय इसमें छात्राओं की संख्या ५८ थी। इस स्कूल में २५ अध्यापिकाओं का एक ऐसा वर्ग भी था जिनमें अधिकतर विधवा भारतीय नारियां ही थीं। यह नारियां प्रारम्भ में इसी स्कूल में शिक्षा ग्रहण करती थीं, परन्तु शिक्षा के उपरान्त जीविका के लिए साधन न होने

---

1. Ingham, K., p. 92.
2. Chapman, Psiscilla - Hindu Female Education (London, 1839),p.86.
3. Mr. W. Adam's First Report, pp. 34-35.
4. Ingham, K., p. 94.

के कारण श्रीमती विल्सन द्वारा शिक्षिका रख ली गई थीं ।[१] इस प्रकार इस स्कूल ने भारतीय विधवाओं की स्थिति को कुछ हद तक सुधारने में भी अपना योग दिया ।

इसके अतिरिक्त "लेडीज सोसाइटी" के अन्तर्गत विभिन्न स्थानों में अंग्रेज महिलाओं द्वारा अनेक शिक्षा संस्थाओं का संचालन होता था । मिर्जापुर में श्रीमती स्मिथ के नेतृत्व में ५० बालिकाएं, हावड़ा में श्रीमती हैम्पटन की अध्यक्षता में ६० बालिकाएं तथा बर्दवान में श्रीमती वेटर्ड्ब के नेतृत्व में ४० बालिकाएं शिक्षा ग्रहण करती थीं ।[२]

मिशनरियों के प्रयत्नों के फलस्वरूप नारी शिक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए । १८५० तक मिशनरी प्रयासों के फलस्वरूप ३५४ बालिका विद्यालय खोले जा चुके थे, जिनमें लगभग ग्यारह हजार पाँच सौ बालिकाओं को शिक्षा प्रदान की जाती थी ।[३]

सामाजिक परिवर्तनों के साथ ही साथ १६ वीं शताब्दी के द्वितीय चरण में राजनीतिक दृष्टि से भी भारत में शीघ्रता से परिवर्तन आ रहे थे । १८५७ की क्रान्ति के बाद यह सिद्ध हो गया कि कम्पनी देश का भार सम्भालने में अयोग्य तथा असमर्थ है, अतः शासनसत्ता कम्पनी के हाथों से ले ली गई । अब भारत ब्रिटिश संसद के अधीन हो गया । इसके लिये संसद ने "एक्ट फार द बैटर गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया" नामक कानून पास कर के गवर्नर जनरल को" वाइसराय" अर्थात् इंगलैण्ड के राजा का प्रतिनिधि बनाया तथा"बोर्ड आफ कन्ट्रोल एण्ड डायरेक्टर्स" के स्थान पर" सैक्रेटरी आफ स्टेट फार इण्डिया" (भारत के लिये राज सचिव) नियत किया ।

डा० ताराचन्द के अनुसार" इस युग का प्रारम्भ एक ओर तो केन्द्रित ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्ति से, जिसका निवासस्थल लंदन था, तथा जो लोहे के समान दृढ़ ब्यूरोक्रेसी द्वारा संचालित होती थी और भारत में उसकी दृढ़, शक्ति संगठित सेना

---

1. Chapman, Priscillia, p. 89.

2. Ibid, p. 114.

3. Calcutta Review, 1851, p. 242.

थी, वे, तथा दूसरी ओर भारत की निर्धन, अशिक्षित, निरुत्साही तथा असंगठित, आलसी जनसमुदाय ही होता है । इन दोनों के मध्य भारत का मध्यम वर्ग था — जो संख्या में अत्यन्त न्यून और देश भर में बिखरा था, परन्तु अधिकतर नगरवासी था । जहाँ आधुनिक विचारों तथा राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण जागृत हो चुका था ।[1] धर्म निरपेक्ष, प्रजातंत्र तथा राष्ट्रीय विचारों से ओतप्रोत इस मध्यमवर्ग ने ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती दी । भारत में राजनीतिक मोर्चा लेने वाला भी यही मध्यमवर्ग था । सामाजिक सुधारों ने राजनीतिक परिवर्तन के लिये पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी ।

ब्रिटिश राज्य के हाथों में सत्ता जाने से पहले भी भारत में शिक्षित समुदाय ने राजनीतिक परिवर्तन के लिये प्रयत्न आरंभ कर दिये थे । वास्तव में राजनीतिक विचारों का प्रादुर्भाव राजा राममोहन के समय से ही हो गया था । राजा ने प्रेस स्वतंत्रता के लिए कलकत्ता उच्चतम न्यायालय में गवर्नर जनरल की रेगुलेशन के विरुद्ध जो स्मरण पत्र प्रस्तुत किया था, वह नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए भारत की जनता द्वारा उठाया गया पहला कदम था । राजा के पश्चात् उदारवादी तथा अनुदारवादी दोनों वर्गों के समर्थकों ने उनके कार्य को आगे बढ़ाया । इन सब में उग्रवादी का समुदाय प्रमुख है । उन्होंने १८२८ में 'एकेडेमिक एसोसिएशन' की स्थापना की जो राजनीतिक प्रश्नों पर भी विचार करता था । १८३८ में उन्होंने "सोसाइटी फार दि एक्वीजीशन आफ जनरल नालेज" का निर्माण किया जिसमें प्रेस की स्वतंत्रता, न्याय सम्बन्धी प्रश्न आदि पर भी वाद विवाद होता था । तत्पश्चात् १८४२ में द्वारकानाथ टैगोर ने जार्ज टाम्सन को भारत आमंत्रित किया । १८४३ में उन्होंने "बंगाल ब्रिटिश इंडिया सोसाइटी" की नींव डाली । इसका उद्देश्य भारतीयों की दशा का अध्ययन करना तथा शांतिपूर्ण उपायों द्वारा देश की सुरक्षा का प्रयत्न करना तथा नागरिक अधिकारों की रक्षा करना था । १८३८ में कलकत्ता के जमींदारों ने "दी लैंड होल्डर्स सोसाइटी" का निर्माण किया । इसका उद्देश्य वैध उपायों द्वारा सरकार से कर मुक्त भूमि की रक्षा करना था ।

---

1. Chand, Tara - History of Freedom Movement, Vol. II, p. 254.

१८५१ में जमींदारों तथा उग्रवादियों ने संयुक्त रूप से " ब्रिटिश इंडियनएसोसियेशन" की नींव डाली । इसके प्रथम प्रेसीडेंट राधाकान्तदेव तथा सेक्रेटरी देवेन्द्रनाथ थे । इस संस्था का मुख्य उद्देश्य स्थानीय स्वशासन में कुछ परिवर्तनों की मांग करना था । १८५२ में जगन्नाथ शंकर, दादाभाई नौरोजी, नौरोजी फर्दुनजी भाऊदाजी आदि ने मिल कर बम्बई में " दी बाम्बे ऐसोसियेशन " का निर्माण किया था । इसका उद्देश्य सरकार को जनकल्याण के सुझाव देना था । इसी प्रकार मद्रास में हिन्दू-सभा तथा पूना में सार्वजनिक सभा की नींव डाली गई थी ।

उपरोक्त संस्थाएं राजनीतिक क्षेत्र में जागृति के प्रथम चरण का प्रतीक हैं । इस चरण में राजनीतिक आन्दोलन दुर्बल था तथा एक शक्तिशाली नेतृत्व का अभाव था ।

राजनीतिक आन्दोलन के द्वितीय चरण का प्रारम्भ १८८५ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की रचना के साथ प्रारंभ होता है । कांग्रेस की स्थापना भी ऐलन आक्टेवियन ह्यूम[१] ने की थी । ह्यूम का विचार था कि भारतीयों और अंग्रेजों का हित एक ही है । साथ ही साथ वह यह भी अनुभव करते थे कि सरकार भारतीय जनता के सम्पर्क में बिल्कुल नहीं है । शासक तथा शासितों के मध्य सम्पर्क स्थापित करने वाला कोई साधन नहीं है तथा भारतीय समस्याओं और जनमत से परिचित रहने के लिए सरकार के पास कोई संवैधानिक साधन उपलब्ध नहीं हैं ।

इसके अतिरिक्त ह्यूम स्वतंत्र विचारों के व्यक्ति थे । अत: वे एक ऐसे संगठन की स्थापना भी करना चाहते थे जो संपूर्ण देश का प्रतिनिधित्व कर सके । १ मार्च १८८३ में कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने लिखा " प्रत्येक राष्ट्र एक उत्तम सरकार की व्यवस्था चाहता है । तुम लोग चुने हुए

---

१. ह्यूम,जोसेफ ह्यूम के पुत्र थे । उनका जन्म १८२९ में हुआ था । १८४९ से उन्होंने सरकारीपद पर कार्य प्रारंभ किया परन्तु १८७९ में लार्ड लिटन ने भारत सरकार के सेक्रेटरी पद से स्वतंत्र विचार रखने तथा निडर होकर उन्हें कहने के कारण निर्दयता पूर्वक हटा दिया था ।

तथा देश के सबसे अधिक शिक्षित वर्ग, अपने लिए अधिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए संगठित होकर संघर्ष नहीं कर सकते तो भविष्य में उन्नति की समस्त आशाओं को अभी से समाप्त समझना चाहिए ।"[१]

भारत के राजनीतिक नेता जो देश के विभिन्न भागों में एक संगठित शक्ति के निर्माण के हेतु भटक रहे थे, ह्यूम के रूप में उन्हें नया सहारा मिला । १८८४ में ह्यूम ने इन नेताओं के साथ मिलकर "भारतीय राष्ट्रीय संघ" की योजना बनाई इस योजना का उद्देश्य था "संवैधानिक उपायों द्वारा सभी शक्तियों के चाहे वह उच्च हों अथवा निम्न, यहां हों अथवा इंगलैण्ड में उन कार्यों का विरोध करना जो भारतीय सरकार के उन सिद्धान्तों के विरुद्ध हों जिन्हें ब्रिटिश संसद् तथा सम्राट द्वारा निर्धारित किया गया है ।"[२]

कांग्रेस की स्थापना भारत के इतिहास में एक अपूर्व घटना थी । इसने भारत में नवीन युग का प्रारम्भ किया । कांग्रेस प्रथम बार देशव्यापी नेतृत्व मिला, जिसे सम्पूर्ण देश ने एकमत होकर स्वीकार कर लिया । इस नेतृत्व की छत्रछाया में भारतीय नारियों को प्रथम बार राजनीतिक कार्य करने का अवसर प्राप्त हो सका । कांग्रेस के नेतृत्व में भारतीय नारियों को न केवल राजनीतिक कार्य करने का अवसर प्राप्त हो सका, अपितु कांग्रेस ने उनको इस क्षेत्र में आने के लिए उत्साहित भी किया । कांग्रेस की प्रथम बैठक में ही श्री ह्यूम ने कहा था "विभिन्न मतों के मानने वाले राजनीतिक सुधारकों को यह नहीं भूलना चाहिए कि जब तक राष्ट्र का नारी-वर्ग समानता के आधार पर नहीं देखा जायेगा, तब तक सुधार सम्बन्धी समस्त प्रयत्न असफल रहेंगे ।"[३]

कांग्रेस की स्थापना के कुछ वर्ष पश्चात् ही महिलाओं ने इसमें भाग लेना प्रारम्भ कर दिया । १८०० में स्वर्ण कुमारी देवी तथा के० गांगुली बंगाल की ओर से भाग लेने वाली महिलाएं थीं । श्रीमती गांगुली प्रथम महिला थीं जिन्होंने कांग्रेस

---

1. Wedderburn, W. - Allan Octavian Hume, p. 52.

2. Ibid, p. 53.

3. Murdoch, John - Twelve years of Indian progress, p. 36.

के मंच पर भाषण दिया था । श्रीमती सरोजिनी नायडू अनेक वर्षों तक कांग्रेस की "वर्किंग कमेटी" की सदस्य रहीं तथा १९२५ में उसकी प्रेसीडेंट निर्वाचित की गईं ।"[१] कांग्रेस ने "ऐज आफ कन्सेंट बिल" पारित कराने में अपूर्व सहयोग दिया १८९१ में जबकि ऐज आफ कन्सेन्ट बिल पर विचार विमर्श हो रहा था, श्री कृष्ण ने इसके पक्ष में उत्साह पूर्वक अभियान आरंभ किया तथा भारतीयों से भी इसके पक्ष में माँग करने की अपील की । कांग्रेस कार्यकर्ता श्री रघुनाथ राव के प्रयत्नों के फलस्वरूप ही दक्षिण तथा अन्य स्थानों के इस विधेयक से सम्बन्धित विरोधों को समाप्त किया था ।[२]

इसके बाद से भारतीय नारियों ने देश की राजनीतिक कार्यवाहियों में उत्साहपूर्वक भाग लेना प्रारम्भ कर दिया । महात्मा गांधी के राजनीतिक मंच पर उदय होने के साथ साथ नारियों ने देशव्यापी आन्दोलन में खुल कर भाग लिया ।

---

1. Madhavanand and Majumdar - Great Women of India, p. 413.
2. Dua, R.P. - Social Factors in the Birth and Growth of the Indian National Congress Movement, p. 26.

अध्याय - ३

भारतीय नारी की अवस्था तथा समाज में उनके स्थान पर गांधी जी के विचार

अध्याय — ३

भारतीय नारी की अवस्था तथा समाज में उनके स्थान पर गाँधी जी के विचार

भारत के राजनीतिक मंच पर महात्मा गाँधी का आविर्भाव एक नवीन युग का प्रारम्भ है । एक ऐसे युग का प्रारम्भ — जिसमें भारत ने सदियों के बाद पुनः अपने को "एक" अनुभव किया । इस एक में न केवल भारत की विशाल जनता, जिसमें सभी धर्मों, जातियों तथा वर्गों के लोग हैं, वरन् सदियों की पददलित नारी भी सम्मिलित है । इस एकता की अनुभूति कराने वाले युग पुरुष गाँधी थे । भारत के राष्ट्रीय जागरण, स्वतंत्रता संग्राम तथा अंततः भारत को स्वतंत्र कराने में नारियों का योगदान भी सराहनीय है । नारी के इस सक्रिय योगदान का श्रेय महात्मा गाँधी को प्राप्त है ।

महात्मा गाँधी का आविर्भाव एक ऐसे समय में हुआ जब भारत पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क में आ चुका था । इस सम्पर्क के फलस्वरूप जो नवीन परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए, उनसे गाँधी भी अछूते न रह सके । भारतीय परम्परा व हिन्दू धर्म में जन्मे गाँधी अंग्रेजी शिक्षा व पाश्चात्य दर्शन के कारण धार्मिकता तथा बौद्धिकता के अपूर्व सम्मिश्रण थे, एक ओर तो वह "अन्तःकरण" की पुकार को सभी कृत्यों का प्रतीक मानते थे, साथ ही बुद्धि और उनका कहना था कि "हमें ऐसी प्रत्येक वस्तु को तर्क की कसौटी पर परखना चाहिए, जो उसके द्वारा जाँची जाने के योग्य है, तथा उनका बहिष्कार कर देना चाहिए, जो उस पर खरी नहीं उतरती, चाहे वे प्राचीनता के आवरण में ही हों[1]।" अपने इन्हीं विचारों के कारण वह स्त्री और पुरुष के समानाधिकारों के प्रति प्रजातंत्रात्मक तथा समानतापूर्ण दृष्टिकोण अपना सके ।

नारी को पुरुष की "अर्धांगिनी" कहा गया है, परन्तु गान्धी एक कदम आगे जाते हैं । उनके लिए स्त्री-पुरुष का आधा भाग मात्र नहीं है अपितु

---

1. Gandhi, M.K. - Women and Social injustice, p. 45.

स्त्री "पुरुष की जननी, निर्माता तथा मूक मार्गदर्शक है तथा ईश्वरीय सृष्टि की सबसे उत्तम" रचना है। जहाँ तक स्त्री और पुरुष में समानता का प्रश्न है, गांधी उदारवादी विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वह प्रकृतिवादियों के इस विचार से सहमत हैं कि प्रकृति ने स्त्री और पुरुष को भिन्न उद्देश्यों के लिए बनाया है तथा इसी लिये दोनों को भिन्न प्रकार की शक्तियों व क्षमताओं से विभूषित किया है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि क्षमता और कार्यक्षेत्र को ध्यान में रख कर नारी को हेय दृष्टि से देखा जाय। गांधी के लिए इस प्रकृति प्रदत्त भिन्नता के होते हुये भी "स्त्री और पुरुष का दर्जा बराबर है। वे एक दूसरे के पूरक हैं, दोनों एक दूसरे की मदद करते हैं और एक के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व ही नहीं है। यदि किसी तरह दोनों में से किसी एक को भी हीन भावना से देखा गया तो इसमें दोनों की ही हानि है।"[१] कहने का तात्पर्य यह है कि समाज संगठन के कार्य में दोनों का योगदान बराबर है, अन्तर केवल कार्यक्षेत्र का है। इसलिये गांधी की धारणा है कि "स्त्री को अबला कहना उसका अपमान करना है। स्त्री के प्रति पुरुष का यह अन्याय है। यदि शक्ति का अर्थ पशुबल से है तो यही कहना होगा कि स्त्री पुरुष से कम पाशविक है। यदि शक्ति का अर्थ नैतिक शक्ति से लगाया जाए तो नारी निश्चय ही पुरुष से उच्च है।"[२] पुनः गांधी के ही शब्दों में " स्त्री पुरुष की संगिनी है, उनकी बौद्धिक क्षमता समान है। स्त्री को पुरुष की सभी गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार है और उसे स्वतंत्रता का समान अधिकार है। उसे अपने क्षेत्र में वही गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त होना चाहिये जो पुरुष को अपने क्षेत्र में प्राप्त है।[३]

---

१. "विश्व ज्योति" - महात्मागांधी अंक, अप्रैल १९६९, पृ० ६२

२. Kasturba Memorial, a journal published by Kasturba Gandhi national memorial trust, Kasturbagram, Indore, p. 12.

३. विश्वज्योति, पृ० ६२

संक्षेप में गांधी स्त्री और पुरुष में केवल मात्र लिंग भेद के आधार पर भेदभाव नहीं करते थे। उनके मत में स्त्री के ऊपर ऐसा कोई भी बंधन नहीं लगना चाहिये जो पुरुषों पर भी लागू न हो। सामाजिक दृष्टि से स्त्री व पुरुष समाज के दो अभिन्न अंग हैं जो एक दूसरे की कमियों को पूरा करते हैं। स्त्री जाति को "दुर्बल" व "अबला" की संज्ञा मात्र शारीरिक शक्ति के आधार पर ही दी गई है। आध्यात्मिक दृष्टि से स्त्री पुरुष से कहीं अधिक उच्च है। गांधी के मत में स्त्रियों को इस पाशविक शक्ति की कमी के लिये अपने को हीन व तुच्छ नहीं समझना चाहिये। स्वयं गांधी द्वारा संचालित संस्थाओं में स्त्रियां और बालिकाएं पूर्ण स्वतंत्रता का उपभोग करती थीं तथा उनके साथ कोई भेद-भाव नहीं होता था। साबरमती तथा सेवाग्राम आश्रम पक्षपात रहित सिद्धान्त के उत्तम उदाहरण हैं।

महात्मा गांधी आधुनिक युग में नारी के समानाधिकार के सबसे बड़े समर्थक थे। इस विषय में वह किसी भी मूल्य पर समझौता करने के पक्ष में नहीं थे। प्राचीन हिन्दू धर्म व संस्कृति के अनन्य पोषक व प्रशंसक होते हुये भी प्रत्येक विश्वास व प्रथा को ज्यों का त्यों अपना लेने के पक्ष में नहीं थे। हिन्दू संस्कारों और शास्त्रों को वे अत्यन्त पवित्र मानते थे। परन्तु जहां तक नारी के अधिकारों का प्रश्न है प्राचीन हिन्दू शास्त्र भी उनकी धारणा बदलने में असमर्थ रहे हैं। उदाहरण के लिये मनु की इस उक्ति को कि "न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम्"[१] गांधी से मान्यता नहीं प्राप्त हो सकी। स्मृतियों में निहित अन्य इसी प्रकार की उक्तियां जो नारी स्वतंत्रता पर बंधन लगाती हैं उस युग पुरुष पर अपना कोई भी प्रभाव न डाल सकीं। गांधी नारी के समानाधिकार के प्रवर्तक थे। उनके लिए नारी मानवता की जननी है। जो अप्रचलित स्मृति ग्रन्थों को लेकर इस विषय में उनसे तर्क करना चाहते थे उनके लिये गांधी स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि "जो कुछ भी शास्त्रों

---

१. मनु -- ५।१४८

में लिखा है उसे ईश्वर की उक्ति नहीं मान लेना चाहिए ।"[1] परन्तु साथ ही गांधी यह भी अनुभव करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति यह भी निर्णय करने में असमर्थ है कि क्या उत्तम और शास्त्र प्रदत्त है तथा क्या बुरा और शास्त्र विरुद्ध है । इसके लिये गांधी का सुझाव था कि एक ऐसा मान्य ज्ञानी जनों का संगठन निर्मित होना चाहिए जो उन सबको पुनः दोहराये जो शास्त्रों के नाम से प्रचारित किया जाता है । उन सभी पुस्तकों को अमान्य घोषित करें जो नैतिक दृष्टि से उचित नहीं है अथवा धर्म और नैतिकता की विरोधी हैं, और इस प्रकार वास्तविक हिन्दू धर्म का मार्ग दर्शन करें ।[2] गांधी इस प्रकार से किये गए निर्णय के परिणाम से भी अनभिज्ञ नहीं थे । वह अनुभव करते थे कि ऐसे संगठन द्वारा निर्मित नियमों को हिन्दू जनता तथा "व्यक्ति जो धार्मिक नेता" माने जाते हैं संभवतः स्वीकार न करें । परन्तु उनकी सलाह यह है कि इस बात से डर कर इस पुनीत कार्य को नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि लगन व सेवाभाव से किया हुआ कार्य कभी निष्फल नहीं जाता तथा उसका परिणाम अंततः अवश्य ही दृष्टिगोचर होता है ।

इसके अतिरिक्त "न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति" उक्ति गांधी के लिए धार्मिक मान्यता नहीं रखती और न ही इस बात की पुष्टि करती है कि स्त्री वास्तव में स्वतंत्रता के योग्य नहीं है । गांधी के लिए इसका तात्पर्य केवल यही है कि संभवतः एक समय ऐसा था (जिस समय की यह उक्ति है) जब कि स्त्री दासत्व की स्थिति में थी । गांधी अपने कथन की पुष्टि में शास्त्रों में स्त्री के प्रति प्रयुक्त उन शब्दों को प्रस्तुत करते हैं जहां उसे "अर्द्धांगना" , अर्थात् अर्द्ध भाग तथा "सहधर्मिणी" अर्थात सहभोगी की संज्ञा दी गई है । पुनः पति का स्त्री को "देवी" कह कर संबोधित करना भी स्त्री के प्रति श्रद्धा का सूचक है ।

गांधी नारी को पवित्र व त्याग की मूर्ति मानते हैं । उनके लिए नारी का सबसे श्रेष्ठ रूप जननी के रूप में है । अतः तत्कालीन साहित्यकारों द्वारा चित्रित

---

1. Harijan - 28 - 11 - 1936.

2. Ibid.

नारी के विकृत रूप की भी गांधी ने भरपूर निन्दा की । इस विषय में "ज्योति-संघ" की महिलाओं द्वारा की गई उस अपील का कि स्त्री जाति का विकृत रूप आधुनिक साहित्यकारों द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है, गांधी ने समर्थन किया । अहमदाबाद में "गुजराती साहित्य सम्मेलन" में भाषण देते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि वर्तमान साहित्य नारी के सही स्वरूप का चित्रण नहीं करता । आज का साहित्य उन्हें भोग विलास की सामग्री के रूप में प्रस्तुत करता है ।" क्या नारी की समस्त सुन्दरता व शक्ति का मापदण्ड उसका बाह्य सौन्दर्य द्वारा पुरुष को प्रसन्न करने तक सीमित है ? स्त्रियों की यह शिकायत उचित ही है कि क्या वे मनु, आत्म समर्पिता नारी हैं जिसके लिए परिवार के निम्न से निम्न कार्य सुरक्षित हैं तथा जिनके एक मात्र देवता उनके पति ही हैं ?"[1] गांधी के लिये स्त्री शक्ति का यह रूप वास्तविकता की उपेक्षा करता है । न केवल वास्तविकता की उपेक्षा करता है, अपितु स्त्री जाति का भी अपमान करता है । नारी के विषय में यह धारणा गलत है । गलत ही नहीं वरन् गांधी इसे साहित्य में स्थान देने के पक्ष में भी नहीं हैं । उन्हीं के शब्दों में "क्या उनके शारीरिक सौंदर्य का मुक्त वर्णन ही साहित्य का भाग है, मुझे आश्चर्य है ? क्या तुम्हें इस प्रकार का कोई विवरण उपनिषद्, कुरान तथा बाइबिल में मिलता है ? और क्या तुम्हें मालूम है कि बिना बाइबिल के आंग्ल भाषा सारहीन है ? कुरान के बिना अरबिक निरर्थक है, तथा हिन्दी की कल्पना बिना तुलसीदास के करो । क्या तुम्हें इन सभी में नारी के विषय में यह सब मिलता है जो आज के साहित्य में है ?"[2]

गांधी ने इन साहित्यकारों को फटकारने के साथ ही साथ एक प्रेरणा भी दी । उनके अनुसार "इससे पूर्व कि तुम अपनी कलम कागज पर रखो, स्त्री की कल्पना अपनी स्वयं की मां के रूप में करो, और हम तुमको विश्वास दिलाते हैं कि तुम्हारी कलम से सदा पवित्र साहित्य ही प्रवाहित होगा, उसी प्रकार जिस प्रकार

---

1. Harijan - 21 - 11 - 1936.
2. Harijan - 21 - 11 - 1936.

आकाश से सुन्दर वर्षा प्यासी भूमि को सींचती है ।"[1]

इस समय तक अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पड़ चुका था तथा अंग्रेजी शिक्षा भारतीय नारी को भी उद्बोधित कर चुकी थी । शिक्षा का प्रारम्भ जिस उद्देश्य को लेकर हुआ था उसका अनुचित फल दृष्टिगोचर हुआ । अंग्रेजी भाषा व साहित्य के मर्म को समझने में असमर्थ तत्कालीन नवयुवक व नवयुवती वर्ग बाह्य दृष्टि अर्थात् खान-पान और आचरण में अंग्रेजी हो गए । फलस्वरूप भारतीय परम्परा व धर्म की हानि हुई । अंग्रेजी के इस दुष्परिणाम के विरुद्ध जिन लोगों ने आवाज उठाई उनमें गांधी अग्रगण्य थे । उनकी अपील स्त्री व पुरुष दोनों वर्गों से थी । साहित्यकारों को चेतावनी देने के साथ ही साथ उन्होंने भारतीय नारी से भी "आधुनिक" न बनने की याचना की । यहाँ पर आधुनिकता से उनका तात्पर्य उस आधुनिक प्रवृत्ति से है जो अन्दर से खोखली है तथा बाह्य रूप से एक नकली आवरण पहने है । आधुनिकता से उनका तात्पर्य पाश्चात्य खान-पान, विदेशी वस्त्रों व फैशन से है जो भारतीय समाज के सर्वथा प्रतिकूल हैं और समाज के निर्माण में नहीं, वरन् विनाश में सहायक हैं । इसलिए उन्होंने नारी से, विशेषकर शिक्षित युवती वर्ग से अपील की कि वह भारतीय परंपरा के अनुकूल रहे तथा प्राचीन आदर्शों को बनाए रखने में सहयोग दें तथा "आधुनिक युवती" बनने की प्रवृत्ति से दूर रहें ।[2]

महात्मा गांधी जन्मजात सुधारक थे । उनके सुधार का क्षेत्र विस्तृत था । हरिजन, नारी तथा दीन दुखी का उद्धार उनके रचनात्मक सुधारों में मुख्य स्थान रखते हैं । भारत के दलित वर्ग के उत्थान के लिए गांधी की दृष्टि में धनिक वर्ग की महिलाएँ अधिक सहयोग कर सकती हैं । अतः उन्होंने महिलाओं से अधिक से अधिक संख्या में गहनों व आभूषणों के दान देने की अपील की । आभूषणों को दान देने में मात्र दान की भावना ही निहित नहीं थी अपितु गांधी के लिए "गहनों तथा आभूषणों के प्रति अतीव इच्छा से महिलाओं को दूर रखना"[3] भी

---

1. Ibid.

2. Harijan - 4 - 2 - 1939.

3. Young India - 8 - 12 - 1927.

निहित था । गांधी के मत में यदि नारी संसार के कार्यों में हाथ बटाना चाहती है तो उसे गहनों व आभूषणों के माध्यम से पुरुषों को प्रसन्न रखने की रीति का परित्याग करना चाहिये । गांधी ने सीता को स्त्री जाति का आदर्श माना है । उनके मत में सीता कहीं भी शारीरिक सौन्दर्य के द्वारा राम को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करती हुई प्रदर्शित नहीं है । महिलाओं के लिए गांधी का संदेश था - " अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं के दास होने से, तथा पुरुष के दासत्व में रहने से इन्कार कर दो । स्वयं को सजाने से इन्कार कर दो तथा सुगंधित इत्र आदि के प्रति मत जाओ । यदि तुम सच्चे अर्थों में इत्र (सुगन्ध) फैलाना चाहती हो, तो वह (सुगन्ध) तुम्हारे हृदय से आनी चाहिए और तब तुम न केवल पुरुष को ही वरन् मानवता को भी आकर्षित कर सकोगी ।"[1]

इसके अतिरिक्त महात्मा गांधी की दृष्टि में भारत जैसे देश में जहां हजारों की संख्या में व्यक्ति निर्धनता का जीवन व्यतीत करते हैं, जिनके लिए सूखी रोटी भी खाने को नहीं है, बहुमूल्य आभूषणों को मात्र शोभा की दृष्टि से धारण करना पाप है, चोरी है । राष्ट्रीय दृष्टि से भी देश की सम्पत्ति को इस प्रकार तालों में बंद करना है ।" इस" आत्मशुद्धि" के आन्दोलन में स्त्री तथा पुरुष द्वारा आभूषणों का दान देना समाज के लिए अत्यधिक लाभप्रद है ।"[2]

गांधी के लिए स्त्री या पुरुष की शोभा बाह्याभूषणों से नहीं बढ़ती परन् सच्ची सुन्दरता व आन्तरिक शुचिता में है दूसरे शब्दों में उत्तम चरित्र सच्चा एवं स्थायी आभूषण है । मैसूर में एक महिला सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए गांधी स्पष्ट करते हैं कि " स्त्री का वास्तविक आभूषण उसका चरित्र है, उसकी शुद्धता है । धातु तथा पत्थर सच्चे आभूषण नहीं हैं । सीता और दमयन्ती जैसी नारियों के नाम उनके विशुद्ध गुणों के कारण हमारे लिए पवित्र हो गए हैं । आभूषणों के

---

1. Young India - 8 - 12 - 1927 - Quoted from a address delivered before a small gathering of Singhalese ladies at Colombo.
2. Harijan - 22 - 12- 1933.

कारण नहीं....... । मेरा आपसे गहनों के लिए अनुरोध करना व्यापक महत्व रखता है । अनेक बहनों ने मुझसे कहा है कि उन्होंने अपने आभूषणों से छुटकारा पाकर संतोष का अनुभव किया है । मैं इस कार्य को अनेक दृष्टि से लाभप्रद समझता हूँ । कोई भी पुरुष तथा स्त्री सम्पत्ति रखने का अधिकारी नहीं है, जब तक उसने उस सम्पत्ति का कुछ अंश निर्धनों और असहायों को दान नहीं दिया है । यह एक सामाजिक तथा धार्मिक प्रथा है जिसे भगवत् गीता में "त्याग" की संज्ञा दी गई है । वह व्यक्ति जो यह त्याग नहीं करता है, चोर कहा जाता है । गीता में अनेक प्रकार के त्याग दिए गए हैं, परन्तु निर्धनों और जरूरत मंद की सेवा से बढ़ कर और कौन सा त्याग महान् हो सकता है ? हमारे लिये आज इससे बढ़ कर और कौन सा त्याग हो सकता है कि हम ऊँच-नीच का भेद भाव भूल जाएं तथा मानव-मात्र की समानता का अनुभव करें । मैं भारतीय महिलाओं से भी यही कहना चाहता हूँ कि सच्चा सौंदर्य धातु और पत्थरों से शरीर को लादने में नहीं बल्कि हृदय की शुद्धता तथा आत्मा की सुन्दरता को विकसित करने में है ।"[1] यहाँ पर गाँधी इस लोकोक्ति के समर्थक प्रतीत होते हैं कि "सुन्दर वह है जो सुन्दर (कार्य) करता है ।"

महात्मा गाँधी एक व्यवहारिक व्यक्ति थे । वह सिद्धान्तों और कोरे उपदेशों में विश्वास नहीं करते थे । समाज के प्रत्येक नियम, प्रथाएं तथा अनुष्ठान उनके लिए तभी तक मान्य हैं जब तक वे नैतिकता पर आधारित होकर जीवन में उपयोगी सिद्ध नहीं होते हैं । ऐसे आदर्श व प्रथाएं जो व्यवहारिक जीवन में भी अप्राप्य आदर्श के रूप में ही बनी रहें उनके लिए निरर्थक थीं । इस व्यवहारिकता को उन्होंने विवाह जैसे पवित्र संस्कार में भी प्रयुक्त करना चाहा । इसका प्रत्यक्ष उदाहरण सेवाग्राम में प्रतिपादित इन्दुमती तथा तेन्दुलकर का विवाह था जिसका अनुष्ठान महात्मा गाँधी के निर्देशानुसार हुआ था । यह विवाह हिन्दू विवाह पद्धति को एक व्यवहारिक रूप प्रदान करता है । उदाहरण के लिए इस विवाह में "सप्तपदी " को एक नवीन रूप मिला । हिन्दू परंपरागत पद्धति के अनुसार सप्तपदी पति-पत्नी द्वारा जीवन में साथ चलने का प्रतिनिधित्व करती है । परन्तु गाँधी द्वारा

---

1. Harijan - 12 - 1 - 1934.

प्रतिपादित इस नवीन पद्धति में स्त्री तथा पुरुष संयुक्त रूप से सात कार्यों का अनुष्ठान करते हैं जिसमें भगवत् गीता का अध्ययन, चर्खा कातना, गौ सेवा, कुएं की जगह की सफाई तथा कृषि के लिए भूमि तैयार करना आदि सम्मिलित है। विवाह के समय इन कार्यों का अनुष्ठान जीवन में उनका सतत् व्यावहारिक प्रयोग करने का आदेश देता है। इस प्रकार पवित्र परंपरागत "सप्तपदी" की रीति व्यावहारिक तथा जीवनोपयोगी हो गई। यही नहीं इस विवाह में पंडित का कार्य एक हरिजन व्यक्ति ने किया, जो हरिजन होने के साथ-साथ ईसाई मत को भी स्वीकार कर चुका था। इस विवाह का सम्पूर्ण कार्य हिन्दुस्तानी में हुआ तथा विवाह के समय ली गई शपथों में से अनावश्यक शपथों को हटाकर कुछ नवीन का समावेश भी किया गया। रामेश्वरी नेहरू के शब्दों में इस विवाह के माध्यम से गांधी ने एक ही समय में, एक ही कार्य द्वारा अनेक सुधारों को, जिनका उन्होंने प्रतिपादन किया था, जीवन के कार्य क्षेत्र में प्रविष्ठ हो गये।"[१] जीवन के कार्य-क्षेत्र में समाविष्ठ होने के साथ ही साथ यह कार्य पति-पत्नी के कर्तव्यों का भी संकेत करते हैं जिनका उन्हें संयुक्त तथा पृथक रूप से पालन करना है।

जहाँ तक हिन्दू परिवारों में पत्नी की स्थिति का प्रश्न है, गांधी अपने विचारों में अधिक स्पष्ट थे। उनके मत में वैवाहिक जीवन उतना ही अनुशासित होना चाहिए जितना अन्य क्षेत्र में। जीवन भी एक कर्तव्य है तथा वैवाहिक जीवन का उद्देश्य तो आपसी सहयोग को बनाए रखना है। इसके साथ ही गांधी के लिए इसका उद्देश्य मानवता की सेवा करना भी था। अतः जब दोनों में से एक भी सदस्य इस अनुशासन का उल्लंघन करता है तभी वैवाहिक सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो जाता है और वह उस उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर पाते जिसके लिए उनका सम्बन्ध हुआ था।[२]

हिन्दू धर्म में पति-पत्नी का स्थान समान माना गया है। विवाह के

---

1. Shukla, C.S. - Incidents of Gandhiji's life (ed.), p. 213. (Gandhiji and Women - Article by Rameshwari Nehru).
2. Young India - 21 - 10 - 1926.

माध्यम से वह मित्र तथा बराबर के हो जाते हैं । यदि पति को "स्वामी" माना गया है तो पत्नी को "स्वामिनी" । दोनों एक दूसरे के स्वामी हैं, दोनों एक दूसरे के सहयोगी हैं तथा दोनों ही जीवन के कार्यों में समान रूप से भाग लेते हैं, सहायता करते हैं । परन्तु अभाग्यवश इस मौलिक सिद्धान्त की उपेक्षा कर हिन्दू परिवारों में स्त्री को "सहधर्मिणी" का स्थान न देकर उसे दासत्व की स्थिति पर पहुंचा दिया गया है । महात्मा गाँधी इस बात से अत्यन्त दुखी थे कि धीरे-धीरे यह प्रथा सी बनती जा रही है कि पति को पत्नी के ऊपर अनावश्यक स्वामित्व प्राप्त है, पत्नी उसकी सम्पत्ति के समान है और दुर्बल नारी पति के स्वामित्व में विश्वास कर आत्मसमर्पण करती जा रही है । महात्मा गाँधी के लिए पति के आदर्श रूप का प्रतिनिधित्व राम करते हैं और पत्नी के आदर्श रूप का सीता ।" सीता राम की दासी नहीं थीं, या दूसरे शब्दों में प्रत्येक दूसरे का दास था ।"[1] गाँधी के मत में पत्नी को स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार है । यदि वह अपने को उचित समझती है तथा उसका संकल्प सुन्दर उद्देश्य के लिए है तो वह स्वतंत्र निर्णय ले सकती है ।[2] गाँधी के ही शब्दों में—"हिन्दू धर्म प्रत्येक व्यक्ति को आत्मज्ञान, जिसके लिए ही केवल वह पैदा हुआ है, के हेतु, वह जो भी चाहे कोई भी मार्ग अपनाने के लिए पूर्ण स्वतंत्र छोड़ देता है ।"[3]

महात्मा गाँधी के लिए स्त्री और पुरुष के कार्य क्षेत्र पृथक-पृथक हैं, अतः एक सुनियोजित परिवार में स्त्री के ऊपर परिवार के भरण-पोषण का बोझ नहीं होना चाहिए । दूसरे शब्दों में परिवार के पालन का मुख्य उत्तरदायित्व पुरुष का है तथा स्त्री का क्षेत्र घरेलू कार्यों का संपादन व देख रेख है और इस प्रकार दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, सहयोगी हैं ।

तत्कालीन नारी-स्थिति और गाँधी

इतिहास इस बात का साक्षी है कि कोई भी नेता अपने देश में तथा देश के बाहर इतना अधिक प्रसिद्ध नहीं हुआ जितना गाँधी और इसी प्रकार कोई भी

---

1. Ibid.

व्यक्ति नारियों से उतना अधिक विश्वास व भक्ति प्राप्त न कर सका, जितना स्वयं गांधी । इसका कारण स्पष्ट है ।

गांधी का आविर्भाव एक ऐसे समय में हुआ जब भारत प्राचीन भारत के महान् आदर्श और अतुलनीय सभ्यता को भूलकर पतन के गर्त में गिर चुका था । आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा शैक्षिक समाज का लगभग प्रत्येक पहलू इस सर्वव्यापी विनाश का शिकार था । परन्तु समाज का कोई भी अंग इस पतन से उतना अधिक प्रभावित नहीं था जितना कि नारी वर्ग । पुरुष की "सहधर्मिणी", "सहयोगी", तथा "अर्द्धांगिनी" के पवित्र स्थान से गिर कर नारी उसकी अधीनस्थ हो गई थी —एक "चल सम्पत्ति" जिसका उपभोग स्वेच्छा से किया जा सकता है, और जिसकी अपनी कोई पृथक इच्छा व अधिकार नहीं है । परम्पराओं और प्रथाओं ने नारी के साथ घोर अन्याय किया था । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी मनु की इस उक्ति को "पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने । रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति"[1] चरितार्थ कर रही थी । देश की इसी अराजक और पतनोन्मुख दशा को देखकर गांधी ने अपने साप्ताहिक पत्र "हरिजन" में लिखा था कि "आज यदि हम वर्णों के बारे में बात करते हैं तो आज सभी के लिए, चाहे स्त्री हो या पुरुष, एक ही वर्ण है —हम सभी शूद्र हैं ।"[2]

मानवता के असीम प्रेमी, तथा अन्याय, चाहे वह किसी भी क्षेत्र में, किसी भी रूप में हो, के प्रबल शत्रु गांधी का ध्यान तत्कालीन नारी वर्ग सहज ही आकर्षित कर सका । अपनी लेखनी के माध्यम से तथा अनेक पदों को सुशोभित करते हुए भी अपनी सुदृढ़ देश सेवा काल में गांधी सदैव नारियों के ऊपर कानून, प्रथाओं और धर्म की ओर से लादे गए कठोर अन्याय के लिए संघर्षरत रहे । उन्होंने निर्भिकतापूर्वक पर्दा, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, देवदासी, वेश्यावृत्ति तथा आर्थिक परतंत्रता आदि नारी जाति से सम्बन्धित समस्याओं के विरुद्ध आवाज़

---

१. मनु — ९।३

2. Harijan - 12 - 10- 1934.

उठाएँ । उनके मत में सुधार कार्य को स्वराज्य प्राप्ति तक स्थगित कर देना, स्वराज्य के सही अर्थ को न जानना है ।[१] भारतीय नारी अपने जागरण के लिये, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी प्रगति के लिए सदैव गाँधी की ऋणी रहेगी ।

पर्दा

तत्कालीन नारी समाज एक ऐसा चित्र प्रस्तुत करता है जिसकी प्राचीन भारत की नारी से कोई तुलना नहीं की जा सकती । वैदिक युग की विदुषी, सभा तथा सम्मेलनों में खुल कर भाग लेने वाली स्वतंत्रनारी इस समय तक परतंत्रता के युग में प्रवेश कर चुकी थी । उसका कार्यक्षेत्र घर की चहारदीवारी तक ही सीमित था, जिसके अन्दर भी वह स्वामिनी न होकर दासी के समान थी । पर्दे का पालन कठोरता से होता था । स्त्रियों को सार्वजनिक स्थानों में जाने की अनुमति नहीं थी । घर के अन्दर भी उनके लिये पृथक विभाग की व्यवस्था थी । लगभग सम्पूर्ण भारत ही इस कुप्रथा का शिकार था, जिसको हिन्दुओं ने मध्ययुग में मुसलमानों से ग्रहण किया था । इस समय तक व्यक्तियों के आचरण तथा धर्म से इसका गहरा सम्बन्ध हो गया था । न केवल मुसलमान ही, वरन् हिन्दू भी अपनी बालिकाओं को अल्पायु से ही बाहर निकालना अपमानजनक समझते थे ।

एक समाज सुधारक के लिए यह स्थिति असहनीय है । महात्मा गाँधी ने देश से पर्दा प्रथा को दूर करने का अथक प्रयास किया । उनके मत में पर्दे की प्रथा को धर्म तथा परम्परा का आवरण देकर मान्यता प्रदान नहीं की जा सकती । पर्दा प्रथा आधुनिक युग की देन है, जिसका प्रवेश भारत में हिन्दू राज्य के पतन के समय से हुआ था ।" गौरवशाली दमयन्ती तथा निष्कलंक सीता के युग में पर्दे का अभाव था । गार्गी ने वादविवाद में भाग पर्दे के पीछे बैठकर नहीं लिया था ।"[२]

---

1. Young India - 28 - 6 - 1928.
2. Young India - 24 - 3 - 1927.

बंगाल, बिहार तथा यूनाइटेड प्राविन्स इस प्रथा से सबसे अधिक पीड़ित भाग थे। अपने यात्रा काल में गांधी ने इन स्थानों का भ्रमण किया था तथा अन्य समस्याओं के साथ-साथ पर्दाप्रथा की निरर्थकता पर भी विचार व्यक्त किए थे। दरभंगा में एक स्थान पर भाषण देते हुए जब उन्हें पर्दे के पीछे बैठी हुई महिला श्रोताओं के बारे में पता चला तो उनके दुख की सीमा न रही। उन्हीं के शब्दों में "इससे मुझे अत्यधिक पीड़ा तथा ग्लानि की अनुभूति हुई। मैंने पुरुषों के द्वारा भारतीय महिलाओं पर किये हुए अन्याय के बारे में सोचा, जो इस जंगली प्रथा के रूप में लादे गए थे। इसका महत्व जबकि यह प्रथम प्रयुक्त हुआ था, चाहे कुछ भी रहा हो, परन्तु आज पूर्णरूप से निरर्थक है तथा देश को भारी हानि पहुँचा रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि लगभग एक शताब्दी से प्राप्त की जा रही शिक्षा हमारे ऊपर अत्यधिक न्यून प्रभाव डाल सकी है, क्योंकि मैं देख रहा हूँ कि पर्दा शिक्षित परिवारों में भी बना हुआ है, इस कारण नहीं कि शिक्षित व्यक्ति भी इसमें विश्वास रखते हैं, बल्कि इस कारण क्योंकि वह पुरुषत्व के साथ इस पाशविक प्रथा का विरोध करने तथा इसे जड़ से उखाड़ने में असमर्थ हैं।"[1]

महात्मा गांधी के लिए स्त्री की पवित्रता कोई ऊपर से थोपी गई वस्तु नहीं है, और न ही उसकी रक्षा पर्दे की दीवार खड़ी करके की जा सकती है। यह एक आन्तरिक क्रिया है, जिसका विकास अन्त:करण की शुद्धता पर निर्भर है। महात्मागांधी सीता को आदर्श मानते हैं जिसका रावण जैसा प्रबल शासक भी कुछ न बिगाड़ सका। राम के साथ सीता सदैव दिखाई देती हैं। उतनी ही स्वतंत्र जितने स्वयं राम। महात्मा गांधी के शब्दों में " पर्दा आज भी दक्षिण भारत, गुजरात तथा पंजाब में अप्रचलित है, किसानों के मध्य भी इसका अभाव है। परन्तु इन स्थानों में तथा किसानों के मध्य इस स्वतंत्रता के कारण किसी भी प्रकार के अप्रिय परिणाम दृष्टिगोचर नहीं होते। इसी प्रकार यह भी नहीं कहा जा सकता है कि संसार के अन्य भागों में जहाँ पर्दा का अभाव है, स्त्री तथा पुरुष कम नैतिक हैं।"[2] गांधी के मत में स्त्रियों को पर्दे में रखना उनकी नहीं वरन् पुरुष की

---

1. Young India - 3 - 2 - 1927.

2. Young India - 24 - 3 - 1927.

दुर्बलता, संकीर्णता तथा असहाय स्थिति का सूचक है ।[१]

इसी महात्मा गांधी की प्रेरणा कहा जाए या बिहार निवासियों का मानसिक जागरण कि पर्दा के विरुद्ध बिहार में एक आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ । एक मुख्युक्त अपील बिहार निवासियों की ओर से, जिनमें नारियों ने भारी संख्या में हस्ताक्षर किए थे, प्रकाशित की गई । प्रसन्नता की बात तो यह है कि यह महिलाएं अंग्रेजी पढ़ी-लिखी आधुनिक युवतियां नहीं थीं, वरन् कट्टर हिन्दू थीं । आन्दोलन का प्रारम्भ भी अपने में एक कथा है । एक खादी कर्मचारी श्री रामानन्दन मिश्रा अपनी पत्नी को पर्दे से बाहर कर बन्धन मुक्त करना चाहते थे । परन्तु उनके परिवार के अन्य सदस्य इस परिवर्तन के पक्ष में नहीं थे अत: श्री मिश्रा ने आश्रम की दो बालिकाओं को अपनी पत्नी को साथ लेकर आश्रम ले जाने के लिए नियुक्त किया । ये बालिकाएं थीं मगनलाल गांधी की पुत्री राधा बैन, तथा श्री दलबहादुर गिरी की पुत्री दुर्गादेवी । इन बालिकाओं को श्रीमती मिश्रा के पारिवारिक विरोधों के कारण आश्रम तक ले जाने के लिए अनेक कठिनाइयां उठानी पड़ीं । इसी समय श्री मगनलाल गांधी अपनी पुत्री को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से आए परन्तु अभाग्यवश उनकी मृत्यु हो गई । इस आकस्मिक घटना ने बिहार-निवासियों में नवीन उत्साह का संचार किया और वे पर्दा प्रथा को जड़ से उखाड़ने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हो गये । राधाबैन ने आश्रम का कार्यभार अपने कंधों पर ले लिया, जिसके कारण इस उत्साह में और भी अधिक वृद्धि हुई । इस आन्दोलन के नेता थे बिहार के सुप्रसिद्ध आन्दोलनकारी नेता बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद जिनके विषय में गांधी जी लिखते हैं -- "मुझे ऐसे किसी भी आन्दोलन का स्मरण नहीं है, जिसका नेतृत्व उन्होंने किया हो और वह असफल रहा हो ।"[२] आन्दोलनकारियों ने आठ जुलाई कार्य प्रारम्भ की तिथि निर्धारित की । बिहार में आठ जुलाई को पर्दे के विरुद्ध प्रदर्शन किया गया जिसमें, महिलाओं ने भी बड़ी संख्या में भाग लिया । सम्मेलन में सर्वसम्मति से आठ तारीख से बिहार राज्य में पर्दा समाप्त करने किया जाना है ~~का फैसला किया~~ । और उसी तिथि से बिहार राज्य में पर्दा

---

1. Young India - 3 - 2 - 1927.

समाप्त कर दिया गया ।[1] सम्मेलन में अन्य स्थानों की महिलाओं से पर्दे का त्याग करने की भी अपील की गई । इसके साथ ही साथ सम्मेलन में एक प्रान्तीय कमेटी की रचना भी की गई । जिसका उद्देश्य पर्दे के विरुद्ध प्रचार करना तथा बिहार में नारी शिक्षा की प्रगति की व्यवस्था करना था । एक अन्य विज्ञप्ति द्वारा प्रत्येक नगर व गांव में महिला समिति के निर्माण का सुझाव भी रखा गया । अन्तिम विज्ञप्ति द्वारा विभिन्न स्थानों पर महिला आश्रम खोलने का विचार रखा गया जहाँ महिलाओं को कुछ समय तक रखकर प्रशिक्षित किया जा सके ।

महात्मा गांधी ने इस आन्दोलन की अपूर्व सराहना की । उनके शब्दों में --" यदि आन्दोलन भली प्रकार संगठित होगा तथा अदम्य उत्साह से चालू रहेगा तो निश्चय ही पर्दा एक पुरानी बात हो जायेगी ।"[2]

बाल-विवाह--

बाल-विवाह हिन्दू समाज की एक प्रमुख प्रथा रही है । परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इसका सर्वत्र बोलबाला था । अनेक सुधारवादी आन्दोलनों तथा शैक्षिक प्रगति के होते हुए भी यह प्रथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक अपना एक विशेष स्थान रखती थी । सही अर्थों में आज भी भारत इससे अछूता नहीं है । १९३१ की सैन्सस रिपोर्ट के अनुसार १५ वर्ष की आयु तक विवाहित कन्याओं का प्रतिशत इस प्रकार है :-

---

1. The following is the translation of the resolution adopted at the meeting :-

We the men and women of Patna assembled, hereby declare that we have today abolished the pernicious practice of the purdah, which has done and is doing incalculable harm to the country, and particularly to women and we appeal to the other women of the province, who are still wavering to banish this system as early as they can and these by advance their education and health - Quoted from Women and Social Injustice By Gandhi, p. 47.

आयु	विवाहित प्रतिशत
० से १	.८
१ से २	१.२
२ से ३	२.००
३ से ४	४.२
४ से ५	६.६
५ से १०	१६.३
१० से १५	३८.१

सेन्सस रिपोर्ट की यह संख्याएं तत्कालीन समाज में बाल-विवाह की प्रवृत्ति के प्रचलन पर प्रकाश डालने में समर्थ हैं । एक समाज सुधारक के रूप में गांधी जी नारी जाति के प्रति हुए इस अन्याय को सहन नहीं सके । उनके मतानुसार जनगणना द्वारा बाल विवाह सम्बन्धी प्रकाशित आंकड़े हमें लज्जा से अपना सर झुका लेने के लिए विवश करते हैं । बाल-विवाह के दुष्परिणाम अनेक दृष्टि से समाज के लिए हानिकर हैं, गांधी ने इस पर विशद् रूप से प्रकाश डाला है । सर्वप्रथम यह प्रथा बालिका के शारीरिक तथा मानसिक विकास में बाधक है । बाल-माता के रूप में न तो उसकी शक्ति ही रह जाती है । अल्पायु में मातृत्व प्राप्त करने वाली बालिकाओं की मृत्यु शिशु के जन्म के समय ही अधिक होती है । महात्मा गांधी के अनुसार देश में २००,००० मृत्यु प्रतिवर्ष होती है । इसका अर्थ यह है कि प्रति-घंटा २० मृत्यु होती हैं और इस मृत्यु में सबसे अधिक संख्या उन-बालिकाओं की है जो अभी यौवन को प्राप्त भी नहीं कर सकी हैं ।[1] इसी प्रकार वाम मीणा भी लिखती हैं कि १,००० माताओं में १०० माताएं शिशु के जन्म के समय मरती हैं । जबकि स्वयं वे शैशव को नहीं छोड़ पाई होती हैं ।[2]

बाल-विवाह की यह कुरीति न केवल बाल-माता को ही प्रभावित करती है बल्कि शिशु को भी । भारत में प्रति १,००० में से १८१ बच्चे जन्मते ही मृत्यु को

---

1. Harijan - 16 - 11 - 1935.
2. Harijan - 16 - 11 - 1935.

प्राप्त हो जाते हैं। महात्मा गांधी के अनुसार अनेक स्थानों में यह संख्या ४००तक चली गई है।[1] मृत्यु से बचे बालक इतने दुर्बल व रुग्ण होते हैं कि वे जाति के ऊपर एक कलंक हैं तथा जाति की निरन्तरता को बनाये रखने में असमर्थ हैं।

दूसरे बाल-विवाह को धर्म का आवरण देना अथवा धर्म का अंग मान लेना निरी मूर्खता है। गांधी के लिए एक पाशविक प्रथा को धार्मिक कहना अधर्म है, धर्म नहीं।[2] यही नहीं गांधी ने धर्म के साथ-साथ इस प्रथा को स्वराज्य प्राप्ति के प्रश्न से सम्बन्धित कर उसे तत्कालीन राजनीति का अंग भी बना दिया ताकि इस विषय में शीघ्र कदम उठाए जा सकें। उन्होंने कहा - " बाल-विवाह की प्रथा नैतिक और शारीरिक दोनों दृष्टियों से दोष युक्त है क्योंकि यह हमें नैतिकता से दूर करती है तथा शारीरिक पतन का कारण भी बनती है। इस प्रकार की प्रथा को बनाये रखने से हम ईश्वर से दूर जाते हैं, साथ ही स्वराज्य से भी। वह व्यक्ति, जिसे बालिका की अल्पायु का कोई ध्यान नहीं है, ईश्वर का कुछ भी नहीं है, और इस प्रकार अविकसित व्यक्ति स्वतंत्रता के संग्राम को लड़ने के योग्य नहीं है। यदि उसे प्राप्त भी कर लेता है तो उसे अक्षुण्ण रखने के योग्य नहीं है। स्वराज्य के लिए लड़ने में केवल राजनीतिक जागरण ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि पूर्ण जागरण -सामाजिक, शैक्षिक, नैतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक की आवश्यकता है।"[3]

न केवल यह प्रथा बालिका के शारीरिक तथा मानसिक विकास में बाधक है, जाति की निरन्तरता के लिए संकटकारक है, अधार्मिक है, तथा स्वराज्य प्राप्ति के मार्ग में एक बड़ी बाधा है, अपितु गांधी के लिए यह वैवाहिक आदर्शों के भी विपरीत है। हिन्दू धर्म में विवाह एक अटूट बन्धन है, एक ऐसा बंधन जो जीवन पर्यन्त रहता है। अतः यह न केवल शारीरिक मिलन है अपितु उससे भी अधिक

---

1. Ibid.
2. Young India - 26 - 8 - 1926.
3. Ibid.

आत्मा का बंधन है । ऐसी परिस्थिति में यह आवश्यक है कि इस सम्बन्ध में बंधने वाले स्त्री तथा पुरुष इसके पवित्र महत्व को समझने में समर्थ हों, अन्यथा इस सम्बन्ध का उनके लिये कोई महत्व नहीं होगा । और यह तभी संभव है जबकि विवाह सूत्र में बंधने वाले बालक-बालिका उचित आयु प्राप्त कर चुके हों । अल्पायु बालक तथा बालिका इस महत्व को समझने में असमर्थ हैं । स्वयं गांधी के शब्दों में " यदि विवाह जैसा कि होना चाहिए, एक पवित्र बंधन है, एक नये जीवन में प्रवेश है, बालिकाएं जो विवाहित की जाती हैं पूर्ण रूप से विकसित होनी चाहिए । जीवन साथी के चुनाव में उनका भी कुछ हाथ होना चाहिए तथा वह अपने कृत्यों के परिणामों को समझने योग्य होनी चाहिए । यह ईश्वर तथा मानव दोनों के प्रति एक गुनाह है कि बच्चों के सम्बन्ध को "विवाह" के नाम से पुकारा जाए और उसके बाद बालिका के ऊपर वैधव्य लादा जाए, जिसका पति कहलाने वाला पुरुष मृत हो गया है ।"[१] इसके अतिरिक्त गांधी के लिए बाल-पत्नी, "पत्नी" की स्थिति व महत्व को समझने में असमर्थ है । खेलने योग्य आयु में उस पर पारिवारिक, बंधन लगाना तथा उससे गृहस्थी के कर्तव्यों को पूर्ण करने की अपेक्षा करना एक भूल है ।[२]

महात्मागांधी के मत में बालिका की विवाह योग्य उचित आयु कम से कम १८ वर्ष होनी चाहिए ।[३] इस विषय में कानून द्वारा मान्यता दी गई है, परन्तु गांधी के लिए कानूनों द्वारा इसे नहीं रोका जा सकता है । उनके मत में इसके विरुद्ध एक जागृत जनमत का निर्माण होना चाहिए । जब तक व्यक्ति स्वयं इस विषय में सुधार को अनुभव नहीं करेंगे , कानून द्वारा उन्हें बाध्य नहीं किया जा सकेगा ।

दूसरे गांधी के लिए यह कार्य पुरुषों से अधिक स्त्रियों का है । यह कर्तव्य उन माताओं का है जो बालिका का विवाह संपादित करती हैं । साथ ही शिक्षित महिलाएं भी ग्रामों में जाकर अशिक्षित जनसमूह को प्रभावित कर सकती[४] हैं ।

---

1. Young India - 19 - 8 - 1926.
2. Young India - 9 - 9 - 1926.

इस दिशा में "अखिल भारतीय महिला सम्मेलन" के प्रयास की गाँधी ने सराहना की।

विधवा तथा पुनर्विवाह--

बाल-विवाह की कुरीति का परिणाम बाल-विधवा के रूप में दृष्टि-गोचर होता है। बालिकायें उस आयु में वैधव्य को प्राप्त करती हैं जबकि उन्हें यह भी नहीं मालूम होता है कि विवाह क्या है ? बाल-विवाह की बढ़ती प्रवृत्ति बाल विधवाओं की संख्या बढ़ाने के लिए उत्तरदायी है। १९२१ के सैंसस रिपोर्ट के आँकड़े विधवाओं की संख्या में वृद्धि को चित्रित करते हैं, जो इस प्रकार है :-

० से ५ वर्ष की आयु की	विधवाओं की संख्या	-	११,८९२
५ से १० वर्ष	,,	,,	८५,०३७
१० से १५ वर्ष	,,	,,	२३२,१४७
			३२९,०[illegible]

महात्मागाँधी जी बाल-विवाह को हिन्दू जाति का अत्याचार मानते थे, बाल-विधवा तो उनके लिए समाज के ऊपर एक कलंक है। एक ऐसा कलंक जो समाज के साथ-साथ हिन्दू धर्म और जाति को भी समाप्त कर रहा है। गाँधी के लिए छोटी बालिकाओं के ऊपर वैधव्य लादना एक महान् अपराध है जिसके लिए हिन्दू प्रतिदिन अपनी प्रिय सन्तानों की बलि दे रहे हैं।[1] महात्मा गाँधी लिखते हैं -

" यदि हमारा अन्तःकरण पूर्ण जागृत है तो १५ वर्ष के नीचे विवाह संपादित नहीं होना चाहिए। हमको यह घोषणा कर देनी चाहिए कि यह ३ लाख बालिकायें धार्मिक दृष्टि से कभी भी विवाहित नहीं थीं।"[2]

गाँधी के लिए तो इन बालिकाओं को विधवा पुकारना, "विधवा" शब्द के अर्थ का अनुचित प्रयोग करना है। हिन्दू धर्म में "विधवा" शब्द का अर्थ अत्यन्त

---

1. Gandhi, M.K., Hindu Dharma , p. 397.

2. Ibid, p. 397.

पुनीत है और सच्ची विधवा का महत्व भी महान् है । एक अल्पायु बालिका को, जिसके लिये विवाह अपरिचित शब्द है तथा पति का कुछ भी महत्व नहीं है, वैधव्य के लिए बाध्य करना निश्चय ही अपराध है ।[1] ऐच्छिक वैधव्य उस स्त्री के जीवन को उच्च, घर को पवित्र तथा धर्म के उत्थान में सहायक है, जिसने अपने साथी के विछोह को अनुभव किया है । परन्तु वैधव्य जो स्वेच्छा से स्वीकार न किया जाकर धर्म और प्रथाओं के भय से बाध्य होकर लादा जाता है, घर में गुप्त बुराइयों को प्रश्रय देता है तथा धर्म के पतन में सहायक है ।[2] शास्त्रों में इस बाध्य वैधव्य का विधान कहीं नहीं है । ऐच्छिक वैधव्य हिन्दू धर्म में वरदानस्वरूप है परन्तु बाध्य-वैधव्य शापतुल्य है ।[3]

गाँधी जी इस तर्क के पक्ष में नहीं थे कि विधवा द्वारा ब्रह्मचर्य का पालन मोक्ष में सहायक है । उनके मत में मोक्ष प्राप्ति के लिये ब्रह्मचर्य के अति-रिक्त अन्य अनेक बातों की भी आवश्यकता है । इसके अतिरिक्त ब्रह्मचर्य के पालन के लिये बाध्य करना कोई मूल्य नहीं रखता अपितु नैतिक पतन को आमंत्रित करना है ।[4]

गाँधी इन बाल-विधवाओं के पुनर्विवाह के समर्थक थे । चूँकि इन विध-वाओं का विवाह के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं, अतः इनका पुनर्विवाह उसी भाँति होना चाहिए जैसे वे अविवाहित कन्या हों । गाँधी के लिए बाल-विवाह एक पाप है और पुनर्विवाह उस पाप का प्रायश्चित्त स्वरूप है, बल्कि पाप से मुक्ति पाने का साधन है ।[5] इसके अतिरिक्त बड़ी आयु की विधवास्त्रियाँ भी विवाह की अधिकारिणी हैं । गाँधी के मत में यदि एक पचास वर्ष का व्यक्ति पुनर्विवाह कर सकता है तो उसी आयु की स्त्री को भी यह अधिकार होना चाहिए ।[6]

---

1. Young India - 15 - 9 - 1927.
2. Gandhi, M.K., Hindu Dharma, p. 397.
3. Gandhi M.K., To the Women, p. 132.
4. Gandhi, M.K., Conquest of Self, p. 139.
5. Young India - 14 - 10 - 1926.
6. Ibid.

महात्मा गांधी के लिए इसका उपचार स्वयं हिन्दुओं के पास है । अभिभावकों को पुनर्विवाह अपना कर्त्तव्य समझ कर करना चाहिए । यह कार्य किसी संस्था का नहीं है बल्कि व्यक्तिगत सुधारकों का है जिनकी सम्बन्धी विधवा हो गई हैं । प्रथम तो उनको अपनी जाति में प्रचार करना चाहिए और सफलता प्राप्त होने पर वृहत् स्तर पर इसका प्रचार करना चाहिए । दूसरा उपचार विधवा-विवाह के सम्बन्ध में जागृत जनमत का निर्माण है ।

छात्रों के एक सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए गांधी ने उनसे इस विषय में सहायता माँगी । उन्होंने छात्रों से यह दृढ़ संकल्प लेने का अनुरोध किया कि वे भविष्य में बाल-विधवा-बालिका से ही विवाह करेंगे । और यदि उन्हें विधवा-बालिका नहीं मिलती तो उत्तम यही है कि वे अविवाहित ही रहें ।[1]

सती-प्रथा

सती तत्कालीन समाज की एक अन्य दूषित प्रथा थी । उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इसका कितना अधिक बोल-बाला था, इसका वर्णन किया जा चुका है । हजारों की संख्या में प्रतिवर्ष सती के रूप में नारी की बलि, मानव प्रेमी गांधी का ध्यान सहज ही आकर्षित कर सकी । उन्होंने इस अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाई । उनके अनुसार मृत पति के साथ चिता पर जलना शास्त्रों में बार सती शब्द का अनुचित अर्थ लगाना है । यह वास्तविक सती का विकृत स्वरूप है । सती का वास्तविक अर्थ जो प्राचीन विद्वानों द्वारा निर्धारित किया गया है -- उस स्त्री से है जिसने अपना त्याग और प्रेम पति में केन्द्रित कर रखा है, जो निःस्वार्थ भाव से सेवा में रत है, पति के जीवन-काल में भी तथा उसकी मृत्यु के उपरान्त भी, तथा अपने विचारों, शब्दों और कार्यों में पवित्र हो[2]। गांधी के लिए वर्तमान सती प्रथा मौलिकता का प्रतीक नहीं है, अपितु अत्यन्त बुद्धिहीनता की सूचक है क्योंकि गांधी हिन्दू धर्म की इस धारणा में विश्वास रखते थे कि आत्मा अमर है, उसका कभी नाश नहीं होता । अतः शरीर के साथ-साथ आत्मा

---

1. Young India - 15 - 9 - 1927.

भी समाप्त नहीं होती वरन् दूसरे शरीर में प्रवेश कर नवीन जन्म धारण करती है । यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक आत्मा पूर्ण रूप से सांसारिक बंधनों से मुक्त नहीं हो जाती । ऐसी स्थिति में मृत शरीर के साथ जलने में गांधी को कोई सार्थकता नहीं दिखाई पड़ती ।

इसके अतिरिक्त गांधी के लिए विवाह, मात्र शारीरिक बंधन नहीं है, अपितु आत्मा का अटूट बंधन है । मृत की चिता में जलने से उसे पुन: जीवित नहीं किया जा सकता, बल्कि यह क्रिया जीवित जगत से एक और शरीर को राख कर देती है । गांधी के लिए विवाह का अर्थ है "शारीरिक सम्बन्ध के माध्यम से आध्यात्मिक मिलन । मानव प्रेम, जो इससे उपजता है, दैवी तथा सार्वभौम प्रेम के प्रति अग्रसर होना है । इसी कारण अमर मीरा ने कहा था " ईश्वर ही मेरे पति हैं--दूसरा कोई नहीं ।"[१] इसका अर्थ यह है कि सच्ची" सती" नारी विवाह को मात्र पाशविक इच्छाओं की पूर्ति का साधन नहीं मानती, बल्कि स्वार्थरहित सेवा के माध्यम से पति में पूर्ण रूप से एकाकार हो जाती है । अत: ऐसी स्त्री अपने सतीत्व का परिचय मृत्यु के पश्चात् पति की चिता में जलकर नहीं, वरन् उस क्षण से, जिस क्षण "सप्तपदी" की क्रिया पूर्ण होती है अपने निश्छल प्रेम, त्याग, सेवा से प्रतिदिन देती है । गांधी के शब्दों में ऐसी स्त्री "सदैव अपने कार्यों" द्वारा पति के प्रत्येक आदर्श और गुणों को जीवित रखती है और इस प्रकार उसको अमरत्व प्रदान करती है । यह अनुभव करते हुए कि वह आत्मा, जिसके साथ उसने विवाह किया है, मृत नहीं हुई है, बल्कि अभी भी जीवित है, वह कभी पुनर्विवाह का विचार नहीं कर सकती ।"[२]

सती के सच्चे अर्थ और स्वरूप को स्पष्ट करने के माध्यम से गांधी ने वर्तमान सती प्रथा को निरर्थक घोषित किया । परन्तु इसके साथ ही साथ उन्होंने ने इसके विरुद्ध एक दूसरे तर्क का सहारा भी लिया । उन्होंने कहा कि यदि स्त्री

---

१. "मीरा के प्रभु गिरधर नागर, दूसरो न कोई" —

Young India - 21 - 5 - 1931.

का पति के प्रति स्वामीभक्त रहना कर्तव्य है, तो पति का भी यह कर्तव्य है कि वह पत्नी के प्रति भी उन्हीं कर्तव्यों का पालन करे जिनकी अपेक्षा वह पत्नी से रखता है। दोनों के परस्पर विश्वास से पारिवारिक जीवन सुखी रहता है। यदि पत्नी अपने पवित्र प्रेम का परिचय पति की चिता में जलकर देती है, तो पति को भी उसी प्रकार अपनी परीक्षा देनी चाहिए। परन्तु यह कभी नहीं सुना गया कि कोई पुरुष अपनी मृत पत्नी की चिता में जला हो। अत: गांधी के लिए इस प्रकार की प्रथा का स्रोत अंधविश्वास, अज्ञानता तथा पुरुष के झूठे अभिमान में है।"[1]

वेश्यावृत्ति --

नारी जाति से सम्बन्धित समस्याओं में वेश्यावृत्ति एक जटिल समस्या है, जिसका प्रचलन इतिहास में लगभग सभी युगों में रहा है। मध्य युग में, विशेषकर मुस्लिम राज्य में इसका प्रचलन अत्यधिक था। उन्नीसवीं शती के समाज को विकृत करने में इसका प्रमुख हाथ था। देश के लगभग सभी प्रदेशों में यह वृत्ति फैली थी, परन्तु कुछ प्रदेश विशेषरूप से इसके शिकार थे। बंगाल वेश्याओं का केन्द्र सा बन गया था। बंगाल-निवासी एक नागरिक के शब्दों में " पश्चिम बंगाल के अनेक जिलों में तथा उत्तरपूर्व बंगाल के जूट इलाकों में यह वृत्ति ग्रामों के बाजारों तक का अनिवार्य अंग बन गई है।........ जूट की फसल के समय अनेक बाजारों में वेश्याओं के केन्द्र स्थापित हो जाते हैं। विक्रय की सामग्री के साथ-साथ ये वेश्याएं भी नावों में भर कर आती हैं। पश्चिमी बंगाल के अनेक भागों में लगभग प्रत्येक मेले इन वेश्याओं से परिपूर्ण होते हैं। ये वेश्याएं मेलों में अस्थायी तम्बुओं को बना कर रहती हैं। कुछ जिलों में यह वेश्याएं जमींदारों के घरों के पास अथवा उनकी कचहरी के निकट रहती हैं क्योंकि अधिकतर जमींदार तथा उनके अधिकारियों द्वारा ही उपभोग की जाती हैं।........ कलकत्ता की अधिकतर नृत्यशालाएं इन्हीं

---

1. Ibid.

महिलाओं द्वारा नियंत्रित की जाती हैं तथा इन्हीं स्थानों पर महत्वपूर्ण सार्व-जनिक सभाएं होती हैं।.........।"[१]

स्वयं महात्मा गांधी को बैरिसल में २०,००० की जनसंख्या में ३५० वेश्याओं का पता चला था। महात्मा गांधी के शब्दों में यह संख्या "बैरिसल के व्यक्तियों की शर्मनाक स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है।"[२] यदि २०,००० की जनसंख्या में ३५० ऐसी नारियां हैं तो इस हिसाब से सम्पूर्ण भारत में इनकी संख्या ५,२५०,००० के लगभग होगी। नारी की इस स्थिति के लिए वह पुरुष वर्ग को ही उत्तरदायी ठहराते हैं। उनके मत में उन सभी बुराइयों, जिनके लिए पुरुषवर्ग उत्तरदायी है, कोई भी इतनी पतित, इतनी घिनौनी तथा इतनी पाशविक नहीं हैं जितनी कि उसका नारी मानवता का अनुचित प्रयोग करना है। स्वराज्य का अर्थ है भारत के प्रत्येक निवासी के साथ भाई और बहन के समान व्यवहार करने की योग्यता।[३] महात्मा गांधी के अनुसार भारत के लिये यह अत्यधिक दुःख की बात है कि पुरुष की इच्छाओं की पूर्ति के लिए हजारों महिलायें अपनी पवित्रता बेचनी पड़ रही है। परन्तु इससे भी अधिक दुःख की बात तो यह है कि इन स्थानों में जाने वाले व्यक्ति स्वयं विवाहित व्यक्ति हैं। गांधी के लिए ऐसा पुरुष दोहरा अपराध करता है -- एक तो अपनी पत्नी के विरुद्ध, जिसके प्रति विश्वासी रहने की उसने शपथ खाई थी, तथा दूसरा अपराध उन बहनों के प्रति, जिनकी रक्षा के लिए वे उतने ही जिम्मेदार हैं, जितना कि अपनी स्वयं की बहनों के लिए।[४]

महात्मा गांधी ने इस कुप्रथा के उपचार स्वरूप अनेक उपाय बतलाये हैं। पुरुषों को सर्वप्रथम अपनी इन्द्रियों को वश में करना होगा। उन्हें देश को पतन की ओर जाने से बचाने के लिए अनुशासित जीवन व्यतीत करना होगा। गीता को उद्धरित करते हुए गांधी कहते हैं कि -- " यद्यपि व्यक्ति व्रतों के द्वारा अपने

---

1. Young India - 9 - 7 - 1925 - a letter written to Gandhiji and published in Y.I.
2. Young India - 15 - 9 - 1921.
3. Ibid.

शरीर को नियंत्रित रखता है, परन्तु इच्छाएं बनी रहती हैं। इच्छा तभी जाती है जबकि व्यक्ति ईश्वर को सन्मुख देख ले। ईश्वर को सन्मुख देखने से तात्पर्य यह अनुभव करना है कि वह हमारे हृदय में है, उसी प्रकार जिस प्रकार शिशु बिना किसी प्रदर्शन के माता के प्रेम को अनुभव कर लेता है। क्या कोई शिशु अपनी मां के प्रेम के विषय में तर्क करता है ? क्या वह उसको दूसरों के सामने सिद्ध कर सकता है ? फिर भी वह गर्वित होकर यह घोषित करता है कि " वह है" । यही बात ईश्वर के लिए भी कही जा सकती है। उसका भी अनुभव किया जा सकता है।"[1]
फिर वेश्याओं को अपने इस घृणित व्यवसाय का परित्याग करने पर उन्हें स्वावलंबी बनाने की दृष्टि से किसी दूसरे सम्मानित व्यवसाय में लगाना भी आवश्यक है। इस सम्बन्ध में गांधी का विचार है कि उन्हें चर्खा से अधिक श्रेष्ठ कोई भी कार्य नहीं दिया जा सकता। यह एक ऐसा कार्य है जिसे सभी सरलता पूर्वक कर सकने की क्षमता रखते हैं। साथ ही चर्खा ऐसी स्त्रियों को पुनः शादी तथा स्वच्छ जीवन की ओर उन्मुख करने की प्रेरणा भी प्रदान करेगा।[2]

देवदासी—

वेश्याओं का ही एक दूसरा स्वरूप देवदासी के रूप में समाज को विकृत कर रहा था। हिन्दू-मन्दिरों में धर्म के नाम से रखी जाने वाली यह "ईश्वर की सेविकाएं (देवदासी) समाज की दूषित प्रवृत्ति (वेश्यावृत्ति) को हिन्दू पवित्र मन्दिरों अर्थात धर्म के क्षेत्र में भी लाने में सहायक थीं। देवदासी के नाम से हिन्दू मन्दिर तथा पुजारी वर्ग आदि भी इन सामाजिक गंदगियों का केन्द्र बन गया था। यह देवदासियां लगभग सम्पूर्ण भारत में फैली थीं। इसीसे स्पष्ट किया जा चुका है कि विभिन्न भागों में इनके विभिन्न नाम थे। स्वयं आंध्रनिवासी एक शिक्षित युवक के शब्दों में —" आंध्र देश इस प्रथा का केन्द्र सा बना हुआ था। हिन्दू समाज

---

1. Young India - 9 - 7 - 1925.

2. Gandhi, M.K., Conquest of Self, p. 143.

में वहाँ इन पेशेवर नाचनेवालियों को प्रश्रय मिलता था तथा विवाहोत्सव तथा प्रमुख त्योहारों के समय यह नर्तकियाँ ऐसे नृत्य प्रस्तुत करती थीं जो सभ्य नहीं समझे जा सकते ।"[1] लेखक के लिए देवदासी तथा हरिजन दोनों ही वर्ग समाज के दलित वर्ग हैं ।

महात्मा गांधी इस प्रथा के विरोधी थे -- क्योंकि अल्पायु में बालिकाओं को अनैतिक कार्यों को करने के लिए बाध्य किया जाता था । दूसरे उनके मत में इनको "देवदासी" के नाम से पुकारने पर "हम न केवल धर्म के नाम पर ईश्वर का अपमान करते हैं, बल्कि दोहरे पाप के भागी बनते हैं -- एक ओर तो अपनी इन बहनों को अपनी इच्छा पूर्ति का साधन बना कर, और फिर उसी मुख से ईश्वर का नाम भी पुकारते हैं ।"[2]

गांधी के लिए यह नारियाँ भी ऐसे उतनी ही कोमल हैं, पवित्रता के योग्य हैं तथा नारी सुलभ गुणों से पूर्ण हैं जितनी अन्य नारियाँ । अत: गांधी का तर्क है कि यदि हम अपनी स्वयं की बहनों को इस अनैतिक कार्य की अनुमति नहीं देते, तो फिर इन बहनों का क्यों इस प्रकार अनुचित प्रयोग करते हैं ।[3]

देवदासी प्रथा समाज में एक कलंक है । इस प्रथा को अनैतिक मानते हुए भी सदियों से व्यक्ति इसे प्रश्रय देते आ रहे हैं । इसका कारण गांधी के मत में और कुछ नहीं वरन् जनता का आलस्यपन और शुभ कार्य को करने की अनिच्छा है । इस विषय में डा० मुथुलक्ष्मी के प्रयास की तथा उनके "देवदासी बिल" के लिए गांधी ने उनकी अत्यधिक प्रशंसा की । इसके अतिरिक्त अन्य सुधारकों से भी गांधी ने क्रमबद्ध रूप से योजना बनाने की अपील की । उन्होंने कहा कि इस दिशा में सुधार कार्य देवदासियों के आश्रयदाता तथा स्वयं देवदासियों के मध्य से आरंभ होना चाहिए

---

1. Harijan - 14 - 9 - 1934 - a letter written to Gandhiji.
2. Gandhi, M.K. - Conquest of the Self, p. 149.
3. Ibid.

यदि देवदासियाँ स्वयं यह कार्य करने को तत्पर न हों तो यह प्रथा एक दिन भी नहीं टिक सकती । गाँधी के मत में इस दूषित प्रथा का कारण आर्थिक है । भूखा क्षुधा पीड़ित के लिए कोई भी साधन अनैतिक नहीं है । यदि इन देव-दासियों को जीविका के उचित साधन प्रदान किए जाएं तो संभवतः इसका निदान हो सकता है ।[२] इसके अतिरिक्त समाज में भी इस दिशा में सुधार कार्य किया जा सकता है । त्यौहारों और विवाहों में इनका प्रवेश निषिद्ध किया जा सकता है तथा जनमत के संगठन द्वारा इसके विरुद्ध प्रचार भी किया जा सकता है ।

परिवार-नियोजन -

तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति के संदर्भ में महात्मागाँधी ने परि-वार-नियोजन को आवश्यक माना । राष्ट्रीय विकास के इस चरण में जन्मदर पर नियंत्रण रखना आवश्यक है । परन्तु महात्मा गाँधी के मत में जन्मदर- पर नियंत्रण रखने का सबसे उत्तम उपाय है — स्वनियंत्रण । कृत्रिम उपायों द्वारा जन्म दर पर नियंत्रण रखना महात्मा गाँधी के नैतिकता के विचारों के परे है । उनके मत में यह उपाय मनुष्य के समक्ष अनुचित आदर्श रखते हैं अर्थात उनकी शक्ति तथा स्वनियंत्रण के मार्ग से हटाकर दुर्बलता और भोग में लिप्त रहने की ओर प्रेरित करते हैं । महात्मा गाँधी के मत में मनुष्य की शक्ति तथा नैतिकता को बनाए रखने के लिए, जीवन तथा भौतिक सुखों के प्रति साधु प्रवृत्ति को अपनाने की आव-श्यकता भारत को प्रत्येक काल में है ।[२] अतः ब्रह्मचर्य का पालन ही मानवोचित है ।

नारी का कार्य क्षेत्र और गाँधी

महात्मा गाँधी नारी को समानता का स्थान देते हैं । निश्चय ही यह समानता आधुनिक युग में गाँधीवाद की सबसे महान् देन है, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में गाँधी द्वारा प्रतिपादित योजनाओं में नारी सदैव पुरुष की समभागी रही है

उनके अनुसार स्त्री और पुरुष मौलिक दृष्टि से एक हैं, दोनों में एक ही प्रकार की आत्मा का वास है, दोनों ही एक सा जीवन व्यतीत करते हैं, दोनों की इच्छाएं व भावनाएं समान हैं । दोनों एक दूसरे के पूरक हैं तथा एक की सक्रियता के बिना दूसरा नहीं रह सकता ।[1]

यद्यपि मौलिक दृष्टि से स्त्री और पुरुष एक हैं, परन्तु यह भी सत्य है कि उनके स्वरूप में महान् अन्तर है । गांधी जी इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं थे । अत: जहाँ तक कार्यक्षेत्र का सम्बन्ध है, गांधी के लिये इस प्रकृति प्रदत्त स्वरूप में भिन्नता के कारण स्त्री का कार्यक्षेत्र पुरुष से भिन्न अवश्य है । उदाहरण-स्वरूप मातृत्व, जिसको नारियों का अधिकतम भाग प्राप्त करता है, के लिये कुछ ऐसे गुणों का होना आवश्यक है, जिसकी पुरुष को कोई आवश्यकता नहीं है । नारी निष्क्रिय है, पुरुष सक्रिय । नारी घर की स्वामिनी है, पुरुष रोटी कमाने वाला । शिशुओं की उचित परिचर्या द्वारा जाति को सुरक्षित रखने का कार्य उसका अपना विशेषाधिकार है ।[2] स्वभावत: दोनों भिन्न हैं, अत: गांधी के मत में समानता का तात्पर्य यह नहीं कि नारी प्रत्येक क्षेत्र में ~~प्रमुख रूप से~~ पुरुष का अनुसरण ही करे, वरन् जो कुछ पुरुष में उत्तम है केवल उसी का अनुकरण करे[3]। नारिजाति की इस प्राकृतिक भिन्नता को ध्यान में रखते हुए गांधी ने उनके स्वभाव के अनुकूल उनका कार्यक्षेत्र भी निर्धारित किया है । परन्तु इस निर्धारण में कहीं भी संकीर्ण विचारों को प्रश्रय नहीं मिला है और न ही उन्हें घर की चहारदीवारी के अन्दर ही बंद किया गया है । गांधीवादी योजनाओं के अन्तर्गत लगभग प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री अनेक महत्त्वपूर्ण तथा उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों की भागी समझी गई है ।

---

1. Radhakrishnan, S. - Mahatma Gandhi, 100 years (Ed.) - (Leader and Teacher of Women By Smt. Sucheta Kripalani), p. 220.
2. Ibid.
3. Gandhi, M.K. - Conquest of Self, p. 121.

नारी और चर्खा–

चर्खा एक कुटीर उद्योग के रूप में सदैव से भारत की आर्थिक व्यवस्था का एक अभिन्न अंग रहा है । एक समय ऐसा था जबकि इन्हीं कुटीर उद्योगों के माध्यम से भारत द्वारा उत्पादित हाथ से बनी वस्तुएं तथा कपड़े विदेशों में प्रसिद्ध थे । भारत का मलमल सम्पूर्ण संसार में अपनी साख रखता था । चर्खा उस समय प्रत्येक परिवार का प्रमुख भाग था तथा खाली समय के सदुपयोग का भी साधन था । परन्तु अंग्रेजी राज्यकाल में मिलों द्वारा उत्पादित कपड़ों ने भारत के इस उद्योग को गहरा आघात पहुँचाया । मिलों द्वारा उत्पादित कपड़ों की तुलना में हाथ से बने कपड़ों का महत्व घट गया । फलस्वरूप बुनकरों की संख्या में लोग बेकार हो गये ।

महात्मा गाँधी ने देश की बागडोर १९२० में संभाली । देश को स्वतंत्र कराने के लिए उन्होंने अनेक योजनाएं रखीं । चर्खा उनमें से सर्वप्रमुख है । वास्तव में चर्खे की पुनः खोज गांधीवाद की सबसे प्रमुख व महत्वपूर्ण देन है । उन्होंने देश की गरीबी को दूर करने तथा बेकारी की समस्या के हल के रूप में , तथा अन्ततः ब्रिटिश माल के बहिष्कार के रूप में चर्खा व खादी को पुनः जीवित किया । १९२१ में कांग्रेस के विजयवाड़ा अधिवेशन में प्रथमबार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने २० लाख चर्खे देशभर में कुटीर उद्योग को पुनः जनप्रिय बनाने के उद्देश्य से प्रसारित किये । उन स्थानों में जहाँ इसके उपयोग की अधिक संभावना थी, वहाँ इसके प्रचार के लिये विभिन्न योजनाएं बनाई गई । बिहार के दरभंगा जिले में मधुबनी ऐसा ही स्थान था ।

महात्मा गाँधी का नारी की कार्यक्षमता में अटूट विश्वास था । चर्खा व खादी उत्पादन का कार्य वह विशेष रूप से महिलाओं का मानते थे । उनके लिए चर्खा महिलाओं का "अहिंसात्मक शस्त्र" है, जिसके माध्यम से वह देश के लिए अमूल्य सेवा कर सकती हैं देश की निर्धनता को दूर करने में चर्खा महत्वपूर्ण अस्त्र है और इसके दैनिक प्रयोग से नारियाँ देश की आर्थिक स्थिति को उच्च बनाने में सहयोग दे सकती हैं । महात्मा गाँधी के शब्दों में" भारत की उन नारियों के लिए, जिनका अधिकांश भाग १ आना भी प्रतिदिन नहीं पाता है, मैं देश में अपना चर्खा तथा भिक्षापात्र लेकर निकला हूँ ।"[1] चर्खे में गांधी का अटल विश्वास था । वह इसे

निर्धनों व महिलाओं का मित्र मानते थे, तथा देश की आर्थिक स्थिति को उच्च बनाने का एक साधन । बिहार में एक भाषण के दौरान उन्होंने विभिन्न देशों की सामान्य आय की तुलना भारत से करते हुए कहा कि "यहाँ अमेरिका की सामान्य आय १४ रुपये प्रतिदिन है, इंगलैंड, फ्रान्स और जापान की क्रमश: ७, ६, और ५, भारत की सामान्य आय है १।। आना प्रतिदिन । और यह १।। आना भी सामान्य आय है, अधिकांश निर्धनों की आय तो इससे भी कम है.... । बहुत सोच विचार के बाद तथा निकट वर्षों में करोड़ों व्यक्तियों के सम्पर्क में आने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि चर्खा ही इस अतिरिक्त आय बढ़ाने का एकमात्र साधन है ।[1] चर्खा गांधी के लिए एक ऐसा साधन है जो गरीब अमीर, हिन्दू मुस्लिम तथा स्त्री और पुरुष सभी के लिए उपयोगी है । इस क्षेत्र में महिलाओं से वह अत्यधिक आशा रखते थे ।

गांधी के लिए चर्खा इससे भी अधिक बहुत कुछ है । यह ऐसी महिलाओं का अभिन्न साथी है जो जीवन में अन्य क्षेत्रों में कार्य करने के योग्य नहीं हैं । अथवा जो अशिक्षा के कारण दूसरा कोई कार्य नहीं कर सकती । विधवायें तथा वेश्यायें ऐसी ही महिलायें हैं । चर्खा विधवाओं के जीवन का एक अभिन्न अंग है । न केवल यह उनकी आय में सहायक है, अपितु इस पुनीत कार्य के माध्यम से वे पुन: उस सादगी और सरलजीवन की ओर लौटती हैं जो वैधव्य जीवन का आदर्श माना गया है । और अंत में इसके द्वारा देश की बहुत बड़ी सेवा भी करती हैं । इसी प्रकार गांधी ने वेश्याओं से भी याचना की कि वह अपने लज्जाजनक व्यवसाय को छोड़ कर चर्खे के माध्यम से एक सम्मानित जीविकोपार्जन करें ।[2]

परन्तु चर्खा महात्मा गांधी के लिए मात्र जीविकोपार्जन का साधन नहीं है, वरन् एक कर्तव्य है । चर्खा का महत्व इस बात में है कि यह प्रत्येक परिस्थिति

---

1. Young India - 10 - 2 - 1927.

2. Ibid.

में, प्रत्येक वर्ग की महिलाओं के लिए उपयोगी है । यह केवल उन्हीं के लिए नहीं है जिनके पास कार्य नहीं है, अपितु विभिन्न उद्योगों और कार्यों में लगे हुए लोगों के लिए भी इसकी उपयोगिता है । विद्यार्थियों भी इससे अछूता नहीं है । आफ्रना में रामनाथन् महिला विद्यालय की छात्राओं को सम्बोधित करते हुए उन्होंने छात्राओं से प्रतिदिन अतिरिक्त समय में आधा घंटा चर्खा कातने की अपील की थी ।[1]

इन सबके अतिरिक्त चर्खा व खादी गांधी के लिये स्वयं में एक "विचार" है । चर्खा मात्र एक औज़ार नहीं है तथा खादी वस्त्र का एक प्रकार मात्र नहीं है, बल्कि एक विचारधारा की प्रतीक है, जीवन का एक मार्ग है, मस्तिष्क का एक दृष्टिकोण है तथा एक विश्वास है । यह भारत की मूल संस्कृति को पुन: जीवित करने का एक अस्त्र है, साधन है । कहने का तात्पर्य यह है कि चर्खा व खादी रोज़ी दिलाने वाली योजनाएं नहीं हैं, यह उसका एक पहलू है, दूसरा पक्ष इससे भी महान् है -- अर्थात् चर्खा नैतिक जीवन व्यतीत करने तथा सामाजिक मूल्यों को स्थापित करने में सहायक है । इसका उद्देश्य महान् है । गांधी के शब्दों में "चर्खे का संदेश उसकी परिधि से भी अधिक वृहत् है । इसका संदेश है सादगी, जनसेवा, ऐसा जीविकोपार्जन जो दूसरों के लिए कष्टदायी न हो, निर्धन तथा धनी पूंजीपति तथा मज-दूर, राजकुमारों तथा कृषकों के मध्य अटूट सम्बन्ध निर्मित करना ।"[2]

नारी और अहिंसा--

अहिंसा आधुनिक युग को गांधीवाद की एक महान् देन है । स्वयं महात्मा गांधी के चरित्र का सबसे महान् पहलू, सबसे शक्तिशाली गुण यही अहिंसा थी । युद्धरत संसार में अहिंसा का यह शस्त्र आज नागरिक अधिकारों की सुरक्षा तथा न्याय के लिए सबसे उत्तम साधन है । गांधी ने इस विचारधारा का खंडन किया कि "अहिंसा" उन निर्बलों का शस्त्र है जो शक्ति के बल पर जीवित रहने में असमर्थ हैं । इसके ठीक विपरीत गांधी ने यह सिद्ध कर दिया कि अहिंसा सबसे

---

1. Gandhi, M.K. - To the Women, p. 118.
2. Kasturba Memorial, p. 94.

अधिक बलवान शक्ति है । अहिंसा का व्यवहार में प्रयोग करना शक्ति व मानसिक दृढ़ता का प्रतीक है । अहिंसा में ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा न केवल व्यक्ति के स्वभाव को बदला जा सकता है, बल्कि अहिंसा के माध्यम से युद्धरत राष्ट्रों को बिना मानव रक्त की नदियाँ बहाए न्याय की ओर उन्मुख किया जा सकता है ।

अहिंसा केवल हिंसा न करने तक ही सीमित नहीं है । गांधी अहिंसा का व्यापक अर्थ लगाते हैं । उनके लिये अहिंसा के अन्तर्गत दूसरों को कष्ट न पहुँचाना, चोट पहुँचाने वाले के प्रति क्रोधित न होना, किसी के लिए बुरा न चाहना, तथा सद्भावना व मानव प्रेम भी सम्मिलित है । यह एक अत्यन्त कठिन मार्ग है । परन्तु गांधी ने इस मार्ग में चलने के योग्य महिलाओं को ही अधिक समझा है ।

अहिंसा का अर्थ स्पष्ट करते हुए वह लिखते हैं :- "नारी अहिंसा का अवतार है । अहिंसा का अर्थ है अपार प्रेम, जिसका भी अर्थ है कष्ट सहने की अद्भुत शक्ति, नारी, पुरुष की जननी, के अतिरिक्त किसने इस शक्ति को अधिकतम प्रयुक्त करके दिखाया है ?"[1] गांधी के लिए नारी स्वभाव से ही प्रेम व त्याग का प्रतीक है, और अहिंसा प्रेम और त्याग का पर्यायवाची है । प्रेम और त्याग में कष्ट अवश्यंभावी है, अतः नारी इसकी जीती जागती प्रतिमा है । गांधी इस शक्ति का प्रयोग नारी के दैनिक जीवन में देखते हैं । शिशु के पालन में उसके प्रेम के फलस्वरूप जो कष्ट निहित है, वह किसी भी महान् त्याग से कम नहीं । गांधी के शब्दों में "उसे इस प्रेम को समस्त मानवता के प्रति प्रवाहित करने दो ।"[2] अतः नारी गांधी के लिए अहिंसा की साकार प्रतिमा है और सार्वजनिक जीवन में उसका प्रवेश इस अहिंसा की भावना को व्यापक क्षेत्र में प्रसारित करने के लिये अत्यन्त आवश्यक है ।

यद्यपि गांधी जी स्त्री और पुरुष के समान अधिकारों के प्रवर्तक थे, परन्तु वह स्त्रियों से पुरुषों की अपेक्षा अधिक आशा रखते थे । नारी यद्यपि प्रकृति द्वारा दुर्बल बनाई गई है, परन्तु गांधी के लिए उसकी शारीरिक दुर्बलता

---

1. Kasturba Memorial, p. 12.

2. Ibid, p. 13.

के कारण स्त्री नैतिक शक्ति के बल पर पुरुष से कहीं अधिक उच्च है, क्योंकि वह अहिंसा में अधिक दृढ़ कदम ले सकती है । आत्मत्याग की शक्ति के कारण स्त्री पुरुष से उच्च है क्योंकि पुरुष पाशविक शक्ति का प्रतीक है ।[1] और इसी विश्वास के कारण गांधी ने दृढ़ता पूर्वक कहा था " मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि अहिंसा को उच्चतम तथा उत्तम स्तर तक पहुँचाने का कार्य महिलाओं का है ।"[2]

इसके अतिरिक्त गांधी अहिंसा को नारी में निहित हीनता की भावना परिष्कृत करने का एक साधन भी समझते हैं । गांधी के लिए अहिंसा का प्रयोग सार्वजनिक जीवन में होना चाहिए तभी वर्तमान कष्टों से मानव का त्राण संभव है । और इस क्षेत्र में नेतृत्व का कार्य महिलाओं का विशेषाधिकार है । इस प्रकार सार्वजनिक जीवन में महिलाओं का प्रवेश तथा एक महत्वपूर्ण कार्य में न केवल उनका सहयोग बल्कि नेतृत्व की भावना उनमें हीनता की भावना को निकालने में समर्थ होगी । "हरिजन" में इन्हीं विचारों को व्यक्त करते हुए गांधी लिखते हैं[3] "इस महान् समस्या में मेरा सहयोग जीवन के प्रत्येक कदम में अहिंसा और सत्य को स्वीकार करने में है । चाहे वह व्यक्तिगत हो, चाहे राष्ट्रीय । मेरा विश्वास है कि इस कार्य में स्त्री सर्वसम्मति से नेता है, तथा इस प्रकार मानव विकास में अपना स्थान बनाकर वह हीनता की भावना को छोड़ देगी । यदि वह इस कार्य को करने में सफलता प्राप्त करती है, तो निश्चय ही वह इस आधुनिक विचार को कि प्रत्येक कार्य लिंग भेद के आधार पर निश्चित तथा संपादित होता है, स्वीकार करने से इन्कार कर देगी ।"[3] इस प्रकार अहिंसा नारी जागरण का एक उपचार भी है ।

---

1. Kshitis Roy - Gandhi Memorial Peace Number (Ed), p. 168.
2. Radhakrishnan, S. - Mahatma Gandhi, 100 years (Ed.) 219.
3. Harijan - 24 - 2 - 1940.

नारी और छुआछूत--

महात्मागांधी का क्रान्तिकारी आन्दोलन केवल राजनीतिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं था बल्कि उसने शैक्षिक तथा सामाजिक क्षेत्र में भी हलचल सी मचा दी थी । भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का यह एक अनोखा तत्व है । पिछड़ी जातियों तथा हरिजनों की समस्या प्रथम बार महात्मा गांधी द्वारा स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में उठाई गई । उनकी विभिन्न योजनाओं में छुआछूत की भावना के बहिष्कार को प्रमुख स्थान मिला था । उन्होंने छुआछूत व हरिजन उद्धार की समस्या का सम्बन्ध देश की स्वतंत्रता के साथ कर दिया था तथा यहाँ तक घोषित किया कि यदि छुआछूत भारत से नहीं हटाई गई तो स्वतंत्रता का कोई मूल्य नहीं होगा । यह गांधी के इस दृढ़ विश्वास का ही परिणाम था कि कांग्रेस जैसी विशुद्ध राजनीतिक संस्था ने भी गांधीवादी इस उद्देश्य के लिए कार्य प्रारम्भ किया था ।

गांधी की इस योजना में महिलाओं को विशेष स्थान प्राप्त है । यह गांधी का दृढ़ विश्वास था कि जब तक देश का महिला वर्ग अंधविश्वासों की गर्त में फंस कर छुआछूत को मानता रहेगा, इस समस्या का हल कठिन है । क्योंकि महिलाएं स्वभाव से ही पुरातनपंथी तथा अनुदारवादी होती हैं । उनके लिए परम्परागत प्रथाओं से शीघ्र ही छुटकारा पाना अत्यन्त दुष्कर है । स्त्रियां परम्परावादी तथा प्राचीन प्रथाओं की रक्षक तथा प्रतीक मानी जाती हैं । अत: छुआछूत जैसे पुरातनपंथी मान्यताओं के पीछे भी स्त्रियों का ही हाथ है । यदि वे अपने घरों में हरिजनों का प्रवेश निषेध न करें तो यह भावना शीघ्र ही समाप्त हो जायेगी । अत: गांधी ने इस विषय में महिलाओं से विशेष याचना की । हरिजन उद्धार के सम्बन्ध में उन्होंने विभिन्न स्थानों में महिला सम्मेलनों में भाषण दिया । इन भाषणों में न केवल हरिजनों का पक्ष लिया गया वरन् महिलाओं को सक्रिय कार्य करने के लिए उपाय भी बताए गए । दिल्ली में एक स्थान पर महिला सभा में भाषण देते हुए उन्होंने कहा "ईश्वर की दृष्टि में, जो कि सभी का निर्माता है, उसकी सभी प्राणी बराबर हैं । क्या उसने मनुष्य के मध्य ऊंच और नीच का भेद बनाया है ? यह भेद चींटी और हाथी में अवश्य दिखाई देता

है, परन्तु उसने मानव को एक ही आकार तथा एक ही अनुभूति वाला बनाया है । यदि तुम इस कारण हरिजन को अछूत समझते हो क्योंकि वे सफाई का कार्य करते हैं, तो क्या माता भी अपने बच्चों के लिए यह कार्य नहीं करती है ? यह अन्याय की पराकाष्ठा है कि हरिजनों, जो समाज के सबसे उपयोगी सेवक हैं, को अछूत व जाति से बाहर समझा जाए । मैं हिन्दू बहनों के मस्तिष्क को इस पाप के प्रति जागृत करने के उद्देश्य से निकला हूँ ।"[1] इसी प्रकार बिलासपुर में अपनी भ्रमण के समय उन्होंने महिलाओं से याचना की कि" मैं आप बहनों से हरिजनों के लिए अधिक से अधिक देने की अपील करता हूं जितना कि आप दे सकती हैं । आप लोगों ने मुझसे पूछा है कि आप हरिजनों की सेवा कैसे कर सकती हैं ? मैं आपसे सबसे पहले, यह चाहता हूँ कि आप अपने हृदय से अछूत भावना को निकाल दें तथा हरिजन बालक और बालिकाओं की सेवा इस प्रकार करें जैसे कि अपने बच्चों की करती हैं । आपको उनसे अपने सम्बन्धियों के समान, अपने भाई और बहनों के समान तथा एक ही मातृभूमि के बच्चों के समान प्रेम करना चाहिए । मैंने स्त्रियों की पूजा, सेवा व त्याग की जीती जागती प्रतिमा के रूप में की है । पुरुष इस स्वार्थरत सेवा में आपकी बराबरी नहीं कर सकता जो प्रकृति की ओर से आपको प्राप्त है । स्त्री के पास कोमल हृदय है जो पीड़ा देखकर पिघल जाता है, अतः यदि हरिजनों की पीड़ा आपको प्रभावित करती है, और आप छुआछूत को तथा इसके माध्यम से ऊँच-नीच के भेदभाव को त्याग देती हैं तो हिन्दू धर्म पवित्र हो जायेगा और हिन्दू समाज आध्यात्मिक उन्नति में महान् कदम उठा सकेगा । इसका अर्थ अंततः सम्पूर्ण भारत का अर्थात् ३५ करोड़ मानव का कल्याण होगा..... ।"[2] मद्रास में एक अन्य स्थान पर महिलाओं को सम्बोधित करते हुये गांधी ने कहा कि अछूत भावना हिन्दू धर्म में कलंक के समान है और यदि यह जीवित रहेगी तो हिन्दू धर्म मृत हो जायेगा ।[3]

गांधी इस बात से अत्यधिक दुखी थे कि खान-पान में प्रतिबन्ध को आज धर्म के अन्तर्गत मान लिया गया है । उनके लिए जन्म व जाति विशेष उच्चता तथा

---

1. Harijan - 22 - 12 - 1933.

2. Harijan - 8 - 12 - 1933.

हीनता निर्धारित नहीं करती वरन् चरित्र ही व्यक्ति को उच्च व निम्न बनाने की कसौटी है । उनके लिए यदि गंदा काम ही अछूत पन का कारण है तो प्रत्येक व्यक्ति अछूत है । परन्तु जैसे ही वह अपने को स्वच्छ कर लेता है, अछूत की श्रेणी से निकल जाता है । अत: कार्य के कारण सदैव के लिए कोई अछूत नहीं होता ।

हिन्दू समाज से इस भावना को पूर्ण बहिष्कृत करने के लिए उन्होंने महिलाओं के सामने विभिन्न उपाय रखे । सर्वप्रथम हरिजनों की विभिन्न समस्याओं और कठिनाइयों को सुलझाने के माध्यम से उनसे मित्रता करनी चाहिए । उनके घरों में प्राय: जाना चाहिए तथा उनके बच्चों के साथ अपने बच्चों के समान व्यवहार करना चाहिए । उनके सुख-दु:ख में भागी बनना चाहिए तथा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनके पास शुद्ध जल की व्यवस्था है या नहीं, उनको खाद्य पदार्थों की कमी तो नहीं है, तथा वे उस वायु और प्रकाश से वंचित तो नहीं हैं जिनका उपभोग अन्य करते हैं ।

दूसरा उपाय है खादी का प्रयोग करना । खादी का निरन्तर प्रयोग इन निर्धनों की आर्थिक स्थिति को ऊँचा उठाने में सहायक होगा । गांधी के शब्दों में "गरीबों के प्रति त्याग, कुछ वर्षों में तुम्हें उनसे एकत्व स्थापित करने में सहायक होगा तथा खादी के प्रत्येक सूत, जो तुम पहनोगी, का अर्थ होगा इन हरिजनों और निर्धनों की जेबों में कुछ ताँबे के सिक्के ।"[1]

अन्तिम उपाय है हरिजनों के कोष में अधिक से अधिक दान देना, जिसका उद्देश्य है हरिजनोद्धार ।[2] इस प्रकार महिलाएं गांधी की इस महत्वपूर्ण योजना की प्रमुख कार्यकर्ता समझी गई हैं ।

---

1. Harijan - 31 - 8 - 1934.

2. Ibid.

नारी और राजनीति--

बीसवीं शताब्दी में "नारी उन्नयन आन्दोलन" के क्षेत्र में महात्मा-गांधी का सबसे बड़ा योगदान यही है कि उन्होंने भारतीय महिलाओं को देश की राजनीति में खुलकर भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया । मध्य युग में राजपूतों के स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात् बीसवीं शताब्दी में प्रथम बार भारी संख्या में महिलाओं ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया । इसका एक मात्र श्रेय गांधी को, और उनकी अहिंसात्मक युद्ध प्रणाली को प्राप्त है । राजकुमारी अमृत-कौर इस विषय में लिखती हैं --"भारत में नारी जागरण के लिए कोई भी तत्व इतना अधिक प्रभावशाली नहीं रहा है जितना कि "अहिंसात्मक युद्ध" जिसे गांधी जी ने नारियों को भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध युद्ध में दिया था । इसने नारियों को सैकड़ों की संख्या में घरों से बाहर निकल कर कठोर यातनाएं सहने की क्षमता दी । इसने इस बात को सिद्ध कर दिया कि नारियाँ भी पुरुषों के समान बुराई और आक्रमणकारी तत्वों का विरोध करने के योग्य हैं । हिन्दुओं के लिए इसने यह भी सिद्ध कर दिया कि बिना हथियार का विरोध न केवल उतना ही प्रभावशाली है, बल्कि विरोध करने वाले और विरोधी दोनों की योग्यता में वृद्धि करता है । जहाँ तक भारत के उद्धार का प्रश्न है, इसने इसमें महिलाओं को एक निश्चित स्थान प्रदान किया है ।"[१]

इसका कारण गांधी का स्त्री शक्ति में अटूट विश्वास था । उनके लिए नारी अबला या दुर्बल नहीं है । नारी ने अपनी वीरता और शौर्य का परिचय विभिन्न युगों में दिया था, तलवार के माध्यम से नहीं अपितु चारित्रिक बल से । गांधी का विश्वास है कि आज भी नारी देश को अनेक प्रकार से सहायता पहुंचा सकती हैं । गांधी के लिए " भारत का उद्धार नारी के त्याग और जागरण पर निर्भर है ।"[२]

---

1. Radhakrishnan, S. - Mahatma Gandhi, 100 years (Ed.), p. 218.
2. Kasturba Memorial - p. 38.

नारी गांधी की दृष्टि में त्याग और अहिंसा की देवी है । वह आक्रमणकारी तत्वों को बढ़ावा देने वाली नहीं, बल्कि उसकी विरोधी है । इसलिए गांधी कहते हैं कि -"युद्ध के विरोध में आयोजित युद्ध का नेतृत्व संसार की स्त्रियां करेंगी, और करना भी चाहिए । यह उनका विशेषाधिकार तथा कार्य है ।"[1] एक अन्य स्थान पर वह कहते हैं कि -" यदि स्त्रियां यह भूल जायं कि वह पुरुषों से कम शक्तिशाली हैं तो पुरुषों की अपेक्षा युद्ध के विरोध में कहीं अधिक काम कर सकती हैं । आप लोग स्वयं सोचिए यदि सिपाहियों और सेनानायकों की मातायें, स्त्रियां और बालिकायें उन्हें किसी भी रूप में युद्ध में भाग लेते हुए न देखना चाहें तो क्या हो ?"[2]

गांधी युद्ध के विरोधी थे, ऐसे युद्ध के जो हिंसा पर आधारित हो और मानव रक्त का बलिदान मांगता हो । इसलिए उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध युद्ध करने में एक नवीन युद्ध प्रणाली का आविष्कार किया । यह प्रणाली थी अहिंसात्मक युद्ध की । असहयोग, अवज्ञा, सत्याग्रह आदि इसके प्रमुख उपादान थे । यह प्रणाली दृढ़ विश्वास, स्वदेश प्रेम, अहिंसा तथा आत्मत्याग को आमंत्रित करती थी । अतः यह प्रत्येक वर्ग के लिए उपयोगी है । चूंकि नारी गांधी की दृष्टि में इन सभी गुणों का साक्षात् अवतार है, इसलिये उनके इस अहिंसात्मक युद्ध की पूर्णाहुति में नारी को एक विशेष स्थान प्राप्त हो सका है । इटली में महिला सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए गांधी कहते हैं कि" अहिंसात्मक युद्ध की सुन्दरता इसी में है कि इसमें महिलायें भी उतना ही भाग ले सकती हैं, जितना कि पुरुष । एक हिंसात्मक युद्ध में नारी को यह अवसर नहीं मिलता । भारतीय नारियों ने इस अहिंसात्मक युद्ध में अधिक भाग लिया है । इसका कारण स्पष्ट है । अहिंसात्मक युद्ध कठोर पीड़ा को आमंत्रित करता है, और नारी से बढ़कर और कौन अधिक पवित्रता और शुद्धता से इसे फेल सकता है ?"[3] निष्क्रिय प्रतिरोध से अपने इस युद्ध का अन्तर स्पष्ट करते हुए गांधी इसे महिलाओं के लिए अधिक उप-

---

1. Ibid, p. 41.

2. विश्व ज्योति- महात्मा गांधी, अंक , अगस्त १९६९, पृ० ६०

योगी बतलाते हैं । उनके शब्दों में "निष्क्रिय प्रतिरोध दुर्बल का हथियार है । परन्तु प्रतिरोध, जिसके लिए मैंने नवीन नाम गढ़ा है, सबलों का शस्त्र है । मैंने अपना विचार स्पष्ट करने के लिए यही नया नाम दिया है, परन्तु उसकी अतुलनीय सुन्दरता इसी बात में है कि यद्यपि यह शक्तिवानों का शस्त्र है तथापि इसका प्रयोग शारीरिक रूप से दुर्बल, वृद्ध तथा बच्चे तक कर सकते हैं । यदि उनके पास दृढ़ संकल्प है तो । और चूंकि सत्याग्रह में प्रतिरोध आत्मत्याग पर आधारित है, इसलिए यह विशेष रूप से नारियों का शस्त्र है ।"[1]

गांधी अपने इस उद्देश्य में, अपने इस प्रतिरोध में कहां तक सफल रहे, इसका ज्वलंत प्रमाण हैं वह महिलाएं जिन्होंने हजारों की संख्या में देश की आजादी के युद्ध में भाग लिया था । दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह आन्दोलन महिलाओं के योगदान की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है । महात्मा गांधी के नेतृत्व में प्रथम बार महिलाओं ने इसमें भाग लेकर अपनी शक्ति का परिचय दिया । श्रीमती कस्तूरबा गांधी इस आन्दोलन की प्रमुख पात्री थीं । उन्होंने भारत में भी स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भाग लिया तथा उनका अंत भी जेल की चहारदिवारी में ही हुआ । दक्षिण अफ्रीका में भाग लेने वाली महिलाओं का विवरण अगले अध्याय में दिया गया है ।

महात्मा गांधी की पुकार ने देश के नारी वर्ग को उद्बोधित किया । हजारों की संख्या में नारियां असहयोग आन्दोलन में भाग लेने निकल पड़ीं । उन्हों ने जुलूस निकाले, पिकेटिंग की, कानून तोड़े तथा जेल की कठोर यातनाएं सहीं । महिलाएं जो प्रत्यक्ष आन्दोलन में भाग लेने में असमर्थ थीं, घरों पर चर्खे के माध्यम से सूतकात कर ब्रिटिश उद्योगों को नष्ट करने में सफल रहीं । यही नहीं, जब देश के लगभग सभी वरिष्ठ नेता जेल में थे, नारियों ने आन्दोलन की बागडोर संभाली । इन आन्दोलनकारी महिलाओं में संभ्रान्त परिवार की महिलाएं भी सम्मिलित थीं, जिन्होंने ऐश्वर्य को त्याग कर देश के सार्वजनिक कार्यों में भाग लिया । महिलाओं,

---

1. Kasturba Memorial, p. 13.

विशेषकर बंगाली महिलाओं ने स्वर्णाभूषणों का भारी दान दिया तथा खादी के वस्त्रों के प्रयोग के माध्यम से सरल जीवन व देशभक्ति का उदाहरण प्रस्तुत किया । न केवल उन्होंने राजनीतिक जुलूसों का नेतृत्व किया, विशाल जनसमूहों में उत्तेजनात्मक भाषण दिये । प्रान्तीय सभाओं की अध्यक्षता की , वरन् अनेक महिलाओं ने नगर की म्युनिस्पल कार्पोरेशन में महत्वपूर्ण पद प्राप्त किए तथा शासन में योगदान दिया । कांग्रेस के मंच से अनेक महिलाओं ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की सफल नेता चुनी । श्रीमती सरोजिनी नायडू ने १९२५ में कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन की अध्यक्षता की थी ।

संक्षेप में स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं का योगदान गांधी के शब्दों में इस प्रकार रखा जा सकता है -" भारत की महिलाओं ने पर्दे का त्याग कर देश सेवा के लिए बाहर कदम रखा । उन्होंने देखा कि देश उनसे, अपने घरों की देखभाल के अतिरिक्त कुछ और भी अपेक्षा करता है । उन्होंने निषिद्ध नमक का निर्माण किया, कपड़ों तथा मदिरा की दुकानों पर पिकेटिंग की तथा उससे विक्रेता और खरीदारों दोनों को दूर रखने का प्रयत्न किया...... उन्होंने जेल यात्रा की तथा लाठी के प्रहार भी सहा[1]।

नारी और आर्थिक स्वतंत्रता

नारी के आर्थिक अधिकार और आर्थिक स्वतंत्रता प्राचीन काल से ही शास्त्रकारों के विवादास्पद विषय रहे हैं । इन अधिकारों को लेकर शास्त्रकारों में मतभेद भी है । परन्तु प्रत्येक दशा में नारी अपने "स्त्रीधन" से वंचित नहीं है । प्राचीनकाल में यह आर्थिक अधिकार सम्पत्ति के स्वामित्व तक सीमित थे । उस समय उनकी व्यक्तिगत रूप से जीविकोपार्जन का प्रश्न ही नहीं उठता था । यद्यपि प्रत्येक युग में नारियाँ कृषि तथा अन्य व्यवसायों में पुरुष की सहयोगी रही हैं । निम्नवर्गों में विशेष कर स्त्रियाँ आर्थिक जीवन का एक भाग होती थीं । और इस प्रकार

---

1. Kasturba Memorial, p. 12.

परिवार के भरण-पोषण के लिये धन कमाने में उनका भी हाथ था । परन्तु आधुनिक युग में स्वतंत्रता, समानता की मांग के साथ-साथ नारी की आर्थिक स्वतंत्रता की बात भी उठी । विचारों में परिवर्तन के साथ-साथ अन्य देशों के समान नारी को आर्थिक जीवन में पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त हो सकी है ।

गांधी एक प्रगतिवादी विचारक थे । वह स्त्री और पुरुष में समानता के व्यवहार के पोषक थे । इस दृष्टि से नारी की आर्थिक स्वतंत्रता का उन्होंने पक्ष लिया है । वह न केवल उन्हें परिवार की सम्पत्ति में अधिकारिणी समझते हैं अपितु पृथक रूप से स्त्रियों के जीविकोपार्जन को भी प्रश्रय देते हैं । परन्तु यह जीविकोपार्जन निश्चय ही नैतिक होना चाहिए । अनैतिक साधनों द्वारा धन प्राप्त करना अनुचित है, पाप है । इस दृष्टि से उन्होंने वेश्याओं तथा देवदासी के पेशों की निन्दा की । उन्होंने चर्खे को धनोपार्जन का आदर्श साधन माना है । खादी व चर्खे के द्वारा स्त्रियां धनोपार्जन की अधिकारिणी हैं । इसी प्रकार के अन्य नैतिक कार्यों का भी गांधी ने समर्थन किया ।

गांधी ने इस बात का खंडन किया कि सम्पत्ति का स्वामित्व तथा आर्थिक स्वतंत्रता स्त्रियों में अनैतिकता को फैलाने वाली है तथा पारिवारिक जीवन को कलहपूर्ण बनाने में सहायक है । अपने पत्र 'हरिजन' में स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता का पक्ष ग्रहण करते हुए वह लिखते हैं कि यदि सम्पत्ति का स्वामित्व पुरुषों के मध्य अनाचार तथा अनैतिकता फैलाता है, तो इसे स्त्रियों के मध्य भी क्यों न फैलने दिया जाए । नैतिकता उनके लिए सम्पत्ति के स्वामित्व में नहीं बल्कि हृदय की पवित्रता में बसती है । जब तक हृदय पवित्र है, कोई भी शक्ति मनुष्य को अनुचित मार्ग पर नहीं ले जा सकती है ।[1] गांधी इस प्रकार स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता के समर्थक थे ।

महात्मा गांधी ने नारी के उत्थान के लिए सुधारकों के समक्ष विभिन्न उपचार भी प्रस्तुत किये । इनमें हिन्दू शास्त्रों को सर्वोपरि स्थान मिला है । गांधी के लिए शास्त्र अत्यन्त पवित्र ग्रन्थ हैं और उस युग के प्रतीक हैं, जबकि हिन्दू

---

1. Harijan - 8 - 6 - 1940.

सभ्यता-संस्कृति व धर्म अपने आदर्शतम रूप में थी । परन्तु बाद के समय में उनमें कुछ ऐसे तत्वों का समावेश हो गया जो उचित नहीं कही जा सकतीं । गांधी के मत में शास्त्रों से उन बातों को निकाल देना चाहिए जो तर्क बुद्धि में सही नहीं उतरतीं । धर्म-ग्रन्थों में वर्णित उन महान् नारियों का आदर्श सामने रख कर आज की भारतीय नारी का उत्थान करना चाहिए ।" हमें सीता, दमयन्ती तथा द्रौपदी जैसी पवित्र, दृढ़, तथा आत्मनियंत्रित नारी को तैयार करना चाहिए ।"[1]

नारी जागरण के क्षेत्र में शिक्षा का भी प्रमुख स्थान है । वास्तव में शिक्षा का अभाव ही उनके सामाजिक पतन का मुख्य कारण था । अशिक्षित नारी, अपने अधिकारों और कर्तव्यों से अनभिज्ञ एक ऐसी स्थिति में पहुँच गई थी जिसका उपचार कठिन था । गांधी स्त्री-शिक्षा के उतने ही समर्थक थे जितने पुरुष-शिक्षा के । उनके मत में अशिक्षित व्यक्ति पशुतुल्य है, इसलिए शिक्षा स्त्री और पुरुष दोनों के लिए आवश्यक है ।[2] परन्तु साथ ही गांधी यह भी अनुभव करते हैं कि स्त्री और पुरुष की प्राकृतिक असमानता व कार्यक्षेत्र को ध्यान में रखते हुए शिक्षा का पाठ्यक्रम भी उन्हीं के अनुरूप होना चाहिए । पुरुष बाह्य जगत के कार्यों में अनुभवी होता है । अतः यह आवश्यक है कि उसके पास अपेक्षाकृत अधिक ज्ञान होना चाहिए । इसके विपरीत नारी का प्रमुख स्थान घर है, इसलिए घर के अन्दर के कार्यों में नारी दक्ष है । शिक्षा का रूप निश्चय ही इसी तथ्य को ध्यान में रखकर निर्धारित करना चाहिए । परन्तु साथ ही गांधी के लिए इसका यह अर्थ नहीं कि दोनों की शिक्षा व्यवस्था में स्पष्ट भिन्नता की रेखा खींच दी जाए, वरन् योग्यता के अनुसार प्रत्येक को सभी प्रकार के ज्ञान अर्जन का अधिकार होना चाहिए ।[3]

गांधी सुधारों के पक्ष में थे, परन्तु यह सुधार कानूनी तौर पर नहीं होने चाहिए । दूसरे शब्दों में गांधी कानूनों के निर्माण के द्वारा किसी भी सुधार के पक्ष में नहीं थे । उनके मत में किसी भी समस्या के निदान का उत्तम साधन है

---

1. Gandhi, M.K. - India of my dreams, p. 60.

2. Ibid, p. 62.

जागृत जनमत का निर्माण । जब तक जनमत किसी सुधार के पक्ष में नहीं होगा, राज्यकृत कानून व्यर्थ जायेंगे । नारी जीवन से सम्बन्धित विभिन्न सुधारों के लिए सर्वप्रथम एक सुसंगठित जनमत का निर्माण आवश्यक है ।[1]

इसके साथ ही महिलाओं को उनकी वर्तमान स्थिति का बोध करा के उनमें मानसिक जागरण की क्रिया भी विभिन्न समस्याओं के समाधान का एक उपचार होगी । गांधी के लिए शिक्षा प्राप्ति तक इस जागरण के आने की प्रतीक्षा करना व्यर्थ है । नारियों को उनकी वर्तमान दशा की पतित अवस्था का भान होना आवश्यक है[2]। जब तक वे स्वयं अपनी स्थिति को "दुर्गति" के रूप में अनुभव नहीं करेंगी, तब तक वह उसी स्थिति में बनी रहेंगी ।

इस दिशा में अभिभावकों का कर्तव्य भी उल्लेखनीय है । बाल-विवाह बाध्य वैधव्य, सती, पर्दा, आदि अनेक कुरीतियों के लिए अभिभावक अधिक उत्तर-दायी हैं । पुनर्विवाह के संदर्भ में गांधी कहते हैं कि यह अभिभावकों का कर्तव्य है कि वह अपनी बाल-विधवा बालिकाओं का विवाह अपना कर्तव्य समझ कर करें ।[3] जब तक अभिभावक वर्ग जागृत नहीं होगा किसी दिशा में सुधार असंभव है ।

उपरोक्त अध्ययन यह स्पष्ट करने में समर्थ है कि गांधी को "नारी" का तथा उससे सम्बन्धित समस्याओं का कितना गहरा ज्ञान था । यही नहीं नारी के लिए उनके हृदय में अत्यन्त कोमल उद्गार थे, उसकी अनुभूतियाँ और समस्याओं को वह उसी की भाँति अनुभव करते थे । राजकुमारी अमृतकौर महात्मागांधी के इसी पक्ष का वर्णन करते हुए लिखती हैं -" हम उनमें न केवल "बापू" - एक चतुर पिता का रूप पाते हैं, बल्कि उससे भी अधिक बहुमूल्य एक माँ (का रूप) जिसके सार्व-भौम तथा असीम प्रेम के समक्ष सभी भय व बाधायें लुप्त हो जाती हैं ।"[4]

---

1. Gandhi, M.K. - Hindu Dharm, p. 399.
2. Gandhi, M.K. - India of my dreams, p. 61.

अध्याय - ५

बीसवीं शताब्दी में भारत में नारी-शिक्षा का विकास

तथा

नारी की सामाजिक स्थिति पर उसका प्रभाव ।

अध्याय - ४

बीसवीं शताब्दी में भारत में नारी-शिक्षा का विकास तथा नारी की सामाजिक स्थिति पर उसका प्रभाव -

शिक्षा किसी भी देश, समाज, एवं काल के उद्देश्यों और आदर्शों को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट करती है, और उन्हें आगामी पीढ़ी तक पहुँचाने का कार्य करती है। शैक्षिक संस्थाएं भी अन्य मानवीय संस्थाओं की भाँति हैं और युग तथा परिस्थितियों से प्रभावित रही हैं। यही कारण है कि देश, काल और समाज में शैक्षिक आदर्श भी भिन्न रहे हैं। शिक्षा के प्रति व्यक्तियों का व्यवहार और दृष्टिकोण इस बात का मापदण्ड है कि सामाजिक दृष्टि से वे कितने प्रगतिशील हैं। परन्तु यह व्यवहार और दृष्टिकोण एक प्रकार से परिस्थितियों और घटनाओं की उपज मात्र हैं।

नारी-शिक्षा के प्रति प्राचीन तथा मध्ययुगीन भारत का सामाजिक दृष्टिकोण -

नारी-शिक्षा के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण स्वयं इस बात पर निर्भर करता है कि नारी के प्रति समाज का क्या दृष्टिकोण रहा है? विभिन्न युगों के समाज ने नारी जाति के प्रति जो धारणा और स्थान रखा उसी के अनुरूप, सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नारी-शिक्षा का स्वरूप भी निर्धारित किया। प्राचीन भारतीय साहित्य इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि तत्कालीन समाज ने नारी जाति को सम्मानित और उच्च स्थान प्रदान किया था। प्राचीन भारतीय नारी आगामी युगों की तुलना में कहीं अधिक स्वतंत्रता का उपभोग करती थी। इस दृष्टि से प्राचीन भारत अपनी समकालीन ग्रीस और रोम की सभ्यताओं से भी अधिक आगे बढ़ जाता है। वेदों में स्थान-स्थान पर पुत्र और पुत्रियों के प्रति समान व्यवहार का निर्देश मिलता है। बालिकाएं बड़ी आयु तक अविवाहित रहती थीं तथा बालकों के समान उपनयन की अधिकारिणी थीं[1]। विवाह के पक्ष में शिक्षा एक आवश्यक शर्त थी। सार्वजनिक त्योहारों में स्त्रियों का प्रवेश एक सामान्य बात थी। इसी प्रकार धार्मिक अनुष्ठानों में पति के साथ पत्नी की उपस्थिति भी अनिवार्य समझी गई थी।[2] प्राचीन भारत का नारी के प्रति यही स्वस्थ दृष्टिकोण था, जिसने स्त्री और पुरुष की शिक्षा

---

1. Chaudhury - Women in Vedic Rituals, p. 170.

के प्रति सामान्य व्यवहार रहा । यही कारण है कि हम प्राचीन युग में घोषा, लोपा मुद्रा, विश्ववारा तथा अपाला जैसी विदुषी नारियों के नाम पाते हैं, जिन्होंने अतिशय प्रतिभा का परिचय दिया था ।[१]

दूसरी ओर मुस्लिम तथा उसके बाद का भारत स्त्री-शिक्षा की दृष्टि से इतिहास का अंधकारमय युग कहा जा सकता है । इसका कारण था कि पुत्री, पत्नी तथा विधवा के रूप में नारी की स्थिति परतंत्रता और दासत्व की हो गई थी । मुसलमान मुल्लाओं की शिक्षा, जिसमें स्त्रियों को स्वभाव से दुष्ट तथा मानसिक दृष्टि से दुर्बल घोषित किया गया था, जड़ जमाती जा रही थी । नारी जीवन का एकमात्र उद्देश्य था पति को प्रसन्न रखना, और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी । संक्षेप में पर्दाप्रथा आदि के रूप में ऐसी परिस्थितियाँ और सामाजिक दृष्टिकोण बन गया, जो नारी-शिक्षा के पक्ष में नहीं था ।

वास्तव में जहाँ तक नारी-शिक्षा का प्रश्न है, राजनीतिक तथा आर्थिक अव्यवस्था और विदेशी आक्रमणों के कारण लगभग आठ शताब्दियों (ई० १००० से ई० १८००) के दीर्घ काल में कोई भी सुव्यवस्थित तथा संगठित शिक्षा व्यवस्था का प्रबन्ध नहीं रहा था । इसके अतिरिक्त कुछ सामाजिक प्रथाएं जैसे बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा आदि भी इन युगों में शैक्षिक प्रगति के मार्ग में बाधा स्वरूप रही थीं । आक्रमणकारियों के हाथों से अविवाहित बालिकाओं की सुरक्षा के लिए बाल-विवाह आवश्यक समझा गया । संभवत: यही भय अल्पायु विधवाओं के सती होने पर भी बाध्य करता था । बाल-विवाह की जड़ में दहेज प्रथा का मूल भी था । इन अंधकारमय युगों में नारियों को अपने घर की चहारदीवारी के बाहर जाने की अनुमति नहीं थी । संक्षेप में यह धारणा कि प्रकृति की ओर से ही नारी निम्नस्थिति की अधिकारिणी है, इन शताब्दियों में व्याप्त रही । फलस्वरूप नारी-शिक्षा अज्ञात

---

१. Altekar A.S., Education in ancient India (1961) p. 320 and Mookherjee Radha Kumud - Ancient Indian Education : Brahmanical and Buddhist, pp. 655.

थी । यह स्थिति उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण तक बनी रही । अंग्रेजों के भारत आगमन के समय भारतीय नारी पतन के सबसे अधिक निकृष्ट पहलू में थी ।

शिक्षा सम्बन्धी सर्वप्रथम रिपोर्ट ऐडम[१] की है जिसमें हम उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण की झलक पाते हैं । ऐडम की रिपोर्ट के अनुसार १८३० में सम्पूर्ण बंगाल में केवल ४ बालिकाएं शिक्षित थीं । इस समय बालिकाओं के लिए सार्वजनिक स्कूलों की व्यवस्था नहीं थी । धनी जमींदार परिवारों में अवश्य घर पर व्यक्तिगत रूप से शिक्षक रखकर बालिकाओं को प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती थी । १८८१ की सेन्सस रिपोर्ट के अनुसार शिक्षित बालिकाओं की संख्या दी जा सकती है क्योंकि उस समय की धारणा के अनुसार बालिकाओं के लिए पढ़ना-लिखना अप्रतिष्ठाजनक समझा जाता था ।[२] ऐडम के अनुसार १८१८ में चिन्सुरा में सर्वप्रथम बालिकाओं के लिए व्यवस्थित स्कूल खोला गया, परन्तु यह स्कूल शीघ्र ही बन्द हो गया ।[३]

ब्रिटिश राजत्वकाल के प्रारंभिक चरण में शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य था, शासनकार्य को चलाने योग्य "बाबूवर्ग" का निर्माण करना । चूंकि नारियों का जीविकोपार्जन से कोई सम्बन्ध नहीं था अत: शिक्षा उनके लिए निरर्थक वस्तु समझी गई थी । श्रीमती ग्रे के अनुसार भारत के समान उन्नीसवीं शताब्दी के इंगलैंड के बारे में भी यही बात कही जा सकती है कि बालिकाओं को मात्र उतनी ही शिक्षा देनी चाहिए जो घरेलू कार्यों के लिए आवश्यक हो ।[४] इस प्रकार अभी भी मध्ययुगीन परंपरा और विचारधारा का पालन हो रहा था ।

---

१. Adam W., Report on the State of Education in Bengal (1835-1838) edited by A. Basu, Calcutta, University of Calcutta, 1941, pp. 578.

2. Census for 1881, Vol. I, p. 254.

3. Long, J. - Adam's Report, p. 44.

4. Malley, L.S.O. - Modern India and the West, p. 454.

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पाश्चात्य उदारवादी विचारों का भारत-प्रवेश तथा सुधार-आन्दोलनों का आविर्भाव और उनका नारी-शिक्षा पर प्रभाव —

शनैः शनैः इस स्थिति में परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए । उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आधुनिक युग में प्रवेश कर भारत ने मध्ययुगीन अवांछनीय परम्पराओं को तोड़कर नवीन युग का आह्वान किया । यही वह समय था जबकि लगभग सभी देशों में नारी-उद्धार के आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ था । इस नवीन युग का भारत में प्रारम्भ करने वाले तीन प्रमुख स्रोत थे — ब्रिटिश शासन, अंग्रेज़ी शिक्षा तथा ईसाई मिशन ।[१]

अंग्रेज़ी सरकार का प्रत्यक्ष प्रभाव तो प्रगतिवादी सामाजिक आन्दोलनों के विपक्ष में कहा जा सकता है ।[२] परन्तु इतना अवश्य है कि भारत में अंग्रेज़ी सत्ता की स्थापना ने आगामी सुधारों के लिए नींव रखी । यदि अंग्रेज़ भारत में न आए होते तो संभव था कि भारत उन्हीं मध्ययुगीन परम्पराओं को लेकर कुछ काल तक और चलता रहता ।

ब्रिटिश प्रभुत्व यद्यपि सुधारों का विरोधी था, परन्तु उसने भारत को अंग्रेज़ी शिक्षा, जिसे "भारतवासियों के लिए महान् उपहार"[३] कहा जा सकता है, प्रदान की । वास्तव में अंग्रेज़ी शिक्षा ही भारत को आधुनिकता की ओर ले जाने वाला प्रमुख तत्व थी । मैकाले ने शिक्षा के माध्यम से जिस नवीन युग का सूत्रपात किया उसने बाद के सम्पूर्ण भारतीय विचार की प्रवृत्ति को निर्धारित किया । अंग्रेज़ी साहित्य तथा यूरोपीय इतिहास के अध्ययन और पश्चिमी विज्ञान ने भारतवासियों का संसर्ग बुद्धिवाद और उदारवाद नामक दो महान्, शक्तिशाली विचारधाराओं से कराया । उन्होंने भारत को रूढ़िवाद तथा अंधविश्वास के दलदल से निकलने में प्रमुख योग दिया और

---

१. Natrajan, S. - A Century of Social Reform in India, p. 5.

२. Ibid, p. 6.

३. Ibid, p. 6.

भारतीय पुनर्जागरण में गहरी छाप छोड़ी। पश्चिम के भौतिकवादी तथा अनीश्वर-वादी विचारों से ओत-प्रोत पश्चिमी साहित्य के अध्ययन से भारतीयों ने सती प्रथा, अस्पृश्यता, विदेशयात्रा तथा भोजन आदि पर प्रतिबन्ध आदि कुरीतियों पर तीक्ष्ण आघात किया और भारत के प्राचीन धर्म को पुनः पवित्र किया। पश्चिम केवल अंग्रेज़ी भाषा द्वारा ही जाना जा सकता था। शिक्षित भारतीयों ने दोनों सभ्यताओं के तुलनात्मक अध्ययन से अपनी संस्कृति की कमियों को जाना। अंग्रेज़ी शिक्षा ने भारतीयों में आलोचनात्मक दृष्टि का उदय किया। पाश्चात्य दर्शन तथा विज्ञान के अध्ययन ने भारतीयों की कूपमण्डूकता तथा संकीर्ण विचारों को विस्तृत दृष्टिकोण में परिवर्तित करने पर बाध्य किया, उनकी तार्किक शक्ति का विकास कर अनेक परम्परागत, अप्रगतिशील प्रथाओं की असार्थकता समझने में योगदान दिया।

इस प्रकार पाश्चात्य विचारों और संस्थाओं ने भारतीय मस्तिष्क में गहरी छाप डाली, जिसका तत्कालीन प्रभाव रचनात्मक सुधारों की अनवरत लहर के रूप में परिलक्षित हुआ। इन सामाजिक सुधार आन्दोलनों ने नारी-शिक्षा की प्रगति में महत्वपूर्ण योग दिया। राजा राममोहन राय तथा उनके द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज— एक संस्था जिसका लक्ष्य भारतीय समाज का सर्वांगीण सुधार था— के माध्यम से भारतीय नारी का पतन की शोचनीय स्थिति से उद्धार संभव हो सका। ब्रह्म समाज के प्रमुख अनुयायियों ने समय समय पर नारी शिक्षा की प्रगति के लिए पत्र एवं पत्रिकाएं प्रकाशित कीं। उदाहरणार्थ १८६३ में उमेशचन्द्र दत्त ने "ब्रह्म बोधिनी" पत्रिका, द्वारकानाथ गांगुली ने १८६९ में "अबला बान्धव", गिरीशचन्द्र सेन ने "महिला", शशीपद बनर्जी की "अंत:पुर", द्विजेन्द्र नाथ टैगोर की "भारती"। "भारती" का संपादन कार्य एक दीर्घ समय तक उनकी बहिन स्वर्णकुमारी घोषाल ने भी किया था। इसके अतिरिक्त "भारत महिला" तथा "सुप्रभात" नामक दो अन्य पत्रिकाओं का संपादन कार्य दो स्नातक बहिनों कुमुदिनी तथा बासन्ती मित्रा ने किया।[१]

इसी प्रकार आर्यसमाज ने जालंधर(पंजाब) में महाकन्या विद्यालय तथा अन्य अनेक बालिका विद्यालय खोले। प्रार्थना समाज तथा "दक्षिण शिक्षा समाज" का

---

१. Majumdar, R.C. (Ed.), British Paramountcy and Indian Renaissance, Pt. II, Vol. X, p. 65.

नारी-शिक्षा की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। "भारतीय सामाजिक सभा", जिसका वार्षिक सम्मेलन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ ही होता था, ने नारी-शिक्षा के लिए अनेक प्रस्ताव पारित किए। संक्षेप में सामाजिक और धार्मिक सुधार आन्दोलनों ने देशसुधार का जो बीड़ा उठाया उससे नारी शिक्षा के विकास को भी बल मिला। यद्यपि उनके प्रयास मात्र प्रारंभिक प्रयास ही कहे जा सकते हैं।

ईसाई मिशनरियाँ--नारी-शिक्षा की प्रगति में उनका योगदान--

नारी-शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक उल्लेखनीय कार्य ईसाई मिशनरियों ने किया। वास्तव में ईसाई मिशन भारत में नारी-शिक्षा के प्रथम प्रचारक थे।[१] १८१३ के चार्टर ऐक्ट के द्वारा ईसाई मिशनों को ब्रिटिश भारत की सीमा के अन्तर्गत कार्य करने की अनुमति प्रदान कर दी गई थी। भारत में कार्य करने वाले इन मिशनों में से प्रमुख थे बैप्टिस्ट मिशनरी सोसाइटी, लंदन मिशनरी सोसाइटी, चर्च मिशनरी सोसाइटी, स्काटिश मिशनरी सोसाइटी आदि। इन मिशनरियों का प्रमुख उद्देश्य था भारत में ईसाई मत का प्रचार करना। अतः इसके लिए उन्होंने शिक्षा संस्थाएं एवं अस्पताल आदि खोले। भारत में अपना कार्य सरल बनाने के उद्देश्य से मिशनरियों ने भारतीय प्रथाओं, स्वभाव, व भाषाओं का अध्ययन किया, ईसाई मत को जनप्रिय बनाने के लिए भारतीय भाषाओं में निर्धारित पुस्तकों का अनुवाद किया तथा नारी-शिक्षा को बढ़ावा देने का कठिन कार्य किया, जिसे तत्कालीन शासक वर्ग करने में असमर्थ रहा था। उन्होंने भारतीय नारियों के लिए दिवस विद्यालय खोले, अनाथाश्रमों की स्थापना की तथा मध्य एवं उच्चवर्गीय परिवारों की नारियों को उनके घरों में ही शिक्षा देने की अपूर्व व्यवस्था की।

यह उल्लेखनीय है कि मिशनरियों द्वारा खोली गई शिक्षा संस्थाओं में प्रारंभ में केवल निम्नवर्गीय बालिकाएं ही आती थीं, जिन्हें अनियमित उपस्थिति के लिए भी घूस देना पड़ता था।"[२] कलकत्ता रिव्यू के एक लेख से प्रतीत होता है कि एक मिशनरी-

---

१. Ibid, p. 285 And Nurullah and Naik; History of Education in India, p. 185.

२. The Calcutta Review, 1855, ~~xx~~ no. 25, p. 67.

महिला ने वर्षों तक इन स्कूलों में काम करके यह पाया कि उसकी शिष्याओं में लगभग प्रत्येक बालिका "वैश्या" परिवार की है।[1] इसका कारण संभवत: उच्च-कुलों में धर्म परिवर्तन का भय था। कट्टर हिन्दू अपनी बालिकाओं को मिशनरी ईसाइयों के स्कूलों में भेजने के पक्ष में नहीं थे। अत: उच्च परिवारों में केवल वही निडर भारतीय अपनी बालिकाओं को इन स्कूलों में भेजने को प्रस्तुत थे, जिन्हें सामाजिक एवं जाति-बहिष्कार का भय नहीं था, तथा जो प्रगतिवादी विचारों से प्रेरित थे। ब्रह्मसमाज तथा आर्य समाज के अनुयायियों ने इन स्कूलों में अपनी बालिकाओं को भेजने का साहसिक कदम उठाया, साथ ही अपने पृथक बालिका विद्यालय भी खोले।[2]

भारत में मिशनरियों द्वारा स्थापित किए गए स्कूलों का विवरण अध्याय २ में विस्तार से किया जा चुका है। यहाँ पर इतना ही कहना उचित होगा कि मिशनरियों के प्रयास के फलस्वरूप १८५१ में सम्पूर्ण भारत में बालिकाओं के लिए २८५ दिवस स्कूल थे जिनमें ८,९१९ बालिकाएं अध्ययनरत थीं। इसके अतिरिक्त ८६ बोर्डिंग स्कूल थे, जिनमें अध्ययनरत बालिकाओं की संख्या २,२७४ थी। केवल प्रोटेस्टेन्ट मिशनरी स्कूल में ६४,०४३ विद्यार्थी--बालक तथा बालिकाएं शिक्षा पाते थे। सरकारी आँकड़ों के अनुसार १४७४ स्कूलों में लगभग ६७,५६९ विद्यार्थी, जिनमें बालिकाएं भी सम्मिलित हैं, अध्ययनरत थे।[3]

मिशनरियों को अपने प्रयत्नों में अधिक सफलता न मिल सकी, इसके अनेक कारण थे। सर्वप्रथम इन स्कूलों में ईसाई धर्म के शिक्षण पर अधिक बल दिया जाता

---

१. The Calcutta Review, 1855, p. 68.

२. Thomas, P. - Indian Women through the ages, p. 311.

३. Sherring, M.A. - The History of Protestant Missions in India from their commencement in 1706 to 1881. London. The Religious Tract Society, 1884, pp. 463, 442-47.

था। दूसरे उत्तम शिक्षकों का अभाव था। इसके अतिरिक्त निम्नवर्गीय बालिकाएं ही अधिक आती थीं, जिनका मानसिक स्तर कम था। पर्दाप्रथा तथा परिवार की वृद्ध महिलाओं के पुरातनपंथी विचार आदि अन्य कारण थे जो मिशन स्कूलों की असफलता के लिए उत्तरदायी थे।[१]

यद्यपि मिशनरियों को अपने प्रयास में आंशिक सफलता ही मिली तथा उनके स्कूलों में शिक्षित बालिकाएं मात्र अक्षरज्ञान ही प्राप्त कर सकीं[२]। परन्तु फिर भी नारी शिक्षा की नींव डालने वाले के रूप में उनका स्थान अग्रगण्य है। "अखिल भारतीय महिला सम्मेलन" में भाषण देते हुए डा० मुथुलक्ष्मी रेड्डी ने कहा था —
"मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि इस देश में नारी-शिक्षा के लिए सरकार से अधिक मिशनरियों ने कार्य किया है।"[३]

<u>गैर मिशनरी तथा व्यक्तिगत स्कूल</u>

नारी-शिक्षा के प्रचार में, मिशनरियों के अतिरिक्त कुछ अन्य संस्थाओं का भी हाथ था। तत्कालीन समाज में भारतीय नारियों के मध्य शिक्षा को पहुंचाने वाली थे विभिन्न संस्थाएं थीं "कलकत्ता फीमेल जुवेनाइल सोसाइटी", "लेडीज़ सोसाइटी फार नेटिव फेमिली एजुकेशन", "दी लेडीज़ एसोसियेशन", "बेथ्यूनस्कूल।" इसके अतिरिक्त कुछ प्रगतिवादी "बंगालियों" के व्यक्तिगत प्रयत्न भी इसमें सम्मिलित हैं।

इस दिशा में कार्य करने वाली अग्रगण्य संस्था थी "फीमेल जुवेनाइल सोसाइटी"। इसका संगठन १८१९ में कलकत्ता तथा उसके निकटवर्ती क्षेत्रों की बालिकाओं के लिए निःशुल्क शिक्षा देने के लिए स्कूल खोलने के लिए हुआ था। श्रीमती लासन तथा श्रीमती पीयर्स ने बैप्टिस्ट मिशन के सहयोग से यह कार्य आरंभ करने की योजना बनाई[४]।

---

१. Majumdar, R.C. - British Paramountcy and Indian Renaissance Pt. II, Vol. X, p. 286.

2. Ibid, p. 285.

3. Malley, L.S.O. - Modern India and the West, p. 455.

4. Bajal, J.C. - Women's Education in Eastern India (First Phase), p. 2.

"कलकत्ता जर्नल"[१] ने इस सोसाइटी की द्वितीय रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण दिया है, जिसमें इसके कार्यों पर प्रकाश पड़ता है। इस रिपोर्ट के अनुसार इस सोसाइटी के व्यय पर पढ़ने वाली छात्राओं की संख्या २१ से ७१ हो गई थी। सोसाइटी के ७४ छात्राएं महिला शिक्षिकाओं के नेतृत्व में थीं तथा ३, (दो शाम बाज़ार तथा एक जुन्न बाज़ार में) स्कूल मास्टर के नेतृत्व में। इन स्कूलों का नाम उन्हीं स्थानों पर था, जहां इनकी संचालिका महिलाएं निवास करती थीं। १८२३ तक कलकत्ता तथा उसके निकटवर्ती स्थानों में इस सोसाइटी के स्कूलों की संख्या बढ़ कर आठ हो गई थी।[२] १८२६ तक इस संस्था की रिपोर्ट मिलती है, जिसके अनुसार इस समय इसके द्वारा संचालित स्कूलों की संख्या २० थी।[३] इसके पश्चात् इसके कार्यों का उल्लेख प्राप्त नहीं है। यद्यपि इन शिक्षण संस्थाओं में निम्नवर्गीय बालिकाएं ही आती थीं। तथापि "फीमेल जुवेनाइल सोसाइटी" इस दिशा में प्रथम थी।

द्वितीय उल्लेखनीय नाम "लेडीज़ सोसाइटी" का है। इसका जन्म २५ मार्च १८२४ को कलकत्ता में हुआ था। गवर्नर जनरल श्री अमहर्स्ट की पत्नी श्रीमती अमहर्स्ट इसकी संरक्षिका थीं तथा १३ अन्य यूरोपीय महिलाएं इसकी सदस्या थीं। श्रीमती विल्सन तथा श्रीमती एलर्टन इसकी प्रमुख कार्यकर्त्री महिलाएं थीं।

"लेडीज़ सोसाइटी" ने अपना कार्य २४ बालिका विद्यालयों की स्थापना से आरंभ किया जिसमें ४०० बालिकाएं भर्ती की गई थीं। कालान्तर में स्कूलों की संख्या ३० हो गई। परन्तु इस सोसाइटी का सबसे अधिक उल्लेखनीय कार्य, जो इसका मुख्य उद्देश्य भी था, था कलकत्ता में १८ मई १८२६ को एक "केन्द्रीय महिला विद्यालय" की स्थापना करना। इस सम्बन्ध में सबसे अधिक सहायता राजा वैद्यनाथ राय से प्राप्त हुई। उन्होंने उदारतापूर्वक २० हज़ार की धनराशि इस स्कूल की स्थापना के लिए दान दी।[४] उनकी रानी की शिक्षा में विशेष अभिरुचि थी। इस स्कूल में बालिकाओं

---

१. The Calcutta Journal, March 11, 1822.

२. Bajal, J.C. - Women's Education in Eastern India (First Phase), p. 15.

३. Government Gazette, June 26, 1829.

४. Bajal, J.C., Women's Education in Eastern India (First Phase) p. 29.

की संख्या आरम्भ में ६०० थी । यह ऐतिहासिक स्कूल आज भी कार्नवालिस स्क्वायर के दक्षिण-पूर्व में स्थित है तथा स्काटिश चर्च कालेज के प्रबन्धक द्वारा यहाँ महिलाओं के लिए बी०टी० की कक्षाएं लगती हैं ।

एक दीर्घ काल तक कार्यरत रहने पर भी इसस्कूल को सफलता प्राप्त न हो सकी तथा शीघ्र ही सम्मानित भारतीयों ने सहायता देना अस्वीकार कर दिया । इसका कारण था कि इसमें ईसाई धर्म को ही शिक्षा का मुख्य विषय माना गया था तथा शिक्षित की जाने वाली वह निम्नवर्गीय बालिकाएं थीं, जिनका प्रवेश उच्च-कुलों में निषिद्ध था, इस कारण और भी कि उनकी शिक्षा न्यू टैस्टामैंट तक ही सीमित थी ।[१]

इस क्षेत्र में कार्यरत अन्य संस्था थी" लेडीज़ एसोसियेशन" । दुर्भाग्यवश इस संस्था की सेवाओं का विवरण पुस्तकों में अधिक प्राप्त नहीं है । श्री जेम्स लांग की पुस्तक" हैंड बुक आफ बंगाल मिशन"[२] ही एकमात्र ऐसा साक्ष्य है जिसमें इस संस्था के कार्यकलापों का संक्षिप्त विवरण मिलता है । जेम्स लाग के अनुसार "इस संस्था का जन्म १८२४ में, कलकत्ता के उन भागों में जो"लेडीज़ सोसाइटी फार नेटिव फीमेल एजुकेशन" की पहुँच के बाहर थे, प्रदेशीय बालिकाओं के लिए स्कूल खोलने के लिए हुआ था । इसने लगभग १० वर्षों तक उन्हीं सिद्धान्तों पर, यद्यपि सीमित क्षेत्र में, कार्य किया जिन पर"केन्द्रीय स्कूल" आधारित था ।"[३] सरकारी गजट में प्राप्त संक्षिप्त सूचना के अनुसार इस संस्था ने ६ स्कूल खोले थे ।[४] १८२७ में इसने ६ अन्य स्कूल खोले ।[५] ईसाई मत पर आधारित होने के कारण ये स्कूल जन-

---

1. "The Reformer", December 19, 1831 (Ed.) by Prasanna Kumar Tagore.
2. Long, James - Hand Book of Bengal Missions (1848), pp.439-40.
3. Ibid.
4. Government Gazette: Supplement for February 20, 1826.
5. Ibid.

प्रिय न हो सके । डा० टामस स्मिथ लिखते हैं "हमारी यह तीव्र इच्छा है कि भारत ईसाई हो जाए और इस उद्देश्य की ओर ले जाने के लिए हम नारी-शिक्षा को भी महत्त्वपूर्ण मानते हैं ।"[१] यही विचार था जिसने निम्नवर्गों के मध्य भी नारी-शिक्षा की प्रगति को बढ़ने से रोका ।

इस क्षेत्र में सबसे अधिक उल्लेखनीय कार्य था जान इलियट ड्रिंक वाटर बेथ्यून का । श्री बेथ्यून गवर्नर जनरल की कार्य कारिणी परिषद् के कानून सदस्य थे तथा बाद में शिक्षा-परिषद् के अध्यक्ष नियुक्त हुये थे । श्री बेथ्यून भारतीय बालिकाओं की शिक्षा के बहुत बड़े समर्थक थे । १८४६ में उन्होंने एक धर्म-निरपेक्ष बालिका विद्यालय की स्थापना की । लार्ड डलहौजी को इस सम्बन्ध में अपना उद्देश्य लिखते हुए बेथ्यून ने कहा कि "मिशनरी स्कूलों में सम्मानित कुलों की बालिकाओं के न जाने के कारण तथा सरकारी स्कूलों के प्रति देशवासियों का विश्वास दिलाने और प्रभाव डालने के उद्देश्य ने मुझे इस प्रकार का स्कूल स्थापित करने की प्रेरणा दी, जिसमें धार्मिक शिक्षा का अभाव है । यद्यपि इस बंधन के कारण मैं योग्य महिला शिक्षक प्राप्त करने की कठिनाई से भिज्ञ हूँ । अंग्रेजी केवल उन्हीं लोगों को पढ़ाई जायेगी, जिनके अभिभावक ऐसा चाहेंगे । शेष सभी बंगाली तथा सरल कार्यों में शिक्षित होंगे ।"[२]

बेथ्यून को इस स्कूल की स्थापना करने में भारतीयों से भी सहायता मिली । इनमें प्रथम थे बाबू रामगोपाल घोष, जो बेथ्यून के प्रमुख सलाहकार थे । द्वितीय थे प्रसिद्ध जमींदार बाबू दक्षिणारंजन मुकर्जी, जिन्होंने स्कूल के लिए ५ बीघा भूमि का दान दिया तथा तृतीय थे पंडित मदन मोहन तर्कालंकार, जिन्होंने न केवल अपनी दो पुत्रियों को इस स्कूल में भेजा, अपितु नियमित रूप से पाठशाला के कार्यों में रुचि भी ली ।[३]

---

1. 'Native Female Education' in 'The Calcutta Review', July - Sept. 1855.
2. Bombay Educational Record, Vol. 2, p. 52, Bombay Educational Department, Vols. 1-30, 1861-94.
3. Selections from Educational Records, Pt. II, pp. 52-3

बेथ्यून ने समय समय पर अपने भाषणों में नारी-शिक्षा के लिए आवाज उठाई। परन्तु दुर्भाग्यवश १२ अगस्त १८५१ में उनकी असमय मृत्यु ने नारी शिक्षा के इस प्रचारक को उठा लिया। उनका नारी शिक्षा के प्रति लगाव इस प्रचारक को उठा लिया। उनका नारी-शिक्षा के प्रति लगाव इसी बात से परिलक्षित होता है कि अपनी मृत्युलेख में उन्होंने अपनी कलकत्ता की ३०,००० की सम्पत्ति स्कूल को दान दे दी थी। तत्पश्चात् स्कूल का भार स्वयं लार्ड और लेडी डलहौजी ने सँभाला। १८५६ में इस स्कूल के लिए एक स्थायी प्रबन्धक समिति निर्मित की गई। इस समिति के निर्माण के साथ-साथ स्कूल ने नई दिशा में कदम रखा और नारी-शिक्षा के प्रचार के लिए अनवरत सेवाएं कीं।

नारी-शिक्षा के प्रचारक के रूप में कुछ प्रसिद्ध प्रगतिवादी भारतीयों के प्रयत्न भी अप्रासंगिक नहीं होंगे। इनमें प्रसिद्ध थे राजाराममोहन राय, राजा राधाकान्त देव, राजा वैद्यनाथ राय तथा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर। प्रथम तीन की सेवाओं का वर्णन किया जा चुका है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर इस क्षेत्र में बेथ्यून के सहायक थे तथा १८५१ में इसकी प्रबन्धक समिति के सदस्य भी नियुक्त हुए। "स्कूल निरीक्षक" की हैसियत से उन्होंने दक्षिण बंगाल का दौरा किया तथा हुगली, बर्दवान, मिदनापुर तथा नादिया में अनेक महिला विद्यालय खोले।[1]

मोतीलाल सील, एक अन्य सुधारक, नारी-शिक्षा के भी पक्षपाती थे। उन्होंने श्री हलधर मलिक के सहयोग से १८३७ में एक संस्था बनाने का विचार किया जिसके दो उद्देश्य रहे यथ-प्रथम विधवा-विवाह का हिन्दुओं में प्रचार तथा द्वितीय भारतीय नारियों को शिक्षा के मूल्य से परिचित कराना।[2]

श्री के०एम० बनर्जी ने १८४० में नारी-शिक्षा के ऊपर एक प्रभावशाली निबन्ध लिखा तथा इसके लिए पुरस्कृत हुए।[3] इसी प्रकार १८४५ में श्री जयकृष्ण

---

1. Bajal, J.C. - Women's Education in Eastern India (First Phase) p. 96.

2. Sambad Patre Sekaler Katha, Vol. II (IIIrd ed.) pp.98-9. Quoted in J.C. Bajal, Women Education in Eastern India (Ist phase), p. 70.

मुखर्जी तथा राजकृष्ण मुखर्जी, दी समाज सेवी जमींदारों ने शिक्षा परिषद् में एक महिला स्कूल खोलने के सम्बन्ध में आर्थिक सहायता की मांग की । इस स्कूल का आधा व्यय वे स्वयं उठाने को तत्पर थे ।[१]

लगभग इसी समय (१८४७) बरासत (२४ परगना) में एक बालिका विद्यालय की स्थापना हुई । इसके प्रमुख संस्थापक थे हिन्दू कालेज के पूर्वछात्र पीयरीचरन सरकार तथा उनके सहायक थे डा० नवीन कृष्ण मित्र तथा उनके छोटे भाई कालीकृष्ण मित्र ।[२]

बम्बई में इस दिशा में कार्यरत प्रमुख तीन महिलाएं थीं — फ्रांसिना सौराब जी, रामाबाई राना डे तथा पंडिता रामाबाई । फ्रांसिना सौराबजी का प्रमुख उद्देश्य शिक्षा था । सभी वर्गों के बच्चों को अपने स्कूल में भर्ती करके उन्होंने एकता लाने का प्रयत्न किया । उनकी शिक्षा पद्धति को सीखने के उद्देश्य से लोग बाहर से आते थे । पूना में उन्होंने महान् क्रियात्मक शिक्षण कार्य किया ।[३]

रामबाई राना डे, सौराबजी की प्रमुख सहायिका थीं । परन्तु जहां सौराब जी शिक्षा के क्षेत्र में संलग्न थीं, वहां रामाबाई राना डे ने विधवाओं की आर्थिक स्थिति को सुधारने का कार्य किया ।[४]

पंडिता रामाबाई अग्रगण्य सुधारक महिला थीं । उन्होंने अपना जीवन नारी-जाति की सेवा के लिए उत्सर्ग कर दिया था । १८८९ में उन्होंने बम्बई में "शारदासदन" की स्थापना की जिसका उद्देश्य था नारियों को, विशेषकर विधवाओं को शिक्षित करना । १९०० तक उनके द्वारा संचालित इस प्रकार के विभिन्न "सदनों" में नारी-संख्या दो हजार तक पहुंच गई थी ।[५]

---

1. Ibid. p. 74.
2. Ibid. p. 77.
3. Majumdar, R.C. - British Paramountcy and Indian Renaissance Pt. II, p. 313.
4. Ibid.
5. Ibid. 314.

इसके अतिरिक्त तत्कालीन पत्र एवं पत्रिकाएं भी इस दिशा में सहायक सिद्ध हुईं । ये पत्रिकाएं अधिकतर नवीन शिक्षा द्वारा शिक्षित भारतीयों द्वारा संपादित थीं । इनमें प्रसिद्ध थीं के०एम० बैनर्जी का "दी इन्क्वायरर" रसिक कृष्ण मलिक तथा दक्षिणारंजन मुकर्जी का "ज्ञानन्वेषुन" रामगोपाल घोष तथा ताराचन्द चक्रवर्ती का "दी बंगाल स्पेक्टेटर ।" पीयरी चंद मित्रा तथा राधानाथ सिकदार ने "मासिक पत्रिका" का संपादन किया जो विशेषकर महिलाओं के लिए ही प्रकाशित की जाती थी । "समाचारदर्पण" भी इस दिशा में उल्लेखनीय सेवाएं अर्पित कर रहा था ।[१]

बीसवीं शताब्दी में सामान्य जागरण तथा नारी के प्रति समाज का परिवर्तित दृष्टिकोण—नारी-शिक्षा के संदर्भ में —

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नारी-शिक्षा के क्षेत्र में किए गए उपरोक्त प्रयत्न मात्र प्रारम्भिक ही कहे जा सकते हैं । इनका महत्व केवल इसी बात में है कि उन्होंने आगामी सुधारों की नींव रखी तथा भविष्य के लिए मार्ग-दर्शन किया । वास्तव में बीसवीं सदी का प्रारंभिक चरण चतुर्दिक जागरण का समय था । इसी समय प्रारम्भिक मान्यताओं को तोड़कर भारत ने संयुक्त रूप से लगभग प्रत्येक क्षेत्र में मोर्चा लिया । यही वह समय था जब कि भारत में नारी-उद्धार के लिए जनमत तैयार हो रहा था । नारी जाति के प्रति किए गए अनवरत अत्याचार तथा इसके कारण देश की जो नागरिक जीवन हानि हो रही थी, उसका अनुभव भारतीयों को हो चुका था । इस शताब्दी के आरंभ में ही भारत के प्रमुख नगरों में विभिन्न नारी संगठनों का निर्माण-कार्य भी प्रारम्भ हो चुका था । बम्बई और पूना की "सेवा सदन सोसाइटी", अड्यार (मद्रास) का "भारतीय महिला संघ", जिसकी लगभग ५० शाखाएं फैली थीं, इसी शताब्दी के प्रथम २० वर्षों की देन थीं । १९१७ में "सामाजिक सुधार सभा" ने अपने एक प्रस्ताव में यह घोषित

---

१. Bagal, J.C. - Women's Education in Eastern India (First Phase), p. 78.

किया कि किसी भी क्षेत्र में कार्य करने के लिए लिंग भेद की अयोग्यता नहीं होनी चाहिए। १९१६ में श्रीमती एनी बेसैन्ट के बन्दी होने पर भारतीय नारियों ने उनकी रिहाई के लिए विरोध सभाओं का आयोजन किया तथा जुलूस निकाले। परन्तु अपने संवैधानिक अधिकारों के लिए की गई माँग के रूप में भारतीय नारियों का सबसे महत्वपूर्ण संगठन बना १९१७ में, जिसने एकमत से भारत सचिव के आगमन के समय प्रथम बार स्पष्ट रूप से नागरिक अधिकारों व शैक्षिक सुविधाओं के लिए माँग रखी। उसी समय से भारतीय राजनीतिक जीवन के लगभग प्रत्येक वर्ग में एकमत होकर इस बात को स्वीकार किया कि भारत में भी नारियों को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका उचित भाग मिलना चाहिए। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी इसी समय एक विज्ञप्ति के द्वारा प्रत्येक नागरिक को समता का अधिकार प्रदान किया। श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीमती रामाबाई राना डे, कु० कार्नीलिया सौराब जी, श्रीमती कमला बोस आदि महिलाओं के रूप में भारतीय नारियों ने अपना सच्चा प्रतिनिधित्व प्राप्त किया। प्रथम व द्वितीय दो विश्वयुद्धों ने नारियों के लिए आर्थिक स्वतंत्रता के विचार को प्रोत्साहन दिया। इसी प्रकार भारतीय राजनीतिक आन्दोलनों ने भी नारियों को संगठित होने और नागरिक अधिकारों के प्रति सजग करने का अवसर प्रदान किया। १९२० का असहयोग, १९३० का सत्याग्रह आन्दोलन, तथा १९४२ का भारत छोड़ो आन्दोलन—महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित ये सभी आन्दोलन सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में भारतीय नारियों को अपना स्थान दिलाने में समर्थ थे। इन सभी आन्दोलनों के समय नारियों ने भी पुरुषों के समान कानून भंग करने के अपराध में समान रूप से लाठियाँ खाईं व जेल यात्रा की। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि महात्मा गांधी द्वारा आयोजित इन विभिन्न आन्दोलनों, जिसने नारी को राजनीतिक जीवन में कार्य करने के योग्य बनाया, के द्वारा भारतीय नारी का उद्धारकार्य प्रारंभ हुआ।

नारी-शिक्षा की प्रगति —१९०० से १९४७ तक

नारी-शिक्षा का महत्व व आवश्यकता यद्यपि अनुभव की जा रही थी, परन्तु व्यवहारिक रूप में अभी परिणित नहीं की जा सकी थी। १९२१ की रिपोर्ट के अनुसार भारत में नारियों के मध्य साक्षरता दस लाख मात्र दो प्रतिशत थी।[१]

निम्नलिखित तालिका १६२१ में शिक्षा की प्रगति दर्शाती है [१] :—

प्रान्त तथा नारी-जनसंख्या मिलियन में	शिक्षित प्रतिशत	
	पुरुष	नारी
मद्रास (२१ मिलियन नारियां	१५ ' २	२ ' १
बम्बई (६ ,, ,,)	१६ ' १	२ ' ५
बंगाल (२२ ,, ,,)	१५ ' ६	१ ' ८
यूनाइटेड प्राविन्स(२१ मिलियन नारियां	६ ' ५	० ' ६
पंजाब (६ मिलियन नारियां)	६ ' ७	० ' ८
बर्मा (६ मिलियन नारियां)	४४ ' ६	६ ' ७
बिहार तथा उड़ीसा (१७ मिलि०नारियां	८ ' ८	० ' ६
सैन्ट्रल प्राविन्स (७ ,, ,,)	८ ' ४	० ' ७
आसाम (३ ,, ,,)	११ ' ०	१ ' ३
ब्रिटिश भारत (१२० ,, ,,)	१३ ' ०	१ ' ८

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि उस समय तक ब्रिटिश भारत में ५० नारियों में लगभग १ नारी (या उससे भी कम) लिख-पढ़ सकती थी । १६११ से १६२१ तक, इन दस वर्षों की प्रगति के अनुसार पुरुषों के मध्य साक्षरता १ ' ७ प्रतिशत तथा नारियों के मध्य ० ' ७ प्रतिशत बढ़ी थी । अतः १६२१ की तालिका के अनुसार उस समय नारी और पुरुष के मध्य साक्षरता में बहुत बड़ा अन्तर था ।

---

१. Ibid, p. 146.

भारतीय शिक्षा आयोग (१८८२-८३)

इसके पूर्व इस क्षेत्र में किए गए प्रयत्नों के रूप में १८८२-८३ के भारतीय शिक्षा आयोग ने अपने कुछ सुझाव रखे थे । अपनी रिपोर्ट में आयोग ने कहा कि भारत में नारी शिक्षा सबसे अधिक पिछड़ी हुई है, अत: इसके लिए अधिक से अधिक धनराशि की आवश्यकता है । इसके अतिरिक्त आयोग ने कुछ अन्य सुझाव भी रखे जैसे छात्रवृत्ति प्रणाली को अपनाना, छात्रावासों का निर्माण, माध्यमिक शिक्षा के विस्तार का अवसर देना, महिला शिक्षिकाओं के प्रशिक्षण को बढ़ावा देना, महिला निरीक्षिका की नियुक्ति करना तथा गैर सरकारी तत्त्वों से सहयोग की मांग करना ।[१]

कर्ज़न-प्रस्ताव (१९०४)

१९०४ में लार्ड कर्ज़न ने शिक्षा सम्बन्धी एक सरकारी प्रस्ताव में कहा कि "यद्यपि नारी-शिक्षा के क्षेत्र में कुछ उन्नति हुई है परन्तु सम्पूर्ण रूप से यह अब भी पिछड़ी हुई स्थिति में है । १९०१ तथा १९०२ में सार्वजनिक स्कूलों में छात्राओं की संख्या ४४४, ४७० थी । स्कूल जाने योग्य आयु की बालिकाओं की संयुक्त संख्या के संदर्भ में सार्वजनिक स्कूलों में पढ़ने वाली बालिकाओं का प्रतिशत १८८६-८७ में १.५८ से बढ़कर १९०१-०२ तक २.४९ हो गया था ।"[२]

सरकारी प्रस्ताव (१९१३)

इस क्षेत्र में तीसरा महत्त्वपूर्ण कदम था शैक्षिक नीति सम्बन्धी १९१३ का सरकारी प्रस्ताव । नारी-शिक्षा के संदर्भ में इसमें कहा गया कि "बालिकाओं की शिक्षा संगठित है । सामाजिक प्रथाओं के कारण इस शिक्षा में विशेष कठिनाई सामने आई है । शुल्क तथा छात्रवृत्ति के सम्बन्ध में बालिकाओं के साथ उदारता

---

1. Indian Education Commission, Report of the Indian Education Commission, 1882-83, pp. 545-48.
2. Problems in Education : Women and Education UNESCO, p. 111.

का व्यवहार किया गया है । यह योजना निरन्तर रही है । सफलतापूर्वक इस बात के भी प्रयत्न किए गए हैं कि "अध्यापिका" के माध्यम से पर्दे में रहने वाली नारियों तक शिक्षा पहुंच सके, निरीक्षक संघ में महिलाओं की संख्या बढ़ाई जाए तथा सरकारी एवं अनुदान प्राप्त स्कूलों में पुरुष शिक्षकों के स्थान पर महिला शिक्षिकाओं की नियुक्ति की जाए । स्कूलों में बालिकाओं की संख्या ४४४, ४७० (१६०१-२) से बढ़कर ८६४,३६३ (१६१०-११) हो गई थी, परन्तु फिर भी उनकी जनसंख्या देखते हुए यह संख्या प्रभावशाली नहीं है । भारत सरकार का विचार है कि कुछ स्थानों पर नारी-शिक्षा को प्रोत्साहन देने की प्रवृत्ति बढ़ रही है । "बालिकाओं की शिक्षा के सम्बन्ध में तात्कालिक समस्या है सामाजिक विकास की । परम्परागत प्रथाएं एवं विचार, जो नारी-शिक्षा के विरोधी हैं, भारत के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार से सुलझाने चाहिए । इसी कारण" परिषद् सहित गवर्नर जनरल" एक ऐसी सामान्य नीति बनाने में झिझकती है, जो स्थानीय सरकारों तथा शासन के कार्यों में बाधक हो । इसलिए उसने विभिन्न प्रान्तों के लिए पृथक-पृथक योजना निर्मित की है । परन्तु निम्नलिखित नियम सामान्य रूप से सभी के लिए हैं :–

(क) सामाजिक जीवन में उन्हें जिस स्थिति को प्राप्त करना है उसके अनुरूप बालिकाओं की शिक्षा व्यवहारिक होनी चाहिए ।

(ख) बालकों के योग्य शिक्षा से बालिकाओं की शिक्षा प्रणाली आकर्षित नहीं होनी चाहिए और न ही उसे परीक्षा-पणाली द्वारा नियंत्रित होना चाहिए ।

(ग) सफाई तथा स्कूल की स्थिति पर विशेष ध्यान देना चाहिए ।

(घ) महिलाओं को शिक्षिका या निरीक्षिका के पदों पर आसीन करना चाहिए, तथा

(ङ) निरीक्षण तथा नियंत्रण की निरन्तरता विशेष उद्देश्य होना चाहिए ।

" देश के विभिन्न भागों में स्थापित स्कूलों के लिए योग्य शिक्षिकाओं की समस्या को अनुभव किया गया है । इस अभाव की पूर्ति के लिए यह सुझाव रखा गया कि ऐसी विदेशी महिलाओं को लेना चाहिए जिन्हें स्थानीय भाषा का ज्ञान हो तथा जो इस कार्य के लिए विशेष प्रशिक्षित हों ।[१] इस प्रस्ताव में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था की आलोचना भी की गई तथा सुधार के सुझाव भी रखे गए ।

---

१. Ibid, pp. 111-112.

राजनीतिक तथा सामाजिक परिवर्तन : (१९२२ से १९४७) नारी-शिक्षा पर उनका प्रभाव --

१९२२ से १९४७ तक का समय भारतीय शिक्षा के इतिहास में महत्वपूर्ण परिवर्तनों का है । जनवरी १९२१ में संवैधानिक सुधारों के परिणामस्वरूप ब्रिटिश भारत में शिक्षा के नियंत्रण के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए । इसके अतिरिक्त यही वह समय था जिसमें भारत ने दो विश्व युद्धों और उनका आर्थिक व सामाजिक प्रभाव अनुभव किया, राष्ट्रीय जागरण की अनुभूति की, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में प्रगति की तथा अन्त में स्वराज्य प्राप्त कर देश का विभाजन देखा ।

राजनीतिक दृष्टि से भारत अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हो चुका था । इंगलैण्ड तथा अमेरिका के महिला आन्दोलनों ने भारत में भी नारियों को उद्बोधन के लिए प्रेरित किया । यह कहना अनुचित न होगा कि भारतीय नारियों के सामान्य अधिकारों के संघर्ष का अर्धभाग इंगलैण्ड तथा अमेरिका में विजित किया जा चुका था ।

१९१९ में मान्टेग्यू-चेम्सफर्ड के संवैधानिक सुधारों के फलस्वरूप शिक्षा विभिन्न राज्यों के भारतीय मंत्रियों के हाथों में आ गई थी । भारतीय मंत्रीगण शिक्षा को अनिवार्य तथा नि:शुल्क बनाना चाहते थे । इसके लिए विभिन्न राज्यों की व्यवस्थापिकाओं द्वारा अधिनियम पारित किए गए । परन्तु एक कठिनाई थी, वे मंत्री "वित्त" को नियंत्रित नहीं करते थे, अत: स्थानीय अधिकारी धनराशि के अभाव में इस योजना को कार्यरूप में परिणित नहीं कर सकते थे । हम देखते हैं कि १९३२ में ३५३ मिलियन जनसंख्या में केवल २४ लाख व्यक्ति ऐसे थे जो पढ़े-लिखे कहे जा सकते थे । इस विशाल जनसंख्या वाले देश में केवल ५३ नगरीय तथा ३,३६२ ग्रामीण क्षेत्र ऐसे थे जो अनिवार्य शिक्षा योजना के अन्तर्गत थे । इन ग्रामीण क्षेत्रों में से ३००० के पास अपने व्यक्तिगत स्कूल थे ।[१]

---

१. Progress of Education in India; Quinquennial Review 1927-32, pp. 14-15, Delhi Bureau of Education, 1886-1937, II Vols.

१९२७ तक सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत में बालकों की संख्या प्राइमरी स्कूलों में ४ गुनी, मिडिल स्कूलों में १८ गुनी तथा हाईस्कूलों में ३४ गुनी अधिक थी। कलात्मक कालेजों में ६४,००० पुरुष तथा १,६०० नारियाँ थीं।[१]

इस काल में भारतीय सुधारकों ने नारियों की सामाजिक अयोग्यता को दूर करने में महत्वपूर्ण सहयोग दिया। शिक्षित भारतीयों के मध्य लड़कियों की विवाह की आयु बढ़ गई थी तथा आर्थिक दबाव के कारण प्राचीन संयुक्त परिवार प्रणाली शनैः शनैः समाप्त सी हो रही थी। शारदा ऐक्ट ने बालिकाओं के विवाह की न्यूनतम आयु १४ वर्ष नियत की। इसके अतिरिक्त उत्साही सुधारकों द्वारा स्थापित विभिन्न व्यक्तिगत संघों ने विधवा-विवाह का प्रचार किया तथा नारियों के प्रति उचित सामाजिक व्यवहार की माँग रखी। इन सब तत्वों ने नारी-शिक्षा की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

१९२७ में प्रथम " अखिल भारतीय महिला सम्मेलन " पूना में संगठित किया गया। उसी समय से वार्षिक सम्मेलनों का श्रीगणेश हुआ जिसमें महत्वपूर्ण विषयों जैसे सामाजिक सुधार, शैक्षिक प्रगति, महिलाओं का राजकीय तथा केन्द्रीय व्यवस्थापिकाओं में प्रतिनिधित्व तथा विभिन्न नौकरियों में नारियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में विचार प्रकट किए जाते थे।

इस सम्मेलन के विभिन्न विभागों में अपने अपने नियत कार्यों को उत्साहपूर्वक संपादित किया। उदाहरणार्थ सामाजिक सुधार विभाग ने १९३० में आयोजित नारियों के उत्तराधिकार सम्बन्धी कानूनों के सुधार के सम्बन्ध में किए गए संघर्ष में सक्रिय भाग लिया। इसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में प्रचार के अतिरिक्त इस सम्मेलन की विभिन्न स्थानीय सदस्यों और समितियों ने अनेक महत्वपूर्ण और रचनात्मक कार्य किए, जैसे बालिका विद्यालयों की स्थापना, औद्योगिक स्कूलों का निर्माण, पिछड़े वर्गों के बच्चों के लिए स्कूलों की व्यवस्था, प्रौढ़शिक्षा का आयोजन,

---

१. Interim Report of the Indian Statutory Commission, 1929, pp. 147-148.

मातृत्व कार्यों और बाल-कल्याण की अपूर्व व्यवस्था का अनुष्ठान । १९३० के बाद से इस सम्मेलन ने और भी अधिक उत्साही कार्यवाहियों में भाग लिया । शारदा ऐक्ट के पारित होने के समय सम्मेलन ने बाल-विवाह के विपक्ष में प्रभावशाली प्रचार किया तथा सरकार से हिन्दुओं के लिए विवाह-विच्छेद अधिनियम की भी माँग की ।[१] श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीमती एनी बेसेन्ट, लेडी अबाला-बोस, श्रीमती पी०के० रे,राजकुमारी अमृत कौर, श्रीमती हन्ना सेन, श्रीमती विजय-लक्ष्मी पंडित तथा बेगम हामीद अली आदि योग्य महिलाओं के नेतृत्व में भारतीय नारियों का उद्धार कार्य उल्लेखनीय है ।

महात्मा गांधी का कार्य भी इस काल में विशेष महत्व रखता है । वह स्त्री और पुरुष के प्रति समान व्यवहार में विश्वास रखते थे । उनके लेखों ने नारी-स्थिति को ऊँचा उठाने में महत्त्वपूर्ण योग दिया । मानवता प्रेमी तथा प्रत्येक क्षेत्र में अन्याय के विरोधी गांधी जी का ध्यान नारियों की शोचनीय स्थिति की ओर जाना स्वाभाविक ही था । उन्होंने यह सुधार कार्य अपने घर से प्रारम्भ किया - उनका व्यवहार अपनी पत्नी के प्रति बदल गया और इस परिवर्तन से सम्पूर्ण नारी-जाति के सुधार-कार्य का प्रारम्भ हुआ । अपने प्रभावशाली लेखों के माध्यम से गांधी जी ने धर्म, प्रथाओं, तथा कानूनों के नाम पर नारियों पर किए गए अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाई । उन्होंने निर्भीकतापूर्वक बाल्य-वैधव्य, पर्दा, देवदासी, वेश्यावृत्ति, बाल-विवाह, दहेज प्रथा तथा आर्थिक पर-तंत्रता के सम्बन्ध में भाषण दिए । इस सम्बन्ध में विस्तृत विवरण अध्याय-३ में किया जा चुका है ।

१९२२ के पूर्व प्रथम विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप व्याप्त आर्थिक कठिनाइयों के कारण शैक्षिक क्षेत्र में व्यय कम कर दिया गया । परन्तु इसके साथ ही अधिक शैक्षिक सुविधाओं की माँग सम्पूर्ण भारत से आ रही थी, इसमें नारी-शिक्षा की माँग अग्रगण्य थी । इस बात की पुष्टि निम्नांकित उद्धृत पंक्तियों से की जा

---

१. Problems in Education : Women and Education, UNESCO, p. 100.

सकती है :- "जनता की इस रुचि का अनुभव नारी-शिक्षा के क्षेत्र में देखा जा सकता है । भारतीय नारी शैक्षिक तथा अन्य संघों और संगठनों एवं सलाहकार समितियों के माध्यम से, अपनी सम्पूर्ण शक्ति से इस क्षेत्र में गंभीरतापूर्वक इस बात का प्रयास कर रही थीं कि बालिकाओं की शिक्षा भी कम से कम उस स्तर पर आ जाए, जिस स्तर पर बालकों की शिक्षा है । अंधविश्वास और सामाजिक प्रथाएं समाप्त होने में समय ले रही हैं, परन्तु यह हर्ष पूर्वक स्वीकार किया जा रहा था कि देश के भव्य भविष्य के महत्वपूर्ण तत्व के रूप में एवं सार्वजनिक जीवन के लिए सभी, वर्गों की नारियों की शिक्षा आवश्यक है । इस विश्वास को स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि जनमत शिक्षित किया जाए, और जन-मत की शिक्षा का शीघ्र और उत्तम उपाय है स्वयं नारियों द्वारा उदाहरण प्रस्तुत करना तथा प्रचार कार्य, जो महिलाओं के विभिन्न संघों द्वारा सम्पूर्ण भारत में किया जा रहा है । संभवत: भारत के इतिहास में, किसी भी युग में शिक्षा और नारी-स्थिति के भविष्य के सम्बन्ध में इतने अधिक आशावादी चिह्न नहीं रहे हैं, जितने कि इस वर्तमान आन्दोलन में, जिसमें जनमत की मांग बालिकाओं और नारियों की शिक्षा के लिए संगठित और मुखरित हो उठी है । यह मांग केवल महिलाओं द्वारा ही नहीं की गई है, अपितु देश के कुछ जागृत पुरुषों द्वारा भी जिन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि किसी नारी को शिक्षा देकर तुम न केवल एक व्यक्ति को शिक्षित कर रहे हो, बल्कि एक ऐसा साधन उत्पन्न कर रहे हो जो शिक्षा के परिणामों को सम्पूर्ण परिवार द्वारा फैलायेगा ।"[१]

१९२२ से १९२७ तक नारी-शिक्षा के क्षेत्र में अपूर्व प्रगति हुई । इस समय स्कूलों में बालिकाओं की संख्या ५००,००० थी, जबकि इससे पूर्व के पिछले ५ वर्षों में ये संख्या १८०,००० थी ।[२] यह संख्या ३०.६ प्रतिशत अधिक है । इसके पूर्व के

---

१. Progress of Education in India; Quinquennial Review 1922-27, Delhi Bureau of Education.

२. Progress of Education in India (1922-27 By R. Little hailes) ninth quinquennial Review, Vol. I, p. 152.

पिछले ५ वर्षों में १६.२ प्रतिशत संख्या में बढ़ती हुई थी ।[१] इन ५ वर्षों में केवल १८ प्रतिशत बालिकाएं और बढ़ीं, इस दृष्टि से छात्राओं की उपरोक्त संख्या संतोषजनक है । प्राइमरी स्कूलों में बालिकाओं की संख्या बढ़कर ३५०,००० हो गई थी, जबकि इससे पूर्व के ५ वर्षों में यह संख्या १६०,००० बढ़ी थी । इसी-प्रकार इस समय विशेष स्कूलों और कालेजों में अध्ययनरत बालिकाओं की संख्या ३५०० से अधिक थी ।[२] इस बढ़ती हुई संख्या के होते हुए भी कुछ ही बालिकाएं हाईस्कूल तक पढ़ती थीं, तथा उनमें से विरली ही हाईस्कूल के बाद कोई विश्व-विद्यालय तक जाती थीं । इस समय सम्पूर्ण भारत में केवल १६०० नवयुवतियाँ कला-त्मक कालेजों में पढ़ रही थीं ।[३] उपरोक्त संख्याएं अध्ययनरत बालकों की संख्या को देखते हुए बहुत कम थी । १६२८ की शैक्षिक प्रगति का विवरण हार्टाग समिति की रिपोर्ट में स्पष्ट मिलता है । इस रिपोर्ट में वर्तमान शिक्षा प्रणाली के दोषों की ओर संकेत किया गया तथा भविष्य के लिए सुझाव भी रखे गए । नारी-शिक्षा के सम्बन्ध में इस समिति ने कहा कि :-

(१) बम्बई प्रान्त में नारी-साक्षरता सबसे अधिक है ।

(२) बालिकाओं और बालकों की शिक्षा के मध्य महान् अन्तर है । यह अन्तर प्रतिवर्ष बढ़ता ही जा रहा है ।

(३) नारी शिक्षा पर व्यय-बालकों की शिक्षा से न्यून है । यह अन्तर बढ़ रहा है, जबकि अधिक कठिनाइयाँ होने के कारण बालिकाओं की शिक्षा अधिक महंगी होनी चाहिए........... ।

(४) भारत में बालिकाओं और नारियों की शिक्षा सभी प्रकार की शिक्षाओं के क्षेत्र और योग्यता को प्रभावित करती है । शिक्षित पुरुष और अशिक्षित नारी का सम्बन्ध घरेलू जीवन के स्तर को निम्न बनाता है, यहाँ तक कि व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय चरित्र पर भी प्रभाव डालता

---

१. Ibid.

2. Ibid.

3. Ibid.

है । नारियों की शिक्षा मात्र परिवार के लिए ही नहीं आवश्यक है, बल्कि शासन और सार्वजनिक कार्यों के लिए भी ।

(५) नारी-शिक्षा के क्षेत्र में प्रमुख बाधाएं हैं व्यक्तियों की अनुदारवादिता और अंधविश्वास, बाल-विवाह और पर्दाप्रथा ।

(६) नारी-शिक्षा की प्रगति प्रत्येक प्रान्त में भिन्न भिन्न है । यहाँ तक कि एक ही प्रान्त के अन्तर्गत नगर और ग्रामीण क्षेत्रों में तथा एक वर्ग से दूसरे वर्ग में भी यह मिलता है ।

(७) शिक्षा के प्रधान कार्यालय में एक अनुभवी तथा योग्य महिला अधिकारी की नियुक्ति पूरे समय के लिए होनी चाहिए, जिसका कार्य बालिकाओं की शिक्षा के विस्तार के लिए योजना तथा कार्यक्रम निर्धारित करना हो ।

(८) प्रत्येक स्थानीय और शैक्षिक समितियों में नारियों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए ।

(९) बालिकाओं के स्कूलों में निरीक्षण कर्त्रियों की संख्या बढ़ाने की अत्यधिक आवश्यकता है ।

(१०) कालेज स्तर पर नारियों की व्यवसायिक शिक्षा अत्यधिक पिछड़ी हुई है ।

(११) नगरों में बालिकाओं की माध्यमिक शिक्षा में प्रगति हुई है, परन्तु उच्च-शिक्षा की ओर जाने की सुविधाएं छोटे नगरों और ग्रामों में सीमित हैं ।

(१२) बालिकाओं की प्राइमरी शिक्षा नगरों में विस्तृत है, परन्तु ग्रामों में साधारणतया सीमित तथा दोषपूर्ण है ।

(१३) बालकों के स्कूलों में अपव्यय तथा बाधाएं अधिक हैं, परन्तु बालिकाओं के स्कूलों में यह उससे भी अधिक हैं ।

(१४) सह-शिक्षा प्राइमरी स्कूलोंको,कठिनाइयों के होते हुए भी, प्राथमिकता दी जाती है ।

(१५) सामाजिक और आर्थिक स्थिति को देखते हुए बालिकाओं की शिक्षा को अनिवार्य बनाने का कार्य बालकों की तुलना में, शनैः शनैः होना चाहिए । परन्तु यह

भी आवश्यक है कि प्रत्येक अनिवार्य योजना में स्कूल जाने वाली आयु की अधिकांश बालिकाओं को इसमें सम्मिलित करना चाहिए ।

१६. हाईस्कूलस्तर पर वैकल्पित पाठ्यक्रम होने चाहिए और बाद के स्तरों पर विशेष संस्थाएं होनी चाहिए जो उपाधि के स्थान पर अधिकारपत्र (डिप्लोमा) प्रदान करें । विश्वविद्यालयों को इसके साथ ही बालिकाओं के लिए गृह-विज्ञान, स्वास्थ्य रक्षा तथा संगीत आदि की शिक्षा भी देनी चाहिए........ ।

१७. महिला शिक्षिकाओं की कमी का कारण विशेषकर प्राइमरी स्तर पर, नगर में प्रशिक्षित महिलाओं की ग्रामों में कार्यकरने की अनिच्छा तथा वेतन क्रम की न्यूनता है । इन कठिनाइयों को दूर करने पर विशेष ध्यान देना चाहिए, विशेषकर ग्रामीण बालिकाओं के प्रशिक्षण पर, जो प्राइमरी अध्यापिका बन सकें ।[१]

इन सब दोषों के होते हुए भी १६२२ से १६३२ का समय भारतीय शिक्षा के इतिहास में उन्नति का काल रहा है ।" स्कूलों में बच्चों का उत्साह अनन्त रहा है........ व्यक्तियों के हृदयों में शिक्षा की उपयोगिता के प्रति शिशु सुलभ विश्वास उत्पन्न हो गया था, अभिभावक अपने बच्चों की शिक्षा के लिए सभी प्रकार के त्याग करने को प्रस्तुत थे,........ विकास के आशापूर्ण तथा विस्तृत कार्यक्रम, जो कि एक सुशिक्षित भारत के स्वप्न को उजागर कर सके, निर्मित किए गए, मुसलमान वर्ग, जो कि शिक्षा में सदैव से पिछड़ा रहा है, प्राचीन अयोग्यताओं को छोड़ने के लिए उत्सुकतापूर्वक आगे आया, जागृत महिलाओं ने भारतीय नारी के सम्बन्ध में पुरातन विचारधारा को तोड़ डालने का प्रयत्न किया, सरकार ने व्यवस्थापिका सभाओं के सहयोग से शिक्षा के लिए बड़ी संख्या में धनराशि व्यय की, जो कि १० वर्ष पहले व्यवहारिक राजनीति के सीमा के बाहर की वस्तु समझी जाती[२]।"

---

१. Problems in Education : Women and Education, UNESCO, pp.116-117.

२. Progress of Education in India; Quinquennial Review 1927-32, p. 3. Delhi; Bureau of Education 1886-1937, 11 Vols.

इस समय कालेज स्तर पर नारियों की शिक्षा का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता था । १९२७ से १९३२ तक मद्रास का सेन्ट थेरिसा कालेज तथा त्रिवेन्द्रम का महाराजा महिला कालेज महाविद्यालय के स्तर तक पहुँच गया था । बम्बई में सह-शिक्षा कालेजों में महिलाओं की संख्या ३८२ (१९२७ में) से ७०४ (१९३२ में) तक पहुँच गई थी ।[1] कलकत्ता के विद्यासागर कालेज ने इस समय एक "महिला विभाग" खोला जिसमें ११० महिला विद्यार्थी प्रविष्ट की गईं । इसी प्रकार बनारस तथा अलीगढ़ विश्वविद्यालयों में महिला विभाग, स्थापित किए गए । पंजाब के दो विद्यालयों --लाहौर कालेज तथा किन्नाईड कालेज, लाहौर में महिला विद्यार्थियों की संख्या में अपूर्व वृद्धि हुई ।[2] निम्नलिखित तालिकाएं इस प्रगति का परिचय देती हैं :--

बालिकाओं के मान्यता प्राप्त स्कूल[3]

वर्ष	कलात्मक विद्यालय	हाई-स्कूल	मिडिल स्कूल	प्राइमरी स्कूल	विशेष संस्थाएं	योग
१९२१-२२	१२	१२०	५४८	२२,५७६	२५८	२३,५१७
१९२६-२७	१८	१४५	६५६	२६,६२१	३१६	२७,७५६
१९३१-३२	२०	२१८	७८७	३२,५९४	३८०	३३,९९९
१९३६-३७	३१	२६७	८७८	३२,२७३	४०४	३३,८८३

१. Metraux, Guy.S. - Cronzet Franco's (ed.) Studies in the Cultural History of India, p. 453.

२. Ibid, p. 454.

3. Progress of Education in India; Quinquennial Review 1922-37.

विभिन्न संस्थाओं में बालिकाओं का पंजीकरण[१]

वर्ष	कलात्मक विद्यालयों में	हाईस्कूलों में	मिडिल स्कूलोंमें	प्राइमरी स्कूलों में	विशेष संस्थाओं में	अमान्यता प्राप्त संस्थाओंमें	योग
-२२	९३८	२५,१३०	८५,०७९	१,१९५८९२	११,१८४	७७,५८०	१,३९५,८०३
-२७	१,६२४	३९,८५८	१२३८९२	१,५४५९६३	१४,७२९	९०,७४५	१,८१६,८११
-३२	२,९६६	७५,४७९	१७०९९७	२,०९३,१४१	१८,९८१	१२३,१२०	२,४८४,६८४
-३७	६,०३९	११४४८१	२१६९६५	२,६०७०८६	२३,०२७	१३८,८३३	३,१०६,४३१

१९३० के बाद से आर्थिक तथा अन्य परिस्थितियों का प्रभाव शिक्षा पर भी पड़ा । अधिकारियों की छटनी की जाने लगी तथा शिक्षा का भविष्य अनिश्चित सा प्रतीत होने लगा । साथ ही इस अनिश्चितता के कारण व्याप्त विस्तृत असंतोष के परिणामस्वरूप शिक्षा प्रणाली को पुन: संगठित तथा सुनियोजित करने का प्रयास भी किया जाने लगा । इसी समय (१९३२-३७) श्री तेजबहादुर सप्रू की अध्यक्षता में सप्रू समिति की नियुक्ति हुई, जिसका मुख्य उद्देश्य था शिक्षित पुरुषों तथा स्त्रियों की बेकारी की समस्या पर विचार करना तथा उसके निदान के लिए सुझाव देना । मार्च १९३४ में आयोजित भारतीय विश्वविद्यालयों के तीसरे सम्मेलन, जिसका अधिवेशन दिल्ली में हुआ था, में यह सुझाव दिया गया कि स्कूल प्रणाली का पुन: संगठन इस प्रकार किया जाए कि माध्यमिक शिक्षा को उत्तीर्ण करने वाले अधिकांश विद्यार्थी व्यवसायिक अथवा पृथक प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रवेश पा सकें । शिक्षा के पुन: संगठन के उद्देश्य से विभिन्न राज्यों में समितियां निर्मित की गई[२] ।

इन २५ वर्षों (१९२२-४७) में लगभग सभी कक्षाओं में बालिकाओं की

संख्या में अपूर्व वृद्धि हुई । १९२२-२७ तक यह संख्या ३०˙९ प्रतिशत अधिक बढ़ गई थी । १९३२-३७ में यह संख्या २०˙९ प्रतिशत और बढ़ी ।[१] इन वर्षों की सरकारी रिपोर्टों से पता चलता है कि अभी भी बालकों तथा बालिकाओं की संख्या में विशद् अन्तर था । इसका कारण इन रिपोर्टों के अनुसार यह था कि बालिकाओं की शिक्षा, उपयोगिता की दृष्टि से इतनी आवश्यक नहीं समझी गई, जितनी बालकों की । बालिकाओं को स्कूल भेजने का एक कारण यह भी प्रतीत होता है कि शिक्षित बालिकाओं का भविष्य विवाह के क्षेत्र में अधिक उज्ज्वल था । कुछ व्यक्ति इस उद्देश्य से भी अपनी बालिकाओं को स्कूल में भेजते थे कि शिक्षा के उपरांत वे अध्यापिका के रूप में अपना जीवकोपार्जन कर सकेंगी । परन्तु ऐसे लोगों की संख्या कम ही थी और यह विचार कुछ शिक्षित तथा जागृत वर्गों तक ही सीमित था ।

संख्या की दृष्टि से सबसे अधिक बालिकाएं प्राइमरी स्कूलों में थीं । इसका कारण शिक्षा की ओर रुचि नहीं था, अपितु यह स्कूल नर्सरी का काम करते थे, उन बच्चों के लिए जिनके अभिभावक किसी कारणवश दिन के समय अपने बच्चों की देख-भाल करने में असमर्थ थे । गृहकार्यों को करने योग्य आयु को प्राप्त होते ही, यह बालिकाएं स्कूलों से हटा ली जाती थीं । इसके अतिरिक्त कुछ सामाजिक विश्वास भी थे, परन्तु धीरे धीरे यह समाप्त हो रहे थे, जैसा कि सरकारी रिपोर्ट से प्रदर्शित होता है :—"बाल विवाह, जो कि बालिकाओं की शिक्षा में एक अन्य बाधा थी, शारदा-ऐक्ट के द्वारा अवैध हो गई थी, तथा पर्दा प्रथा के बंधन भी ढीले पड़ रहे थे...... । अतः समस्या का एक भाग निदान की ओर प्रतीत होता था, परन्तु मुख्य तत्त्व बाकी था और वह था "धनराशि", जिसके अभाव में योग्य प्रणाली और प्रशिक्षित अध्यापिकाओं की कमी पूरी नहीं की जा सकती थी ।"[२]

---

१. Progress of Education in India, Quinquennial Review 1922-27, 1927 1932-37. Delhi, Bureau of Education 1886-1937, II Vols.

२. Progress of Education in India; Quinquennial Review 1932-37, p. 148, Delhi Bureau of Education 1886-1937, II Vols.

सहशिक्षा—

बालिकाओं की शिक्षा और उनके विद्यालयों की कमी की पूर्ति के साधन के रूप में सह-शिक्षा एक उत्तम उपाय है । समय समय पर इस प्रकार के स्कूलों पर प्रयोग किए जा चुके हैं, परन्तु अभी तक इस दिशा में पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त की जा सकी । इसका कारण सम्भवत: भारतीयों का अनुदारवादी विचार है । हम देखते हैं कि बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही इस तरह के प्रयोग किए गए थे । १६०२ में ४४˙७ प्रतिशत बालिकाएं, बालकों के स्कूलों में पंजीकृत थीं तथा १६२६-२७ तक इनका प्रतिशत ३८ हो गया था । प्रतिशत में इस कमी का कारण था इस समय तक बालिकाओं के कुछ पृथक स्कूलों का खुलना । अध्ययनरत बालिकाओं की संख्या के संदर्भ में बालकों के स्कूलों में पढ़ने वाली बालिकाओं की संख्या विभिन्न वर्षों में इस प्रकार थी :—

१६२२—३७˙७ प्रतिशत, १६२७-२८˙५ प्रतिशत, १६३२— ३८˙४ प्रतिशत १६३७—४३˙४ प्रतिशत, १६४२— ४६˙५ प्रतिशत, १६४७— ५३˙३ प्रतिशत ।[१] इसके अनुसार ६२˙८ प्रतिशत बालिकाएं सह-शिक्षा स्कूलों में तथा ३७˙२ प्रतिशत बालिकाओं के स्कूलों में अध्ययनरत थीं । परन्तु यह संख्या केवल प्राइमरी स्कूल की थी । माध्यमिक स्कूलों में स्थिति इसके विपरीत थी । इन स्कूलों में १६ प्रतिशत बालिकाएं सह-शिक्षा केन्द्रों में थीं तथा ८१ प्रतिशत बालिकाओं के स्कूल में । इससे प्रतीत होता है कि बड़ी आयु की होने के कारण अभिभावक सह-शिक्षा केन्द्रों में बालिकाओं को भेजने के पक्ष में नहीं थे जहां तक उच्च शिक्षा या विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा का प्रश्न, है, अधिकांश बालिकाएं सह-शिक्षा केन्द्रों में ही जाती थीं । १६३२-३७ की सरकारी रिपोर्ट के अनुसार" सह-शिक्षा उन स्थानों पर जहां पृथक बालिका-विद्यालय उपलब्ध नहीं हैं, बालिकाओं तक शिक्षा पहुंचाने का अल्प-व्ययी मार्ग है । परन्तु यदि इस प्रकार की प्रणाली का शैक्षिक लाभ, जो कि इसका उद्देश्य है, उठाना है तो इसके लिए यह आवश्यक है कि सह-शिक्षा केन्द्रों के शिक्षक वर्ग में एक उचित अनुपात में महिलाओं को भी लिया जाए । जहां मद्रास और पंजाब

---

१. Problems in Education : Women and Education, UNESCO, p. 120.

में पति-पत्नी दोनों को एक ही स्कूल में लेकर इस प्रकार का प्रयत्न किया गया है, वहां अन्य प्रान्तों में गंभीरतापूर्वक इसदिशा में विचार नहीं किया गया है। बम्बई की रिपोर्ट के अनुसार बहुत कम सह-शिक्षा स्कूलों में महिलाओं को अध्यापिकावर्ग में लिया गया है, तथा अधिकांश स्कूल सीमित दृष्टि से सह-शिक्षा स्कूल कहे जा सकते हैं। यूनाइटेड प्राविन्स की रिपोर्ट के अनुसार बहुत कम महिलाएं बालकों के उन स्कूलों में नियुक्त हैं, जहां बालिकायें भी पढ़ती हैं। उसके सुझाव के अनुसार महिला-अध्यापिकाओं की, इन स्कूलों में नियुक्ति की समस्या तत्काल ध्यान देने की है। बंगाल का सुझाव है कि एक ही स्कूल में बालक-बालिकाओं के पढ़ने से निश्चय ही लाभ हैं, यदि कम से कम एक महिला स्कूल के अध्यापक वर्ग में अवश्य हो।"[१]

"केन्द्रीय सलाहकार शिक्षा समिति" की शाखा" महिला शिक्षा समिति" जिसने १६३६ में भारतीय बालिकाओं की प्राइमरी शिक्षा के प्रश्न पर विचार किया था के अनुसार भी प्राइमरी स्तर पर सह-शिक्षा प्रत्येक छोटे ग्रामीण क्षेत्रों का उद्देश्य होना चाहिए, परन्तु जहां बच्चों की संख्या अधिक है वहां पृथक स्कूल होने आवश्यक हैं। इसके साथ ही उन्होंने इन स्कूलों में महिला शिक्षिका की नियुक्ति की आवश्यकता पर भी बल दिया है।[२]

नारी-शिक्षा की प्रगति — १६४७ से अब तक

१६४७ में भारत की स्वतंत्रता तथा देश के विभाजन के कारण उत्पन्न आर्थिक समस्याओं की ओर भारत सरकार का ध्यान अधिक रहा। इनमें मुख्य समस्याएं थीं विशाल संख्या में आए शरणार्थियों के लिए निवास के प्रबन्ध, तथा खाद्य एवं कृषि की स्थिति को सुधारने की। परन्तु सरकार ने इसके साथ ही शैक्षिक प्रगति पर भी सम्यक् ध्यान दिया। इसके लिए अधिक धनराशि, केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बजट में रखी गई। उदाहरणस्वरूप १६४६-४७ में समस्त वर्तमान प्रमुख राज्यों तथा

---

१. Progress of Education in India, Quinquennial Review 1932-37, p. 157, Delhi Bureau of Education 1886-1937 II Vols.

2. Ibid, p. 158.

केन्द्र द्वारा शासित लघु क्षेत्रों में शिक्षा पर सम्मिलित व्यय २०.५ करोड़ से कम था, तथा केन्द्रीय बजट २ करोड़ से भी कम था। इसके विपरीत १६५१-५२ में समस्त राज्यों का शिक्षा पर सम्मिलित बजट ४७ करोड़ था तथा केन्द्रीय शिक्षा-बजट ६ करोड़ हो गया था। यही नहीं इसमें और भी अधिक व्यय बढ़ाने के सुझावों पर विचार हो रहा था।[1]

भारत सरकार के शैक्षिक कार्यक्रम में प्राथमिकता प्राप्त विषय थे :- (१) स्कूल जाने वाली आयु के सभी बच्चों के लिए सार्वभौम, नि:शुल्क तथा अनिवार्य बेसिक शिक्षा का विधान (२) निरक्षरता को दूर करने के लिए सामाजिक (प्रौढ़) शिक्षा का विधान (३) औद्योगिक और टैक्नीकल शिक्षा का सुधार तथा विस्तार करना (४) नवीन राष्ट्रीय आवश्यकताओं तथा उद्देश्यों के संदर्भ में विश्व विद्यालयों की शिक्षा का पुनर्संगठन करना।

उपरोक्त योजनाओं और कार्यक्रमों को व्यवहारिक रूप प्रदान करने के लिए विभिन्न उपाय तथा सुझावों के निमित्त सरकार ने विशेष समितियाँ तथा आयोग बनाए।[2] परन्तु अर्थाभाव के कारण ये सभी योजनाएं तुरन्त कार्य रूप में परिणित

---

1. Bureau of Education. A Review of Education in India (1951-52); submitted to the XVth International Conference on Public Edu.; Geneva, July 1952; Bureau of Edu; Publication no. 118, New Delhi. Ministry of Education 1952, pp.21.

2. इनमें प्रमुख हैं:-(a) Committee on ways and Means of Financing Educational Development in India, Report, Bureau of Education Pamphlet no. 64, Delhi, Manager of Publications, 1950, pp.78 (known as Kher Committee Report); (b) Central Advisory Board of Edu. Proceedings of meetings, 14th-17th, 1948 - 1951. Bureau of Edu. Pamphlets no. 51, 65, 79 and 110, New Delhi, Govt. of India Press 1948-51; (c) University Edu. Commission Report, Delhi, Manager of Publications 1949-52, 2 Vols; (d) Central Advisory Board of Edu. Adult Edu. Committee Report, 1949. Bureau of Edu. Pamphlet no. 63, Delhi Manager of Publications 1950; (e) Educational Developments reported in 'The Education Quarterly, vols. 1-4, 1949-52, Delhi Manager of Publications (f) Secondary Edu. Commission, 1952 Report (g) The National

नहीं की जा सकी । धीरे धीरे इस क्षेत्र में विकास कार्य करने का प्रयत्न किया जा रहा है ।

शिक्षा सम्बन्धी संवैधानिक अनुच्छेद--

संविधान निर्माण के समय "शिक्षा" के सम्बन्ध में सरकार का क्या योग हो, इस विषय पर भी विशद् वाद-विवाद हुआ था । यह अनुभव किया गया कि भारत जैसे विशाल देश में, जहां व्यक्तियों में अधिक विभिन्नता पाई जाती है, शिक्षा का नियंत्रण निश्चय ही राज्य सरकारों तथा स्थानीय अधिकारियों के अंतर्गत होना चाहिए । इसी के अनुरूप संविधान ने शिक्षा को राज्य सरकारों के अधीन विषयों के अन्तर्गत रखा है ।[१] राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत शिक्षा सम्बन्धी कुछ उपबन्ध हैं । अनुच्छेद ४५ के अनुसार "राज्य"[२] इस बात का प्रयत्न करेगा कि संविधान लागू होने के १० वर्ष के अन्दर ही १४ वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए शिक्षा नि:शुल्क तथा अनिवार्य कर दी जाए । हर्ष की बात है कि सरकार ने इस ओर आंशिक सफलता पाई है । अनुच्छेद ४६ के अनुसार "राज्य" समाज के दुर्बल वर्गों विशेषकर परिगणित तथा जंगली जातियों के आर्थिक तथा शैक्षिक हितों का विशेष ध्यान रखेगी तथा उन्हें ऊंचा उठाने का प्रयत्न करेगी । साथ ही यह भी कहा गया कि उनकी सामाजिक अन्याय और शोषण से रक्षा की जायेगी ।

संविधान ने "हिन्दी" भाषा की प्रगति के लिए भारत सरकार पर विशेष उत्तरदायित्व सौंपा है । अनुच्छेद ३५१ के अनुसार भारत सरकार का यह कर्तव्य है कि वह "हिन्दी" की प्रगति के लिए सम्यक् प्रयत्न करे ताकि वह सम्पूर्ण भारत में बोली जाने वाली भाषा बन सके । अनुच्छेद २८२ में भारत सरकार को शिक्षा की प्रगति के लिए राज्यसरकारों को अनुदान देने का उपबन्ध रखा है ।

---

१. Constitution of India; Entry 11 of List II of the Seventh Schedule.

२. इस "राज्य" शब्द में भारत सरकार, राज्य सरकारें तथा स्थानीय अधिकारी वर्ग सम्मिलित हैं ।

भारत सरकार की शैक्षिक नीति --

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारत ने शिक्षा की प्रगति को यथेष्ठ महत्व दिया। शिक्षा के पुनर्संगठन के राष्ट्रीय कार्य को करने के उद्देश्य से केन्द्र तथा राजकीय सरकारों के मध्य "पूर्ण साझेदारी" की व्यवस्था की गई है। यह व्यवस्था स्वतंत्रता के उपरान्त हुए विभिन्न महत्वपूर्ण विकासों में से एक है। समय समय पर सरकार ने जो शैक्षिक योजनाएं बनाई उनकी पद्धति से यह "साझेदारी" अधिक स्पष्ट हो जाती है। योजना आयोग सर्वप्रथम राष्ट्रीय हित को आधार मानकर प्रस्तुत परिस्थितियों के संदर्भ में विचार करता है तथा भारत सरकार और राजकीय सरकारों के मंत्रालयों से सलाह लेकर, विषय चयन, और विषयों की प्राथमिकता निश्चित करता है, तदुउपरांत सम्पूर्ण देश के लिए एक योजना निर्मित की जाती है जिसे 'राष्ट्रीय विकास परिषद्', जिसका संगठन केन्द्र तथा राजकीय सरकारों के उच्चपदाधिकारी-प्रतिनिधियों से होता है, के सन्मुख विचारार्थ रखा जाता है। राजकीय सरकारें स्थानीय हितों और आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर अपनी शैक्षिक योजनायें बनाती हैं। पुनः, केन्द्र तथा राज्यों द्वारा निर्मित यह विभिन्न योजनाएं एक रूप होकर विषय चयन, प्राथमिकता, कार्य प्रणाली, कार्यक्रम, व्यय, तथा योजना के सम्पूर्ण बजट को ध्यान में रखकर संयुक्त कर दी जाती हैं। अन्तिम रूप देने के पूर्व योजना के विभिन्न पक्षों पर विशद् वाद-विवाद होता है। पुनः कार्य की सुविधा की दृष्टि से योजना को दो भागों में विभाजित कर दिया जाता है। कुछ विषय राजकीय कार्यक्रमों के अन्तर्गत रखे जाते हैं। ऐसे विषय यद्यपि केन्द्र द्वारा अनुदान प्राप्त करने के अधिकारी हैं, परन्तु इनको व्यावहारिक रूप देना एक मात्र राज्य सरकारों का कर्तव्य है। इसी प्रकार केन्द्रीय कार्यक्रमों को निर्देश केन्द्रीय मंत्रालय से प्राप्त होता है। ये सम्पूर्ण भारत पर समान रूप से लागू होते हैं, यद्यपि इनको भी राजकीय सरकारें ही व्यवहारिकरूप प्रदान करती हैं, तथापि उनका व्यय पूर्ण रूप से भारत सरकार वहन करती है।

जिस प्रकार योजना के उत्तरदायित्व में "साझेदारी" है, उसी प्रकार इस उत्तरदायित्व को पूर्ण करने के लिए उपलब्ध आय के साधनों में भी साझेदारी का उपबन्ध रखा गया है। परन्तु राज्यों की आय, जो कर आदि के रूप में प्राप्त की

जाती है, अधिकतर सीमित होती है । अत: केन्द्रीय सरकार दो प्रकार से उन्हें आर्थिक सहायता देती है :-(१) वित्त आयोग (जो कि प्रति पांचवें वर्ष निर्मित किया जाता है) द्वारा राजकीय सरकारों की अतिरिक्त आय के साधनों का हस्तान्तरित करना तथा (२) अनुदान देना ।

अत: शैक्षिक प्रगति का प्रमुख आधार यह "साझेदारी की प्रणाली" है , जिसमें राजकीय सरकारों का प्रमुख हाथ है और केन्द्र अनुदान के रूप में व्यय का एक भाग वहन करता है । यह "कार्यगत साझेदारी" शिक्षा के प्रत्येक स्तर में दृष्टिगत होती है ।

भारत सरकार की इस शैक्षिक नीति के परिणामस्वरूप शिक्षा में चतुर्दिक प्रगति की योजनाएं निर्मित की गईं तथा शैक्षिक आयोग स्थापित किए गए । नारी शिक्षा की प्रगति का कार्यक्रम भी इससे अछूता नहीं था । परन्तु इन कार्यक्रमों के होते हुए भी शिक्षा के क्षेत्र में वह प्रगति नहीं दृष्टिगोचर होती, जिसकी आशा की जाती थी । इसका कारण था स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारत को प्रारंभिक वर्षों में कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ा था । जहां तक नारी-शिक्षा का प्रश्न है, वह अब भी पिछड़ी हुई स्थिति में थी । १९५९-५० तक भारत में २४,०६७ मान्यता प्राप्त बालिका विद्यालय थे -इनमें विश्वविद्यालय-१, कला तथा विज्ञान कालेज -६६, व्यवसायिक तथा विशेष स्कूल २३, माध्यमिक शिक्षा विद्यालय २,५८५, प्राइमरी स्कूल -१३,९७२, प्री-प्राइमरी स्कूल ६५, प्रशिक्षण तथा विशेष स्कूल ५२३ तथा प्रौढ़ विद्यालय ६८,२२[१] । इन विद्यालयों में तथा सह-शिक्षा विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की कुल संख्या ६०,११,३२० थी । इनमें ६५ प्रतिशत बालिकाएं सहशिक्षा विद्यालयों में थीं ।[२] १९४९-५० में विभिन्न कक्षाओं में उत्तीर्ण बालिकाओं की संख्या क्रमश: :-मैट्रिक--२५,७२१ , इंटर (कला तथा

---

1. Education In India, 1949-50, Vol. I, Report Ministry of Education, Government of India, p. 177.

२. Ibid.

विज्ञान)—८,२५२, बी०ए० तथा बी०एस-सी- ४६१४, एम०ए० तथा एम०एस-सी० ६४० और व्यवसायिक – १,६६६ थी[1]।

नारी शिक्षा के क्षेत्र में उस समय सबसे महत्वपूर्ण कदम था श्रीमती नाथीबाई दामोदर ठाकरसी इंडियन विमेन यूनिवर्सिटी को मान्यता प्राप्त होना[2]। इसकी स्थापना १९१६ में बम्बई में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य था भारतीय नारियों की आवश्यकताओं और स्वभाव के अनुरूप शिक्षा प्रदान करना।

उपरोक्त आंकड़ों को देखते हुए नारी-शिक्षा की प्रगति पिछड़ी हुई ही कही जायेगी।

<u>विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग</u> (१९४८-४९)

स्वतंत्रता के उपरान्त शिक्षा के क्षेत्र में भारत सरकार का ध्यान आकर्षित करने वाली समस्या थी विश्वविद्यालय-शिक्षा की पिछड़ी हुई दशा। इसको प्राथमिकता देने का कारण सम्भवतः देश के विकास में उच्च शिक्षा का आधारभूत महत्व था। इसके साथ ही १९१७-१९ के बाद से विश्वविद्यालय शिक्षा पर कोई भी विचार प्रकट नहीं किया गया था[3]। अतः १९४८ में सरकार ने डा० राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में एक विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की स्थापना की। इसकी रिपोर्ट विश्वविद्यालय शिक्षा का एक महत्वपूर्ण प्रपत्र कही जा सकती है।

उच्च नारी-शिक्षा के सम्बन्ध में विश्वविद्यालय आयोग ने महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए। नारी-शिक्षा की महत्ता पर विचार प्रकट करते हुए आयोग ने कहा कि व्यक्ति के जीवनके प्रारंभिक वर्ष आदतों और स्वभावकी दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं, और ये वर्ष माता के सम्पर्क में व्यतीत होते हैं। माता, जो अपने बच्चों के साथ रहती और काम करती है, संसार की सबसे उत्तम गुरु है और बालक के

---

1. Ibid.
2. Ibid.
3. The Indian year book of Education, 1961. First Year Book (Part I) N.C.E.R.T., New Delhi, p. 24.

चरित्र और बुद्धि को विकसित करने में उसका बड़ा हाथ है । शिक्षित परिवार से आए बच्चे स्कूल का अधिक लाभ उठा सकते हैं । शिक्षित नारियों के अभाव में शिक्षित व्यक्ति नहीं हो सकते । आयोग ने यहां तक कहा कि यदि सामान्य-शिक्षा पुरुष अथवा स्त्री किसी एक तक ही सीमित रखनी है तो यह अवसर स्त्रियों को देना चाहिए क्योंकि उनसे यह शिक्षा निश्चय ही आगामी पीढ़ी को पहुंच जायेगी ।[१]

यहां शिक्षा से तात्पर्य घरेलू कलाओं की शिक्षा से नहीं है, जैसा कि सामान्य विश्वास है कि स्त्रियों को उन्हीं विषयों की शिक्षा देनी चाहिए जो घरेलू जीवन में ही उपयोगी हों । इसके विपरीत आयोग ने इस मत की भर्त्सना करते हुए स्त्री-पुरुष के लिए समान शिक्षा का पक्ष लिया । आयोग ने कहा कि स्त्रियों को पुरुषों के साथ समय के, जीवन, विचार और रुचि में समान रूप से भाग लेना चाहिए । वे उन शैक्षिक कार्यों को करने के योग्य हैं, जो पुरुषों के लिए रखे गए हैं ।[२]

परन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं कि प्रत्येक दशा में स्त्री और पुरुष दोनों की शिक्षा समान हो । प्रत्येक देश में चाहे नारी कितनी ही जागृत क्यों न हो, पति और पत्नी भिन्न भूमिका संपादित करते हैं । अभाग्यवश भारतीय विश्वविद्यालय ऐसे स्थान हैं जो केवल पुरुष वर्ग की आवश्यकताओं को ही ध्यान में रखते हैं ।[३]

आयोग के अनुसार यद्यपि नारी का प्रमुख कार्य "गृह-निर्माणी" के रूप में रहा है, और रहेगा, तथापि उसका संसार इसी में सीमित नहीं होना चाहिए । महान् समाज सेवी पुरुषों में अधिकांश ने अविवाहित रह कर अपने जीवन के निर्धारित कार्य पूर्ण करने का संकल्प किया था । नारियों को भी, यदि वह ऐसा चाहती हैं, यह अवसर मिलना चाहिए । पत्नी और माता के रूप में यद्यपि वह अपने गुणों और

---

१. The Report of the University Education Commission (Dec.1948-Aug. 1949), Vol. I, pp. 392-93.

२. Ibid, p. 393.

३. Ibid.

शक्तियों के उपयोग का भरपूर अवसर पाती है, तथापि यदि कोई नारी अविवाहित रहकर कार्य करने की इच्छुक है तो यह उसकी सामाजिक अयोग्यता नहीं समझनी चाहिए । विभिन्न परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आयोग ने कहा कि विवाह के उपरान्त भी शिक्षिका तथा सेविका के रूप में नारी महत्वपूर्ण कार्य कर सकती है । इसके अतिरिक्त वैधव्य के कारण प्राय: नारियों को जीविकोपार्जन की आवश्यकता पड़ती है । बच्चों के बड़े हो जाने पर जीवन के कुछ वर्ष ऐसे शेष रहते हैं, जिनको उपयोगी कार्यों में लगाया जा सकता है । उपरोक्त सभी परिस्थितियों में नारियों को शैक्षिक अवसर अवश्य प्राप्त होने चाहिए ।[१]

आयोग के सुझाव के अनुसार भारतीय जीवन और शिक्षा के विकास के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार के कार्यों में वृद्धि होनी चाहिए । संख्या न्यून होने के कारण एक ही क्षेत्र व कार्य के लिए अधिक प्रतिद्वन्द्विता रहती है तथा अनेक प्रकार की योग्यता प्रकटीकरण का अवसर नहीं पाती । एक उन्नत और पूर्ण समाज में उद्योगों और व्यवसायों की अधिकता होनी चाहिए और शिक्षा के उद्देश्य इन विभिन्न उद्योगों के योग्य स्त्री-पुरुष को तैयार करना होना चाहिए ।[२]

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने नारियों की आवश्यकताओं और स्वभाव को ध्यान में रखते हुए कुछ विशेष विषयों की शिक्षा देने का सुझाव रखा है । ये सुझाव इस प्रकार हैं :-

(१) गृह-अर्थशास्त्र :- गृह अर्थशास्त्र और गृह-प्रबन्ध के विषय स्वयं स्त्रियों द्वारा निम्न दृष्टि से देखे जाते हैं । भारतीय विश्वविद्यालय, जो इस प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध करते भी हैं वहाँ स्त्रियाँ यह विषय लेने को तत्पर नहीं हैं । इसके अनेक कारण हैं । प्रथम तो यह कि पुरुषों से समानता प्रदर्शित करने के लिए प्राय: स्त्रियाँ उन्हीं विषयों को लेने की इच्छुक रहती हैं जिन्हें पुरुष

---

१. Ibid, p. 395.

२. Ibid.

लेते हैं। इसके अतिरिक्त बालिकाओं को व्यवसायिक निर्देश देने वाले तथा इस प्रकार के नारी-सुलभ कार्यों का महत्त्व दर्शाने वाले तत्त्वों का नितान्त अभाव है।

गृह-अर्थशास्त्र के अन्तर्गत विभिन्न विषय हैं --परिवार के खान-पान और वस्त्रों का प्रबन्ध,बच्चों की देखभाल तथा उनका निर्देशन करना, पारिवारिक सम्बन्ध, कलात्मक रुचि का विकास करना, जो कि घर में सुन्दरता लाता है, घर को उत्तम आर्थिक सामाजिक तथा स्वास्थ्य ढंग से व्यवस्थित करना और वस्तुओं की सुरक्षा और उचित प्रयोग।

गृह-अर्थशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य है स्त्री और पुरुष को गृह-निर्माण की सच्ची महत्ता से परिचित कराना तथा उसे आदर्श रूप प्रदान करना। अमेरिका में इस प्रकार के विद्यालय हैं।[१]

नर्सिंग :--यूरोप और अमेरिका में नर्सिंग एक सम्मानित व्यवसाय समझा जाता है। भारत में नगरों और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में शिक्षित नर्सों की अधिक आवश्यकता है। प्रशिक्षित नर्से शल्य-चिकित्सकों की सहायिका के रूप में कार्य कर सकती हैं, कठिन रोगों का उपचार कर सकती हैं, ग्रामीण स्वास्थ्य विभाग का निरीक्षण कर सकती हैं तथा नर्सिंग की शिक्षा दे सकती हैं।

आयोग के सुझाव के अनुसार इस प्रकार की शिक्षा हाईस्कूल के बाद प्रारम्भ होनी चाहिए। उन्हें बी०एस-सी० के समान ही कार्य करना चाहिए और अन्त में नर्सिंग में बी०एस-सी० की उपाधि प्राप्त करनी चाहिए। उनके विषयों में सामान्य शिक्षा के साथ साथ भौतिक तथा जीव-विज्ञान के विषय भी होने चाहिए। रोगी की चिकित्सा और सेवा के रूप में उन्हें व्यवहारिक शिक्षा देनी चाहिए तथा इस प्रकार के शिक्षा का समय भी उतना ही होना चाहिए जितना बी०एस-सी० के लिए।[२] विधिवत्

---

१. Ibid, pp. 395-97.

२. Ibid, pp. 397-98.

शिक्षिका कार्य :— आयोग के अनुसार स्त्री स्वभाव से ही शिक्षिका है । न केवल बालक के प्रारंभिक वर्षों में बल्कि बाद के वर्षों में भी उसका स्थान महत्वपूर्ण है । शिक्षिका के व्यवसाय के लिए स्त्रियों की शिक्षा को एक ही क्षेत्र में सीमित नहीं होनी चाहिए । प्रजातंत्रात्मक भारत में शिक्षा के विस्तार के साथ साथ शिक्षक-शिक्षिकाओं की माँग भी बढ़ेगी और उत्तम प्रशिक्षित शिक्षिकाएं इस माँग को पूरा करेंगी ।

कलात्मक विषय :— कलात्मक विषयों में अभिरुचि स्त्रियों को विभिन्न व्यवसायों में प्रतिभा प्रदर्शित करने का अवसर प्रदान करेगी । स्कूलों और कालेजों में दी जाने वाली संगीत की शिक्षा ऐसा ही अवसर प्रदान करती है । इसके अतिरिक्त नाटक कला, वस्त्र सज्जा, तथा क्राफ्ट आदि कलाओं में स्त्रियां पुरुषों के समान भाग ले सकती हैं । "गृह-निर्मात्री को अपने कार्य के लिए उतने ही प्रशिक्षण की आवश्यकता है, जितना एक इंजीनियर और वकील को ।"[१]

उपरोक्त सुझावों के अतिरिक्त आयोग ने कुछ अन्य सुझाव भी रखे हैं जैसे पर्दा करने वाली स्त्रियों के लिए परीक्षा में बैठने की अनुमति दी जाए, स्त्रियों की आवश्यकताओं और स्थिति पर विशेष ध्यान दिया जाए तथा समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था हो । इसके साथ ही चिकित्सा-व्यवसाय स्त्रियों के लिए भी खुला रहे ।[२]

विश्वविद्यालय आयोग ने उपरोक्त सुझावों द्वारा निश्चय ही नारी-शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति के लिए मार्गदर्शन किया, परन्तु इसके होते हुए भी आगामी वर्षों में नारी शिक्षा की आशातीत प्रगति दृष्टिगोचर नहीं होती है । भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार १९५०-५१ में बालिकाओं के मान्यता प्राप्त स्कूलों की संख्या में अत्यन्त अत्यधिक अल्प वृद्धि प्रतीत होती है । इस समय इन स्कूलों की संख्या २४,०९७ (१९४९-५०) से बढ़कर २४,८२९ हो गई थी । इनमें विश्वविद्यालय — १, कला तथा विज्ञान — ९९, व्यवसायिक विद्यालय — २७

---

१. Ibid, pp. 398-99.

(इनमें तीन मैडिकल तथा १४ प्रशिक्षण विद्यालय थे), विशेष शिक्षा विद्यालय-७, हाईस्कूल-- १०६४, मिडिल स्कूल-- १६७४), प्राइमरी स्कूल-- १३,६०१, प्री-प्राइमरी स्कूल -८१, सामाजिक (प्रौढ़) शिक्षा विद्यालय-- ७,४४१, व्यवसायिक तथा टैक्नीकल विद्यालय-- ४६० थे ।[१]

इन विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं की संख्या में वृद्धि हुई । इस समय इनकी संख्या ६०,११,३२० से बढ़ कर ६४,००७६२ हो गई थी, अर्थात् ६.५ प्रतिशत प्रगति दृष्टिगोचर होती है । शिक्षा के विभिन्न स्तर पर इन संस्थाओं को इस प्रकार रखा जा सकता है :--प्राइमरी स्कूल ७२.६ प्रतिशत,माध्यमिक स्कूल--१७.४ प्रतिशत, कला तथा विज्ञान ५६.६ प्रतिशत, व्यवसायिक और विशेष-शिक्षा --६१.२ प्रतिशत, व्यवसायिक और टैक्नीकल २२.१ प्रतिशत तथा विशेष-शिक्षा में ५.६ प्रतिशत ।[२]

इसी प्रगति के अनुरूप उत्तीर्ण बालिकाओं की संख्या में भी वृद्धि हुई । इस समय उत्तीर्ण बालिकाओं की संख्या ३०,१५८ थी, जबकि पिछले वर्ष यह संख्या २५,७२१ थी । विभिन्न स्तरों पर--इन्टर, बी०ए० तथा बी०एस-सी, एम०ए० तथा एम०एस-सी० तथा व्यवसायिक कक्षाओं में क्रमश: ६,११७, ४,८८१, ८७६ तथा १६०४ हो गई थी । जबकि पिछले वर्ष यह संख्या इसी क्रम से ८,२४२, ४,६६४, ६५० तथा १,६२५ थीं ।[३] इसके अतिरिक्त श्रीमती नाथीबाई थाकरसी महिला विश्वविद्यालय बम्बई से अहमदाबाद तथा बंबई के दो दो कालेज सम्बन्धित किये गये । इन कालेजों में बालिकाओं की संख्या ५३६ थी ।[४]

उपरोक्त आंकड़ों से शिक्षा के लगभग प्रत्येक स्तर पर अल्प प्रगति दृष्टिगोचर होती है, परन्तु आगामी वर्ष अर्थात् १९५१-५२ में स्कूलों की संख्या में

---

१. Education in India 1950-51, Vol. I Report, Ministry of Education, Government of India, p. 229.

२. Ibid.

३. Ibid.

४. Ibid.

अवनति दिखाई पड़ती है । इस समय स्कूलों की संख्या २४,८२६ से घटकर २३,६०८ ही गई थी । इस अवनति का कारण था कुछ राज्यों में सामाजिक शिक्षा विद्यालयों और केन्द्रों का बन्द हो जाना ।[१] परन्तु फिर भी विभिन्न स्कूलों में अध्ययनरत बालिकाओं की संख्या बढ़ती हुई प्रतीत होती है । १९५०-५१ में ६४,००,७६३ की अपेक्षा १९५१-५२ में ६७,०२,४८५ बालिकाएं शिक्षा संस्थाओं में पंजीकृत थीं—अर्थात् ४०७ प्रतिशत बढ़ती हुई थी ।[२]

माध्यमिक शिक्षा आयोग—१९५२

शिक्षा की चतुर्दिक उन्नति के लिए सरकार ने समय समय पर आयोग व परिषदें निर्मित कीं जिनका काम था, सम्पूर्ण देश में शिक्षा की स्थिति का विवरण देना तथा प्रगति के लिए सुझाव प्रस्तुत करना । ऐसा ही एक आयोग (विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग) १९४८-४९ में निर्मित किया गया था, जिसने उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में अपने सुझाव रखे थे । विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने अपने सुझाव में कहा कि विश्वविद्यालयों की शिक्षा का पुनर्संगठन तब तक संभव नहीं होगा जब तक माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप पुनः संगठित नहीं किया जाता । इस सुझाव के अनुसार भारत सरकार ने १९५२ में डा० लक्ष्मनस्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में एक आयोग की नियुक्ति की, जिसका कार्य था माध्यमिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालना और उसके पुनर्संगठन के लिए विस्तृत सुझाव प्रस्तुत करना ।

इस आयोग के सामने तीन प्रमुख समस्याएं थीं जिन पर उन्हें विचार करना था । प्रथम माध्यमिक शिक्षा के स्वरूप को पुनः संगठित करना, द्वितीय माध्यमिक पाठ्यक्रम में विविधता प्रदान करना और तृतीय परीक्षा प्रणाली में सुधार करना[३]।

---

१. Education in India, 1951-52, Vol. I, Report, Ministry of Education, Government of India, p. 249.

२. Ibid.

३. The Indian Year Book of Education 1961, Part I, First Year Book, N.C.E.R.T., p. 20.

प्रथम समस्या के समाधान के रूप में आयोग ने शिक्षा का ऐसा स्वरूप निर्धारित किया जिसमें आठ वर्ष बेसिक शिक्षा के उपरान्त ३ वर्ष माध्यमिक शिक्षा के लिए (इसमें विभिन्न विषय रखे गए) और अन्त में ३ वर्ष की विश्व-विद्यालय की शिक्षा के बाद प्रथम उपाधि प्राप्त की जा सके । स्कूल शिक्षा के ११ वर्षों का दीर्घ काल इस दृष्टि से रखा गया कि पाठ्यक्रम उच्चकोटि का रहे तथा ऐसे विद्यार्थियों की छटनी की जा सके जो उच्च शिक्षा में जाने के योग्य नहीं हैं । विषय चयन की स्वतंत्रता का भी विधान रखा गया है । जहाँ तक पाठ्य-क्रम में विविधता लाने का प्रश्न है, इसके लिए आयोग ने विविध उद्देश्यात्मक स्कूलों के निर्माण का सुझाव दिया । इन संस्थाओं में सात वर्गों का विधान रखा गया, जिसमें मानविकीय, विज्ञान, टैक्नालाजी, वाणिज्य, कृषि, कलात्मक तथा गृह-विज्ञान सम्मिलित हैं । प्रत्येक वर्ग में सात से दस विषय हैं, जिनमें से कोई भी तीन विषय विद्यार्थी स्वेच्छा से चुन सकता है । परीक्षा-प्रणाली के सम्बन्ध में आयोग के सुझाव के अनुसार नवीन पद्धति निर्मित करने का प्रयत्न करना चाहिए जिसमें विद्यार्थी की मात्र स्मृति की परीक्षा ही न हो, अपितु उसकी शैक्षिक प्रगति का सही मूल्यांकन किया जा सके ।[1] आयोग के सुझाव के अनुरूप प्रथम योजना के अंत तक ७७ स्कूल माध्यमिक शिक्षा के इस नमूने पर बदले जा चुके थे । परन्तु द्वितीय योजना के अन्त में इनकी संख्या ३,१२१ हो गई थी । इसी प्रकार विविध उद्देश्यात्मक स्कूलों की संख्या प्रथम योजना तक ३७४ थी, परन्तु द्वितीय योजना के अंत तक २,११५ थी ।[2]

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने अपने अनुसंधान काल में नारी-शिक्षा के विषय में दो विभिन्न विचारधाराओं को प्रचलित पाया । एक तो परम्परागत धारणा थी, जिसके अनुसार नारी का स्थान घर है, अत: उनकी शिक्षा पुरुषों से भिन्न होनी चाहिए (शिक्षा को उन्हीं आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए) जो स्थान जीवन में उन्हें प्राप्त करना है । इसके विपरीत प्रगति-वादी विचारों के अनुसार भारत, नारियों की सेवा घर की चारदीवारी से बाहर

---

१. Ibid, pp. 20-21.

२. Ibid, p. 21.

भी स्वीकार करता है । इस मत के अनुसार विगत शताब्दियों में देश के पिछड़ेपन का कारण नारियों का निम्न सामाजिक स्तर ही था । नारियों को वही शिक्षा देनी चाहिए जो पुरुषों को प्राप्त होती है, जिससे वे प्रत्येक क्षेत्र में सहयोग दे सकें ।[1]

मार्च १९५० तक माध्यमिक विद्यालयों में बालिकाओं की संख्या लगभग ७००,००० थी । १९५३ तक केवल मिडिल स्कूलों में यह संख्या ७७४,१४८ तथा हाई-स्कूलों में २५६, ४५६ थीं ।[2] सरकार की ओर से अनुदान, छात्रवृत्ति तथा निःशुल्क सवारी आदि के प्रबन्ध के द्वारा नारी-शिक्षा को उत्साहित करने का प्रयत्न किया गया ।

१९५५-५६ तक नारी-शिक्षा में अपूर्व प्रगति दृष्टिगोचर होती है । इस समय उनकी शिक्षा संस्थाओं की संख्या भी २३,०८८ से बढ़कर २४,८७६ हो गई थी । इसके अतिरिक्त बालकों के अधिकांश स्कूलों में सह-शिक्षा की अनुमति भी प्राप्त हो गई थी जिसमें बड़ी संख्या में बालिकाओं को पंजीकृत किया गया ।[3] इन स्कूलों में अध्ययनरत बालिकाओं की संख्या ८२,४८,३०३ से बढ़कर ९१,८८,७०७ हो गई थी, अर्थात् ११.४ प्रतिशत बढ़ती हुई थी । इनमें से लगभग ७० प्रतिशत बालिकाएं सह-शिक्षा संस्थाओं में पढ़ रही थीं[4]। नारी-शिक्षा के क्षेत्र में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से निरन्तर प्रगति हो रही थी, परन्तु इस प्रगति की गति अत्यन्त मन्द थी । प्रथम योजना के अन्त में, प्राप्त आंकड़ों से पता चलता है कि स्कूलों में बालकों तथा बालिकाओं की संख्या में महान् अन्तर था । केवल प्राइमरी स्कूलों में जहां ७०.३ प्रतिशत बालक अध्ययनरत थे, वहां बालिकाओं की संख्या मात्र ३२.४ प्रतिशत थी । इससे प्रतीत होता है कि इस क्षेत्र में प्रगति अभी उस सीमा पर नहीं पहुंची थी, जिसकी आशा की जाती थी । इसका प्रमुख कारण था महिला शिक्ष-

---

१. Baig, Tara Ali, (ed.) Women of India, p. 158.

२. Ibid, p. 159.

३. Education in India, Vol. I, Report 1955-56, Ministry of Education, Government of India, p. 307.

कार्यों की भारी कमी, जिसको दूर करने के लिए आवश्यक था कि माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का विस्तार किया जाए। माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के विस्तार के लिए आवश्यक है महिला स्नातकों की संख्या में वृद्धि हो, जो कि इन स्कूलों में शिक्षिका का कार्य कर सकें। अतः इसके लिए विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा की प्रगति होनी चाहिए। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि नारी-शिक्षा की प्रगति प्रत्येक स्तर पर विस्तार चाहती है। इसके लिए कुछ विशेष उपायों और सुझावों की आवश्यकता अनुभव की गई।

नारी-शिक्षा पर राष्ट्रीय समिति —(१९५८)

भारत सरकार ने इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए १९५८ में श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में एक समिति का निर्माण किया जिसका उद्देश्य था प्राइमरी तथा माध्यमिक स्तर पर नारी-शिक्षा की प्रगति के लिए कुछ विशेष उपायों को प्रस्तुत करना, जिससे इन क्षेत्रों में शिक्षा का सम्यक् विकास शीघ्र संभव हो सके। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट १९५९ में प्रस्तुत की जिसमें महत्वपूर्ण सुझाव दिए गए। समिति द्वारा दिए गए ये सुझाव निम्नलिखित हैं :—

सर्वप्रथम समिति के अनुसार आगामी कुछ वर्षों तक नारी शिक्षा को "विशेष समस्या" के रूप में मानना चाहिए तथा इसकी प्रगति के लिए प्रत्येक स्तर पर विशेष योजनाएं और कार्यक्रम बनाने चाहिए। इसके लिए समिति ने सुझाव दिया कि केन्द्र और राज्यों में विशेष समितियों का निर्माण किया जाए, जिसका एकमात्र उद्देश्य इस सम्बन्ध में निर्मित योजनाओं और कार्यक्रमों को व्यावहारिक रूप प्रदान करना हो। केन्द्र में, इसके लिए, "नारी शिक्षा पर राष्ट्रीय परिषद्" तथा राज्यों में "नारी-शिक्षा पर राजकीय परिषदें" की स्थापना की जाए। राष्ट्रीय परिषद् में कार्यक्रमों को देखने के लिए एक विशेष वर्ग तथा राजकीय परिषदों के सहयोग के लिए एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति होनी चाहिए।

प्राइमरी स्कूलों, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, शिक्षिकाओं की संख्या में वृद्धि करने के लिए प्रौढ़ शिक्षा की अधिक से अधिक व्यवस्था की जानी चाहिए तथा

माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा पहुँचाने के लिए माध्यमिक शिक्षा विद्यालयों से सम्बन्धित छात्रावासों की भी व्यवस्था होनी चाहिए ।

इसके साथ ही समिति ने यह भी सुझाव दिया कि प्राइमरी शिक्षा को अधिक व्यापक बनाने के लिए तीसरी योजना के अन्तर्गत बालिकाओं को कुछ प्रेरक वस्तुओं (जैसे निःशुल्क पुस्तकों, तथा कपड़ों का वितरण और अधिक उपस्थिति छात्रवृत्ति की व्यवस्था आदि) द्वारा आकर्षित करने की व्यवस्था करनी चाहिए । इसके साथ ही महिलाओं को भी शिक्षण कार्य, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, करने के लिए प्रेरक सुविधाओं की व्यवस्था होनी चाहिए जैसे बिना किराए के निवासस्थान तथा अन्य भत्ते ।[1]

हर्ष का विषय है कि समिति के सुझावों के अनुरूप भारत सरकार ने १९५९ में "नारी-शिक्षा के लिए राष्ट्रीय परिषद्" का निर्माण किया । इसकी अध्यक्षा थीं श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख । इसके साथ ही शिक्षा मंत्रालय में एक विशेष वर्ग की भी स्थापना की गई । अनेक राज्यों में भी "राजकीय परिषदों" की स्थापना की गई साथ ही डिप्टी तथा सहयोगी महिला-डायरेक्टरों की भी नियुक्ति की गई । पंचवर्षीय योजनाओं में इसके द्वारा प्रतिपादित सुझावों के अनुरूप कार्यक्रम निश्चित किए गए ।

स्थापित होने के पश्चात् नारी-शिक्षा के लिए राष्ट्रीय परिषद् ने कई बैठकें कीं । १९६० में अपनी द्वितीय बैठक के दौरान परिषद् ने द्वितीय योजना के अन्तर्गत हुई शैक्षिक उन्नति का अध्ययन किया । परिषद् इस निष्कर्ष पर पहुँची कि अध्ययनरत बालक तथा बालिकाओं की संख्या में अब भी भारी अन्तर था । परिषद् के सुझाव के अनुसार तृतीय योजना के अन्तर्गत प्राइमरी तथा मिडिल स्तर पर तिगुनी तथा दुगुनी प्रगति के कार्यक्रम निश्चित किए जाएं । माध्यमिक स्तर पर ये कार्यक्रम कम पिछड़े राज्यों में ५ प्रतिशत तथा अन्य राज्यों में १० प्रतिशत होने चाहिए ।

---

1. The Indian Year Book of Education, 1961, Part I, First Year Book, N.C.E.R.T., pp. 31-32.

नारी-शिक्षा की शीघ्रप्रगति के लिए परिषद् के अनुसार महिला शिक्षिकाओं की संख्या में वृद्धि होनी चाहिए तथा उपस्थिति छात्रवृत्ति, निःशुल्क कपड़ों, छात्रावासों और निःशुल्क सवारी के द्वारा बालिकाओं की शिक्षा के लिए उत्साहित करना चाहिए ।[1] इसके साथ ही नारी शिक्षा की प्रगति के लिए अधिक आर्थिक सहायता तथा धनराशि के लिए परिषद ने माँग की ।[2]

१९६०-६१ में अध्ययनरत बालिकाओं की संख्या प्रत्येक प्रकार के स्कूलों में (इसमें सह-शिक्षा विद्यालय भी सम्मिलित हैं) १,२६,४२,६१५ से बढ़कर १,४१,५६,५०५ अर्थात् १०.७ प्रतिशत बढ़ गई थी, जबकि बालकों की संख्या इस वर्ष ३,१५,६८,८४६ से बढ़कर ३,३७,०४,८६७ अर्थात् ६.८ प्रतिशत ही हुई थी । पृथक रूप से बालिकाओं की संख्या का प्रतिशत इस प्रकार था —सामान्य शिक्षा ९६.८ प्रतिशत, विशेषशिक्षा २.४ प्रतिशत, तथा व्यावसायिक और अन्य में ०.८ प्रतिशत । इस समय बालिकाओं के मान्यता प्राप्त स्कूलों की संख्या, ३३,५९२ से बढ़कर ४१,६७४ हो गई थी ।[3] १९५७-५८ में शिक्षा मंत्रालय ने केन्द्र द्वारा प्रस्तावित एक योजना निर्मित की जिसके अन्तर्गत राज्यों को प्राइमरी तथा माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा के सम्बन्ध में विशेष कार्यक्रमों को व्यवहार रूप में परिणित करने के लिए आर्थिक सहायता देने का प्रबन्ध किया । राज्यों द्वारा इन विशेष कार्यक्रमों को लागू करने के लिए केन्द्र ने इस क्षेत्र में सम्पूर्ण व्यय का ७५ प्रतिशत सहायता देना स्वीकार किया । राज्य सरकारों को इस बात की छूट दी गई कि वे अपनी स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप मान्य ६ योजनाओं में से एक या एक से अधिक योजना चुन लें । ये योजनाएं थीं :-(१) ग्रामीण क्षेत्रों में महिला शिक्षिकाओं के लिए निःशुल्क निवास स्थान, (२) स्कूल-मदरसों की नियुक्ति, (३) प्रौढ़ स्त्रियों के लिए संघनित पाठ्यक्रम (४) महिला शिक्षिकाओं के लिए प्रशिक्षण काल में भत्ता, (५) पुन-

---

1. Education in India 1960-61, Vol. I, Report, Ministry of Education, Government of India, p. 267.
2. Ibid.
3. Ibid.

अध्ययन पाठ्यक्रम, (६) हाईस्कूलों की ऐसी छात्राएं, जो कि शिक्षा पूरी करने के उपरान्त अध्यापन कार्य करेंगी, के लिए भत्ता, (७) उपस्थिति छात्रवृत्ति, (८) अध्यापन शुल्क में छूट, तथा (९) माध्यमिक शिक्षा विद्यालयों के लिए छात्रावासों का निर्माण । १९५७ से १९६१ तक इन योजनाओं के लिए २१२ ˙८० लाख अनुदान दिया गया ।[1]

पंचवर्षीय योजनाएं--

शैक्षिक स्तरों तथा कार्यक्रमों में एकरूपता लाने में भारत सरकार द्वारा स्थापित योजना आयोग ने प्रभावशाली कार्य किया है । व्यक्तियों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने तथा संविधान में वर्णित नीति निर्देशक तत्वों को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि केन्द्र तथा राज्य सहयोगी रूप से प्रयास करें । योजना आयोग की स्थापना इसी उद्देश्य पर आधारित है ।[2] चूंकि योजना आयोग का कार्य है देश की भौतिक, आर्थिक तथा मानवीय साधनों को देखते हुए उनका उत्तम तथा प्रभावशाली उपयोग करने के निमित्त योजना निर्मित करना, अतः आयोग राष्ट्रीय कार्यों के प्रत्येक क्षेत्र में योजना की रूपरेखा तैयार करता है ।

शिक्षा के क्षेत्र में आयोग ने एक प्रजातंत्रात्मक देश की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्तम व्यवस्था की है । देश भर में शैक्षिक उद्देश्य और स्तर में एकरूपता बनाए रखने के लिए पंचवर्षीय योजनाएं महत्वपूर्ण तत्व रही हैं । वास्तव में इन राष्ट्रीय योजनाओं के निर्माण के साथ नारी शिक्षा में रुचि जागृत करने के प्रयत्न भी हुए । समाज ने इसके (नारी-शिक्षा) महत्त्व को समझा । देश में अभी तक यह भावना व्याप्त थी कि व्यावहारिक जीवन में बालिकाओं के लिए शिक्षा निरर्थक वस्तु है । व्यक्तियों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति एवं शीघ्र विवाह की प्रथा के कारण अल्पायु बालिकाओं को स्कूल स्तर से ही उठा लिया जाता

---

1. The Indian Year Book of Education, Part I, First Year Book, N.C.E.R.T., p. 15.
2. Kabir, Humaiyun, Education in New ~~Bxxxx~~ India, p. 6.

था । सह-शिक्षा और शिक्षिकाओं की न्यूनता नारी-शिक्षा के मार्ग में अन्य बाधाएं थीं । प्रथम पंचवर्षीय योजना (१९५१-५२) ने अभिभावकों के मध्य बालिकाओं की शिक्षा की आवश्यकता का प्रचार करने तथा मिडिल और माध्यमिक स्तर पर पृथक बालिका विद्यालय खोलने का प्रस्ताव रखा । छात्राओं की अधिक संख्या बढ़ाने के लिए छात्रवृत्तियों का विधान रखा गया । प्रथम योजना के अन्तर्गत ६ से ११ वर्ष तक कि आयु वाले लगभग ६० प्रतिशत बच्चों के लिए शैक्षिक सुविधाओं को देने का विधान रखा गया । इस प्रकार छात्राओं का प्रतिशत १९५५-५६ तक २३.३ प्रतिशत से ४० प्रतिशत बढ़ने की आशा की जाती थी ।[1] माध्यमिक स्तर पर ११ से १७ वर्ष की आयु वाले लगभग १५ प्रतिशत बच्चों को शैक्षिक सुविधाएं देने की व्यवस्था की गई और इस प्रकार इस आयु के अन्तर्गत छात्राओं की संख्या १० प्रतिशत बढ़ जाने की आशा की गई ।[2] प्रथम योजना के अन्तर्गत "विशिष्ट उद्देश्य अनुदान" के आधार पर राज्यों को आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया गया । शिक्षा-मंत्रालय ने कुछ कार्यक्रमों को स्वीकृत कर दियातथा प्रत्येक के लिए अनुदान की राशि भी नियत कर दी ।[3] इसके अतिरिक्त पिछड़े गाँवों में प्राइमरी शिक्षा की प्रगति के लिए वित्त आयोग द्वारा विशेष अनुदान (६करोड़ रुपया) की भी व्यवस्था की गई ।[4]

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंत में इस क्षेत्र में देश में विशेष प्रगति दृष्टिगोचर नहीं होती है । स्कूलों में बालक-बालिकाओं की संख्या में भारी अन्तर पूर्ववत रहा ।

---

1. Deshmukh Durgabai, Education and Women's Welfare, in Kasturba Memorial, Published by Kasturba Gandhi National Memorial Trust, Indore (1962), p. 46.
2. Ibid.
3. The Indian Year Book of Education 1961 Part I, First Year Book, N.C.E.R.T., p. 11.
4. Ibid, p. 14.

द्वितीय योजना (१९५६-५७) के अन्तर्गत नारी-शिक्षा की प्रगति का कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया गया। इसके अन्तर्गत नारी-शिक्षा को केवल मात्र "एक विशेष आवश्यक समस्या" की संज्ञा दी गई।[1] प्रारंभिक शिक्षा के संदर्भ में योजना ने कहा कि बालिकाओं की शिक्षा के पक्ष में अभी देश में जनमत तैयार नहीं है। इसके लिए अभिभावकों को शिक्षित करने तथा शिक्षा को बालिकाओं की आवश्यकताओं के अधिक अनुरूप बनाने के लिए विशेष प्रयास करना चाहिए। इसके साथ ही विभिन्न क्षेत्रों की स्थिति का अध्ययन पृथक पृथक रूप से करना चाहिए और जहाँ सह-शिक्षा स्वीकृत नहीं की जाती, वहाँ अन्य उपाय काम में लाने चाहिए। द्वितीय योजना के अन्तर्गत "परिवर्तन प्रणाली" काम में लाने का सुझाव रखा गया। इसके द्वारा प्रथम घंटों में बालकों की पढ़ाई की तथा बाद के घंटों में बालिकाओं की व्यवस्था होनी चाहिए।[2]

महिला-शिक्षिकाओं की कमी इस क्षेत्र में अत्यधिक अनुभव की गई। १९५३-५४ में प्राइमरी तथा माध्यमिक विद्यालयों में अध्यापक-अध्यापिकाओं की कुल-संख्या का लगभग १७ प्रतिशत भाग महिला-शिक्षिकाओं का था। इसके लिए योजना के अन्तर्गत महिलाओं के प्रशिक्षण के कार्यक्रम को अत्यावश्यक मानकर चलने का अनुरोध किया गया। साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में निःशुल्क भवन प्रदान करने के लिए भी प्रस्ताव रखे गए।[3]

माध्यमिक स्तर पर भी योजना ने नारी-शिक्षा को अत्यधिक पिछड़ा हुआ बताया। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार इस समय १४ से १७ वर्ष की आयु की बालिकाओं की संख्या १२ मिलियन थी जिनमें केवल ३ प्रतिशत स्कूलों में थीं।[4] द्वितीय योजना के अंत तक हाईस्कूल शिक्षा विद्यालयों की संख्या १५०० से १७००

---

1. The Second Five Year Plan (1956) Government of India Planning Commission, p. 504.
2. Ibid.
3. Ibid.
4. Ibid, p. 510.

तक बढ़ने की आशा की गई । इससे प्रतीत होता है कि राज्यों की योजनाओं में इस ओर अधिक प्रयत्न करने का विधान नहीं रखा गया था । द्वितीय योजना के अन्तर्गत महिलाओं को ग्राम सेविका, नर्स, स्वास्थ्य निरीक्षिका तथा शिक्षिका आदि नौकरियों की ओर उत्साहित करने के लिए विशेष छात्रवृत्ति के कार्यक्रम प्रस्तावित किए गए ।[1]

उक्त योजना के अन्तर्गत २०७ करोड़ रुपया व्यय करने का कार्यक्रम था, जो बाद में २७६ करोड़ कर दिया गया । सामान्य शिक्षा के लिए व्यय की राशि केन्द्रीय क्षेत्र में ३८ करोड़ तथा राजकीय क्षेत्र में १५८ करोड़ रखी गई ।[2]

इस योजना के अन्तर्गत जो विषय रखे गए उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि देश में निकट भविष्य में निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा का स्वप्न पूरा हो सकना सरल न होगा । १९५७ में योजना आयोग द्वारा शिक्षा की जांच के लिए नियुक्त अधिकारियों ने प्रस्तावित कार्यक्रमों को दो स्तरों में विभाजित किया । प्रथम ६ से ११ वर्ष की आयु तथा द्वितीय ११ से १४ वर्ष की आयु के बच्चों के लिए योजना बनायेगी । इनमें प्रथम को तृतीय योजना के क्षेत्र में रखा गया तथा द्वितीय को आगामी दो या तीन योजनाओं के अन्तर्गत पूरा किया जाने की आशा की गई ।[3] इस प्रकार द्वितीय योजना के अन्तर्गत नारी-शिक्षा के क्षेत्र में अधिक सफलता प्राप्त नहीं हो सकी । द्वितीय योजना के अंत में जहां ६ से ११ वर्ष की आयु के बालकों की संख्या स्कूलों में ८० प्रतिशत थी वहां उसी आयु की बालिकाओं की संख्या ४० प्रतिशत थी ।[4] कुछ राज्यों में यह प्रतिशत सामान्य से भी कम थीं जैसे राजस्थान --१५ प्रतिशत, उत्तर प्रदेश २० प्रतिशत, जम्मू कश्मीर २१ प्रतिशत, मध्यप्रदेश १९ प्रतिशत, बिहार २७ प्रतिशत, उड़ीसा २४ प्रतिशत , पंजाब ३६ प्रतिशत[5]

---

1. Ibid.
2. The Indian Year Book of Education 1961, Part I, First Year Book, N.C.E.R.T., p. 11.
3. Ibid, p. 14.
4. Narayan, Shriman, Women and The Third Plan in Kasturba Memorial, p. 45.
5. The Third Five Year Plan, Government of India, Planning

"नारी-शिक्षा के लिए राष्ट्रीय परिषद्" ने तृतीय योजना के अन्तर्गत अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव रखे। इनमें प्रमुख थे महिला शिक्षिकाओं के लिए भवन की व्यवस्था, ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत शिक्षिकाओं के लिए विशेष भत्ता, प्रौढ़ स्त्रियों के लिए संघनित पाठ्यक्रम की व्यवस्था, जिससे महिला-शिक्षिकाओं की कमी पूरी की जा सके, प्रशिक्षण रत शिक्षिकाओं के लिए भत्ता (वृत्तिका) उपस्थिति पुरस्कार, तथा छात्रवृत्ति, सह-शिक्षा केन्द्रों में महिलाओं का "मेटर्न" के पद पर नियुक्ति तथा अन्य इसी प्रकार की सुविधायें।[१] इनमें से अधिकांश कार्यक्रम राजकीय सेक्टर में रखे गये। प्राइमरी स्तर पर इस आयु की १६४ लाख बालिकाओं को (जो स्कूल नहीं जातीं) पंजीकृत करना कठिन कार्य है। अतः इसके लिए ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि कम से कम ५० प्रतिशत बालिकायें जम्मू-काश्मीर, यू०पी०, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश में, जहाँ अध्ययनरत बालिकाओं का प्रतिशत २० से भी कम है तथा अन्य राज्यों में जहाँ ये संख्या ५० प्रतिशत हैं, ६० प्रतिशत बालिकाओं को स्कूलों में लिया जायेगा।[२] ५ वर्ष के अन्दर इस बड़ी संख्या को स्कूलों में भर्ती करने का कार्य निश्चय ही कठिन प्रयास है।

माध्यमिक शिक्षा स्तर पर भी बालिकाओं की प्रगति अत्यन्त असंतोषजनक है। प्रथम दो योजनाओं के अन्तर्गत माध्यमिक शिक्षा विद्यालयों की संख्या ७,२८८ (१९५०-५१) से बढ़कर १६,४०० (१९६०-६१) हो गई थी। यद्यपि इन स्कूलों में बालिकाओं की संख्या २००,००० से ५२०,००० हो गई थी, तथापि माध्यमिक स्कूलों में अध्ययनरत बच्चों की कुल संख्या का १/५ भाग बालिकाओं का था। द्वितीय योजना के अन्त में इस स्तर पर बालकों की संख्या १८.४ प्रतिशत थी जबकि बालिकाओं की केवल ४.२ प्रतिशत थी।[३] इस प्रकार इस स्तर पर भी अधिक अन्तर था। तृतीय योजना के अन्तर्गत इस विशाल अन्तर को दूर करने का प्रयत्न

---

1. Ibid, p. 579.
2. Deshmukh, Durgabai, Education and Women's Welfare in Kasturba Memorial, p. 47.
3. Third Five Year Plan, Government of India, Planning Commission, p. 585.

किया गया है । यह आशा की जाती है कि तृतीय योजना के अन्त तक बालिकाओं की संख्या इन स्कूलों में दुगुनी हो जायेगी ।

विश्व विद्यालय स्तर पर छात्राओं की संख्या भारतीय विश्वविद्यालयों में, अध्ययनरत विद्यार्थियों की कुल संख्या के संदर्भ में १९५५-५६ में १३ प्रतिशत थी तथा १९६०-६१ में १७ प्रतिशत, तृतीय योजना के अन्त में यह संख्या २१ प्रतिशत होने की आशा की गई । द्वितीय योजना के अन्तर्गत गृह-विज्ञान, कला, संगीत, नर्सिंग आदि की जो व्यवस्था की गई थी, उसको पुनः और बढ़ाने का प्रारम्भ किया जाने का विधान रखा गया । इसी प्रकार द्वितीय योजना के अन्तर्गत विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने महिला विद्यालयों और महिला छात्रावासों के लिए आर्थिक सहायता दी थी, तृतीय योजना के अन्तर्गत भी पूर्ववत बनी रहेगी । इसके अतिरिक्त उच्च शिक्षा की ओर बालिकाओं को आकर्षित करने के लिए छात्रवृत्तियों की भी व्यवस्था की गई ।[1]

तृतीय योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय क्षेत्र में दो कार्यक्रम निर्धारित किए गए- प्रथम प्रौढ़ स्त्रियों के लिए संघनितपाठ्यक्रम। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षिकाओं की संख्या बढ़ाने में अपूर्व सहयोग मिला है । अतः इसको पुनः व्यापक बनाने के लिए तृतीय योजना में १.५ करोड़ रुपया व्यय करने की योजना रखी गई है । द्वितीय कार्यक्रम के अन्तर्गत एक "राष्ट्रीय संस्थान" खोलने की व्यवस्था का भी प्रस्ताव है जिसमें महिलाओं को, संगठन, शासन तथा नियंत्रण आदि के क्षेत्र में उच्चकोटि के प्रशिक्षण द्वारा उच्च तथा उत्तरदायी पदों पर नियुक्त करने के योग्य बनाया जायेगा । इस क्षेत्र में प्रशिक्षित महिलाएं राष्ट्रीय योजनाओं और प्रोजेक्टों में, विशेषकर समाज सेवा के कार्यों में उपयोगी सिद्ध होंगी ।[2]

तृतीय योजना के अन्तर्गत शिक्षा पर व्यय करने के लिए निर्धारित द्रव्य साधनों में से १७५ करोड़ केवल नारी-शिक्षा पर व्यय करने की योजना रखी गई है ।[3] यदि इसके अतिरिक्त और आवश्यकता होगी तो, योजना आयोग इस लक्ष्-

---

1. Ibid, p. 590.
2. The Indian Year Book of Education, 1961, Part I, First Year Book, N.C.E.R.T., p. 32.
3. The Third Five Year Plan, Govt. of India, Planning Commission

पूर्ति के लिए अन्य साधनों द्वारा पूरा करने का प्रयत्न करेगा । इसके अतिरिक्त तृतीय योजना में छात्रवृत्ति, महिला छात्रावासों का निर्माण, ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षिकाओं के लिए निवास स्थान की व्यवस्था आदि कार्यक्रमों को पूर्ण करने के लिए १० करोड़ का विशेष विधान रखा गया है ।[१] इसके साथ ही "सामाजिक विकास क्षेत्र" के अन्तर्गत ३७ करोड़ का शैक्षिक कार्यक्रम निर्धारित किया गया है । पिछड़े वर्गों तथा परिगणित जातियों की विशेष शिक्षा के लिए ४२ करोड़ रुपया व्यय करने की योजना है जिसमें निश्चय ही अधिकांश लाभ पिछड़े वर्गों की बालिकाओं को ही मिलेगा । केन्द्र तथा राज्कीय सरकारें सामाजिक सेवा कार्यों के निमित्त स्थापित विभिन्न महिला संघों को सहायता प्रदान कर रही हैं ।[२]

ऐसा प्रतीत होता है कि तृतीय योजना के अन्तर्गत नारी-शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रमों में प्राथमिकता और बल दो कार्यक्रमों पर विशेष रूप से किया गया है । प्रथम है ६ से ११ वर्ष की आयु के बच्चों के लिए सार्वभौम, नि:शुल्क तथा अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा । तृतीय योजना के अन्तर्गत इस कार्यक्रम को ध्यान में रखकर संविधान के नीति-निर्देशक तत्वों को व्यावहारिक रूप देने का निश्चय ही महान् कार्य किया गया है । परन्तु इस कार्यक्रम को प्रभावशाली बनाने के लिए इसे कानूनी रूप प्रदान करना आवश्यक हो गया । १९६० में दिल्ली राज्य ने "प्राइमरी शिक्षा अधिनियम" पारित किया । पंजाब प्रथम राज्य था जिसने दिल्ली का अनुकरण किया, तथा उसी वर्ष अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा अधिनियम पारित किया । आंध्र प्रदेश, गुजरात, मध्यप्रदेश तथा मैसूर, ये चार अन्य राज्य हैं जिन्होंने बाद में इसी प्रकार के अधिनियम पारित किए । उड़ीसा तथा महाराष्ट्र की सरकारें इस "दिल्ली अधिनियम के कुछ परिच्छेदों को अपने राज्यों में लागू करने का विचार कर रही हैं । प्राप्त रिपोर्टों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि १९६१-६२ तक लक्ष्य तक पहुंचने का प्रयत्न सफलता की ओर था । पंजाब, मैसूर, राजस्थान तथा मद्रास में बड़ी संख्या में इस लक्ष्य की पूर्ति की गई । उत्तरप्रदेश में भी इस दिशा में

---

1. Narayan, Shriman, Women and the Third Plan in Kasturba Memorial, p. 45.

2. Ibid.

कार्य प्रारम्भ हो गया है -- अब तक सरकार ने ६,७०० नए प्राइमरी स्कूल खोले हैं जिनमें ४००,००० अतिरिक्त बच्चे पंजीकृत किए गए ।[१] यदि सम्पूर्ण देश में इसीप्रकार के अधिनियम लागू किए जायें तो सफलता मिलने में संदेह नहीं ।

श्री के०एल० श्रीमाली के मत में सार्वभौम, निःशुल्क तथा अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा के कार्यक्रम को प्रभावशाली बनाने के लिए तीन अन्य उपाय और भी हैं :-- प्रथम है जागृत जनमत को तैयार करना, ताकि अभिभावक अपने बच्चों को, विशेषकर बालिकाओं को इन स्कूलों में भेजने को तत्पर हों । द्वितीय योजना के समय बिहार, उड़ीसा, राजस्थान, सरकारों ने बड़ी संख्या में बच्चों को पंजीकृत करने का कार्य किया था । बिहार राज्य की सफलता उल्लेखनीय है :-- १९५५-५६ में पंजीकृत बच्चों की संख्या १८ लाख से बढ़कर १९६०-६१ में ३२ लाख हो गई थी, इनमें केवल बालिकाओं की संख्या ३ ' ५ लाख से ८ लाख बढ़ गई थी । इससे उल्लेखनीय बात यह है कि पहले वर्षों में लगभग ५,००० बालिकाएं प्रतिवर्ष बढ़ती थीं । परन्तु अब ५०,००० प्रतिवर्ष के अनुपात से संख्या बढ़ रही है । यह भी उल्लेखनीय है कि इनमें से अधिकांश संख्या सहशिक्षा केन्द्रों में बढ़ी है ।

इस लक्ष्यपूर्ति का द्वितीय उपाय है निर्धन अभिभावकों के बच्चों को निःशुल्क पुस्तकें, स्कूल के वस्त्र तथा भोजन आदि प्रदान करना । इनमें प्रमुख हैं निःशुल्क पाठ्य पुस्तकों की व्यवस्था करना । अनिवार्य शिक्षा को प्रभावशाली बनाने के लिए यह मुख्य आवश्यकता अवश्य पूरी की जानी चाहिए ।

तृतीय सुझाव है शिक्षकों की भर्ती तथा योग्यता पर सम्यक् ध्यान देना । शिक्षा की उत्तम प्रगति शिक्षक की योग्यता तथा परिश्रम पर भी निर्भर करती है[२]।

तृतीय योजना के अन्तर्गत प्राथमिकता प्राप्त द्वितीय कार्यक्रम है प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था । इसके द्वारा बड़ी आयु की स्त्रियों को शिक्षित करने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में उन्हें उचित उपयोगी नौकरियों को प्रदान करने में अधिक सहायता मिलेगी ।

---

1. Shrimali, K.L., Education in Changing India, p. 220.

2. Ibid, pp. 6-7.

यह समस्या शिक्षा से अधिक सामाजिक कल्याण की है । अनेक स्त्रियों को निम्न सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के कारण, परिवार की आय के साधन सीमित होने के कारण कार्य करने पर विवशहोना पड़ता है । इसी प्रकार वैधव्य, बाल-विवाह तथा पारिवारिक दबाव के कारण अल्पायु में शिक्षा छोड़ने पर विवश, नारियों के लिए यह प्रणाली निश्चय ही पुन: शिक्षा प्राप्त करने तथा जीविका कमाने के योग्य बनाने के लिए वरदान स्वरूप है । केन्द्रीय सामाजिक कल्याण बोर्ड ने इस कार्यक्रम को विस्तृत करने की योजना रखी है । इसके अतिरिक्त विभिन्न लघु उद्योगों और कलाओं के द्वारा नगर तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों को व्यवसाय देने की भी व्यवस्था की गई है । 'महिला सहकारी संघों' ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है । सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत औद्योगिक कार्यालयों के लघु संघ निर्मित किए गए हैं, जो सहकारिता पर आधारित हैं । इनमें कार्यरत प्रत्येक स्त्री लगभग ३।। से ५ रुपया प्रतिदिन अर्जित कर रही हैं ।

तृतीय पंचवर्षीय योजना के उपरान्त नारी-शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित प्रमुख कार्य किए गए :—१९६२-६३ में नारी-शिक्षा के प्रसार के लिए, प्रगति का स्तर पता लगाने के लिए तथा उसके विस्तार के लिए नवीन सुझाव रखने के उद्देश्य से प्रत्येक राज्य और केन्द्र द्वारा शासित चार क्षेत्रों —दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मनीपुर, त्रिपुरा में २२ सेमिनार आयोजित करने का निश्चय किया गया ।[१]

'नारी-शिक्षा पर राष्ट्रीय परिषद्' ने इसी वर्ष एक पाठ्यक्रम-समिति निर्मित की जिसका उद्देश्य था बालिकाओं की शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम निश्चित करने में सुझाव देना ।[२]

एक विशेष योजना के अन्तर्गत नारी-शिक्षा के कार्य में संलग्न ऐच्छिक संगठन को आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया गया । यह सहायता निम्नलिखित क्षेत्रों में विकास के लिए थी :—

---

1. Education in India 1962-63, Vol. I, Report, Ministry of Education, Govt. of India, p. 212.
2. Ibid.

(१) प्रयोगात्मक अथवा शैक्षिक महत्व की योजनाओं के लिए,

(२) मिडिल तथा माध्यमिक बालिका विद्यालयों और प्राइमरी स्कूल की शिक्षिकाओं के लिए प्रयोगशालाओं तथा पुस्तकालयों के लिए, तथा

(३) मिडिल, माध्यमिक तथा प्रारंभिक स्कूल की शिक्षिकाओं के लिए संबंधित छात्रावासों के लिए । १९६२-६३ में ऐसी ५ संस्थाओं के लिए ४०,५०० रुपया अनुदान दिया गया ।[1]

तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत नारी-शिक्षा के कार्यक्रमों तथा राज्य परिषदों द्वारा निर्मित कार्यक्रमों पर विचार करने के लिए "नारी-शिक्षा पर राज्य परिषदों" के अध्यक्षों तथा सचिवों और "राष्ट्रीय परिषद्" के सदस्यों का प्रथम सम्मेलन ६ तथा ७ जून १९६२ को आयोजित किया गया । सम्मेलन ने प्रथम बार राज्य परिषदों द्वारा सामना की जाने वाली व्यवहारिक कठिनाइयों पर विचारों का आदान-प्रदान किया । सम्मेलन ने निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किए :-

(१) १९६०-६१ में अनुमोदित छात्रावासों के निर्माण का कार्य राज्य सरकारों को १९६२-६३ तक पूरा कर लेना चाहिए तथा अगले वर्ष के बजट में अधिक छात्रावास का निर्माण होना चाहिए ।

(२) केन्द्रीय सरकार एक परिशिष्ट योजना तैयार करे जो १० करोड़ रुपया से कम की न हो । इसके अन्तर्गत निम्न कार्यक्रम रखे गए :-

(क) ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षिकाओं के लिए निवास-प्रदान ।

(ख) ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौढ़ शिक्षा के लिए अधिक सुविधाओं को देना ।

(ग) ग्रामीण क्षेत्रों की बालिकाओं को शिक्षिका कार्य करने के लिए छात्रवृत्ति का आयोजन ।

(घ) कालेजों में कार्यरत शिक्षिकाओं के बच्चों के लिए शिक्षा का प्रबन्ध ।

(ड०) ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना ।

इसके अतिरिक्त सम्मेलन ने "नारी शिक्षा पर राष्ट्रीय समिति" को सुझाव दिया कि वह योजना आयोग से नारी-शिक्षा पर निर्धारित व्यय को बढ़ाने को

---

1. Ibid, p. 213.

माँग करे, जिससे तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत निर्धारित नारी-शिक्षा के कार्यक्रम कार्यान्वित किए जा सकें ।[१]

१९६२ (२७ दिसम्बर से ३१ दिसम्बर तक) में ३७ वाँ अखिल भारतीय शैक्षिक सम्मेलन लखनऊ में हुआ । नारी शिक्षा के सम्बन्ध में इसने निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किए :-

(१) गृह विज्ञान, गृह सेविका तथा प्राथमिक चिकित्सा की शिक्षा बालिकाओं के लिए अनिवार्य होनी चाहिए ।

(२) राष्ट्रीय अनुशासन योजना, एन०सी०सी०, गाइडिंग, शारीरिक शिक्षा आदि कार्यक्रमों को बालिकाओं के स्कूलों भी होना चाहिए । तथा

(३) केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वीकृत अल्पकालीन प्रशिक्षण तथा शिक्षिकाओं की नियुक्ति आदि योजनाओं को राज्य सरकारें अपने-अपने राज्यों में कार्यान्वित करें ।

इसी वर्ष हुए चीनी आक्रमण के सम्बन्ध में सम्मेलन ने कहा कि बालिकाओं और महिलाओं को कुछ विशेष सेवाओं के लिए प्रशिक्षण देना चाहिए । इसके लिए निम्न प्रस्ताव रखे गए :-

(१) शिक्षा के प्रत्येक स्तर में गणित तथा विज्ञान की शिक्षा को महत्व देना चाहिए ।

(२) विज्ञान की शिक्षा देने वाली संस्थाओं को अधिक सरकारी आर्थिक सहायता मिलनी चाहिए ।

(३) उन शिक्षिकाओं के लिए जो विज्ञान की उच्च शिक्षा प्राप्त करने में रत हों, अल्प कालीन नौकरियों की व्यवस्था करनी चाहिए ।

(४) विज्ञान की शिक्षिकाओं का वेतन-क्रम अधिक होना चाहिए, क्योंकि उनकी संख्या न्यून है ।

(५) विज्ञान की अध्यापिकाओं के लिए प्रशिक्षण के नियम अधिक कठोर नहीं होने चाहिए ।[२]

---

1. Ibid, p. 213.

2. Ibid, p. 214.

१९६२-६३ तक नारी-शिक्षा में कुछ प्रगति अवश्य दृष्टिगोचर होती है। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार इस समय १,४२,५७२ बालिका विद्यालय थे, जिनमें १,८३,०१,९९४ बालिकाएं अध्ययन करती थीं। इसके विपरीत अध्ययनरत बालकों की संख्या ३,९९,७५,४८० थी। इस प्रकार जहां छात्राओं की संख्या ८.८ प्रतिशत बढ़ी थी वहां छात्रों की संख्या ५.६ प्रतिशत।[1]

शिक्षा की प्रगति तथा उसके विकास के लिए सुझाव देने के उद्देश्य से सरकार ने समय-समय पर जो आयोग, परिषदें व समितियां निर्मित कीं उनमें १९६४-६६ के शिक्षा आयोग का विशिष्ठ स्थान था।

शिक्षा आयोग (१९६४-६६)

इस आयोग की नियुक्ति १४ जुलाई १९६४ को एक सरकारी विज्ञप्ति (न०एफ० ४१।२(३)६४,ई० १) के द्वारा की गई। आयोग का उद्देश्य था शिक्षा के राष्ट्रीय स्वरूप तथा प्रत्येक स्तर पर शिक्षा के सर्वांग्य विकास के लिए सरकार को सलाह देना।

शिक्षा आयोग ने अपने उद्देश्य-पूर्ति के लिए जो विभिन्न सुझाव सरकार के समक्ष रखे, उनमें नारी शिक्षा के विकास को भी प्रोत्साहन मिला। आयोग ने यह स्वीकार किया है कि मानव शक्तियों के पूर्ण विकास के लिए, घर को सुनियोजित तथा उत्तम बनाने के लिए तथा आयु के सबसे अधिक कोमल चरण में, जबकि मस्तिष्क साफ सिलेट की भांति होता है, बच्चों के चरित्र को निर्माण के रूप में नारियों की शिक्षा पुरुषों से भी अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखती है।[2] आज के संसार में नारी का कार्यक्षेत्र घर और बच्चों की देखभाल से बहुत अधिक आगे बढ़ चुका है। वह अपनी पृथक जीवन-वृत्ति अपना रही है तथा समाज के विकास

---

1. Ibid.
2. Report of the Education Commission (1964-66) Education and National Development. Govt. of India, Ministry of Education p. 135.

में पुरुष के समकक्ष भाग ले रही है । भारत को भी सर्वतोन्मुखी प्रगति के लिए इसी दिशा में कार्य करना है ।

नारी-शिक्षा की प्रगति के लिए आयोग ने जो सुझाव रखे वह उसकी पूर्ववर्ती समितियों और आयोगों के सुझावों से अधिक भिन्न नहीं है । आयोग के मत में नारी-शिक्षा का विकास दो प्रकार से हो सकता है --प्रथम "नारी-शिक्षा पर राष्ट्रीय समिति" के द्वारा प्रस्तावित "विशेष" कार्यक्रमों पर बल देना तथा द्वितीय प्रत्येक स्तर में नारी शिक्षा पर सम्यक् ध्यान देना तथा उसे शैक्षिक अभियान का अभिन्न अंग मान कर चलना । प्रथम के अन्तर्गत आयोग ने निम्न सुझाव दिए :--

(१) नारी-शिक्षा को आगामी कई वर्षों तक शिक्षा का प्रमुख कार्यक्रम मान कर चलना चाहिए तथा इस क्षेत्र में आने वाली कठिनाइयों का समाधान साहस तथा दृढ़ निश्चय द्वारा करना चाहिए, जिससे बालक तथा बालिकाओं की शिक्षा का वर्तमान अन्तर शीघ्रातिशीघ्र दूर किया जा सके ।

(२) इस उद्देश्य के लिए विशेष योजनाएं निर्मित करनी चाहिए तथा आर्थिक सहायता की प्राथमिकता प्राप्त होनी चाहिए ।

(३) केन्द्र तथा राज्यों में नारी-शिक्षा की देखभाल के लिए विशेष-व्यवस्था होनी चाहिए ।

इसके बाद भी दूसरे प्रकार को गौण नहीं समझना चाहिए । वास्तव में यदि शिक्षा के स्तरों पर प्रारम्भ से ही समुचित ध्यान दिया जाए तो विशेष कार्यक्रमों की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होगी ।[1]

इसके साथ ही आयोग ने घर के बाहर नारी के विभिन्न व्यवसायों और कार्यों की समस्याओं पर भी विचार किया है । आज नारी की महत्वपूर्ण समस्या है उसका दोहरा उत्तरदायित्व --घर की देखभाल तथा उपयुक्त जीवन वृत्ति की खोज १९६१ की सेन्सस रिपोर्ट के अनुसार इस समय एक मिलियन से अधिक २४ वर्ष से कम आयु की नारियां हैं जिनकी न्यूनतम योग्यता मैट्रिक है । ये नारियां केवल घर की

---

1. Ibid, p. 138.

की देखभाल कर रही हैं । आयोग के सुझाव के अनुसार इन नारियों को राष्ट्रीय-निर्माण कार्य में सहयोग देने के लिए अंशकालिक नियुक्तियों की संख्या बढ़ानी चाहिए । इसी साथ ही राष्ट्र निर्माण के किसी भी क्षेत्र और कार्य में अवैतनिक आधार पर भी कार्य करने को उत्साहित करना चाहिए ।[1]

इसी साथ ही पूरे समय के लिए (Full-time) नियुक्ति के अवसर भी बढ़ाने चाहिए । चूंकि विवाह की आयु बढ़ गई है, अत: अविवाहित नारियाँ इस प्रकार की नियुक्तियों में अधिक कार्य कर सकती हैं । अध्यापन, चिकित्सा, तथा समाजसेवा आदि ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ महिलाएँ कुशलतापूर्वक कार्य कर सकती हैं । इन सभी क्षेत्रों में आयोग ने अवसरों की अधिकता की माँग रखी ।[2]

उच्च-शिक्षा के क्षेत्र में आयोग ने नारियों को प्रोत्साहन देने के लिए अनेक सुझाव रखे । देश के विभिन्न व्यवसायों और कार्यालयों में उच्च शिक्षित महिलाओं की आवश्यकता, जो कि निर्देशिका, प्रशासिका तथा संगठनकर्त्री के रूप में उत्तरदायित्व पदों पर कार्यकर सकें, अधिक है । इस कमी को पूरा करने के लिए उच्च शिक्षा को विशेष प्रयत्न द्वारा व्यापक बनाने की आवश्यकता है । उच्च शिक्षा विद्यालयों में स्त्री तथा पुरुष की संख्या का तुलनात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि भारतीय विश्वविद्यालयों में पंजीकृत कुल विद्यार्थियों की संख्या में महिला-छात्राओं का प्रतिशत १९५५-५६ में १३ प्रतिशत, १९६०-६१ में १७ प्रतिशत तथा १९६५-६६ में २१ प्रतिशत रहा है । उच्चशिक्षा की दृष्टि से महिलाओं का यह भाग अल्प ही कहा जायेगा । तथा निश्चय ही न तो देश की बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप ही है और न ही आर्थिक एवं सामाजिक विकास की आवश्यकताओं की पूर्ति ही कर सकता है । इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कम से कम उच्चशिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं का प्रतिशत १० वर्षों के अन्दर ३३ प्रतिशत और बढ़ना चाहिए ।[3] इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आयोग ने जो कार्यक्रम निश्चित किए :—

---

1. Ibid, pp. 138-39.

2. Ibid, p. 139.

3. Ibid, p. 313.

(१) विश्वविद्यालय स्तर पर महिलाओं को छात्रवृत्ति तथा अन्य आर्थिक सहायता उदारता पूर्वक देनी चाहिए ।

(२) ऐसे छात्रावासों का निर्माण होना चाहिए, जो उचित तथा कम खर्चीले हों, साथ ही दैनिक आवश्यकता की अधिक से अधिक सुविधाओं को प्रदान करते हों । इसके लिए राज्यों तथा केन्द्र दोनों सरकारों को उदारतापूर्वक अनुदान देना होगा । इन कार्यक्रमों की आवश्यकता ग्रामीण क्षेत्रों की बालिकाओं को इस ओर आकृष्ट करने के लिए भी है । उच्च शिक्षा में नगरीय बालिकाओं की तुलना में उनका प्रतिशत न्यून है ।[1]

सह-शिक्षा पर विचार व्यक्त करते हुए आयोग ने राज्यों की परिस्थितियों के अनुसार अपनी नीति-निर्धारित करने का सुझाव दिया, क्योंकि प्रत्येक राज्य में एक ही प्रणाली सफल नहीं हो सकती । इसका कारण है प्रत्येक राज्य में शैक्षिक स्तर एक सा नहीं है । महाराष्ट्र में, जहाँ सह-शिक्षा केन्द्र बालिकाओं तथा अभिभावकों द्वारा उत्कृष्ट से देखे जाते हैं तथा उनकी संख्या भी अधिक है, वहाँ मद्रास जैसे राज्य, जो कि शिक्षा के क्षेत्र में उतना ही विकसित हैं, बालिकाओं के लिए पृथक शिक्षा संस्थाओं को मान्यता देता है, तथा वहाँ सह-शिक्षा केन्द्रों की संख्या भी न्यून है । आयोग के सुझाव के अनुसार सह-शिक्षा केन्द्रों के अधिकारी वर्गों को, महिला विद्यार्थियों की पाठ्येतर क्रियाओं के लिए अधिक प्रोत्साहन देना चाहिए । आयोग के मत में उच्च शिक्षा स्तर पर पृथक केन्द्रों की माँग उचित तर्क नहीं रखती, अपितु इस स्तर पर स्त्री और पुरुष दोनों को सम्मिलित रूप से उपलब्ध उत्तम निर्देशन का अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिए ।[2]

इसके अतिरिक्त उच्च शिक्षा स्तर पर विषयों के चयन की सुविधा देना भी नितान्त आवश्यक है । बालिकाओं के लिए विशिष्ट क्षेत्र निर्धारित नहीं करना चाहिए, अपितु बौद्धिक और प्रतिभाशाली बालिकाओं के लिए सभी प्रकार के विषयों

---

1. Ibid.

2. Ibid.

और व्यवसायों को प्राप्त करने का अवसर और प्रोत्साहन मिलना चाहिए । इसके साथ ही महिला-छात्राओं की उस बड़ी संख्या के लिए जो उच्चतम अध्ययन के योग्य नहीं हैं, उच्च शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार करनी चाहिए कि वे विशिष्ट व्यवसायों के लिए जहाँ शिक्षित और प्रशिक्षित महिलाओं की अत्यधिक आवश्यकता अनुभव की जा रही है कार्य करने योग्य बना सके । कुछ व्यवसाय जैसे शिक्षा (अध्यापन), समाज सेवा, वैधिका कार्य आदि ऐसे क्षेत्र हैं जहां महिलाओं की सेवाएं अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं । द्वितीय तथा तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं में इस प्रकार के पाठ्यक्रम की योजना रखी गई थी तथा इसके लिए सुविधाओं का विस्तार भी किया गया था । शिक्षा आयोग ने इस प्रकार के विषयों और पाठ्यक्रमों के विकास पर बल दिया है ।[1]

गृह विज्ञान भारत के ३३ विश्वविद्यालयों में स्वीकृत विषय है तथा उसको व्यापक बनाने का प्रयत्न हो रहा है । गृह विज्ञान की शिक्षा बालिकाओं को कार्य करने का वैज्ञानिक आधार प्रदान करती है । इसी प्रकार वैधिका-कार्य (Nursing) बी०एस-सी० स्तर पर एक विषय के रूप में रखा गया है । यह विषय बालिकाओं के ही शिक्षा केन्द्रों में है, जिनका उद्देश्य है वैज्ञानिक तथा व्यवसायिक प्रशिक्षण देना । इस क्षेत्र में आवश्यकतानुसार विस्तार करना चाहिए ।

भारत के ११ विश्वविद्यालयों में शिक्षा शास्त्र एक विषय के रूप में मान्य है और बालकों से अधिक बालिकाएं इस विषय को लेना पसंद करती हैं । परन्तु वर्तमान शिक्षा शास्त्र मात्र सामान्य ज्ञान ही प्रदान करता है, किसी व्यवसाय के योग्य बनाने का उद्देश्य अभी नहीं रखा गया है । जैसे जैसे व्यवसायों का क्षेत्र विकसित और विस्तृत होता जायेगा तथा नवीन नौकरियों में महिलाओं की आवश्यकता अनुभव की जायेगी, उसी के अनुरूप विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण केन्द्रों और पाठ्यक्रमों की भी आवश्यकता होगी ।

---

1. Ibid, p. 314.

तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसे संस्थान के निर्माण का प्रस्ताव रखा गया था जो प्रशासकीय, संगठन तथा निर्देशक के रूप में महिलाओं को प्रशिक्षित कर उन्हें उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर आसीन होने के योग्य बना सकें। इस प्रकार से प्रशिक्षित महिलायें राष्ट्रीय योजनाओं को व्यवहारिक रूप देंगी तथा विशेष कर समाज-सेवा के कार्यों में अधिक उपयोगी सिद्ध होंगी तथा "ऐच्छिक संघों" की स्थानपूर्ति कर सकेंगी। परन्तु अर्थाभाव के कारण अभी तक यह स्वप्न साकार नहीं हो सका है। शिक्षा आयोग के मत में तीन या चार विश्वविद्यालयों को उच्चकोटि के संगठन और शासन के साथ इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पृथक विभाग निर्मित करना चाहिए। इस प्रकार का प्रबन्ध अल्पव्ययी भी होगा और कुशल तथा प्रभावशाली भी।

इसके अतिरिक्त आयोग के मत में एक या दो विश्वविद्यालयों को "शोध-विभाग" के रूप में पृथक विभाग निर्मित करने चाहिए जिसका कार्य केवल नारी-शिक्षा की ही देखभाल करना हो। इस दृष्टि से शिक्षा को नारियों के लिए उपलब्ध व्यवसायिक अवसरों के संदर्भ में देखना चाहिए तथा नारी शिक्षा की उचित योजना, विशेषकर उच्चस्तर पर, निर्मित करने में मार्गदर्शन करना चाहिए।[१]

१९६४-६६ का शिक्षा आयोग वर्तमानशिक्षा संगठन पर निर्मित नवीनतम आयोग है। यदि इसके प्रस्तावों तथा तृतीय योजना के अन्तर्गत निर्धारित कार्य-क्रम भविष्य में व्यवहारिक रूप प्राप्त कर सकें तो निश्चय ही नारी शिक्षा को नई एक दिशा मिलेगी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से भारत ने नारी-शिक्षा के क्षेत्र में जो प्रगति की है, संलग्न तालिका उसका विवरण देती है।

---

1. Ibid, p. 314.

नारी-शिक्षा की प्रगति— १९५० से १९६५ तक[१]

पंजीकृत बालिकाओं की संख्या —	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६
१. कक्षा १ से ५ तक				
(१) सम्पूर्ण पंजीकरण (००० में)	५,३८५	७,६३९	११,४०१	१८,२४५
(२) प्रति १०० बालकों पर पंजीकृत बालिकाओं की संख्या	३९	४४	४८	५५
(३) सहशिक्षा केन्द्रों में बालिकाओं का प्रतिशत	७४.८	७९.२	८२.१	८५.०
२. कक्षा ६ से ८ तक				
(१) सम्पूर्ण पंजीकरण (००० में)	५३४	८६७	१,६३०	२८३९
(२) प्रति १०० बालकों पर पंजीकृत बालिकाएं	२१	२५	३२	३५
(३) सहशिक्षा केन्द्रों में बालिकाओं का प्रतिशत	२६.७	५१.८	६८.९	७८.
३. कक्षा ९ से १२ तक				
(१) सम्पूर्ण पंजीकरण (००० में)	१६३	३२०	५४१	१,०६६
(२) प्रति १०० बालकोंपर पंजीकृत बालिकाएं	१५	२१	२३	३६
(३) सहशिक्षा केन्द्रों में बालिकाओं का प्रतिशत	७१.०	२९.७	३६.४	४०.
४. विश्वविद्यालय स्तर पर पंजीकरण (सामान्य शिक्षा)				
(१) सम्पूर्ण पंजीकरण (००० में)	४०	८४	१५०	२७१
(२) प्रति १०० बालकों पर बालिकाएं	१४	१७	२३	२४
(३) सहशिक्षा केन्द्रों में बालिकाओं का प्रतिशत	५६.०	५३.१	५०.२	५८.२
५. व्यवसायिक पाठ्यक्रम में पंजीकरण(स्कूल स्तर)				
(१) सम्पूर्ण पंजीकरण (१ ००० में)	४१	६६	८६	१२०
(२) प्रति १०० बालकों पर बालिकाएं	२८	३१	२५	२३
६. व्यवसायिक पाठ्यक्रम में पंजीकरण(कालिज स्तर)				
(१) सम्पूर्ण पंजीकरण (००० में)	५	९	२६	५०
(२) प्रति १०० बालकों पर बालिकाओं की संख्या	५	७	११	१४

1. Taken from Report of Education Commission 1964-66, p. 136.

शारीरिक-शिक्षा तथा पाठ्येतर क्रियाएं

शारीरिक शिक्षा तथा पाठ्येतर क्रियाओं ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। इसके पहले शिक्षा में इनका स्थान एक प्रकार से नगण्य था। आज शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर पाठ्येतर क्रियाएं विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों का अभिन्न अंग हैं।

शारीरिक शिक्षा

प्रत्येक राज्य तथा केन्द्र के पास अपने अपने पृथक शारीरिक शिक्षा के पाठ्यक्रम हैं शिक्षा मंत्रालय ने भी प्रारम्भिक स्तर से लेकर माध्यमिक शिक्षा स्तर तक के लिए नमूना-पाठ्यक्रम निर्मित किया है जिसके आधार पर विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं में शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम निश्चित किए जा सकते हैं। शारीरिक शिक्षा के महत्व को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने मार्च १९५० में "शारीरिक शिक्षा पर केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड" की स्थापना की इसने न केवल शारीरिक शिक्षा के लिए कार्यक्रम निश्चित किए अपितु स्कूलों को इसके प्रोत्साहन के लिए अनुदान भी दिए। प्रत्येक माध्यमिक विद्यालयों में इस प्रकार की कुछ प्रशिक्षित अध्यापक-अध्यापिका का होना आवश्यक है। १९४९-५० में ८० पुरुषों तथा १६ स्त्रियों ने शारीरिक शिक्षा प्रशिक्षण पूरा किया। शारीरिक शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान, कान्दवली ने दो अल्पकालीन पाठ्यक्रम रखे जिनमें १५० पुरुष तथा २६ स्त्रियां प्रशिक्षित की गईं। दो अन्य व्यक्तिगत संस्थाओं ने अल्पकालीन योजना के अंतर्गत ३४ पुरुषों और १७ स्त्रियों को प्रशिक्षित किया है।[१] १९५३ में राजकुमारी खेलकूद प्रशिक्षण योजना चालू की गई जिसके अन्तर्गत स्त्री, पुरुष को विभिन्न खेलकूद में प्रशिक्षित करने का कार्यक्रम रखा गया।[२]

---

1. Education in India Vol. I, Report, Ministry of Education, Government of India, 1949-50, pp. 181-82.
2. The Indian Year Book of Education, Part I, First Year Book N.C.E.R.T., p. 43.

१९६१ में केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड ने २८ वें सम्मेलन में शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में कुछ सुझाव रखे जिनमें राज्यों को 'राष्ट्रीय शारीरिक कुशलता अभियान' को सफल बनाने के लिए, संस्थाओं के निर्माण हेतु अनुदान देने की मांग रखी। इस योजना को स्त्रियों के मध्य भी व्यापक बनाने का सुझाव रखा गया। इसके लिए महिला क्लबों तथा बालिका विद्यालयों को माध्यम बना कर महिलाओं को इस योजना के अन्तर्गत प्रशिक्षित करने की मांग रखी गई।[1] इसके अतिरिक्त नारियों तथा पुरुषों के प्रशिक्षण के लिए अनेक विद्यालय तथा संस्थान समय समय पर खोले गए। शारीरिक शिक्षा में ड्रिल, विभिन्न खेलकूद आदि सम्मिलित हैं। इनका महत्व शिक्षा में दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगिताएं आयोजित की जा रही हैं जिनमें महिलाएं भी प्रमुख भाग ले रही हैं।

इस क्षेत्र में वर्तमान राज्यों का उल्लेखनीय कार्य प्रत्येक राज्य में एक शारीरिक शिक्षा निरीक्षक की नियुक्ति। कहीं कहीं इसके नीचे अन्य पदाधिकारी भी नियुक्त हैं। बालिकाओं के स्कूलों के लिए इस प्रकार की महिला निरीक्षिकाओं की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है परन्तु इस प्रकार के कार्यक्रम राज्यों में भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं।[2]

गर्ल-गाइडिंग

शारीरिक शिक्षा तथा पाठ्येतर क्रियाओं के रूप में गर्लगाइडिंग तथा एन० सी०सी० ने आज वर्तमान शिक्षा संस्थाओं में महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। १९४६-५० में अखिल भारतीय गर्ल गाइड संघ बने तथा हिन्दुस्तान स्काउट संघ के गर्ल-गाइड विभाग ने अनेक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, पड़ाव तथा पर्यटन की व्यवस्था की। १९५०-५१ में 'हिन्दुस्तान स्काउट संघ' तथा 'बालक स्काउट संघ', 'भारत स्काउट

---

1. Education in India Vol. I, Report, 1960-61, Ministry of Education, Government of India, p. 273.
2. The Indian Year Book of Education, Part I, First Year Book, N.C.E.R.T., p. 260.

तथा गाइड संघ' में परिवर्तित हो गया। गर्ल-गाईडिंग संघ ने भी इस नवीन संघ में समाविष्ट हो जाने का निश्चय किया। इस वर्ष शिक्षा मंत्रालय ने इस नवीन संघ को ३०,००० रुपया तथा गर्ल-गाइड संघ को २,५०० रुपया अनुदान स्वरूप दिया। गर्ल-गाइड संघ के सदस्यों ने स्कूलों, चिकित्सालयों तथा शरणार्थी कैम्पों में अपूर्व समाज सेवा के कार्य किए।[१] १५ अगस्त १९५१ में "गर्ल-गाइड संघ", 'भारत-स्काउट तथा गाइड संघ' में मिल गया। इस प्रकार यह संघ आज एकमात्र ऐसा संघ है जो राष्ट्रीय स्तर पर निर्मित है। इस संघ को केन्द्र तथा राजकीय सरकारों द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त है। संघ की विभिन्न शाखाओं ने राज्य सरकारों के साथ "अधिक अन्न उपजाओ", वृक्षारोपण, राष्ट्रीय बचत, रक्तदान, स्वास्थ्य तथा सफाई, तथा प्रौढ़ शिक्षा आदि योजनाओं में महत्वपूर्ण सहयोग दिया है।[२] १९६०-६१ में सरकार ने पचमढ़ी में राष्ट्रीय प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना के लिए ३,८१,८४३ रुपया अनुदान दिया। इस अनुदान के अन्तर्गत अखिल भारतीय जम्बूरी (बंगलौर) तथा विदेशों में स्काउट और गाइड के दलों को भेजने की योजना भी सम्मिलित है। पंजाब तथा पश्चिमी बंगाल ने इस वर्ष स्थानान्तरित व्यक्तियों के मध्य भी गाईडिंग का प्रचार किया। जलंधर में आयोजित एक समारोह में ४० शरणार्थी बालिकाओं ने भाग लिया था। लंदन के गर्ल-गाइड संघ के समारोह में भाग लेने के लिए एक शरणार्थी बालिका का चुनाव किया गया था। १९६० में एथेन्स में आयोजित १७ वें अंतर्राष्ट्रीय गर्ल गाइड संघ तथा गर्ल-स्काउट संघ में, १९६० में रंगून में आयोजित द्वितीय सुदूर पूर्व सम्मेलन में, १९६० में रंगून में ही आयोजित प्रथम सुदूरपूर्व व्यवसायिक स्काउट प्रशिक्षण सम्मेलन में, १९६१ में लंका में आयोजित तृतीय सुदूरपूर्व टीम के प्रशिक्षण कोर्स में, १९६० में एथेन्स में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय आयोग (गाइड) सभा में, तथा जनवरी-फरवरी १९६१ में फिलीपाइन्स में आयोजित प्रशिक्षण सम्मेलन में भारत ने प्रतिनिधित्व किया था।[3] आज प्रत्येक

---

1. Education in India 1950-51 Vol. I, Report, Ministry of Education, Government of India, p. 236.
2. Ibid, 1951-52, p. 255.
3. Education in India 1960-61 Vol. I, Report, Ministry of Education, Government of India, p. 279.

विद्यालय में गाइडिंग की शिक्षा अधिकाधिक व्यापक होती जा रही है।

एन०सी०सी

इसके साथ ही एन०सी०सी० के माध्यम से सैनिक सुलभ कार्यों की शिक्षा से भी भारतीय नारी वंचित नहीं है। स्वतंत्र भारत के नवयुवक तथा नवयुवतियों के मध्य अनुशासन, नेतृत्व तथा नागरिकता की भावना के विकास तथा राष्ट्रीय आपात्-काल में सैनिक कार्यों में दक्ष अधिकारियों की नियुक्ति के उद्देश्य से १९४८ में एन० सी०सी० की व्यवस्था की गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत इस दिशा में भी महिला संघ विभाग आयोजित करने के प्रयत्न हुए हैं। १९४९-५० में, २० बालिकाओं की एक टुकड़ी के साथ महिला संघ विभाग की स्थापना की गई।[1] शीघ्र ही अनेक राज्यों में इस प्रकार के महिलासंघ स्थापित होने लगे। १९५१-५२ में एन०सी०सी० में भर्ती छात्राओं की संख्या २७० थी।[2] शनैः शनैः इस प्रकार के प्रशिक्षण की मांग बढ़ने लगी तथा बालिकाएं भी अपूर्व उत्साह से इसमें भाग लेने लगीं। १९६२-६३ में चीनी आक्रमण के रूप में देश को अप्रत्याशित हमले का सामना करना पड़ा। देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए विद्यार्थी समुदाय को सैनिक कार्यों में कुशलता प्रदान करने के लिए एन०सी०सी० को व्यापक बनाने की आवश्यकता अनुभव की गई। अतः इस वर्ष एन०सी०सी० के प्रत्येक संघ और विभाग में इसके प्रशिक्षण को व्यापक बनाने के प्रयत्न किए गए। कालेजों और विश्वविद्यालयों से एन०सी०सी० के प्रशि-क्षण को बढ़ावा देने का अनुरोध किया गया। फलस्वरूप इस क्षेत्र में अपूर्व प्रगति हुई। १९६२-६३ में एन०सी०सी० में कुल संख्या (उच्चसंघ में) आफिसर – ५,३३७ तथा छात्र ६,२२,७५० थी, इनमें बालिकाओं की संख्या ११,०७० थी। तथा निम्न-संघ में बालिकाओं की संख्या २५,५६० थी।[3] इसी वर्ष एन०सी०सी० आफिसर प्रशिक्षण स्कूल कैम्प्टी में ७६५ आफिसरों के साथ खोला गया। इसमें १११ महिला-

---

1. Ibid, 1949-50, p. 188.
2. Ibid, 1951-52, p. 256.
3. Ibid, 1962-63, p. 220.

आफिसरों ने भी प्रशिक्षण लिया। बालिकाओं के प्रशिक्षण के लिए इस वर्ष ३६ शिविर आयोजित किए गए जिनमें २१२ महिला आफिसर तथा १७,३०५ छात्राओं ने भाग लिया। इसके अतिरिक्त ६ समाज सेवा शिविर में ४५ महिला आफिसरों तथा १,३७५ बालिकाओं ने भाग लिया। इन बालिकाओं ने ग्रामीणों को बाल-कल्याण, स्वास्थ्य तथा स्वच्छता तथा सामान्य शिक्षा की शिक्षा दी तथा औषधियां आदि वितरित कीं।[1] अतः निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में बालिकाओं की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

पाठ्येतर क्रियाओं तथा व्यायाम आदि के रूप में उपरोक्त प्रकार के प्रशिक्षणों का शिक्षा में विशिष्ट स्थान है।

बीसवीं शताब्दी में भारतीय नारी की सामाजिक स्थिति पर शिक्षा का प्रभाव

स्वतंत्र भारत का लोकतंत्रात्मक संविधान स्वतंत्रता के जिस सिद्धान्त पर आधारित है, वह इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि नारी के प्रति समाज का व्यवहार और दृष्टिकोण पूर्णरूप से बदल चुका है। आज नारी प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के समान अधिकारों की स्वामिनी है। शिक्षा का अधिकार भी उनमें से एक है। "पिछले ३० वर्षों में नारी शिक्षा में जो प्रगति हुई है, वह आश्चर्यजनक अवस्था से कुछ ही कम है।"[2]

"एक समय ऐसा था जब भारत में नारी शिक्षा के न केवल पक्षपातियों का अभाव था, अपितु खुले रूप से विरोध करने वाले अधिक थे। नारी शिक्षा आज इन सभी स्थितियों--पूर्ण उदासीनता, पक्षपात, हास्यास्पद, आलोचना तथा स्वीकृति से निकल चुकी है। आज यह ठीक ही कहा जाता है कि बालिकाओं की शिक्षा की आवश्यकता बालकों की शिक्षा के समान प्रगति की प्रमुख आवश्यकता है--राष्ट्रप्रगति का अत्यावश्यक तत्त्व।"[3]

---

1. Ibid, p. 221.
2. Natrajan, K., Sister India, p. 160.
3. Rani Sahib of Sangli, Report of All India Women's Conference,

"नारी-शिक्षा की प्रगति के प्रति सम्पूर्ण भारत में जो सामान्य जागरण व रुचि जागृत हुई है, वह सुखप्रद है......... । शिक्षा के क्षेत्र में, विशेषकर उच्च शिक्षा में कुछ व्यक्तिगत रूप से आश्चर्यजनक प्रगति हुई है । परन्तु यह व्यक्तिगत प्रगति, कितनी ही आश्चर्यजनक क्यों न हो देश में सामान्य तथा सुनियोजित नारी-जाति के विकास में प्रारम्भिक तथा माध्यमिक शिक्षा के अभाव की पूर्ति नहीं कर सकती है ।"[1]

नारी-शिक्षा के सम्बन्ध में कही गई उपरोक्त उक्तियाँ सत्य हैं । शिक्षा की चतुर्दिक प्रगति, विशेषकर नारी, शिक्षा के क्षेत्र में, बीसवीं शताब्दी की उल्लेखनीय उपलब्धि है । शैक्षिक अवसरों की समानता ने नारी समाज का स्वरूप बदल दिया है । आज नारी अपने संकुचित क्षेत्र से बाहर, देश के राजनैतिक तथा सार्वजनिक कार्यों में प्रभावशाली भूमिका निभा रही है । भारतीय संसद् तथा राजकीय व्यवस्थापिकाओं में बड़ी संख्या में नारी-सदस्य हैं । कोई भी क्षेत्र नारियों के लिए बन्द नहीं है, और न ही कोई क्षेत्र उनकी पहुँच से बचा ही है । राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में नारियाँ महत्वपूर्ण प्रशासकीय पदों पर आरूढ़ हैं । केन्द्रीय सरकार ने लगभग २३,००० स्त्रियों की नियुक्ति विभिन्न सरकारी पदों पर की थी । १९५१ में ११३,००० स्त्रियाँ परिवहन सेवा विभाग में थी तथा १९५६ में ३,०१,४०० स्त्रियाँ कारखानों, मिलों तथा खानों में कार्यरत थीं । १९५७ में कानूनी तथा व्यापारिक सेवाओं में कार्यरत महिलाओं की संख्या ६०० थी ।[2] इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों और व्यवसायों में कार्यरत महिलाएं बड़ी संख्या में आर्थिक स्वतंत्रता का उपभोग कर रही थीं । १९५१ के सेन्सस प्रतिवेदन के अनुसार भारत में ५०,००,००० स्त्रियां आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र थीं । यह संख्या निरन्तर ~~बदलती और~~ बढ़ती जा रही है । न केवल राष्ट्रीय अपितु अन्तर्राष्ट्रीय जगत में महिलाओं ने विभिन्न

---

1. H.H. Maharani Sahib of Baroda, Report of All India Women's Conference, 1927, p. 18.
2. 'Shiksha', The Journal of Education Department, U.P., p. 150.

प्रशासकीय पदों पर आरूढ़ होकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है ।

इसके अतिरिक्त औद्योगिक तथा सामाजिक क्रान्ति ने स्त्रियों को बड़ी संख्या में मिलों, कारखानों, खानों, कोयले की खानों तथा कृषिक्षेत्रों में कार्य-करने का अवसर दिया है । टेलीफोन संचालिका, दुकानदार, तथा कारीगर के रूप में भी महिलाओं ने कार्य किया है । इस प्रकार भारत में शांतिपूर्ण नारी आन्दोलन ने अपने लिए कार्य करने का अधिकार पा लिया है । अब वे इन क्षेत्रों में अधिक सुविधाओं तथा अधिक वेतन क्रम की मांग कर रही हैं ।

श्रीमती इन्ना सेन के शब्दों में महिलाओं की विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्धियों के विकास का क्रम इस प्रकार रखा जा सकता है :-" कुछ वर्षों पूर्व महिलाओं ने हजारों की संख्या में अध्यापिकाओं की मांग-पूर्ति की थी । बाद में उन्होंने चिकित्सक, नर्स, दाई तथा स्वास्थ्य निरीक्षिका के पदों को संभाला । हाल ही में उन्होंने कानूनी व्यवसाय अपनाए । इसी के साथ महिलाओं ने औद्योगिक क्षेत्रों तथा हस्त कौशलों में विभिन्न प्रकार के काम किए । एक बड़ी संख्या में कार्यालय सचिव, सांकेतिक लिपि लेखिका, टेलीफोन संचालिका तथा बस कन्डक्टर के रूप में कार्य किया । स्त्रियों की आर्थिक स्थिति तथा सामाजिक महत्त्व नवीन संविधान के निर्माण के साथ पुन: बढ़ गया है । अनुच्छेद १६ के अनुसार घोषित किया गया है कि लिंगभेद के आधार पर कोई भी नागरिक राज्य के अधीन किसी भी नौकरी के अयोग्य नहीं ठहराया जायेगा । स्वतंत्र भारत ने पुन: एक कदम और आगे रखा, और महिलाओं को वैदेशिक, राजनीतिक तथा प्रशासकीय पदों पर जो कि अब तक पुरुषवर्ग के लिए नियत थे, आरूढ़ किया । महिलाएं, सैनिक शक्तियों के चिकित्सा विभाग तथा पुलिस में भी भर्ती की गई । इन सभी नौकरियों में वेतन, वेतनक्रम तथा पदोन्नति में स्त्री-पुरुष में कोई भेद नहीं किया गया । भारत सरकार द्वारा निर्मित केन्द्रीय वेतन आयोग के "समान कार्य के लिए समान वेतन" प्रस्ताव द्वारा तथा गणराज्य के संविधान के अनुच्छेद ३९ में इसे राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में स्थान प्राप्त होने के परिणामस्वरूप ही यह संभव हो सका है । १९४८ का "न्यूनतम वेतन अधिनियम" व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति के सुधार का अन्य एक प्रयत्न है । इसके द्वारा कुछ नियत नौकरियों का, जिसमें कृषि भी सम्मिलित है, वेतन निर्धारित कर दिया गया है तथा स्त्री और पुरुष कार्यकर्ताओं के लिए पृथक

वेतन क्रम की अनुमति नहीं देता है । इन लोगों के लिए यह उचित दिशा में कदम है । विभिन्न प्रकार की नौकरियों में समानवेतन तथा न्यूनतम वेतन निर्धारण का सिद्धान्त, निश्चय ही देश की आर्थिक व्यवस्था के संदर्भ में, व्यवहारिक रूप पा सकेगा । सम्मेलन द्वारा इसका परिणाम उत्सुकतापूर्वक देखा जायेगा ।"[1]

अवसरों की समानता तथा शिक्षा के विकास ने निश्चय ही कुछ नवीन समस्याओं को जन्म दिया है । इसके साथ ही राष्ट्रीय विकास और राष्ट्र-निर्माण कार्य में महिलाओं का अपूर्व सहयोग प्राप्त कर विकास क्रम को नई दिशा प्रदान की है । शिक्षा ने नारी के विचारों में आमूल परिवर्तन कर उसे 'स्व' को पहचानने में सहायता दी है । आज शिक्षित नारीवर्ग, यद्यपि उनकी संख्या अधिक नहीं है, यह मानने को तैयार नहीं कि विवाह ही नारियों का एकमात्र व्यवसाय है, अपितु वे अपनी आर्थिक स्वतंत्रता के संदर्भ में विचार करती हैं । यह नहीं, पश्चिमी देशों की भाँति भारत का जनमत भी अब विवाहित स्त्रियों के जीविकोपार्जन को बुरा नहीं समझता । इसके विपरीत शिक्षित नारी विवाहोपरान्त भी अपनी योग्यतानुसार कार्य करना उचित समझती है ।

१९४७ में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन ने एक लघु पुस्तिका 'महिलाओं के लिए कुछ जीवनवृत्ति' प्रकाशित की थी जिसमें भारत में महिलाओं के लिए उपयुक्त जीवनवृत्ति तथा उसके प्रशिक्षण के सम्बन्ध में उल्लेख था ।

भारतीय श्रमिक मंत्रालय के अनुसार नियोजन संस्थान ने फरवरी १९५१ में ३,४६० महिलाओं को भर्ती किया । इनमें उन हजारों महिलाओं की संख्या सम्मिलित नहीं है जिन्होंने अपने को विभिन्न नौकरियों के लिए पंजीकृत कराया था तथा उपयुक्त नौकरी की प्रतीक्षा में थीं । यह इस बात का प्रमाण है, कि एक ऐसे देश में, जहाँ सदियों तक नारी घर की चहारदीवारी में बन्दी रही, आर्थिक

---

1. All India Women's Conference, 22nd Session, Bangalore, 1951. The All India Women's Conference Bombay, 41 Queens Barracks, Foreshore Road, 1951, p. 128.

स्वतंत्रता की नवीन इच्छा जागृत हो चुकी है । आधुनिक युग में नारी को इस स्थिति पर पहुंचाने का एकमात्र श्रेय शिक्षा को ही है ।

ग्रामीण क्षेत्रों में नारी-शिक्षा का अभाव

बीसवीं शताब्दी में समाज का यह परिवर्तित दृष्टिकोण और व्यवहार तथा शैक्षिक प्रगति वास्तव में नगरों तक ही सीमित कही जा सकती है । भारतीय ग्रामीण समाज अभी भी पुरातन दृष्टिकोण से जकड़ा है । शिक्षा का विकास दो प्रमुख तत्वों पर निर्भर करता है —व्यक्तियों की प्रवृत्ति तथा समाज का ढांचा । जहाँ तक प्रवृत्ति का प्रश्न है, उनका विचार है कि शिक्षा स्त्री को दुराचारी बनाती है । ग्रामों का सामान्य दृष्टिकोण यह है कि शिक्षा परम्परागत विश्वासों में परिवर्तन कर नवीन इच्छाओं और आकांक्षाओं को जन्म देती है तथा नारी को उनके समाज में समायोजन के अयोग्य बना देती है । ग्रामीणों का मानसिक स्तर संकुचित क्षेत्र में सीमित है :—वर्षा, अनाज का भाव, कृषि की समस्याएं, रोग, धार्मिक उत्सवों का अनुष्ठान , बालकों के लिए कुछ प्रारम्भिक शिक्षा तथा बालिकाओं का विवाह —यही उनकी प्रमुख समस्याएं हैं । नारी शिक्षा के प्रति अनुदारवादी तथा उदासीनता का व्यवहार लगभग प्रत्येक गांव में देखा जाता है । गांवों में शिक्षा के समुचित विकास के लिए इस दृष्टिकोण और प्रवृत्ति में परिवर्तन करने की आवश्यकता है ।

इसके अतिरिक्त ग्रामीण समाज का ढांचा इस प्रकार निर्मित हो चुका है, जिसमें शिक्षा की, विशेष कर नारी शिक्षा की प्रगति के लिए कोई स्थान नहीं है । ग्रामीण परम्परा के अनुसार शिक्षा स्त्रियों के कार्यक्षेत्र — (घर तथा खेती) के लिए अनावश्यक है । दूसरे भारतीय गांव छोटे-छोटे तथा बिखरे हुए हैं । लगभग ३६०,००० गांव की जनसंख्या ५०० से भी कम है तथा उनकी कुल सम्मिलित आबादी ७० मिलियन से अधिक है ।[१] इसके साथ ही अधिकांश गांवों में दो प्रकार के

---

1. Interim Report of the Indian Statutory Commission, 1929, p. 27.

व्याप्त हैं-- एक तो अछूत माने जाते हैं और दूसरे नहीं । इन दोनों वर्गों के बच्चे एक साथ शिक्षा पाने में असमर्थ हैं । अत: शिक्षा के प्रसार के लिए ग्रामीण समाज के इस परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन आवश्यक है । भारत में शिक्षा की प्रमुख समस्या गाँवों की समस्या है, और ५००,०००[१] छोटे तथा बिखरे हुए गाँवों में कभी उचित संख्या में स्कूल नहीं हो सकेंगे जब तक कि बालक-बालिकाओं तथा अछूतों के लिए पृथक-पृथक स्कूलों की माँग की जायेगी ।

गाँवों में नारी शिक्षा के पिछड़े पन के लिए कुछ अन्य तत्व भी उत्तरदायी हैं । इनमें स्कूलों की संख्या में न्यूनता तथा अयोग्यतापूर्ण संचालन और ग्रामीण बालिकाओं की आवश्यकताओं के प्रतिकूल पाठ्यक्रम, तथा नारी शिक्षिकाओं का अभाव आदि अन्य कारण हैं । इन क्षेत्रों में सुधार कुछ सीमा तक ग्रामीण व्यक्तियों को शिक्षा की ओर उन्मुख कर सकेगा । यदि गाँवों में स्थापित स्कूल उनकी प्रतिदिन की आवश्यकताओं और समस्याओं को हल करने में समर्थ होंगे तथा व्यवहारोपयोगी शिक्षा दे सकेंगे,तो निश्चय ही उनकी प्रवृत्ति शिक्षा के प्रति बदल सकेगी ।

स्कूलों में विभिन्न सुधार करने के प्रस्तावों में से एक प्रस्ताव यह भी है कि स्कूल शिक्षक को ऐसे सार्वजनिक अधिकारी, जिसके पास विभिन्न प्रकार के कर्तव्य हों, के रूप में बदलना चाहिए । ऐसा शिक्षक (अथवा सार्वजनिक अधिकारी) ग्रामीण समाज की विभिन्न क्रियाओं को सुसम्बन्धित कर स्कूल को ग्रामीण जीवन का केन्द्र-बिन्दु बना सकेगा ।[२]

इस सम्बन्ध में सामुदायिक शिक्षा का भी प्रस्ताव रखा गया है । इस योजना में अंतर्निहित विचार यह है कि गाँवों के ये स्कूल सामुदायिक केन्द्र हों तथा उनका प्रधान समुदाय का नेता ।[३] सामुदायिक विकास योजना का कार्यक्रम इस दिशा

---

1. Caton, A.R. - The Key of Progress (Ed.), p. 40.

2. Ibid.

3. Ibid, p. 41.

में प्रथम चरण है । परन्तु अब तक इसने इस जटिल समस्या का एक अंशमात्र ही स्पर्श कर पाया है । इस क्षेत्र में शिक्षित महिलाएं अधिक योगदान दे सकती हैं । वे घरों में जाकर प्रौढ़ स्त्रियों को शिक्षा दे सकती हैं । एक बार जब प्रौढ़ पुरुष तथा स्त्रियां शिक्षा के महत्त्व को समझ सकेंगे, तब बालिकाओं की शिक्षा का मार्ग स्वयं ही प्रशस्त हो जायेगा ।

बम्बई राज्य में एक अन्य योजना-ग्राम चिकित्सा योजना निर्मित की गई है जिसके अन्तर्गत ग्रामीण शिक्षक छोटी छोटी बीमारियों की देखभाल तथा प्राथमिक चिकित्सा में शिक्षित किए जाते हैं ।[1] शिक्षकों को इस प्रकार की चिकित्सा का प्रारंभिक ज्ञान देना कठिन कार्य नहीं है । इसके द्वारा स्कूल शिक्षक सरकारी-चिकित्सा विभाग तथा गांवों के मध्य महत्वपूर्ण कड़ी का काम कर सकते हैं । प्रारंभिक शिक्षा के कुछ विद्यालयों को चिकित्सा का केन्द्र बनाकर मद्रास ने भी इस योजना में सफलता पाई है ।

इसके अतिरिक्त चलचित्रों, रेडियो, लघु पुस्तिकाओं के वितरण, नाटकों तस्वीरों, प्रदर्शिनियों, भाषणों, प्रतियोगिताओं तथा घर-घर जाकर समाज सेवा आदि कुछ अन्य उपाय हैं, जो ग्रामीणों के मध्य शिक्षा प्रसार में सहयोग दे सकते हैं । ग्रामवासियों को इस बात से विश्वस्त कराना होगा कि नारी-शिक्षा उनके घरों को अधिक सुखी, समृद्धिशाली तथा स्वास्थ्यप्रद बना सकेगी ।

भारत की ८७ प्रतिशत बालिकाएं ग्रामों में निवास करती हैं ।[2] इनके मध्य शिक्षा का प्रसार ही वास्तव में शिक्षित भारतीय नारी के स्वप्न को पूरा कर सकेगा ।

आज भारत के सामने अनेक महत्त्वपूर्ण समस्याएं हैं, जिनमें प्रमुख हैं :- खाद्यान्न में स्वावलंबी होने की समस्या, सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता की समस्या

---

1. Abridged Report, Royal Commission on Agriculture, 1928, p.57.
2. Caton, A.R. (Ed.), The Key of Progress, p. 6.

आर्थिक विकास तथा बेकारी की समस्या और अंत में लोकतंत्र को शक्तिशाली बनाने के लिए स्वस्थ जनमत और देश की सुरक्षा की समस्या । इन समस्याओं का समाधान भारत को समृद्धिशाली देशों में गिना जाने योग्य बना देगा । शांतिपूर्ण ढंग से इन समस्याओं के निराकरण का एक ही मार्ग है, और वह है - शिक्षा ।

स्वतंत्रता संग्राम में भारतीय नारियों ने पुरुषों के साथ प्रत्येक क्षेत्र में सहयोग किया था । आज भारत का संघर्ष निर्धनता, बेकारी, भुखमरी, निरक्षरता अंधविश्वास, अज्ञानता आदि आंतरिक शत्रुओं के साथ है । भारतीय नारी की सेवाएं इस संघर्ष में भी पुरुष वर्ग के साथ अपेक्षित हैं । शिक्षा के विकास के साथ-साथ नारी इस क्षेत्र में पूर्ण सहयोग दे रही है ।

अध्याय – ५

बीसवीं शताब्दी में नारी के उन्नयन के लिए

अधिनियमों का पारित होना ।

अध्याय – ५

बीसवीं शताब्दी में नारी के उन्नयन के लिए अधिनियमों का पारित होना

बीसवीं शताब्दी वस्तुतः सुधारों और जागरण की शताब्दी है। भारत की, विशेषकर सदियों की पददलित भारतीय नारी के जागरण की शताब्दी है। इस देश व्यापी उद्बोधन को न केवल सामाजिक सुधारकों, जिनमें अंग्रेजों के साथ-साथ भारतीय सुधारक भी सम्मिलित हैं, के द्वारा प्रोत्साहन मिला, अपितु इस शताब्दी का महत्व इस बात में अधिक है कि इसमें प्रथम बार राज्य द्वारा निर्मित विभिन्न कानूनों के माध्यम से भारतीय नारी न केवल अपनी पुरातन प्रतिष्ठा को ही पुनः प्राप्त करने में समर्थ रही है, अपितु उससे भी अधिक प्रतिष्ठित व सामाजिक अधिकारों की स्वामिनी बनी। नारी अब अपनी प्रगति के लिए समाज सुधारकों की कृपा दृष्टि पर निर्भर नहीं है, यद्यपि उसकी आज की यह उन्नति स्थिति इन्हीं सुधारकों के प्रयत्नों की देन है। आज वह प्रजातंत्र के आधारभूत सिद्धान्त स्वतंत्रता और समानता के आधार पर पुरुषवर्ग से कम अधिकार नहीं रखती है। नारी को इस स्थिति तक पहुंचाने का श्रेय राज्य द्वारा पारित विभिन्न अधिनियमों को है।

सरकार द्वारा कानून निर्माण का विचार यद्यपि आधुनिक युग की देन है, तथापि भारत के लिए यह नवीन व्यवस्था नहीं कही जा सकती है। प्राचीन भारत में भी समाज में संगठन और व्यवस्था बनाए रखने की दृष्टि से विभिन्न नियम लागू थे, और उनका पालन भी उतनी ही दृढ़ता से किया जाता था, जितना आधुनिक राज्यों द्वारा निर्मित कानूनों का। परन्तु आधुनिक युग के कानूनों में तथा प्राचीन राज्य के नियमों में एक अन्तर अवश्य था। आधुनिक कानून राज्य की देन हैं और सुसंगठित सरकार द्वारा निर्मित हैं। प्राचीन भारत में संगठन की इकाई समाज को माना जाता था। अतः तत्कालीन कानून राज्य की देन न होकर, समाज की देन थे जिनके निर्माण में ऋषि, मुनियों और दार्शनिकों का विशेष हाथ था।

यद्यपि राज्य में राजा का पद भी उल्लेखनीय था, परन्तु राजा "ब्राह्मणों", जोकि समाज का मुखिया तथा कर्णधार वर्ग था, के आधीन था ।[१] प्राचीन भारत के दार्शनिकों और विधिवेत्ताओं ने जो नियम निर्धारित किए, आज भी वही नियम हिन्दू धर्म और आचरण का मुख्य और अनिवार्य भाग माने जाते हैं । समय के परिवर्तन के साथ-साथ यद्यपि उनमें भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है जो स्वाभाविक भी है, परन्तु मूल रूप में आज का "हिन्दू विधान" उन्हीं नियमों का विकसित और परिमार्जित रूप है । आज भी "हिन्दू विधान" के प्रमुख स्रोत धर्मसूत्र, श्रुति, स्मृति आदि हैं ।

मुसलमानों के आगमन तथा उनके राज्य के स्थापित हो जाने के कारण मध्ययुग में हिन्दू व्यवस्था को भारी आघात पहुँचा । मुस्लिम राज्य धार्मिक राज्य थे । उनकी सभ्यता तथा संस्कृति हिन्दुओं से सर्वथा विपरीत थी । मुस्लिम सुल्तानों ने समाज सुधार के लिए कानूनों के निर्माण को कोई महत्त्व नहीं दिया । इसके ठीक विपरीत उनके राज्य-काल में हिन्दू समाज के मूल आधार वर्ण और आश्रम व्यवस्था को भारी क्षति पहुँची । विदेशी आक्रान्ता, विदेशी सभ्यता और भिन्न सामाजिक दृष्टिकोण के कारण हिन्दू व्यवस्था को सुरक्षित रखने में कोई योगदान न दे सके । भारतीय जनता राजनीतिक परतंत्रता के कारण सामाजिक प्रगति और सामाजिक न्याय से वंचित हो गई । यही कारण है कि "लिखित कानून संहिता" तथा "सामाजिक विधान" के समान उस समय कोई भी व्यवहार संहिता नहीं मिलती है ।[२] उस समय न्याय तथा व्यवस्था के रूप में दो विभिन्न व्यवस्थाएं थीं । मुसलमान अपने "मुस्लिम विधान" द्वारा तथा हिन्दू अपने जातीय न्याय समितियों और पंचायत

---

1. Journal of the Andhra Historical Research Society, Vol. XXII, 1952 - Character and Scope of Social legislation in ancient and medieval India By U.C. Sarkar, p. 101.
2. Majumdar, R.C., Raichaudhari and Datta - An advanced history of India, Vol. II, p. 559.

द्वारा निर्देशित होती थी ।[1] संक्षेप में मुसलमानों के राजत्वकाल में हिन्दू व्यवस्था क्षत-विक्षत हो गई जिसका शिकार सबसे अधिक नारी वर्ग ही हुआ । नारी - स्थिति अत्यधिक शोचनीय हो गई तथा उनके सुधार के लिए कोई विचार तक नहीं किया गया ।

मुगल साम्राज्य के अन्तिम दिनों में भारत में यूरोपीय जातियों का प्रवेश हुआ । यह जातियाँ मुख्य रूप से वाणिज्य और व्यापार के उद्देश्य से आई थीं, परन्तु पतनोन्मुख भारत की तात्कालीन परिस्थिति से लाभ उठा कर राजनीतिक उद्देश्य के लिए जम गईं । इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हुए स्वाभाविक संघर्ष में अन्तिम विजय अंग्रेजों के हाथ लगी । साम्राज्य स्थापना के प्रारंभिक दिनों में अंग्रेजों को कानूनी व्यवस्था को सुसंगठित करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई जैसे विशाल नगरों में न्यायालयों की व्यवस्था की गई । जैसे-जैसे ब्रिटिश प्रभुत्व भारत के अन्य भागों में फैलता गया, कानून की समस्या और भी जटिल होती गई । इसका मुख्य कारण भारत में विभिन्न धर्मों और जातियों का होना था, जिनके अपने पृथक पृथक जातीय नियम थे । अंग्रेजों को इन नियमों की जानकारी न थी । दूसरी ओर विभिन्न जातियों और धर्मों के होने के कारण एक ही प्रकार की कानूनी व्यवस्था प्रत्येक पर लागू नहीं की जा सकती थी । शासन को इस समस्या के समाधान के लिए विवाह, उत्तराधिकार, समझौता आदि के सम्बन्ध में अनेक विधियाँ निर्मित की गईं । 'भारत सरकार अधिनियम' समय - समय पर पारित किए गए । भारत में स्थित ये न्यायालय हिन्दुओं को 'हिन्दू विधान' द्वारा तथा मुसलमानों को 'मुस्लिम विधान' द्वारा न्याय प्रदान करते थे । ईसाइयों के लिए भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, १८६५[2] पारित किया गया । इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रदेशों ने इस सम्बन्ध में अपने अलग-अलग अधिनियम पारित किए । यूनाइटेड प्राविन्स, बम्बई, मद्रास,

---

1. Sharma, Sri Ram - Religious Policy of the Mughal Emperors, pp. 193-4.
2. Indian Succession Act, 1865.

पंजाब, अजमेर, अवध, मेवाड़, सेन्ट्रलप्राविन्स आदि प्रदेशों में पृथक पृथक अधिनियम पारित करके उत्तराधिकार, स्त्री-सम्पत्ति, विवाह, गोद, अभिभावक सम्बन्धी पारिवारिक सम्बन्ध, उपहार, धार्मिक प्रथाओं और संगठनों आदि के सम्बन्ध में जातिगत मामलों के निर्धारण के लिए नियम निर्मित किए। इन सभी विषयों से संबंधित मामलों का निपटारा करने के लिए प्रारंभ में अंग्रेज शासक हिन्दू पंडितों और मुल्लाओं का सहयोग लेते थे। कलकत्ता, मद्रास और बम्बई के उच्च न्यायालय के निर्णयों में इन पंडितों और मुल्लाओं का प्रमुख हाथ था।

शासन के प्रारम्भिक दिनों में अंग्रेजों की नीति धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करने की नहीं थी। परन्तु उनके उदार स्वभाव तथा मिशनरी उत्साह ने उन्हें समाज सुधार के लिए प्रेरित किया। ये सुधार राजकीय कानूनों के माध्यम से किए गए। इस दृष्टि से ब्रिटिश राज्य भारत में एक नए अध्याय का प्रारम्भ करता है। शिक्षित भारतीयों, जिनकी संख्या यद्यपि न्यून थी, के सहयोग ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आधुनिक भारत में लागू होने वाला सर्वप्रथम अधिनियम १८०२ का अधिनियम[1] था। इस अधिनियम द्वारा सगर में शिशुओं को समुन्द्र में फेंकने की प्रथा बंद कर दी गई। १८७२ में इस सम्बन्ध में सम्पूर्ण भारत पर लागू होने वाला अधिनियम पारित हुआ जिसके द्वारा शिशुवध की प्रथा सम्पूर्ण भारत में बन्द कर दी गई।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में लार्ड वैलेजली (१७९८-१८०५) ने सती प्रथा के विरोध में मतों को एकत्र किया। इस सम्बन्ध में उसने यह सिद्धान्त अपनाया कि ब्रिटिश सरकार भारतीयों मतों और भावनाओं का आदर करती है, परन्तु वहीं तक जहां तक वह मानवता, नैतिकता और तर्क के परे न हो।[2]

विलियम बैन्टिक जिसका राजत्व काल (१८२८-३५) भारत में विशेष

---

1. Regulation VI of 1802.

2. Dua, R.P. - Social factors in the birth and growth of Indian National Congress Movement, pp. 14-15.

उल्लेखनीय है, ने १८२९ के अधिनियम[1] द्वारा सती प्रथा सदा के लिए बंद कर दी। विदेशी शासक द्वारा भारत का यह प्रथम सुधार था जिसने हिन्दू समाज को इस दूषित प्रथा से उबारा।[2] राजाराम मोहन राय का नाम इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय है, जिनके प्रयत्नों के फलस्वरूप यह अधिनियम पारित हो सका था। यद्यपि यह अधिनियम प्रारंभ में केवल बंगाल में ही लागू होता था, सम्पूर्ण भारत में नहीं। परन्तु फिर भी इसका महत्व इस बात में अधिक है कि इसने सामाजिक सुधारों का मार्गप्रशस्त किया था। १८३० में बम्बई तथा मद्रास में सती रेगुलेशन लागू किए गए थे।

१८५६ में "हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित हुआ। तत्पश्चात् १८६६ में बम्बई हिन्दू उत्तराधिकारी अधिनियम" पारित हुआ। इस अधिनियम द्वारा यह घोषित किया गया कि कोई भी व्यक्ति जो हिन्दू विधवा से विवाह करता है, विवाह के कारण ही उसके मृतपति के ऋणों के भुगतान के लिए उत्तर-दायी नहीं है।[3] इस प्रकार इस अधिनियम द्वारा विधवा विवाह को भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन मिला। इसी प्रकार "जातीय धर्म परिवर्तित विवाह-विच्छेद अधिनियम" १८८६ के द्वारा पत्नी के भरण-पोषण के लिए पति को धन देने पर बाध्य किया गया है। इसी प्रकार १८८८ में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा पारित एक अधिनियम के द्वारा वेश्याओं को बालिकाओं को गोद लेने का वैध अधिकार प्रदान कर दिया गया है, परन्तु तभी जबकि वह गोद ली गई बालिका का प्रयोग वेश्यावृत्ति के लिए न करे।[4] "भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम" तथा "सिविल विवाह अधिनियम" क्रमशः १८६९ तथा १८७२ में पारित हुए। १८९१ में आयु-स्वीकृति विधेयक वाइसराय की असेम्बली के समक्ष आया तथा उसी वर्ष यह अधिनि-यम लागू कर दिया गया। इस अधिनियम द्वारा लड़कियों के लिए विवाह योग्य-न्यूनतम आयु १२ वर्ष निर्धारित की गई। इस प्रकार इस अधिनियम के माध्यम से

---

1. Regulation No. XVII, 1829.
2. Dua, R.P. - p. 15.
3. Ibid, p. 62.
4. Ibid, p. 63.

बाल-विवाह को रोकने का प्रयत्न किया गया । यह उल्लेखनीय है कि यह अधिनियम श्री बी०एम० मालाबारी के प्रयत्नों का फल था । १८९८ में क्रिमिनल प्रोसीजर कोड तथा १९०८ में निर्मित "सिविल प्रोसीजर कोड" ~~तथा १९०८ में निर्मित "सिविल प्रोसीजर कोड"~~ के माध्यम से भी नारी अधिकारों की सुरक्षा की गई ।

उन्नीसवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में पारित उपरोक्त अधिनियम सुधार के क्षेत्र में प्रारंभिकचरण थे । यद्यपि उनका प्रभाव अधिक दृष्टिगोचर न हुआ और न ही वे नारी स्थिति को ऊँचा उठाने में कोई महत्त्वपूर्ण योगदान दे सके, परन्तु फिर भी समाज सुधार की दृष्टि से इनका अपना विशिष्ट महत्त्व है । सामाजिककानूनों के निर्माण तथा नागरिक अधिकारों की रक्षा की दृष्टि से उन्नीसवीं सदी में पारित ये अधिनियम निःसन्देह एक नवीनयुग का आह्वान करते हैं । वास्तव में राजकीय कानूनों की दृष्टि से बीसवीं शताब्दी उल्लेखनीय है । इस समय पारित कानूनों की संख्या और उनका वृहत क्षेत्र देखते हुए उन्नीसवीं शताब्दी के ये इने-गिने कानून मात्र प्रारंभ ही कहे जा सकते हैं ।

आधुनिक युग में पारित कानूनों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है । जीवन का लगभग प्रत्येक पक्ष इनके अन्तर्गत समाविष्ट हो जाता है । इन कानूनों के द्वारा सामाजिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं । जहाँ तक नारी-उन्नयन का प्रश्न है, आधुनिक राज्यकृत कानूनों का निर्माण एक अभूतपूर्व प्रयास है । नारी जीवन के लगभग प्रत्येक पक्ष पर इन कानूनों ने विचार किया है और नारी के अधिकारों को सुरक्षित रखने की चेष्टा की है । उद्देश्य और क्षेत्र को देखते हुए इन कानूनों को विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है ।

भाग १ — विवाह सम्बन्धी अधिनियम

विवाह को हिन्दुओं में सर्वोत्कृष्ट महत्ता प्रदान की गई है । हिन्दू धर्म विवाह को एक संस्कार मानता है,[1] एक पवित्र धार्मिक जिसका संस्कार/बंधन अटूट है तथा जिसके लिए दोनों पक्षों की स्वीकृति की भी आवश्यकता नहीं समझी गई

---

1. Mayne - Hindu Law, p. 136.

है। सदियों से विवाह में दोनों पक्षों के अभिभावकों का प्रमुख हाथ रहा है। इसी कारण अभिभावकों द्वारा आयोजित अल्पायु बच्चों के विवाह को भी हिन्दू धर्म मे मान्यता दी है।[१] हिन्दू धर्म में मान्यता प्राप्त विवाह का यह स्वरूप पाश्चात्य विवाह सम्बन्धी धारणा के सर्वथा विपरीत है। पाश्चात्य सभ्यता में विवाह दोनों पक्षों के मध्य एक समझौता स्वरूप है, जिसमें दोनों पक्ष अपनी स्वेच्छा से प्रवेश करते हैं।[२]

हिन्दू धर्म प्रत्येक व्यक्ति के लिए, चाहे वह किसी भी जाति का हो, विवाह आवश्यक समझता है। परन्तु जहाँ तक स्त्रियों का प्रश्न है विवाह को उनके लिए आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य भी माना गया है। अविवाहित पुरुष आधा माना गया है। शतपथ ब्राह्मण का कहना है कि पत्नी, पति की आधी (अर्धांगिनी) है, अत: जब तक व्यक्ति विवाह नहीं करता, जब तक सन्तानोत्पत्ति नहीं करता तब तक वह पूर्ण नहीं है।[३] श्री काणे विवाह के दो प्रमुख उद्देश्य बताते हैं। (१) पत्नी पति को धार्मिक कृत्यों के योग्य बनाती है तथा (२) वह पुत्र या पुत्रों की माता होती है और पुत्र ही नरक से रक्षा करते हैं।[४]

शास्त्रों के अनुसार विवाह के आठ प्रकार बताए गए हैं जिनमें से प्रथम चार-ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष तथा गांधर्व को ही मान्यता प्रदान की गई है। इन आठ प्रकारों में ब्राह्म, आसुर तथा गांधर्व विवाहों का प्रचलन आज भी है।

---

1. Ibid, p. 142.
2. Chenchiah, P., in "Young Man of India" Sept. 1921, p. 419.
३. अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया तस्माद्यावज्जायां न विन्दते नैव तावत्प्रजायते असर्वो हि तावद् भवति। अथ यदैव जायां विन्दतेऽथ प्रजायते तर्हि हि सर्वो भवति।
—शतपथ ब्राह्मण ५।२।१।१०
४. काणे, पी०वी० – धर्मशास्त्र का इतिहास (प्रथम भाग) (अनुवादक अर्जुन चौबे काश्यप), पृ० २६६

विवाह के विषय में कुछ प्रतिबन्ध भी रखे गए हैं। अपनी ही जाति के अन्तर्गत उप-जातियों में संपादित विवाह मान्यता प्राप्त थे। विजातीय विवाहों को अवैध माना जाता था। ऐसा नियम था कि अपनी ही जाति की कन्या में विवाह हो सकता था। इस प्रकार का विवाह अंग्रेजी में "इण्डोगैमी" कहलाता है। किन्तु एक ही जाति के अन्दर कई दल हो जाते हैं, जिनमें कुछ दलों के लोग कुछ दलों से विवाह संबंध स्थापित नहीं कर सकते।[१] इस प्रथा को अंग्रेजी में "एक्सो गैमी" कहते हैं। गोभिल[२] एवं आपस्तम्ब धर्मसूत्र[३] ने कहा है कि अपने ही गोत्र से कन्या नहीं चुनी जानी चाहिए। किन्तु समान प्रवर के विषय में वे कुछ नहीं बताते। व्यास स्मृति ने न केवल सगोत्र विवाह की मनाही की है, बल्कि उस कन्या से भी जिसकी माता तथा वर के गोत्र में समानता हो, विवाह करना मना किया है।[४] सगोत्र, सप्रवर कन्या से विवाह करना निषिद्ध है। अतः यदि कोई व्यक्ति सगोत्र सप्रवर एवं सपिण्ड कन्या से विवाह करता है तो वह कन्या नियमपूर्वक उसकी पत्नी नहीं हो सकती।[५]

सपिण्ड कन्या से विवाह करना सभी वर्णों, यहाँ तक कि शूद्रों में भी वर्जित है। मिताक्षरा तथा जीमूतवाहन (दायभाग के रचयिता) दोनों के मतों में सपिण्ड कन्या से विवाह नहीं हो सकता। सपिण्ड शब्द का प्रयोग दोनों ने विपरीत अर्थों में किया है। याज्ञवल्क्य स्मृति की टीका विज्ञानेश्वर ने "मिताक्षरा" के अन्तर्गत की है। ऋषि याज्ञवल्क्य ने सपिण्डता की सीमा का निर्धारण इस प्रकार किया है - पाँचवीं पीढ़ी में माता के कुल में, तथा सातवीं पीढ़ी में पिता के कुल में सपिण्डता की अन्तिम सीमा मानी जानी चाहिए। अतः पिता से ६ पीढ़ियाँ ऊपर और पुत्र से ६ पीढ़ियाँ नीचे (स्वयं व्यक्ति सातवीं पीढ़ी से गिना

---

१. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास (प्रथम भाग), पृ० २७१

२. गोभिल० ३।४।४

३. आपस्तम्ब धर्मसूत्र- २।५।११।१५

४. काणे - पृष्ठ २७२

५. काणे, पृ० २७२

जायेगा) के वंशज सपिण्ड कहे जायेंगे। किसी भी व्यक्ति से ६ पीढ़ियां ऊपर या नीचे तथा उसको लेकर सात पीढ़ियां गिनी जाती हैं। अर्थात् कोई पूर्वज तथा उसके नीचे की ६ पीढ़ियां मिलकर सात पीढ़ियों के द्योतक हुए। इसी प्रकार कोई व्यक्ति तथा उसके ऊपर ६ पीढ़ियां मिलकर सात पीढ़ियों के द्योतक हुए। इस प्रकार किसी लड़की के विषय में पांचवीं पीढ़ी ऊपर (माता के कुल में) तथा सातवीं पीढ़ी (पिता के कुल में) नीचे गिनी जाती हैं। यही व्याख्या मिताक्षरा की भी है।

दायभाग एवं रघुनन्दन का मत, जिसे बंगाली सम्प्रदाय भी मान्यता देता है, मिताक्षरा से भिन्न है। इस मत में पिण्ड का अर्थ है वह "भात का पिण्ड या गोलक" जो पितरों को श्राद्ध के समय दिया जाता है। मिताक्षरा के अनुसार पिण्ड का अर्थ है "शरीर" या "शरीर के अवयव"। जीमूतवाहन ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन उत्तराधिकार को ध्यान में रखकर किया है, विवाह के विषय में नहीं।

विवाह योग्य आयु सभी कालों में भिन्न भिन्न प्रान्तों एवं भिन्न भिन्न जातियों में पृथक पृथक मानी जाती रही है। पुरुष के लिए कोई निश्चित अवधि नहीं रखी गई है। प्राचीनकाल में बहुधा १२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य चलता था और ब्राह्मणों का उपनयन संस्कार आठवें वर्ष में होता था, अतः ब्राह्मणों में २० वर्ष की आयु विवाह के लिए सामान्य मानी जाती थी। मनु[१] के मत में ३० वर्ष का पुरुष १२ वर्ष की कन्या से तथा २४ वर्ष का पुरुष ८ वर्ष की कन्या से विवाह कर सकता है। वैदिक युग में कन्याएं बड़ी आयु में विवाह करती थीं। गृह्यसूत्रों तथा धर्मसूत्रों के अनुशीलन से पता चलता है कि लड़कियों का युवावस्था के बिल्कुल पास पहुंच जाने पर या उसके प्रारंभ होने के उपरान्त विवाह होता था।[२] किन्तु धीरे धीरे विवाह की आयु घटती गई। ई०पू० ६०० से ईसा की प्रारम्भिक शताब्दी तक युवती होने पर कन्या का विवाह होता था, परन्तु २०० ई० के लगभग युवती

---

१. मनु० ९।९४

२. काणे, पृ० २७३

होने के पूर्व विवाह कर देना आवश्यक सा हो गया था। मनु और याज्ञवल्क्य ने छोटी आयु में विवाह की महत्ता दी है। इस समय तक कन्याओं के विवाह को ही उपनयन माना जाने लगा था,[१] और चूंकि उपनयन की आयु आठ वर्ष निर्धारित थी अत: यही अवस्था विवाह के लिए भी उपयुक्त मानी जाने लगी। इस विषय में जो नियम बने वह छठी एवं सातवीं शताब्दियों से लेकर आधुनिक काल तक विद्यमान रहे हैं। बीसवीं शताब्दी में पारित विभिन्न अधिनियम इस कुप्रथा को समाप्त करते हैं।

हिन्दूधर्म विवाह को एक संस्कार मानता है और यह संस्कार इतना पवित्र है कि इसको तोड़ने का कोई विधान नहीं है। विवाह के माध्यम से स्त्री-पुरुष जीवन पर्यन्त बन्धन में बंधे रहते हैं। हिन्दू धर्म की इस धारणा में पुनर्विवाह और विवाह-विच्छेद को कहीं भी स्थान मिलना संभव नहीं है। अत: विवाह-विच्छेद की बात धर्मशास्त्रों एवं हिन्दू समाज में लगभग दो सहस्त्र वर्षों से अनसुनी रही है, परन्तु परम्परा के अनुसार नीची जातियों में प्रचलित रही है। यदि पति पत्नी को त्रुटियों के कारण छोड़ दे तो भी पत्नी भरण-पोषण की अधिकारिणी मानी जाती रही है। अत: इस प्रकार का त्याग विवाह-विच्छेद का द्योतक नहीं रहा है।[२] कौटिल्य का अर्थशास्त्र[३] इस विषय में कुछ प्रकाश डालता है। कौटिल्य लिखते हैं — यदि पति नहीं चाहता तो पत्नी को छुटकारा नहीं मिल सकता है। इसी प्रकार यदि पत्नी नहीं चाहती तो पति को छुटकारा नहीं प्राप्त हो सकता, किन्तु यदि दोनों में पारस्परिक विद्वेष है तो छुटकारा संभव है। यदि पति, पत्नी से डरकर उससे पृथक होना चाहता है तो उसे (पत्नी को) विवाह के समय जो कुछ प्राप्त हुआ था उसे दे देने से पति को छुटकारा मिल सकता है। यदि पत्नी, पति से डरकर उससे पृथक होना चाहती है तो पति, पत्नी को विवाह के समय जो कुछ प्राप्त हुआ था, उसे नहीं लौटायेगा, स्वीकृत रूप में (धर्म्य) विवाह का विच्छेद नहीं होता है।" प्रथम चार प्रकार के विवाहों को मान्यता प्राप्त है।

---

१. काणे, पृ० २७५

२. वही, पृ० ३४७

३. अर्थशास्त्र ३।३

कौटिल्य के मत में उनमें विवाह-विच्छेद संभव नहीं है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दू धर्म विवाह-विच्छेद और पुनर्विवाह की छूट नहीं देता परन्तु आधुनिक कानूनों द्वारा इस विषय में भी अपेक्षाकृत अधिकार प्रदान किए गए हैं।

बीसवीं शताब्दी में पारित विवाह सम्बन्धी विभिन्न अधिनियम हिन्दू धर्म की इन्हीं उपरोक्त बातों और विषयों के संदर्भ में निर्मित किए गए हैं। यद्यपि समय के साथ उनमें परिमार्जन अवश्य दृष्टिगोचर होता है, परन्तु यह परिवर्तन स्त्रियों को अधिकाधिक अधिकार और स्वतंत्रता देने की दृष्टि से किए गए हैं। अपने मूलरूप में वर्तमान कानूनों के आधार हिन्दू धर्म के वही परंपरागत सिद्धान्त हैं, जिनका प्रतिपादन धर्मग्रन्थों में हुआ है।

विवाह सम्बन्धी सर्वप्रथम अधिनियम १८५६ का "हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम" पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयत्नों का परिणाम था। विद्यासागर ने ३०,००० व्यक्तियों के हस्ताक्षर से युक्त "मांग पत्र" सरकार के सम्मुख प्रस्तुत किया था जिसमें उन्होंने भारतीय विधवाओं के पुनर्विवाह के मार्ग में आने वाली अनेक कानूनी रुकावटों को दूर करने की प्रार्थना की। इसके अनुसार यह घोषित किया गया कि यदि पुनर्विवाह के समय किसी भी हिन्दू स्त्री का प्रथम-पति जीवित नहीं है, तो वह विवाह अवैध नहीं माना जा सकता है। इसी प्रकार, इस प्रकार के पुनर्विवाह से उत्पन्न सन्तानें भी अवैध नहीं हैं। इस अधिनियम के अनुसार यदि पुनर्विवाह करने वाली विधवा अल्पायु है तो अभिभावक की अनुमति अथवा यदि वयस्क है तो उसकी स्वयं की अनुमति आवश्यक समझी गई है।

"आनन्द" विवाह अधिनियम, १९०९

बीसवीं सदी में पारित आनन्द विवाह अधिनियम "आनन्द" सिक्खों में विवाह सम्बन्धी भ्रान्त धारणाओं को दूर करने की दृष्टि से पारित किया गया था, क्योंकि प्रिवी परिषद् के निर्णय के अनुसार सिक्ख भी हिन्दू धर्म के द्वारा निर्देशित समझे जाते थे। आनन्द विवाह पंजाब में सर्व प्रचलित था अतः वह हिन्दू विवाह के रूप में स्वीकार कर लिया गया। यह विधेयक २७ अगस्त को गवर्नर जनरल की कार्उंसिल के समक्ष प्रस्तुत किया गया। इस विधेयक के प्रणेता थे सरदार सुन्दर सिंह[१] जिनके नेतृत्व में सिक्खों ने संयुक्त रूप से बिल का समर्थन

किया[1]। यह अधिनियम सिक्खों पर लागू होता है, जिसके द्वारा जाति और वर्ग के मध्य विवाह सम्बन्धी बंधन शिथिल कर दिए गए परन्तु बाल-विवाह और बहु-विवाह को मान्यता प्राप्त ही रही । संकरन नायर ने इस विधेयक से बाल-विवाह तथा बहु विवाह को हटाने का तथा विवाह-विच्छेद के नियमों को जोड़ने के लिए विधेयक के प्रणेता को उद्बोधित किया । परन्तु सरदार सुन्दर सिंह का कहना था कि शिक्षा के द्वारा ही धीरे धीरे इस प्रकार के परिवर्तन संभव हो सकेंगे ।[2] पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर लुई डेन के अनुसार यह अधिनियम समाज सुधार के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण चरण है ।[3]

आनन्द विवाह अधिनियम सिक्खों के मध्य बाल-विवाह और बहुविवाह के दोषों को दूर न कर सका अतः नारी-स्थिति को उठाने में इसका योगदान इस दृष्टि से नगण्य कहा जा सकता है ।

बाल-विवाह निरोधक अधिनियम, १९२९

स्त्री दशा को सुधारने की दृष्टि से १९२९ में पारित बाल-विवाह निरोधक अधिनियम विशेष महत्त्वपूर्ण सामाजिक विधान है । राय हरविलास शारदा के प्रयत्नों के फलस्वरूप पारित यह अधिनियम उन्हीं के नाम से संक्षेप में "शारदा-एक्ट" के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

श्री शारदा के पहले भी बाल-विवाह की कुरीति को दूर करने के प्रयत्न हो चुके थे जिसके अगुआ राजा राममोहन राय तथा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर थे । इनके प्रयत्नों से १८०७ में सबसे पहले बाल-विवाह को रोकने के लिए पहला अधिनियम पास हुआ जिसने विवाह की आयु बालिका के लिए कम से कम १० वर्ष निर्धारित की । तत्पश्चात् १८९१ में दूसरा अधिनियम पारित किया गया जिसके द्वारा विवाह

---

1. Natrajan, S. - A Century of Social Reform in India, p. 131.
2. Ibid, p. 132.
3. Proceedings of the Legislative Council 1907-10, pp. 40-41.

की आयु बालिका के लिए १२ वर्ष रखी गई । यह अधिनियम सर स्कोबिल के प्रयत्नों का फल था । अधिनियम का विरोध भारत के विभिन्न भागों में हुआ परन्तु सरकार के दृढ़ निश्चय और जागृत जनमत के समर्थन द्वारा इसे पारित कर दिया गया ।[1] श्री मालाबारी ने बाल-विवाह को रोकने के लिए जागृत जनमत तैयार करने का अथक प्रयास किया, न केवल भारत में ही वरन् इंगलैण्ड में भी ।[2]

स्वामी दयानन्द सरस्वती का प्रयास भी इस विषय में सराहनीय है । "सत्यार्थ प्रकाश" के माध्यम से उन्होंने घोषित किया कि २५ वर्ष से नीचे लड़कों का तथा १६ वर्ष से नीचे लड़की का विवाह कानूनन अमान्य है तथा धार्मिक सिद्धान्तों के विरुद्ध और अनैतिक है । आर्य समाज के सुधारवादी कार्यक्रम का एक प्रमुख भाग बाल विवाह के विरुद्ध प्रचार करना भी था ।

इसी प्रकार "भारतीय राष्ट्रीय सामाजिक सभा" के तीसरे अधिवेशन में (बम्बई १८८८) भी बाल-विवाह की समस्या उठाई गई थी तथा इसके विरुद्ध प्रस्ताव पारित किया गया ।

१९२१ में लाला गिरधारी लाल ने सरकार के समक्ष लड़कियों की विवाह योग्य आयु १६ तथा लड़कों की १४ निश्चित करने का सुझाव दिया । परन्तु सरकार का तर्क था कि देश का पिछड़ापन देखते हुए इस विषय में सुधार संभव नहीं है ।[3] १९२२ में राय बहादुर बक्शी सोहनलाल ने एक विधेयक इस सम्बन्ध में प्रस्तुत किया था ।[4]

१९२४ में श्री रंगलाल जाजोदिया ने विधानसभा में बाल-विवाह के विरोध में विधेयक पेश किया, परन्तु विधेयक किसी कारणवश पारित न हो सका । इसी वर्ष डा० हरी सिंह गौड़ ने भी एक विधेयक इसी विषय पर प्रस्तुत किया ।[5]

---

1. Kapadia, K.M. - Marriage and family in India, p. 138.
2. Proceedings of the Legislative Assembly 1925, Vol. V Pt. IV, p. 2835.
3. Desai, Neera - Women in Modern India, p. 171.
4. Legislative Assembly Proceedings 1922, Vol. II, p. 2650.
5. Legislative Assembly Proceedings 1924, Vol. IV, Pt. II,

१६२७ में श्री हरविलास शारदा ने हिन्दुओं के मध्य विवाह सम्बन्धी नियम निर्धारित करने की दृष्टि से विधेयक प्रस्तुत किया । विधेयक में बालिकाओं की विवाह योग्य आयु १२ वर्ष नियत की गई थी । सरकार ने विरोधी के होते हुए भी इस विषय में आंकड़े एकत्रित करने और जनमत लेने की दृष्टि से १६२८ में एक समिति की नियुक्ति की । समिति का सबसे प्रमुख सुझाव यह था कि इस विधेयक को केवल हिन्दुओं पर ही लागू न करके सभी वर्गों पर लागू किया जाना चाहिए ।[1]

पण्डित मदनमोहन मालवीय भी विधेयक को हिन्दुओं में ही नहीं वरन् सिक्खों, ईसाइयों और मुस्लिम वर्गों पर भी लागू करना चाहते थे ।[2] बहुमत के प्रस्ताव द्वारा विधेयक सैलेक्ट समिति के समक्ष विचारार्थ भेजा गया । समिति ने महत्वपूर्ण परिवर्तन किए तथा अनेक सुझाव रखे । इस विधेयक का जनता में भव्य स्वागत हुआ तथा विभिन्न महिला सभाओं ने, विभिन्न दलों और संगठनों ने विधेयक के पक्ष में विचार व्यक्त किए । समिति ने संशोधन में विवाह योग्य आयु बालकों के लिए १८ वर्ष तथा बालिकाओं के लिए १४ वर्ष नियत की । साथ ही यह भी निश्चित किया कि इसके विरुद्ध जाने वाले अपराधी को, यदि वह २१ वर्ष से ऊपर है तो अर्थ दण्ड अथवा कारावास का दण्ड मिलेगा । परन्तु बालिकाओं के लिए इस विधेयक में इस प्रकार के दण्ड का कोई भी विधान नहीं रखा गया ।

२६ मार्च १६२८ को विधेयक असेम्बली के समक्ष प्रस्तुत किया गया । उस समय असेम्बली में विधेयक के पक्ष-विपक्ष में विशद् वाद-विवाद हुआ । मौलवी मुहम्मद याकूब ने मुसलमानों से भी विधेयक के समर्थन की प्रार्थना की तथा यह भी घोषित किया कि यह विधेयक किसी भी तरह मुस्लिम धर्म के विरुद्ध नहीं है ।[3]

इसके विपरीत श्री गज़नवी का समाज सुधार में विश्वास नहीं था । अतः उन्होंने विधेयक का विरोध किया । उन्होंने कहा कि विधेयक मुसलमानों के व्यक्तिगत

---

1. Desai, Neera - Women in Modern India, p. 172.
2. Legislative Assembly Proceedings 1927, Vol. IV, pp.4439-43.
3. Legislative Assembly Proceedings, 1928, Vol. I, p. 1972.

मामलों में हस्तक्षेप करता है तथा धर्म के विरुद्ध है। मुसलमान इस विधेयक के पक्ष में नहीं है।[१]

श्री शेरवानी तथा श्री जिन्ना विधेयक के समर्थकों में से थे। श्री शेरवानी ने इस मत का खण्डन किया कि विधेयक "मुस्लिम विधान" के विरुद्ध है। उन्होंने यहाँ तक कहा कि कोई भी व्यक्ति-बाल-विवाह के पक्ष में मुसलमान शास्त्रों को उद्धृत नहीं कर सकता है।[२] इसी प्रकार श्री जिन्ना ने भी विधेयक का समर्थन करते हुए कहा कि यद्यपि वे कोई उलमा या धर्म मर्मज्ञ नहीं हैं, परन्तु फिर भी एक विधिज्ञ के रूप में वह इतना अवश्य जानते हैं कि विवाह मुसलमानों में एक शुद्ध और सरल समझौता है।[३] श्री यासमीन खाँ ने मतभेद के समाधान के लिए मुसलमानों की एक सभा का आयोजन करने का सुझाव दिया, जिसमें बहुमत के द्वारा मुसलमानों का मत लिया जा सके। अतः उन्होंने विधेयक को स्थगित करने का प्रस्ताव रखा।[४]

श्री मूंजी ने शारदा बिल का समर्थन करते हुए कहा कि देश के हित के लिए विधेयक को तुरन्त पारित करना हितकर है।[५]

श्री शारदा ने विधेयक का जोरदार समर्थन करते हुये कहा कि " मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ कि बाल-विवाह धार्मिक कर्तव्य है। और यदि ऐसी बात रही भी हो, तो भी अपने को नरक में जाने से बचाने के लिए दूसरे को दुखद जीवन में धकेलने का अधिकार किसी को नहीं है। इस असेम्बली पर महान् उत्तरदायित्व है। है। इंगलैण्ड तथा अमेरिका के निवासियों की आँखें इस असेम्बली पर लगी हैं। कुमारी मेयो जैसी लेखिका तथा विन्स्टन चर्चिल जैसे राजनीतिज्ञ ने खुले तौर पर घोषित किया है कि जब तक भारत इस प्रकार के अत्याचारों को सहन करता रहेगा, तब तक वह स्वशासन प्राप्त करने के योग्य नहीं है।.......... जो भी इस विधेयक का समर्थन करते हैं, देश के सच्चे सेवक हैं।"[६]

---

1. The Indian Quarterly Register, Vol. II, 1929, p. 137.
2. Ibid, p. 137.
3. Ibid.
4. Ibid, p. 138.
5. Ibid, p. 137.

"ऐज आफ कन्सेंट कमेटी" जिसका निर्माण २५ जून १६२८ को हुआ था, ने २० जून १६२६ को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। कमेटी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि इस विषय में सुधारकी दृष्टि से कानून बनाना अति आवश्यक है[1]। कमेटी ने अपने निर्णय में बालिकाओं के लिए विवाह योग्य आयु १५ वर्ष निश्चित की थी। इससे पहले विवाह करने वाले अथवा कराने वाले दंडके भागी होंगे। साथही यह भी निश्चित हुआ कि बालकों की आयु विवाह के समय बालिकाओं से कम से कम ४ वर्ष अधिक अवश्य होनी चाहिए[2]।

४ सितम्बर १६२६ को श्री शारदा ने पुन: विधेयक पर विचार करने की प्रार्थना की। श्री पुरुषोत्तमदास ठाकुर ने विधेयक की सराहना की तथा बाल विवाह को शास्त्र विरुद्ध घोषित किया। उन्होंने कहा कि शास्त्रों में ऐसी कोई भी बात नहीं कही गई है जो सामान्य बुद्धि तथा तर्क की कसौटी पर खरी न उतरती हो[3]। श्रीठाकुर ने अपने वक्तव्य में कहा कि "क्या हम लोग स्वर्ग में अपना स्थान बनाने के लिए,अपने नारी वर्ग को,जो कि पतन के की गर्त में जा रहा है, निर्मूल कर रहे हैं ? यह इस असेम्बली का, जो कि जनता का प्रतिनिधित्व करती है,कार्य है कि सरकार से कहे — "बहादुरो ! आगे आओ और हमारी सहायता करो। इस कानून को पारित करो जो कि आने वाली पीढ़ियों को कृतज्ञता से इस असेम्बली के साहस की प्रशंसा करने पर बाध्य करे। लार्ड बैन्टिक को सती प्रथा बन्द किए हुए १०० वर्ष बीत चुके हैं, परन्तु आज कौन कह सकता है कि उसने हिन्दू धर्म पर आघात किया था ?"[4]

इसीप्रकार का वक्तव्य कर्नल गिडने भी दिया था। उन्होंने "ऐजआफ कन्सेन्ट कमेटी" की रिपोर्ट का समर्थन करते हुए कहा कि भारत में शिशुजन्म के समय नारियों की मृत्युदर संसार भर में सबसे अधिक है। उन्हें इस बात पर भी आश्चर्य हुआ कि इतने शिक्षित सदस्य किस प्रकार इस विधेयक के उच्च उद्देश्यों को भूल रहे हैं।[5]

पंडित मोतीलाल नेहरू ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा था कि इस छोटे से विषय पर इतना विवाद व्यर्थ है। यदि हिन्दू शास्त्र बाल-विवाह को प्रश्रय देते हैं तो वह उनके लिए व्यर्थ और अनुपयोगी है। उन्होंने कहा कि काश्मीरी पण्डितों

---

1. Report of the age of consent Committee (1928-29), p. 101, Para 231.
2. Ibid, p. 176, Para 384.
3. Indian Quarterly Register, 1929, Vol. II, p. 138.
4. Ibid, p. 138.

थे, जिनकी संख्या देशभर में लगभग ३००० है, किसी भी बालिका का २० वर्ष की आयु से पूर्व विवाह नहीं किया जाता।[1] उन्होंने असेम्बली को सम्बोधित करते हुए कहा कि इस विधेयक के माध्यम से कोई ऐसा कार्य करो ताकि भारत भी संसार के सभ्य देशों में गिना जा सके। स्वयं पंडित मोतीलाल नेहरू विवाह की आयु बालिकाओं और बालकों के लिए क्रमशः १८ और २४ वर्ष रखने के पक्ष में थे।[2]

इस विधेयक के लिए अदम्य उत्साह से कार्य करने वाली प्रथम महिला थीं श्रीमती ब्रिजलाल नेहरू, जिन्होंने देश भर का भ्रमण कर अनुदारवादियों के मत का पता लगाया।[3] श्री अमरनाथ दत्त विधेयक के घोर विरोधी थे। उनके मत में जनता इस प्रकार के कानूनों को अपने सामाजिक जीवन में हस्तक्षेप समझती है। अतः "एज आफ कन्सेंट कमेटी" की रिपोर्ट अन्य विदेशी सरकारी रिपोर्टों के समान कूड़े की टोकरी में फेंकने के योग्य है।[4] इसी प्रकार श्री शेषआयंगर के शब्दों में यह विधेयक "सामाजिक व्यवस्था में क्रान्ति उत्पन्न कर देगा।" उनके मत में विधेयक शास्त्र-विरुद्ध है।[5] विधेयक का विरोध करने वालों में श्री के०सी० नियोगी भी एक थे। उनका तर्क था कि प्रान्तीय सरकारें विधेयक की विरोधी हैं, अतः विधेयक पारित नहीं होना चाहिए।[6]

श्री एन०सी० केलकर, डा० हैदर, श्री बी०सी० राय आदि विधेयक के कुछ अन्य समर्थक थे। डा० श्रीमती मुथुलक्ष्मी रेड्डी ने आंध्र महिला महासभा, बेजवाड़ा में भाषण देते हुए श्री शारदा के विधेयक की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि श्री शारदा अपने इस विधेयक के कारण महान मानवतावादी तथा भारतीय नारी के रक्षक समझे जायेंगे।[7]

---

1. Ibid.
2. Ibid.
3. Ibid, p. 138.
4. The Indian Quarterly Register 1929, Vol. II (No. III & IV), p. 129.
5. Ibid.
6. Ibid.
7. Ibid, p. 397.

विरुद्ध वाद-विवाद तथा महान् विरोधों के होते हुए भी भी शारदा ने विधेयक को पारित करने में सफलता पाई। यह विधेयक, अधिनियम के रूप में १ अप्रैल १६३० से लागू किया गया। अधिनियम के विभिन्न अनुच्छेदों के अनुसार निम्नलिखित महत्वपूर्ण सुधार किए गए :--

(१) बाल-विवाह को रोकने का प्रयत्न किया जायेगा।

(२) कोई भी विवाह जिसमें वर की आयु १८ वर्ष से कम तथा कन्या की आयु १५ वर्ष से कम है, नहीं किया जा सकेगा।

(३) इस अधिनियम के विरुद्ध विवाह करने वाले वर को अगर उसकी आयु १८ वर्ष से २१ वर्ष के बीच की है, १५ दिन का कारावास या एक हजार रुपया अर्थदण्ड अथवा दोनों की सजा दी सकेगी।

(४) अगर वर की आयु २१ वर्ष से अधिक है तो अर्थदण्ड के साथ ही तीन माह तक का कारावास भी हो सकेगा।

(५) उस विवाह संस्कार को कराने वाले या उसका निर्देश देने वाले व्यक्तियों को तीन माह का कारावास और जुर्माना हो सकेगा। संरक्षक या माता-पिता जो ऐसे विवाहों को करवायेंगे, उनके लिए भी तीन माह का कारावास का दण्ड निर्धारित किया गया।

(६) ऐसे मुकदमें की सुनवाई केवल प्रथमश्रेणी के मजिस्ट्रेट की अदालत ही सकेगी।

(७) विवाह के बाद एक वर्ष बीत जाने पर इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की सुनवाई पर न्यायालय विचार नहीं करेगा।

(८) न्यायालय को पूर्व सूचना मिल जाने पर वह उस विवाह को रोकने का आदेश दे सकता है।

(९) न्यायालय द्वारा किए गए ऐसे आदेशों की अवहेलना करने वाले को तीन माह का कारावास या एक हजार रुपये का अर्थदण्ड अथवा दोनों होगा।

(१०) इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी भी अपराध के लिए स्त्रियों को जेल नहीं भेजा जायेगा।

समाज सुधार के क्षेत्र में यह अधिनियम एक महत्वपूर्ण सफलता का प्रतीक है। इसका स्वागत देश के निर्माणकारी तत्वों के रूप में किया गया, जिसके माध्यम से प्रगति तथा शारीरिक उन्नयन संभव हो सकता है[1]।

जहाँ तक इस अधिनियम का व्यवहार में प्रयुक्त होने का प्रश्न है, प्रारंभ में इसका पालन नहीं के बराबर किया गया । वास्तव में इसका प्रभाव शिक्षा के विस्तार के कारण अब दृष्टिगोचर हुआ । बाल-विवाह अब समाप्त सा हो चला है ।

यह अधिनियम कई दृष्टि से दोषयुक्त भी कहा जा सकता है । सर्वप्रथम इसने विवाह की आयु बहुत कम निश्चित की । द्वितीय इसके द्वारा दंडित होने से पूर्व सूचना देना आवश्यक है । कुछ समाज सेवकों को छोड़कर अन्य कोई भी अधिकारियों के पास नियम के उल्लंघन की सूचना देने का कष्ट नहीं करेगा । इसके अतिरिक्त अभिभावकों के ऊपर अल्पायु विवाह के लिए अर्थदण्ड की व्यवस्था भी कठोर नहीं है । अर्थदंड न्यून होने के कारण विवाह के व्यय में इसे भी सम्मिलित कर व्यक्ति इसका भुगतान कर सकेगा । अधिनियम को लागू करने के लिए अर्थदण्ड की राशि अधिक होनी चाहिए ।[१]

<u>पारसी विवाह तथा विवाह-विच्छेद अधिनियम,१९३६</u>

पारसियों में विवाह तथा विवाह-विच्छेद को नियंत्रित करने व वैध मान्यता देने की दृष्टि से १८६५ में सर्वप्रथम पारसी विवाह व तथा विवाह-विच्छेद अधिनियम पारित हुआ था । यह अधिनियम पारसियों के अथक प्रयास का परिणाम था । १८३५ में प्रथम बार पारसी समुदाय ने अपनी आवश्यकताओं और परिस्थितियों को देखते हुए ब्रिटिश सरकार से इस विषय में अधिनियम बनाने की प्रार्थना की थी । १८५५ में पारसियों ने पुन: प्रयत्न किया । इसी वर्ष "पारसी कानून समुदाय" का संगठन किया गया । इस संस्था ने पारसी धर्म से सम्बन्धित अनेक विषयों पर विधेयकों की रूपरेखा बनाई जो बम्बई सरकार द्वारा निर्मित एक आयोग के विचारार्थ रखे गए ।

आयोग ने अपनी रिपोर्ट राज्यसचिव को चार्ल्स वुड के समक्ष प्रस्तुत की । राज्यसचिव ने बम्बई सरकार तथा "पारसी कानून समुदाय" के द्वारा अनुमोदित विषयों

---

1. Desai, Neera - Women in Modern India, pp. 172-73.

पर कानून निर्मित करने की आवश्यकता व्यक्त की । "पारसी विवाह तथा विवाह विच्छेद अधिनियम, १८६५ के रूप में उनके प्रयास सफल हुए ।[१]

कालान्तर में उन्नीसवीं सदी में पारित यह अधिनियम बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप सिद्ध नहीं हुआ । पारसी समुदाय ने इसमें कुछ परिवर्तन तथा संशोधन करने की मांग की । फलस्वरूप १९२३ में सर डी०जहाँगीर ने "पारसी केन्द्रीय समुदाय" तथा अन्य पारसी समुदायों व संस्थाओं के सहयोग से इस अधिनियम में वर्तमान परिस्थितियों के संदर्भ में कुछ संशोधन प्रस्तुत किए । १९३४ में सर फ़ीरोज़ सेठना ने इन संशोधनों के आधार पर निर्मित विधेयक को राज्य परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत किया । २७ अप्रैल १९३६ को यह विधेयक कमे-टी के समक्ष आया । विरोधियों की संख्या न्यून होने के कारण विधेयक पर अधिक विवाद नहीं हुआ । २३ मार्च १९३६ को सर डेविड देवदास तथा सर एन० चौकसी द्वारा प्रस्तावित संशोधन भी परिषद् ने मान लिए ।[2] फलस्वरूप उसी दिन विधेयक पारित कर दिया गया ।[3]

इस अधिनियम के अनुसार पारसियों में वैध विवाह के लिए आवश्यक है कि:-
(१) विवाह करने वाले पारसी आपस में निषेधात्मक संबंधों के अन्तर्गत न आते हों ।
(२) पारसियों में "आशीर्वाद" के अनुसार विवाह का संपादन किसी पादरी द्वारा होगा, जिसमें दो साक्षियों की उपस्थिति आवश्यक होगी ।
(३) यदि विवाह करने वाले पक्षों में कोई भी पक्ष २१ वर्ष से कम आयु का है तो अभिभावक अथवा पिता की अनुमति आवश्यक होगी ।
(४) अधिनियम की धारा ४ और ५ के अनुसार "एक विवाह" को मान्यता दी गई है तथा एक से अधिक पत्नियां रखने वाला व्यक्ति दंड का भागी होगा ।

---

1. Proceedings of the Council of States, 1936, Vol. V, pp. 340-41.
2. Indian Annual Register, Vol. I (Jan - June) 1936, p. 100.
3. Proceedings of the Council of States 1936, Vol. V, p. 350.

(५) इस अधिनियम के अन्तर्गत संपादित विवाह की रजिस्ट्री आवश्यक है ।

इस अधिनियम के अन्तर्गत विवाह विच्छेद की छूट भी दी गई है । विवाह-विच्छेद के आधार लगभग वही हैं, जो "हिन्दू विवाह अधिनियम" के अन्तर्गत रखे गए हैं । इस प्रकार इस अधिनियम के द्वारा भारत के अल्पसंख्यक समुदाय, पारसियों के अधिकारों की रक्षा की गई है तथा पारसी नारी को लगभग वही अधिकार प्राप्त हैं जो एक हिन्दू नारी अपने धर्म के अन्तर्गत प्राप्त करती है ।

आर्य विवाह वैधता अधिनियम,१९३७

आर्य विवाह वैधता अधिनियम १४ अप्रैल १९३७ को पारित हुआ । इस अधिनियम के पारित करने का उद्देश्य था, आर्य समाजिस्टों के मध्य प्रचलित अन्तर्वर्गीय विवाहों को मान्यता देना तथा इसकी वैधता के सम्बन्ध में भ्रान्त धारणाओं का निराकरण करना ।[1] इस विधेयक के प्रणेता थे डा० खरे ।[2] डा० खरे के इस विधेयक को असेम्बली में विरोधों का सामना नहीं करना पड़ा ।[3] विधेयक का समर्थन लगभग सभी सदस्यों ने किया तथा सर्वसम्मति से विधेयक शीघ्र ही अधिनियम के रूप में लागू कर दिया गया । अधिनियम के अनुच्छेद २ में स्पष्ट रूप से घोषित किया गया कि इस अधिनियम के पारित होने के पूर्व तथा बाद में संपादित कोई भी विवाह, जिसमें दोनों पक्ष विवाह के समय आर्य समाजी रहे हों, अवैध नहीं कहे जा सकते और न ही इस कारण अवैध समझे जा सकते हैं कि विवाह के समय दोनों पक्ष हिन्दुओं की विभिन्न उपजातियों के थे अथवा दोनों या एक पक्ष हिन्दू धर्म के अतिरिक्त किसी और धर्म का अनुयायी था ।[4] इस प्रकार आर्य विवाह वैधता

---

1. The Arya Marriage Validation Act, 1937, Preamble.
2. The Indian Annual Register, Vol. I, 1937 (Jan. - June),p.137.
3. Proceedings of the Legislative Assembly 1936, Vol.V,pp.4156-57.
4. The Arya Marriage Validation Act, 1937, Section 2 of the Act.

अधिनियम ने आर्य हिन्दुओं के मध्य संपादित विवाहों को कानूनी मान्यता प्रदान कर अप्रत्यक्ष रूप से अन्तर्वर्णीय विवाहों को प्रश्रय दिया है ।

मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम,१९३९

इस्लाम के नियमों के अनुसार विवाह एक प्रकार का समझौता स्वरूप है, जिसमें दोनों पक्ष यदि स्वस्थ्य मन के हैं तथा बालिका ने १५ वर्ष की आयु पार कर ली है तो वे विवाह-बन्धन में बंधने के अधिकारी हैं । चूंकि इस्लाम के अन्तर्गत विवाह एक समझौता है, अत: दोनों पक्षों को इस समझौते को तोड़ने अर्थात् विवाह-विच्छेद का अधिकार भी है । यह उल्लेखनीय है कि इस्लाम ने पत्नी की सुरक्षा के लिए कुछ सुविधाएं अवश्य दी हैं, जैसे विवाह-विच्छेद के बाद पति, पत्नी को "मेहर" जिसकी राशि विवाह के समय निश्चित की जाती है, देने पर बाध्य है ।[1] परन्तु मूल इस्लाम के अन्तर्गत नारियों की अपेक्षा पुरूषों को अधिक अधिकार प्रदान किए गए हैं । यही बात विवाह-विच्छेद पर भी लागू होती है । धर्म के अनुसार पति अपनी पत्नी को बिना कारण बताए तथा बिना न्यायालय की सहायता लिए विवाह का विच्छेद कर सकता है । उसे केवल "तलाक्" शब्द का उच्चारण मात्र तीन बार करना होगा ।[2] इस्लाम के अनुसार पत्नी को पति के प्रति "स्वामिभक्त" रहना आवश्यक है । और यदि वह इसका उल्लंघन करती है तो पति तलाक् दे सकता है ।[3] मूल इस्लाम धर्म में पत्नी को बिना पति की स्वीकृति के विवाह-विच्छेद करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है ।

१७ मार्च १९३९ को पारित "मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम ने पत्नी को विवाह -विच्छेद का अधिकार देकर मुस्लिम नारी के मौलिक अधिकार की न केवल रक्षा की है, अपितु नारी की स्थिति को भी कुछ अंशों तक ऊँचा उठाने में सहयोग

---

1. Baig, Tara Ali - Women of India (Ed.) (The laws as it effects women By Renu Chakravarty), p. 88.
2. Desai, Neera - Women in modern India, p. 174.
3. Ibid, p. 175.

किया है। इस अधिनियम के पारित करने का उद्देश्य इस्लाम धर्म के अन्तर्गत विवाहित नारियों में विवाह विच्छेद के सम्बन्ध में "मुस्लिम विधान" के नियमों को स्पष्ट करना था।[१]

इस विधेयक का समर्थन असेम्बली में लगभग सभी मुसलमान सदस्यों ने प्रसन्नतापूर्वक किया। श्री मुहम्मद आकूल ने विधेयक का समर्थन करते हुए सुझाव दिया कि इस विधेयक को लागू करने और व्यवहार में प्रयुक्त होने का कार्यभार मुसलमान काज़ियों को सौंप देना चाहिए।[२]

विधेयक की इस समस्या पर भी विचार किया गया कि विवाह-विच्छेद का निर्णय देने के लिए एक मुस्लिम न्यायाधीश अथवा क़ाज़ी की उपस्थिति अनिवार्य है। विधेयक के प्रणेता श्री काज्मी तथा उनके समर्थक श्री अज़हर अली के मत में विवाह-विच्छेद के सम्बन्ध में "मुस्लिम विधान" को स्पष्ट करने के लिए क़ाज़ी की उपस्थिति आवश्यक है।[३] श्री अब्दुल कयूम ने भी स्पष्ट और उचित कह कर विधेयक की प्रशंसा की। जहाँ तक विवाह-विच्छेद के सम्बन्ध में मुसलमान न्यायाधीश अथवा काज़ी की उपस्थिति का प्रश्न है, श्री अब्दुल इसे अनिवार्य नहीं समझते हैं। उनके मत में मुसलमान न्यायाधीश के अभाव में, गैर मुसलमान न्यायाधीश के निर्णय और पक्षपातहीनता पर विश्वास करना चाहिए।[४]

सैयद मुर्तज़ा साहेब बहादुर विधेयक में से इस अनुच्छेद को हटाने के पक्ष में थे कि मुस्लिम नारी इस आधार पर कि उसका विवाह अल्पायु में पिता द्वारा किया गया था, विवाह-विच्छेद की अधिकारिणी है। श्री सैयद मुर्तज़ा साहेब का समर्थन श्री सैयद गुलाम भिक नैरंग ने इस आधार पर किया कि अधिकतर विवाह पिता

---

1. Dissolution of Muslim Marriage Act, 1939, Preamble.

2. The Indian Annual Register, Vol. I, 1939 (Jan - June), p.92.

3. Ibid, p. 104.

4. Ibid.

द्वारा स्वेच्छा से नहीं किए जाते हैं। विभिन्न सदस्यों ने उसके विपक्ष में तर्क दिए तथा अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जहाँ अल्पायु बालिकाओं का विवाह पिता अथवा अभिभावकों ने आर्थिक लाभ की दृष्टि से किया था।[1] अंत में इस अनुच्छेद को मान्यता प्रदान की गई।

इस अधिनियम के भाग दो के अन्तर्गत मुस्लिम स्त्री को निम्न आधारों पर विवाह विच्छेद के लिए याचना करने का अधिकार दिया गया है[2]:—

(१) जब चार वर्ष से पति का कोई पता नहीं चल रहा हो।

(२) जब पति जान बूझ कर अथवा अपनी असमर्थता के कारण दो वर्ष से पत्नी के भरण-पोषण की व्यवस्था करने में असमर्थ हो।

(३) जब पति को सात वर्ष अथवा उससे लम्बी अवधि की कैद का दण्ड मिल गया हो।

(४) जब उचित कारण के बिना पति अपने वैवाहिक कर्तव्यों का पालन तीन वर्ष की अवधि से नहीं कर रहा हो।

(५) विवाह के समय से ही पति नपुंसक हो।

(६) दो वर्ष की अवधि से पति पागल हो अथवा कोढ़ अथवा विषाक्त गुप्त रोगों से पीड़ित हो।

(७) जब १५ वर्ष की आयु से पहले पत्नी का विवाह पिता या संरक्षक के द्वारा किया गया हो और पत्नी ने अपनी १८ वर्ष की आयु होने से पूर्व विवाह का प्रत्याख्यान कर दिया हो।

(८) (क) जब पति की ओर से शारीरिक या आचरण सम्बन्धी क्रूरता हो, (ख) या उसका बदनाम स्त्रियों से सम्पर्क हो या (ग) वह बदनाम जीवन व्यतीत करता हो या (घ) पत्नी को अनैतिक जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य करता हो या (ङ०) उसकी सम्पत्ति को बेचता हो या (च) उसे अपनी सम्पत्ति के उपभोग से रोकता हो या (छ) पत्नी के धार्मिक कार्यों में बाधा पहुँचाता हो या

---

1. Ibid, p. 106.

2. Dissolution of Muslim Marriage Act, 1939, Section 2.

(ज) अन्य पत्नियों की तुलना में बराबर का व्यवहार नहीं करता हो ।

(९) मुस्लिम कानून द्वारा मान्य किसी अन्य आधार पर भी विवाह-विच्छेद हो सकता है ।

इस अधिनियम के भाग चार के अनुसार यह भी घोषणा की गई कि विवाहित मुस्लिम स्त्री यदि अपने धर्म का त्याग कर अन्य धर्म में परिवर्तित हो जाती है तो प्रथम विवाह का विच्छेद स्वयं नहीं होता अपितु भाग २ के अन्तर्गत दी गई निर्योग्यताओं का होना आवश्यक है ।[1]

विवाह-विच्छेद का अधिकार पति की स्वीकृति के अभाव में भी स्त्री को प्रदान कर इस अधिनियम ने मुसलमान नारी की स्थिति को दृढ़ करने का प्रयास किया है ।

हिन्दू विवाह अयोग्यता निरोधक अधिनियम, १९४६

१३ फरवरी १९४१ को श्री जी०वी० देशमुख ने हिन्दू विवाहों के सम्बन्ध में अयोग्यताओं को दूर करने की दृष्टि से असेम्बली में एक विधेयक प्रस्तुत किया । विधेयक का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए श्री देशमुख ने कहा कि विधेयक सगोत्र और सप्रवर विवाहों के सम्बन्ध में कुछ मौलिक परिवर्तन करने की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है[2]। क्योंकि गोत्र, सपिण्ड, सप्रवर आदि के सम्बन्ध में हिन्दुओं में भ्रान्त धारणाएं प्रचलित थीं । इस विधेयक के माध्यम से इस प्रकार के वैवाहिक सम्बन्धों की औचित्यता को स्पष्ट किया गया है ।

असेम्बली में विधेयक के सम्बन्ध में कुछ मतभेद अवश्य रहा । अनुदारवादी बाबू बैजनाथ बाजोरिया विधेयक के घोर विरोधी थे । अपने विरोध का प्रदर्शन करने के उद्देश्य से उन्होंने कहा कि विधेयक चूंकि हिन्दू धर्म ग्रन्थों से सम्बन्धित है,

---

1. Dissolution of Muslim Marriage Act, 1939, Section 4.
2. Proceedings of the Legislative Assembly, 1941, Vol. II,p.1744.

अत: शास्त्रों की बातों को स्पष्ट करने के लिए विधेयक को अंग्रेजी भाषी ज्ञानियों की आवश्यकता नहीं है, बल्कि हिन्दू पंडितों की आवश्यकता है।[1] अत: विधेयक को विधिज्ञ वर्ग को सौंपना भूलता है। श्री सुन्दरलाल डागा तथा मौलाना ज़फ़र अली भी विधेयक के विपक्षियों में से थे। उनका तर्क था कि विभिन्न वर्गों के नैतिक विकास की दृष्टि से विधेयक को समाप्त कर देना चाहिए।[2]

तत्पश्चात् विधेयक जनमत संग्रह के लिए रखा गया। श्री देशमुख ने २८ अक्टूबर १९४१ को असेम्बली से अनुरोध किया कि विधेयक को 'सैलेक्ट समिति' में जाने की अनुमति प्रदान की जाए।[3] परन्तु उनका यह प्रयत्न सफल न हो सका। १२ फरवरी १९४६ को श्री देशमुख ने पुन: यह विधेयक प्रस्तुत किया जो ६ मार्च १९४६ को सैलेक्ट समिति स्तर पर पहुंच गया[4]।

श्री देशमुख ने ७ नवम्बर १९४६ को पुन: असेम्बली से विनय की कि सैलेक्ट समिति की रिपोर्ट को, जो कि विधेयक के अनुच्छेदों को सर्वसम्मति से मान्यता देती है, मान लिया जाए। इस समय विधेयक का विरोध श्री पी०बी० गोल ने किया। उन्होंने 'राव समिति', 'बम्बई महिला सभा' तथा 'अखिलभारतीय वर्णाश्रम स्वराज्य संघ' आदि को उद्धृत करते हुए अपने तर्क में कहा कि उपरोक्त समुदाय विधेयक को मान्यता देने के पक्ष में नहीं है क्योंकि विधेयक मूल हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों में, जिनका प्रतिपादन ऋषियों ने किया था, क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के पक्ष में है।[5] उन्होंने पुन: कहा कि "अखिल भारतीय वर्णाश्रम संघ" इसका विरोधी है क्योंकि यह विधेयक सगोत्र विवाहों को मान्यता देता है।[6] संघ के इस वक्तव्य के

---

1. Ibid, 1748.
2. Ibid, p. 1751.
3. Ibid, Part IV, p. 169.
4. Ibid, Vol. III, pp. 2018-19.
5. Ibid, p. 658.
6. Ibid, p. 659.

अनुसार, कि दीर्घकाल से मान्यता प्राप्त व प्रचलित संस्थाओं और नियमों को मान्यता देना और सुरक्षित रखना प्रत्येक राज्य का कर्तव्य है । अत: विधेयक के विरोध के माध्यम से सरकार को हजारों पुरातन पंथी हिन्दुओं के विचारों का आदर करना चाहिए ।[१] इस मत के आधार पर भी गोल स्वयं विधेयक का विरोध करना चाहते थे ।

विधेयक के विपक्षी सरकार को अपने तर्कों से अधिक प्रभावित नहीं कर सके । राजगोपालाचारी तथा श्री अनन्त शयानम् अय्यंगर जैसे विज्ञ सदस्यों ने समय के अनुसार परंपरावादी मान्यताओं में परिवर्तन करना आवश्यक बतलाया ।[२] अंत में विधेयक बहुमत के द्वारा पास कर दिया गया तथा हिन्दू विवाह अयोग्यता निरोधक अधिनियम (XXVIII) १९४६ के नाम से लागू किया गया ।

इस अधिनियम के अनुसार हिन्दुओं में सगोत्र, सप्रवर तथा विभिन्न उपजातियों और वर्गों के अन्तर्गत संपादित विवाहों को मान्यता प्रदान की गई ।

हिन्दू विवाह वैधता अधिनियम, १९४९

हिन्दू विवाह को मान्यता देने के क्षेत्र में यह अधिनियम एक विशिष्ठ स्थान रखता है । श्री ठाकुरदास भार्गव का यह अधिनियम हिन्दू समाज के अनुदारवादी विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाकर उनका आधुनिकीकरण कर देता है । विधेयक न केवल हिन्दुओं की उपजातियों और वर्गों में प्रचलित विवाहों को मान्यता प्रदान करता है, अपितु विभिन्न धर्मों, जातियों और उपजातियों के मध्य विवाहों को, चाहे वह इस अधिनियम के पारित होने के पूर्व संपादित हुए हों, अथवा बाद में, मान्यता देता है ।

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी विधेयक के महान् समर्थक थे । उनका मत था कि इस प्रकार का विधेयक तो ४० वर्ष पहले ही प्रस्तुत हो जाना चाहिए था क्योंकि उस समय की प्रान्तीय सरकारें हिन्दू समाज को पनपने और प्रगतिवादी

---

1. Ibid.
2. Ibid, p. 661 and 666.

बनाने के मार्ग में बाधक थीं । तत्कालीन सरकारों ने विभिन्न हिन्दू जातियों के मध्य विवाहों को मान्यता नहीं दी थी ।[1] हिन्दू विवाह वैधता अधिनियम १९४९ के द्वारा इस दोष को दूर करने का प्रयत्न किया गया है ।

११ फरवरी १९४९ को श्री ठाकुरदास भार्गव ने विधेयक को सेलेक्ट समिति में भेजने की माँग की । २५ मार्च १९४९ को समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की ।[2] ४ अप्रैल १९४९ को इस पर वाद विवाद हुआ[3] तथा विपक्ष के अभाव में सर्व सम्मति से विधेयक पास कर दिया गया । यह अधिनियम हिन्दू धर्म को प्रगतिवादी तथा विकासशील बनाने के साथ ही साथ युगनुरूप चलाने के लिये प्रेरित करता है ।

विशेष विवाह अधिनियम, १९५४

विशेष विवाह अधिनियम के पारित होने से पूर्व सन् १८७२ तथा १९२३ में क्रमशः विशेष विवाह अधिनियम पारित हो चुके थे । १८७२ के विशेष विवाह अधिनियम के द्वारा विवाह के धार्मिक प्रतिबन्धों को दूर करके उन सब लोगों को आपस में विवाह करने का अधिकार दे दिया गया जो कि किसी धर्म को नहीं मानते थे । इस अधिनियम के पारित होने में मुख्य हाथ ब्रह्मसमाजियों का था । ब्रह्म समाज इस समय तक अत्यन्त लोकप्रिय हो चुका था तथा सामाजिक सुधार की दृष्टि से समाज के अनुयायियों ने ईसाई विवाह के कुछ तत्वों को लेकर हिन्दू विवाह में परिवर्तन कर दिया था । ब्रह्म समाज के अनुयायियों की माँग थी कि इस प्रकार से संपादित विवाहों को न्यायालय में मान्यता दी जाए । ५ जून १८६८ में भारतीय ब्रह्म समाज ने एक सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें एक विज्ञप्ति के द्वारा भारत सरकार को ऐसे विवाहों की वैधता के सम्बन्ध में अधिनियम बनाने की माँग रखी गई । लार्ड लारेन्स ने केशवचन्द्र सेन को इस विषय में सहायता करने का आश्वासन भी दिया ।[4] सर हैनरी मैन ने १८ नवम्बर १८६८ को विधान परिषद् में विधेयक

---

1. Proceedings of the Constituent Assembly of India (Legislative) Pt. II, p. 423.
2. Ibid, Vol. III, Pt. II, p. 1589.
3. Ibid, p. 2336.
4. Social Reform Annual, 1939.

प्रस्तुत किया । प्रान्तीय सरकारें इस विधेयक के पक्ष में नहीं थीं । क्योंकि उनके मत में यह विधेयक देश की मौलिक विधियों और सामाजिक सम्बन्धों में हस्तक्षेप करता था । सर हेनरी मेन के उत्तराधिकारी सर जेम्स स्टीफेन को भी यह तर्क मान्य था । सर स्टीफेन ने विधेयक में "ब्रह्मों" की आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्तन करना चाहा जिसका आदि ब्रह्म समाज ने डटकर विरोध किया । आदि ब्रह्मसमाज का कहना था कि विधेयक द्वारा प्रतिपादित विवाह का प्रकार उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाता है, तथा वह विवाह सम्बन्धों को ऐसे अधिकारी के समक्ष रजिस्टर्ड कराने के पक्ष में नहीं है जो ब्रह्म समाजी नहीं है ।[१] अंत में श्री स्टीफेन ने ब्रह्मसमाज की दोनों शाखाओं--आदि ब्रह्मसमाज तथा नवीन ब्रह्म समाज के नेताओं में समझौता कराने की दृष्टि से दोनों का मत जानना चाहा । अंत में प्रगतिवादी ब्रह्म समाज के नेता केशवचन्द्र सेन ने इस बात को स्वीकार कर लिया कि अधिनियम के अनुसार विवाह करने वाले पक्षों को यह घोषित करना पड़ेगा कि वे ईसाई, जीयू, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, बौद्ध, सिक्ख और जैन धर्मों के अनुयायी नहीं हैं । इस प्रकार की घोषणा के लिए "फार्म" भी निर्मित किए गए[२]।

१६ मार्च १८७२ को विधेयक वाद-विवाद के लिए असेम्बली के समक्ष आया इस समय विधेयक के विरोधियों ने विधेयक को समाप्त करने का अथक प्रयास किया । अंत में विरोधों के होते हुए भी यूरोपीय सदस्यों के मतों के फलस्वरूप विधेयक पारित कर दिया गया ।

१८ मार्च १९११ को श्री भूपेन्द्रनाथ वसु ने १८७२ के विशेष विवाह अधिनियम को संशोधित करने की दृष्टि से एक विधेयक प्रस्तुत किया । १८७२ के अधिनियम के विरुद्ध उनकी मांग यह थी कि यह अधिनियम समय की आवश्यकता को पूरा नहीं करता तथा वह सभी हिन्दू इससे लाभान्वित नहीं हैं, जो हिन्दू धर्म छोड़ना भी नहीं चाहते हैं, परन्तु समय के साथ साथ परिवर्तन भी चाहते हैं । श्रीवसु के इस विधेयक का विरोध प्राय: सभी दिशाओं से किया गया । न केवल जनमत

---

१. Social Reform Annual, 1939.

2. Ibid.

इसके विरुद्ध था, अपितु असेम्बली के सदस्यों ने भी इसके विपक्ष में मतदान किया। परिणामस्वरूप बहुमत का समर्थन प्राप्त न होने के कारण विधेयक पास न हो सका।

इसी सम्बन्ध में एक और विधेयक डा० हरीसिंह गौड़ ने १९२१ में असेम्बली के समक्ष विचारार्थ रखा। इस विधेयक में श्री बसु द्वारा प्रस्तावित संशोधनों के अतिरिक्त एक अन्य संशोधन की मांग भी रखी गई। डा० गौड़ विधेयक के द्वारा विवाह को "सिविल विवाह" घोषित कराना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने विधेयक के शीर्षक को "सिविल विवाह अधिनियम" में परिवर्तित करने की मांग रखी। १७ फरवरी १९२२ को डा० गौड़ ने विधेयक को सैलेक्ट समिति में विचारार्थ भेजने की मांग की।[1] समिति ने १४ मार्च १९२३ को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। समिति ने विधेयक में अनेक परिवर्तन किए तथा २२ मार्च १९२३ को संशोधित विधेयक असेम्बली के समक्ष प्रस्तुत किया।[2] असेम्बली ने संशोधनों को ज्यों का त्यों मान लिया तथा विधेयक उसी दिन पारित कर दिया गया। इसके द्वारा अन्तर्जातीय विवाह की वैधानिक अड़चनें दूर कर दी गई तथा विवाह-विच्छेद की भी छूट दी गई।

डा० हरीसिंह गौड़ के प्रस्तावित विधेयक में अनेक परिवर्तन कर दिये गये थे, जो उन्हें मान्य नहीं थे। अत: उन्होंने पुन: ६ फरवरी १९२८ को एक विधेयक प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया, परन्तु उन्हें सफलता प्राप्त न हो सकी।

२६ सितम्बर १९२९ को श्री जयकर ने एक अन्य विधेयक इस सम्बन्ध में प्रस्तुत करने का असफल प्रयास किया। इसी प्रकार १७ फरवरी १९३० में भी हरेकिन ने एक विधेयक राज्यपरिषद् के सम्मुख रखा। विवाह की आयु निश्चित करने के सम्बन्ध में इस विधेयक पर बहुत विवाद उठा। अंत में सरकार विधेयक को वापस लेने पर बाध्य हो गई।

उपरोक्त विधेयकों के अतिरिक्त इस सम्बन्ध में कुछ अन्य असफल प्रयास भी हुए। उदाहरणार्थ जनवरी १९३१ में डा० गौड़ ने पुन: एक विधेयक प्रस्तुत किया, परन्तु विरोधों के कारण विधेयक को पारित कराने में सफल न हो सके।[3]

---

1. Proceedings of the Legislative Assembly, 1922, Vol.II,p.1615.
2. Ibid, 1923, Vol. V, p. 3898.
3. Proceedings of the Legislative Assembly, 1931, Vol. I,

१९४० में "बम्बई प्रेसीडेन्सी सुधार संघ" ने १८७२ का अधिनियम, जो कि १९२३ में संशोधित हुआ था, को पुन संशोधित करने की मांग रखी । विभिन्न संशोधनों का अनुमोदन बम्बई में आयोजित सार्वजनिक सभा ने किया ।[1] यह संशोधन १९२३ के अधिनियम के कुछ अनुच्छेदों को परिवर्तित कराने के उद्देश्य से रखे गए थे । परन्तु इस दिशा में १९५४ तक कोई भी कार्यवाही न हो सकी । १९५४ में पारित विशेष विवाह अधिनियम उपरोक्त लिखित अधिनियमों में मौलिक परिवर्तन करता है ।

९ अक्टूबर १९५४ को पारित "विशेष विवाह अधिनियम" के द्वारा १८७२ का कानून रद्द कर दिया गया । इस कानून का उद्देश्य था हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि विभिन्न धर्मावलम्बियों के मध्य विवाह की व्यवस्था करना । अब प्रत्येक व्यक्ति किसी भी धर्म व जाति में विवाहकर सकेगा और विवाह करते समय उसे पहले की भांति (१८७२ के अधिनियम के अन्तर्गत) यह घोषणा नहीं करनी होगी कि विवाह करने वाले स्त्री-पुरुष किसी धर्म को नहीं मानते हैं ।

१९५४ के विशेष विवाह अधिनियम के अन्तर्गत विवाह करने वाले पक्षों के लिए कुछ शर्तें अवश्य रखी गई हैं । अधिनियम की धारा ४ के अनुसार प्रत्येक विवाह के लिए निम्नशर्तों का पूरा होना आवश्यक है[2]:—

(१) विवाह के समय किसी भी पक्ष का जीवन साथी जीवित नहीं होना चाहिए ।
(२) दोनों पक्षों में कोई भी बहुबुद्धि न हो ।
(३) पुरुष ने २१ वर्ष तथा स्त्री ने १८ वर्ष की आयु पूरी कर ली हो ।
(४) दोनों पक्ष निषेधात्मक सम्बन्धों[3] की परिधि के बाहर हों, तथा,
(५) यदि विवाह उस क्षेत्र में संपादित हो रहा हो जहाँ यह अधिनियम लागू नहीं होता ऐसी परिस्थिति में दोनों पक्षों के लिए आवश्यक है कि वे भारत के नागरिक हों, परन्तु उस क्षेत्र में बस गए हों ।

उपरोक्त शर्तों के अतिरिक्त इस अधिनियम के अनुसार संपादित विवाहों की रजिस्ट्री करानी भी आवश्यक होगी । रजिस्ट्री की कार्यवाही विवाह अधि-

---

1. Social Reform Annual 1940, pp. 23-24.

2. The Special Marriage Act, 1954, Chapter II, Section 4.

३. अधिनियम के भाग २ में निषेधात्मक सम्बन्धों के विषयमें विस्तृत विवरण

कारी के सम्मुख होगी ।

१९५४ का यह अधिनियम विवाह-विच्छेद का अधिकार भी प्रदान करता है । विवाह विच्छेद की शर्तें इस प्रकार हैं :--

किसी भी पक्ष के व्यभिचारी होने, तीन वर्ष तक अकारण परित्याग करने, सात वर्ष तक या अधिक अवधि का कारावास दंड पाने, क्रूरता, कम से कम तीन वर्ष से असाध्य पागलपन, गुप्त रोग या विषाक्त कोढ़ से पीड़ित होने, सात वर्ष से जीवित न सुना जाने आदि अवस्थाओं में दूसरा पक्ष न्यायालय से विवाह-विच्छेद की आज्ञा प्राप्त कर सकता है । १९५४ में पारित यह अधिनियम पारस्परिक सहमति द्वारा भी विवाह-विच्छेद की अनुमति देता है । परन्तु इसके लिए तीन शर्तों का पूरा होना आवश्यक है :-

(१) पति-पत्नी एक वर्ष से या उससे भी अधिक समय से एक दूसरे से अलग रह रहे हैं ।
(२) वे साथ रहने में सर्वथा असमर्थ हैं,
(३) उन्होंने विवाह-विच्छेद करने के लिए आपस में समझौता कर लिया है । इसके लिए एक आवेदन पत्र देना आवश्यक है । इस आवेदन पत्र के देने से एक वर्ष बाद भी यदि दोनों पक्ष विवाह-विच्छेद का आवेदन पत्र नहीं लौटाते हैं और न्यायालय से विवाह-विच्छेद की माँग करते हैं, तो न्यायालय आवश्यक कार्यवाही के पश्चात् विवाह-विच्छेद की आज्ञा दे सकता है । विवाह के बाद प्रथम तीन वर्षों तक विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन पत्र नहीं दिया जा सकेगा । इसके अतिरिक्त विवाह-विच्छेद की आज्ञा प्राप्त हो जाने के एक वर्ष बाद ही पुनर्विवाह हो सकेगा ।

१९५४ में पारित इस विशेष विवाह अधिनियम में कुछ नवीनताएं दृष्टिगोचर होती हैं जो प्रगतिशील समाज की माँगों के अनुरूप हैं । यह नवीन परिवर्तन नारी को अधिक स्वतंत्रता प्रदान करने में समर्थ है ।

इस अधिनियम की प्रथम विशेषता है इसका धर्म-निरपेक्ष स्वरूप । यह अधिनियम हिन्दू, मुसलमान अथवा अन्य मतावलम्बियों पर पृथक पृथक रूप से लागू न होकर, सभी धर्मों के मानने वालों पर सामान्य रूप से लागू होता है । इसके अन्तर्गत विवाह करने वाले पक्षों को अपने अपने धर्म की घोषणा करने की आवश्यकता

नहीं है । इसके द्वारा धर्म और जाति प्रथा की दीवारों को दूर करके वृहद् दृष्टिकोण का परिचय दिया गया है । यहाँ तक कि मुसलमान व्यक्ति भी, यदि एक विवाह से सहमत हैं, इसके अन्तर्गत विवाह कर सकते हैं ।

द्वितीय इस अधिनियम के द्वारा एक विवाह को प्रश्रय दिया गया है । अधिनियम की धारा ४ के प्रथम अनुच्छेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "विवाह के समय किसी भी पक्ष का जीवन-साथी जीवित नहीं होना चाहिए ।"

तृतीय इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी प्रकार की धार्मिक क्रियाओं व अनुष्ठानों की आवश्यकता भी नहीं है ।[1] मात्र रजिस्ट्री ही विवाह को संपादित घोषित करने में समर्थ है । अतः इसके द्वारा 'प्रेम विवाह' को प्रश्रय मिला है ।

अधिनियम की अन्तिम, सबसे महत्त्वपूर्ण व नवीन विशेषता विवाह-विच्छेद में परिलक्षित होती है । इसके अन्तर्गत विवाह-विच्छेद के विभिन्न आधारों, जो कि अन्य अधिनियमों में भी सामान्य रूप से पाए जाते हैं, के अतिरिक्त एक नवीन आधार रखा गया है । इसके अनुसार दो व्यस्क विवाहित व्यक्ति पारस्परिक सम्मति से विवाह-विच्छेद की अपील कर सकते हैं । अर्थात् विवाह-विच्छेद के लिए यह आवश्यक नहीं है कि किसी भी पक्ष के ऊपर किसी प्रकार का अभियोग लगाया जाए, अपितु यदि पति-पत्नी आपस में मिलकर रहने में असमर्थ हैं, तो पारस्परिक सम्मति से विवाह-विच्छेद हो सकता है । परन्तु इसके अनुसार पत्नी को भरण-पोषण के लिए धनराशि देने पर पति बाध्य नहीं किया जा सकता है ।[2]

इस अधिनियम के प्रतिपादकों का दावा है कि यह अधिनियम भारतीय संविधान की धारा ४४[3] जिसके अनुसार 'सम्पूर्ण देश के लिए एक सी व्यवहार संहिता

---

1. Thomas, P. - Indian Women through the Ages, p. 370.
2. Baig, Tara Ali - Women of India - "The Laws as it affects Women" by Renu Chakravarthy, p. 80.
3. Article 44 runs as follows :- "The State shall endeavour to secure for the citizens a uniform civil code throughout the territory of India."

बनेगी" को चरितार्थ करने का प्रथम प्रयास है ।

विशेष विवाह अधिनियम उपरोक्त विशेषताओं के होते हुए भी आलोचना का विषय रहा है । सर्वप्रथम इस दावे का खंडन किया गया है कि विशेष विवाह अधिनियम सम्पूर्ण देश को एक ही व्यवहार संहिता प्रदान करता है । देश में प्रचलित विवाह के अन्य प्रकार ज्यों के त्यों मान्यता प्राप्त हैं । विभिन्न वर्गों व धर्मों के लोग अपनी अपनी प्रथाओं के अनुसार विवाह सम्बन्ध स्थापित करते हैं । यह अधिनियम प्रत्येक को एक ही व्यवहार संहिता मानने को बाध्य नहीं करता और न ही इसमें ऐसा कोई अनुच्छेद है जिसके अनुसार भविष्य में विभिन्न विवाह प्रणालियां समाप्त कर दी जायेंगी । श्री सरकार के मत में इस अधिनियम के द्वारा विभिन्न प्रणालियों के साथ साथ एक और प्रणाली जोड़ दी गई है ।[1]

इसके अतिरिक्त यह अधिनियम कोई नवीन विचार न होकर १८७२ में पारित विशेष विवाह अधिनियम, जो कि १९२३ में संशोधित हुआ था, का ही परिवर्तित रूप है । वास्तव में १८७२ के अधिनियम के ९० प्रतिशत अनुच्छेद ज्यों के त्यों हैं । डा० बी०आर० अम्बेदकर ने इस अधिनियम की इसी आधार पर आलोचना की है । डा० अम्बेदकर के अनुसार " भारत जैसे कम विकसित देश में सरकार का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह सम्मुख रखे ऐसे परिवर्तन करे जो समाज द्वारा अनुमोदित किए जायें । इसके विपरीत यह अधिनियम, १८७२ की ओर लौट जाता है, जबकि हमलोग १९५३ में रह रहे हैं । 'हिन्दू कोड' के टुकड़े करना भयंकर है, परन्तु सरकार का यह स्पष्ट मन्तव्य प्रतीत होता है कि वह इसके टुकड़े-टुकड़े करके यह देखना चाहती है कि इस तरह से यह कहां तक लागू हो सकता है । यदि विवाह-सम्बन्धी नियम केवल विवाह के सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन करते हैं, गोद लेना, तथा उत्तराधिकार के सम्बन्ध में वही पुराने नियम ही मान्य रहेंगे तो, मेरे विचार से इसका परिणाम और कुछ नहीं केवल अव्यवस्था होगा ।"[2]

---

1. Sarkar, U.C. - Epochs in Hindu Legal history, pp. 411-412.
2. Quoted from Sarkar, U.C. - Epochs in Hindu Legal history, p. 413.

इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया कि १९५४ का यह अधिनियम १८७२ का शब्दाशब्द अनुवाद है, अत: इस सम्बन्ध में नए विधेयक की आवश्यकता नहीं थी । केवल १८७२ के विधेयक में कुछ संशोधन जोड़कर भी काम चलाया जा सकता था ।[1] कानून मंत्री ने इसके उत्तर में कहा कि जनमत इस प्रकार के अधिनियम के पक्ष में था[2]।

पारसियों ने इसका विरोध इस आधार पर किया कि उनकीप्रथाओं के अनुसार भाई व बहनों के बच्चों के मध्य विवाह सम्बन्ध हो सकता है, परन्तु यह अधिनियम इस प्रकार के विवाह को निषेधात्मक सम्बन्धों के अन्तर्गत रखता है ।[3]

इन दोषों के होते हुए भी विशेष विवाह अधिनियम अनेक दृष्टि से लाभप्रद है, विशेषकर नारी को इसके द्वारा विवाह के क्षेत्र में समानता का अधिकार दिया गया है ।

हिन्दू विवाह अधिनियम,१९५५

ब्रिटिश शासकों द्वारा हिन्दू विधियों का संहिताकरण, हिन्दुओं के वैधानिक इतिहास में अन्तिम तथा सबसे महत्वपूर्ण चरण था । केन्द्रीय व्यवस्थापिका में 'हिन्दू कोड बिल' के रूप में एक क्रान्तिकारी विधेयक प्रस्तुत किया गया । इस विधेयक के विरोधियों ने इसे सम्पूर्ण हिन्दू व्यवस्था के प्रति चुनौती स्वरूप माना । फलस्वरूप विधेयक के प्रति इतनी तीव्र प्रतिक्रिया हुई, जितनी अन्य किसी विधेयक के प्रति नहीं देखी गई ।[4]

हिन्दू स्त्रियां भारत में सदैव से सामाजिक प्रथाओं और नियमों के द्वारा अन्याय और असमानता की स्थिति में रही हैं । हिन्दू समाज में बाल-विवाह, दहेज-प्रथा आदि के माध्यम से स्त्रियों के विकास में सदैव बाधा पहुंचाई गई है । बहु -

---

1. Sarkar, U.C. - p. 413.
2. Ibid, p. 414.
3. Ibid, p. 415.
4. Sarkar, U.C. - Epichs in Hindu Legal history, p. 391.

विवाह का अस्तित्व भी मान्य रहा है, जब कि विवाह विच्छेद का कोई भी अधिकार हिन्दू विधान प्रदान नहीं करता । इसके साथ ही साथ हिन्दू स्त्रियाँ सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी भी नहीं मानी गई थीं । सबसे अधिक अधिकार जो हिन्दू विधान स्त्री को प्रदान करता है, वह पति या पुत्र द्वारा छोड़ी गई सम्पत्ति का उपभोग । परन्तु यहाँ भी इस सम्पत्ति की वह पूर्ण स्वामिनी नहीं थी क्योंकि वह इसका मात्र उपभोग कर सकती थी उसको बेचने या देने का अधिकार उसे नहीं था । इसके अतिरिक्त गोद लेने का अधिकार भी स्त्रियों के अधिकार क्षेत्र में नहीं रखा गया था । साथ ही कन्या को गोद लेना भी हिन्दुओं में मान्य नहीं था ।[१]

नारी उन्नयन के लिए तथा लिंगभेद के आधार पर असमानता को दूर करने के लिए प्रथम कार्य था वैधानिक दृष्टि से असमानता को दूर करना । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हिन्दू कानूनों के संहिताकरण की आवश्यकता अनुभव की गई । सर्व प्रथम २५ जनवरी १९४१ में सरकार ने श्री बी०एन० राय के नेतृत्व में एक समिति का निर्माण किया । समिति को यह पता लगाना था कि हिन्दू व्यवहार संहिता को वैधानिक रूप देना कहाँ तक उचित है । समिति ने अपनी रिपोर्ट में हिन्दू कानूनों का संहिताकरण विभिन्न स्तरों पर करने का सुझाव दिया,[२] तथा दो विधेयकों की रूपरेखा निर्धारित की — एक तो हिन्दू विवाह पर तथा दूसरा उत्तराधिकार सम्बन्धी ।[३] इन विधेयकों की रूपरेखा निर्धारित करने के उपरान्त समिति समाप्त कर दी गई । २० जनवरी १९४४ को दोनों ड्राफ्ट विधेयकों पर विचार करते हुए असेम्बली ने एक विज्ञप्ति के द्वारा हिन्दू

---

1. Baig, Tara Ali - Women of India (Ed) (The Laws as it effects women by Renu Chakravarthy), p. 73.
2. Report of the Hindu Law Committee, 1941 (Simla), p. 36.
3. Mukherjee, B.K. - Mulla's Hindu Law (11th Ed.) PP.VI,VII.

कानून समिति को हिन्दू कोड बिल पर विशद् जानकारी प्राप्त करने के लिए निर्देश दिए।[1] २४ मार्च १९४७ को राव समिति की रिपोर्ट हिन्दू कोड बिल सहित मंत्रिपरिषद् के समक्ष आई।[2] हिन्दू कानून समिति ने १९४७ में अपनी रिपोर्ट में एक विवाह के विपक्ष में दिये जाने वाले विभिन्न तर्कों का उल्लेख करते हुए बतलाया कि इस प्रकार के तर्क सर्वथा निराधार हैं।

अपने विचारों को व्यक्त करते हुए समिति ने यह प्रार्थना की कि नारी जाति के उद्धार के लिए एक विवाह को ही वैधानिक रूप देना आवश्यक है।[3] समिति ने विवाह-विच्छेद के लिए भी हिन्दुओं को वैधानिक अधिकार देने की मांग की तथा विवाह-विच्छेद के लिए विभिन्न आधारों का स्पष्टीकरण किया[4]।

११ मार्च १९४७ को समिति ने हिन्दू कोड की रूपरेखा असेम्बली के समक्ष प्रस्तुत की। ९ अप्रैल १९४८ को भी अम्बेदकर ने विधेयक को सेलेक्ट समिति में भेजने की मांग की[5] जो स्वीकार कर ली गई।[6] इस विधेयक के अनुसार विवाह के दोनों प्रकार — पवित्र संस्कार द्वारा तथा सिविल-विवाह, का प्रतिपादन किया गया। इस विधेयक में एक विवाह तथा विवाह-विच्छेद के लिए भी अनुच्छेद रखे। हिन्दू विवाह के क्षेत्र में यह नवीन धारणा थी, क्योंकि अब तक विवाह विच्छेद का अधिकार हिन्दुओं में नहीं था।[7]

सेलेक्ट समिति ने अपनी रिपोर्ट १२ अगस्त १९४८ को कुछ संशोधनों के सहित प्रस्तुत की।[8] ३१ अगस्त १९४८ को समिति की रिपोर्ट असेम्बली के समक्ष

---

1. Ibid.
2. Ibid.
3. Report of the Committee - 81.
4. Ibid, 110.
5. Proceedings of the Constituent Assembly, 1848, Vol. V,p.3628.
6. Mukherjee, B.K. - Mulla's Hindu Law (11th ed.), pp.VI, VII.
7. Proceedings of the Constituent Assembly, 1948, Vol. V, pp. 3631-32.
8. Ibid, Vol. VI Pt. pp. 218-219.

प्रस्तुत की गई तथा वाद-विवाद के बाद १६ दिसम्बर १९४९ को सभा ने सैलैक्ट समिति के विधेयक को विचारार्थ रखा।[1] विधेयक पर विस्तार से विचार करने के पूर्व प्रधानमंत्री के सुझाव पर एक सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें जनता के प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया। तत्पश्चात् ५ फरवरी १९५१ को विधेयक संसद् के समक्ष पुन: पेश किया गया।[2] प्रधानमंत्री के मत में समय की कमी के कारण सम्पूर्ण हिन्दू कोड का एक साथ पारित होना असंभव था, अत: उनके सुझाव के अनुसार "हिन्दू कोड बिल" को विभिन्न भागों में पारित करने का निश्चय किया गया। हिन्दू कोड का प्रथम भाग विवाह तथा विवाह-विच्छेद से सम्बन्धित था।[3] परन्तु इसी समय संसद के विघटन के साथ-साथ हिन्दू कोड बिल का विचार भी समाप्त हो गया।

१९५२ में स्वतंत्र भारत का प्रथम सार्वजनिक निर्वाचन हुआ। भारतीय जनता की प्रतिनिधि यह नवीन संसद् हिन्दू कोड पर अधिनियम पारित करने में पूर्ण स्वतंत्र थी। संसद् ने हिन्दू कोड बिल को ४ भागों में पारित किया। यह भाग क्रमश: इस प्रकार हैं :- हिन्दू विवाह अधिनियम (XXV) १९५५, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम (XXX) १९५६, हिन्दू नाबालिग तथा संरक्षता अधिनियम (XXXII) १९५६ तथा हिन्दू गोद लेना तथा भरण-पोषण अधिनियम (LXXVIII) १९५६।

हिन्दू विवाह अधिनियम, १९५५ के द्वारा हिन्दुओं के इतिहास में प्रथम बार परम्परागत प्रथाओं को दूर करके सभी हिन्दुओं के लिए एक सा विधान लागू किया गया। इस अधिनियम की प्रमुख बात तो यह है कि "हिन्दू" शब्द की भी व्याख्या की गई। यह अधिनियम १८ मई १९५५ से जम्मू और काश्मीर को छोड़-

---

1. Mukherjee, B.K. - Mulla's Hindu Law (11th ed.), P.VI-VII.
2. Ibid.
3. Ibid.

सारे भारत में लागू किया गया । "हिन्दू" शब्द के अन्तर्गत बौद्ध, जैन, सिक्ख भी सम्मिलित हैं ।[१] अनुसूचित जातियों पर यह अधिनियम लागू नहीं होगा ।

इस अधिनियम की धारा ५ के अनुसार दो हिन्दू आपस में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं, यदि वे निम्न शर्तों को पूरा करते हों ।[२]

(१) किसी भी पक्ष का जीवन साथी (पति या पत्नी) विवाह के समय जीवित न हो ।

(२) कोई पक्ष मूढ़ या पागल न हो ।

(३) वर की आयु कैा कम से कम १८ वर्ष और वधू की आयु कम से कम १५ वर्ष होना चाहिए ।

(४) दोनों पक्ष निषेधात्मक सम्बन्धों के अन्तर्गत न हों, बशर्ते कि कोई प्रथा जिसके द्वारा वे नियंत्रित होते हैं, इस प्रकार के विवाह की आज्ञा देती हो ।

(५) विवाह करने वाले आपस में सपिण्ड न हों, बशर्ते कि कोई प्रथा जिसके द्वारा वे नियंत्रित होते हों, इस प्रकार के विवाह की आज्ञा देती हो ।

(६) यदि कन्या की आयु १८ वर्ष से कम है तो संरक्षक की अनुमति विवाह के लिए आवश्यक है । अधिनियम की धारा ६ में अनुमति देने वाले अभिभावकों की सूची का क्रम से विशद् विवरण दिया गया है ।

धारा ७ के अनुसार विवाह का सम्पादन हिन्दुओं के परम्परागत अनुष्ठानों के आधार पर होगा तथा विवाह के लिए "सप्तपदी" एक आवश्यक अंग मानी गई है । इस अनुच्छेद के अनुसार जैसे ही सातवां कदम पूरा होता है, हिन्दू विवाह संपादित माना जायेगा ।[३]

---

1. The Hindu Marriage Act, 1955, Preliminary Section 2 II.

2. Ibid Section 5.

3. Ibid Section 7.

हिन्दू विवाह अधिनियम न्यायिक पृथक्करण तथा विवाह-विच्छेद की भी अनुमति देता है । न्यायिक पृथक्करण का अर्थ यह है कि इसके द्वारा विवाह का सम्बन्ध नहीं टूटता, केवल पति-पत्नी को परस्पर एक दूसरे से दूर रहने का अधिकार मिल जाता है । इस अधिनियम की धारा १० के अनुसार पति या पत्नी निम्नलिखित आधारों पर न्यायिक पृथक्करण के लिए प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर सकते हैं :-

(१) प्रार्थना पत्र देने के लगातार दो साल पहले से दूसरे पक्ष में प्रार्थी छोड़ दिया हो ।

(२) प्रार्थी के साथ इतने अधिक अत्याचार का व्यवहार किया गया हो कि प्रार्थी के दिमाग में यह उचित भय उत्पन्न हो गया हो कि दूसरे पक्ष के साथ रहना प्रार्थी के लिए हानिकारक है ।

(३) दूसरा पक्ष प्रार्थना पत्र के एक वर्ष पूर्व से विषाक्त कोढ़ से पीड़ित हो ।

(४) दूसरे पक्ष ने विवाह के बाद किसी अन्य से अनुचित सम्बन्ध स्थापित कर लिया हो ।

इस अधिनियम की धारा १३ के अनुसार कोई भी विवाह, चाहे वह इस अधिनियम के लागू होने के पूर्व या बाद में किया गया हो, पति या पत्नी किसी के भी प्रार्थना-पत्र देने पर निम्नलिखित किन्हीं आधारों पर विवाह-विच्छेद की आज्ञा द्वारा समाप्त किया जा सकता है :-

(१) दूसरा पक्ष यदि पर-व्यभिचगमन का अभ्यस्त हो ।

(२) दूसरा पक्ष यदि धर्म-परिवर्तन के कारण हिन्दू न रह गया हो ।

(३) दूसरा पक्ष यदि तीन वर्ष से विषाक्त कोढ़ से पीड़ित हो ।

(४) दूसरा पक्ष यदि तीन वर्ष से गुप्त रोग से पीड़ित हो ।

(५) दूसरे पक्ष ने यदि सन्यास ले लिया हो ।

(६) दूसरा पक्ष यदि सात वर्ष से जीवित न सुना गया हो ।

(७) दूसरे पक्ष ने यदि वैवाहिक अधिकारों के प्रत्यास्थापन £

३ की राजाज्ञा के बाद दो वर्ष या उससे अधिक समय से उस राजाज्ञा का पालन न किया हो । पत्नी उपरोक्त अधिकारों के अतिरिक्तनिम्न दो आधारों पर भी विवाह-विच्छेद के लिए प्रार्थना-पत्र दे सकती है -

(१) इस अधिनियम के लागू होने के पूर्व पति ने दूसरा विवाह कर लिया हो या प्रार्थी के विवाह के समय उसकी दूसरी पत्नी जीवित हो ।

(२) यदि पति विवाह के बाद व्यभिचार या पशुता का अपराधी हो ।

विवाह के तीन वर्ष तक विवाह-विच्छेद की अपील नहीं की जा सकती है । धारा १५ विवाह-विच्छेद किए गए पक्षों को विवाह-विच्छेद की तिथि से एक वर्ष के पश्चात् पुन: विवाह करने का अधिकार देती है । अनुच्छेद १६ तथा २६ क्रमश: बच्चों की वैधता तथा संरक्षता के विषय में भी पर्याप्त प्रकाश डालते हैं । इसी प्रकार धारा १६ से लेकर धारा २८ में इस विषय में न्यायालय के क्षेत्राधिकार तथा प्रक्रिया का विशद वर्णन भी है ।

हिन्दू कोड बिल का प्रथम-भाग— हिन्दू विवाह अधिनियम अनेक नवीनताओं को लिए हुए है । जहाँ अधिनियम ने उसकी स्थिति को ऊँचा उठाने में सहयोग दिया है । इस अधिनियम के माध्यम से "हिन्दू विधान" में प्रथम बार परम्परागत वैवाहिक मान्यताओं का परित्याग कर समस्त हिन्दू जाति के लिए एक सी व्यवहार संहिता निर्मित की गई ।

"हिन्दू" शब्द की व्याख्या करने वाला भी यही अधिनियम है । विवाह की शर्तों के अन्तर्गत अधिनियम ने विवाह की आयु निश्चित करके हिन्दू समाज से बाल-विवाह की कुरीति को दूर करके भारतीय महिलाओं के साथ बहुत बड़ा उपकार किया है ।

न्यायिक पृथक्करण तथा विवाह-विच्छेद "हिन्दू विवाह अधिनियम" का क्रान्तिकारी अनुच्छेद है लगभग दो हजार वर्षों से विवाह-विच्छेद हिन्दू समाज में अनजान था ।[1] इसके अतिरिक्त विवाह-विच्छेद के सामान्य आधारों के अतिरिक्त जो कि स्त्री और पुरुष दोनों पर लागू होते हैं, यह अधिनियम स्त्रियों के लिए दो अन्य विशेष आधार और प्रदान करता है । अत: इस अधिनियम के द्वारा हिन्दू समाज से अब वह दिन सदा के लिए चले गये जब पारस्परिक सम्मति के न

---

1. Thomas, P. - Indian Women through the Ages, p. 367.

होते हुए भी पत्नी, पति के दासत्व में रहने पर बाध्य थी ।

इस अधिनियम द्वारा हिन्दू समाज से बहुविवाह की प्रथा को सदैव के लिए उठा लिया गया है । बहु विवाह प्रथा में पत्नी का स्तर सदैव से गिरा हुआ रहा है ।

इन सबके अतिरिक्त इस अधिनियम में कुछ ऐसे अनुच्छेद भी हैं, जिनके द्वारा न्यायालय को यह अधिकार दिया गया है कि वह विवाह-विच्छेद के पश्चात् स्त्री के भरण-पोषण के लिए विपक्षी की आर्थिक दशाओं को देखते हुए प्रार्थी को जीवन भरण के लिए या जब तक वह दूसरा विवाह नहीं करती तब तक के लिए जीवन-निर्वाह का व्यय दिलवा सके । यह अधिनियम अशिक्षित अथवा स्वयं जीविकोपार्जन न कर सकने योग्य स्त्री के लिए अत्यधिक उपयोगी है ।

हिन्दू कोड बिल की कई आधारों पर आलोचना की गई है । इस आलोचना का प्रथम शिकार हिन्दू विवाह अधिनियम ही हुआ है । आलोचकों का कथन है कि हिन्दू जैसी वृहत् जाति के लिए एक ही व्यवहार संहिता निर्मित करना अनावश्यक तथा अव्यवहारिक है । श्री मेन इसी मत के हैं । मेन लिखते हैं "..... मैं कठिनता से आशा कर पा रहा हूं कि हिन्दू विधान के विषय में एक संहिता का निर्माण होगा जो व्यापारियों और कृषकों को, पंजाबियों और बंगालियों को, बनारस के पंडितों तथा अमृतसर और पूना के रामेश्वरम् को संतुष्ट कर सकेगी । परन्तु मैं एक ऐसी सुन्दर तथा मूल्यवान संहिता की कल्पना सरलता से कर सकता हूं, जो कि वर्तमान कानून व्यवस्था से भी अधिक असंतोषजनक तथा खर्चीली होगी ।"[१] कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दुओं में आदिकाल से अनेक सम्प्रदाय रहे हैं जिनके पृथक पृथक नियम व व्यवहार हैं । विभिन्न सम्प्रदायों को एक ही व्यवस्था के अन्तर्गत रखकर प्रत्येक को संतुष्ट नहीं किया जा सकेगा । अत: विरोध अवश्यंभावी है ।

अंग्रेज सरकार का मत है कि हिन्दू जनता ने ऐसी संहिताकरण की मांग कभी नहीं की थी । इसका कारण यह है कि हिन्दू विधान के अधिकतर नियम सर्व -

---

1. Mayne - Hindi Law & Usage (1st ed.) Preface.

विदित हैं। यदि कभी इन नियमों की स्पष्टता पर विवाद उठता तो उसे जन-मत द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।[1]

इसके अतिरिक्त भी सरकार का मत है कि हिन्दू संहिता का यह भाग मूल हिन्दू आदर्शों के विरुद्ध भी है और हिन्दू धर्म में मौलिक परिवर्तन भी करता है, जो मान्य नहीं समझा जा सकता। उदाहरणार्थ हिन्दू के लिए विवाह एक धार्मिक संस्कार है, परन्तु अधिनियम "सिविल विवाह" के माध्यम से विवाह को धर्म निरपेक्ष रूप प्रदान करता है।[2]

इस कोड के निर्माताओं को पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति तथा पाश्चात्य शिक्षा से प्रेरित होने का आक्षेप लगाया जाता है। इसके पूर्व के सुधारक ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, विवेकानन्द, राजाराम मोहन राय तथा रामकृष्ण आदि हिन्दू धर्म के मूल आदर्शों से परे कभी नहीं गए। उन्होंने हिन्दूशास्त्रों को ध्यान में रखकर ही सुधार का प्रयत्न किया।[3]

इन आक्षेपों के विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि समय की बदलती हुई परिस्थितियां तथा मांगों के अनुरूप मूल धर्म के दोषों को दूर करने में कोई बुराई नहीं है। वर्तमान राज्य कल्याणकारी राज्य हैं, अत: राज्यों को जीवन के सभी क्षेत्रों में कानून निर्माण का अधिकार है। इलाहाबाद उच्चन्यायालय ने अपने एक निर्णय में[4] इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि यद्यपि विवाह हिन्दुओं में एक संस्कार है, तथापि यह एक सामाजिक संस्था है और राज्य के कल्याण की दृष्टि से ऐसी संस्थाओं को नियंत्रित करना तथा ऐसे नियम पारित करना जो कि व्यवस्थापकों की दृष्टि में राज्य के हित में हों तथा संविधान के विरुद्ध न जाते हों, उचित है।

---

1. Sarkar, U.C. - Epochs in Hindu Legal History, p. 406.
2. Ibid, p. 408.
3. Ibid, p. 409.
4. Ram Prasad Seth V. The State of U.P. and others 1957 - A.L.J. 439.

दहेज निरोधक अधिनियम, १९६१

दहेज प्रथा का इतिहास पुराना नहीं कहा जा सकता । यह पूर्ण रूप से आधुनिक युग की देन है । अति प्राचीन समय से विवाह के समय कन्या पक्ष की ओर से, अपने अपने सामाजिक स्तर और आर्थिक स्थिति के अनुसार कुछ न कुछ देने की प्रथा अवश्य रही है । उच्च घरानों में कन्या को विभिन्न आभूषणों, धन-राशि और सामानों से विभूषित कर भेजना उस समय अभिमान व कुलीनता का सूचक समझा जाता था । परन्तु उस समय के अलंकारों को दहेज का नाम नहीं दिया जा सकता है, क्योंकि इसमें वरपक्ष की ओर से पहले से कोई मांग नहीं रखी जाती थी और न ही धन-राशि निश्चित होती थी, अपितु यह विभिन्न उपकरण तो कन्या के पिता द्वारा स्नेहवश , उपहार स्वरूप प्रदान किए जाते थे । तत्कालीन समाज में विवाह के लिए मुख्य आधार परिवार की कुलीनता, जाति, उच्च सामा-जिक स्तर तथा परिवार की आर्थिक स्थिति आदि थे ।

ब्रिटिश राजत्वकाल में, जबकि विभिन्न प्रतिष्ठित परम्परागत प्रथाओं का अस्तित्व विलीन हो रहा था , विवाह जैसे पवित्र संस्कार में भी व्यापारिक प्रवृत्ति का उदय हुआ । यह प्रवृत्ति इतनी व्यापक थी कि इसका शिकार लगभग सभी जातियां थीं । परन्तु हिन्दू समाज में यह कुरीति धीरे धीरे अधिक जड़ जमाती जा रही थी ।

इस प्रथा की जड़ में संभवतः छोटे परिवार की बढ़ती प्रवृत्ति भी काम कर रही थी । समय के परिवर्तन ने हिन्दू संयुक्त परिवारों का अस्तित्व समाप्त सा कर दिया था तथा परिवार का आकार अत्यन्त लघु हो गया था । इस छोटे परि-वार (पति-पत्नी और उनकी सन्तानें) की प्रवृत्ति पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव भी समझी जा सकती है । छोटे परिवार के कारण अभिभावक ऐसे वर की खोज में रहते थे जो कि स्वयं जीविकोपार्जन में समर्थ हो । बेकारी की समस्या तथा उच्च पदों पर भारतीयों की नियुक्ति न होने के कारण उत्तम स्थिति तथा अधिक आय पाने वालों की संख्या कम थी यद्यपि मांग अधिक । इस कारण उत्तम वर से शीघ्र विवाह सम्पादित करने के लिए पुत्री के अभिभावकों ने अधिक से अधिक धनराशि देना

स्वीकार कर लिया । यह अस्वस्थ्य प्रतिद्वन्द्विता इतनी अधिक बढ़ी कि कालान्तर में धनराशि की अधिकता ही विवाह निश्चित करने का मापदण्ड हो गई तथा वरपक्ष की ओर से यह राशि पहले से ही निश्चित की जाने लगी । विवाह से पहले धनराशि की यह निश्चित माँग ही वास्तव में "दहेज" है ।

वर पक्ष की इस माँग को पूरा न कर सकने के कारण अल्पआय वाले अभिभावकों की कन्याएं अविवाहित ही रह जाती थीं । इस स्थिति में न केवल अभिभावकों के मन में, अपितु बालिकाओं की कोमल भावनाओं पर बुरा प्रभाव डाला । इस समस्या के निदान के लिए विभिन्न वर्गों, समुदायों, यहाँ तक कि महिला सम्मेलनों और संगठनों ने भी माँग की । प्रबल जनमत के फलस्वरूप सरकार ने दहेज प्रथा को समाप्त करने के लिए कानून निर्मित करने का बीड़ा उठाया । इस माँग की पूर्ति के लिए एक "दहेज निरोधक विधेयक" लोक सभा तथा राज्यसभा के सम्मुख प्रस्तुत किया गया । इस विधेयक की कुछ धाराओं के सम्बन्ध में लोकसभा तथा राज्यसभा के बीच कुछ मतभेद अवश्य था । इन मतभेदों को दूर करने के लिए ६ मई १९६१ को संसद् के इन दोनों सदनों का एक संयुक्त अधिवेशन आमंत्रित किया इस ऐतिहासिक अधिवेशन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दहेज माँगने अथवा देने और लेने पर रोक लगाने व दण्ड देने का विधेयक स्वीकार कर लिया गया । संयुक्त अधिवेशन ने निर्णय दिया कि विवाह के अवसर पर दिए गए उपहार दहेज नहीं समझे जायेंगे, परन्तु विवाह करते समय माँगे गए उपहारों पर यह बात लागू नहीं होगी । दूसरे शब्दों में इतना उपहार देना ही होगा, अथवा अमुक - अमुक सामान देना है, इस प्रकार की कोई शर्त विवाह तय करते समय नहीं रखी जा सकेगी और यदि रखी गई तो दंडनीय होगी । इस कानून का उल्लंघन करते हुए जो कुछ भी दहेज दिया जायेगा वह सभी पत्नी की सम्पत्ति मानी जायेगी और पत्नी को या उसके उत्तराधिकारी को प्राप्त होगी । इस विधेयक को २२ मई १९६१ को राष्ट्रपति की स्वीकृति भी प्राप्त हो गई और इस प्रकार यह विधेयक अब कानून के रूप में १ जुलाई १९६१ से लागू हो गया है । इस अधिनियम में १० धाराएं हैं । निम्न धाराएं अधिक उल्लेखनीय हैं :-

धारा ३ के अनुसार यदि कोई व्यक्ति दहेज देता और लेता है या देने-

लेने में मदद करता है तो उसे ६ माह का कारावास और पांच हज़ार रुपये तक जुर्माना हो सकता है ।[१]

धारा ४ के अनुसार यदि वर या कन्या के माता-पिता या संरक्षक से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में कोई व्यक्ति दहेज मांगता है तो उसे भी उपरोक्त दण्ड दिया जा सकता है ।[२]

दहेज लेने-देने से सम्बन्धित किसी भी प्रकार का समझौता कानून के विरुद्ध होगा ।[३]

धारा ६ के अन्तर्गत दहेज के उद्देश्य को भी निश्चित कर दिया गया है । दहेज का उद्देश्य केवल विवाह करने वाली कन्या के लाभ के लिए होगा । यदि कन्या के अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति विवाह के पहले दहेज स्वीकार करता है तो उसे यह दहेज विवाहित स्त्री को विवाह के एक साल के अन्दर दे देना पड़ेगा । यदि यह दहेज विवाह के समय या विवाह के बाद लिया गया है, तो उस तिथि से एक वर्ष के अन्दर उसे कन्या को दे देना पड़ेगा । यदि वह कन्या दहेज देने के समय अवयस्क है तो १८ वर्ष की अवस्था तक उसे दे देना होगा । जब तक यह राशि (दहेज) उस कन्या को नहीं दी जाती है, तब तक वह व्यक्ति जिसके पास यह राशि है उसे अपने पास एक प्रन्यास के रूप में ही रख सकता है । इस धन को कन्या को न लौटाने वाले व्यक्ति को भी उपरोक्त दंड दिया जायेगा । कन्या की मृत्यु के बाद उस दहेज के धन पर उसके उत्तराधिकारी का अधिकार होगा ।[४]

धारा ७ के अनुसार न्यायालय इस अधिनियम के अन्तर्गत होने वाले अपराधों पर तभी विचार करेगी जबकि (क) इस सम्बन्ध में कोई लिखित याचना की जाए (ख) यह याचना किसी प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के कोर्ट में की जाए तथा (ग) दहेज लेने-देने के एक वर्ष के अन्दर ही यह याचना कर दी जाए ।[५]

---

1. Section 3.
2. Section 4.
3. Section 5.
4. Section 6.
5. Section 7.

भाग २—उत्तराधिकार तथा विभाजन सम्बन्धी अधिनियम

उत्तराधिकार तथा विभाजन के सम्बन्ध में हिन्दू, भारत के विभिन्न भागों में, विभिन्न वैधानिक नियमों द्वारा निर्देशित होते रहे हैं। परन्तु इनमें से दो सम्प्रदाय जिनके संदर्भ में वर्तमान कानून निर्मित किए गए हैं सदैव से प्रमुख रहे हैं। यह दो सम्प्रदाय हैं मिताक्षरा तथा दायभाग। दायभाग का प्रचलन बंगाल में, तथा भारत के अन्य भाग में मिताक्षरा का प्राबल्य रहा है। इन दोनों में मिताक्षरा अधिक प्राचीन है।

मिताक्षरा याज्ञवल्क्य स्मृति पर लिखी गई विज्ञानेश्वर की टीका है। इसका प्रणयन संभवत: ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अथवा बारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ।[१] दायभाग के रचयिता थे जीमूत वाहन। इसका रचनाकाल बारहवीं शताब्दी माना गया है। दोनों सम्प्रदायों ने सम्पत्ति का उत्तराधिकार सम्बन्धी नियमों का स्पष्टीकरण किया है, परन्तु दोनों में अन्तर है। मिताक्षरा ने जन्म के अधिकार को माना है। अर्थात् पुत्र जन्मते ही पिता की सम्पत्ति का भागी होता है अत: पुत्र पिता के जीवन-काल में भी सम्पत्ति का विभाजन कर अपना भाग ले सकता है। अत: पिता का सम्पत्ति पर एकाधिक अधिकार न होकर सीमित अधिकार है। इसी कारण मिताक्षरा के सिद्धान्त को "जन्म स्वत्ववाद" के नाम से पुकारा जाता है।[२]

दूसरी ओर दायभाग के अनुसार सम्पत्ति का उत्तराधिकार अन्तिम उत्तराधिकारी की मृत्यु के बाद प्राप्त होता है। अर्थात् पुत्र पिता के जीवन-काल में उसकी सम्पत्ति पर अधिकार नहीं जमा सकता। दूसरे शब्दों में पूर्व स्वामी की मृत्यु, पतित या सन्यासी हो जाने के उपरान्त ही किसी अन्य में स्वामित्व उत्पन्न होता है।[३]

---

1. Sarkar, U.C. - Epochs in Hindu Legal History, p. 183.

२. काणे — धर्मशास्त्र का इतिहास (द्वितीय भाग), पृ० ८३६

३. वही, पृ० ८३६

इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त को "उपरम-स्वत्ववाद" (मृत्यु के उपरान्त ही स्वामित्व की उत्पत्ति के सिद्धान्त) की संज्ञा मिली है।[१]

भारतरत्न-श्री काणे ने दोनों सम्प्रदायों के मध्य मुख्य भेद इस प्रकार समझाया है।[२]

(१) दायभाग जन्मस्वत्ववाद नहीं स्वीकार करता, किन्तु मिताक्षरा ने इसे स्वीकार किया है।

(२) दायभाग का कथन है कि दाय का उत्तराधिकारी तथा उत्तराधिकार का क्रम धार्मिक पात्रता या क्षमता के सिद्धान्त से निश्चित होता है, किन्तु मिताक्षरा सम्प्रदाय का कथन है कि इस विषय में रक्त-सम्बन्धी ही नियमन उपस्थित करता है।

(३) दायभाग मानता है कि संयुक्त परिवार (भाई या चचेरे भाई आदि) के सदस्य अपने भाग (अंश) प्रायः पृथकभाव से रखते हैं और नाप जोख या सीमा-निर्धारण द्वारा किए गए विभाजन के बिना भी उनका विनिमय कर सकते हैं।

(४) दायभाग की यह मान्यता है कि संयुक्त परिवार में भी पति की मृत्यु पर, संतति-हीन होने पर भी विधवा अपने पति के अंश(भाग) का अधिकार पाती है, किन्तु मिताक्षरा में यह अधिकार उसे नहीं प्राप्त है।

जहाँ तक सम्पत्ति के उत्तराधिकार में स्त्रियों के भाग का प्रश्न है, मिताक्षरा तथा दायभाग के सिद्धान्त पृथक पृथक हैं। उत्तराधिकार के प्रश्न को दो शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। प्रथम तो पुरुषों की सम्पत्ति का उत्तराधिकार तथा द्वितीय स्त्री की सम्पत्ति का उत्तराधिकार।

पुरुष की सम्पत्ति के उत्तराधिकार के विषय में मतभेद रहा है। कई शताब्दियों के संघर्ष के बाद ही मृत व्यक्ति की विधवा का उत्तराधिकार मान्य हो सका है। पहले के विधिवेत्ताओं ने पत्नी का उत्तराधिकार नहीं माना था। बौधायन ने भी पत्नी को उत्तराधिकारी के रूप में सम्मिलित नहीं किया है। वसिष्ठ ने स्त्रियों को उत्तराधिकारी नहीं कहा है।[३] मिताक्षरा के अनुसार पुत्रहीन मृत

---

१. काणे --(द्वितीय भाग), पृ० ६०६

व्यक्ति का धन उसके भाइयों को, तत्पश्चात् माता-पिता और अंत में उनके न रहने पर बड़ी पत्नी को मिलता है ।[१] परन्तु एक स्थल पर मिताक्षरा लिखते हैं कि यदि विधवा सदाचारिणी है तो वह अपने पुत्रहीन मृतपति की सम्पूर्ण सम्पत्ति की अधिकारिणी है ।[२] यदि पुत्रहीन पुरुष (पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र कोई भी न हो) मर जाता है तो उसका उत्तराधिकार का क्रम याज्ञवल्क्य ने इस प्रकार दिया है, "पत्नी, पुत्रियाँ (एवं उनकी पुत्र) माता-पिता, भाई, उनके पुत्र, गोत्रज, बन्धु (सपिण्ड सम्बन्धी लोग), शिष्य एवं सहपाठी -इनमें से क्रम से (एक के न रहने पर उसके बाद वाला) मृत व्यक्ति की (यदि कोई पुत्र न हो तो) सम्पत्ति पाता है ।[३] याज्ञवल्क्य ने संयुक्त सम्पत्ति के विभाजन के समय भी अन्य पुत्रों के साथ पत्नी एवं माता को दायांश दिया है ।

पत्नी के समान ही पुत्रियों के उत्तराधिकार में भाग मिलने पर भी मतभेद रहा है । विधवा के समान उनको भी उत्तराधिकार के लिए संघर्ष करना पड़ा है । गौतम , वशिष्ठ और बौधायन ने पुत्रियों को उत्तराधिकारी में नहीं रखा है । याज्ञवल्क्य ने विधवा के उपरोक्त पुत्री का स्थान माना है । इसी प्रकार

---

१. स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य भ्रातृगामि द्रव्यं तदभावे पितरौ हरेयातां ज्येष्ठा वा पत्नी

शंख-मिताक्षरा, याज्ञ० २।१३५

२. तस्माद पुत्रस्य स्वर्यातस्य विभक्तस्या संसृष्टिनो धनं परिणीता स्त्री संयता सकलमेव गृह्णातीति स्थितम् ।

-मिताक्षरा (याज्ञ० २।१३५)

३. पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा । तत्सुता गोत्रजा बन्धु-शिष्य सब्रह्मचारिणः।एषामभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तरः। स्वर्यातस्य ह्य पुत्रस्य सर्व वर्णेष्वयं विधिः ।।

-याज्ञ० २।१३५-१३६

नारद[1] ने पुत्र के बाद पुत्री को उत्तराधिकारी माना है क्योंकि पुत्री भी पुत्र के ही समान मृत पिता के वंश को चलाती है । दायभाग[2] ने विवाहित पुत्री से अविवाहित को अधिक मान्यता दी है । दायभाग के समान मिताक्षरा ने भी अविवाहित कन्या को विवाहित की तुलना में प्राथमिकता दी है ।

भारत के विभिन्न उच्च न्यायालयों ने (बम्बई को छोड़कर) पुत्री का अधिकार विधवा के ही समान माना है । अर्थात वह केवल सम्पत्ति का उपभोग कर सकती है, सम्पत्ति के विघटन का उसे अधिकार नहीं है । मृत्यु के पश्चात् भी यह सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारियों को मिलती है । परन्तु बम्बई के उच्च न्यायालय ने कन्या को उत्तराधिकार प्राप्त होने पर पिता के धन पर पूर्ण स्वामित्व माना है । उसकी मृत्यु के बाद यह सम्पत्ति उसके ही उत्तराधिकारियों को प्राप्त होती है ।[3]

पत्नी और पुत्री के समान मध्यकालीन निबन्धकारों ने माता-पिता के स्थान के विषय में भी चर्चा की है । इस विषय पर भी मतैक्य नहीं है । मनु लिखते हैं कि जब पुत्र संतानहीन मर जाता है तो माता को धन मिलता है । मिताक्षरा के अनुसार पुत्र की सम्पत्ति का कुछ अंश माता को मिलता है परन्तु उसकी मृत्यु के बाद पुत्र के उत्तराधिकारी पाते हैं, माता के नहीं । यहां माता में विमाता, सौतेले पुत्र की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी नहीं मानी गई है ।[4]

"स्त्री धन" अर्थात् स्त्रियों की सम्पत्ति पर भी विचार हुआ है । स्त्रीधन का शाब्दिक अर्थ है" स्त्री की सम्पत्ति"[5] परन्तु प्राचीन लेखकों और स्मृतिकारों

---

१. दायभाग, ५०

२. दायभाग ११।२।४, पृ० १७५

३. काणे (द्वितीय भाग), पृ० ६१४

४. वही, पृ० ६१७

५. वही, पृ० ६३८ तथा Mulla Hindu Law P. 108.

उत्तराधिकार तथा विभाजन सम्बन्धी उपरोक्त मान्यताएं हिन्दू विधान का प्रमुख अंग रही हैं। वर्तमान कानूनों का निर्माण इन्हीं मान्यताओं के संदर्भ में किया गया है, यद्यपि समय के साथ साथ परिवर्तित समाज और नारी के अधिकारों की सुरक्षा की दृष्टि से इन कानूनों को अधिक विस्तृत तथा समयोपयोगी बना दिया गया है।

बीसवीं शताब्दी में उत्तराधिकार सम्बन्धी हिन्दू विधान में संशोधन तथा संहिताकरण का कार्य १९१४ से आरंभ हुआ। परन्तु इन आरंभिक प्रयासों का क्षेत्र अत्यन्त सीमित था तथा ये अधिनियम, जोकि विभिन्न राज्यों द्वारा पृथक पृथक पारित किए गए थे नारियों को कोई भी विशेषाधिकार नहीं देते हैं।

१९२९ में पारित "हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम" अवश्य पुरातन हिन्दू विधान में कुछ परिवर्तन करता है। इस अधिनियम ने उत्तराधिकारियों की सूची में कुछ नवीन स्त्री उत्तराधिकारियों को भी रखा है यथा पुत्र की पुत्री, पुत्री की पुत्री, बहन तथा बहन का पुत्र।[1] यह अधिनियम उन हिन्दुओं पर लागू होता है जो मिताक्षरा द्वारा निर्देशित होते हैं।

वास्तव में उत्तराधिकार सम्बन्धी हिन्दू विधान का संशोधन व उसमें स्त्रियों के भाग से सम्बन्धित कानूनों का निर्माण १९३७ में "हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार" अधिनियम के पारित होने के साथ प्रारंभ हुआ।

हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम, १९३७

हिन्दू विधवाओं का मृतपति की सम्पत्ति में अधिकार सम्बन्धी नियोंग्यता को दूर करने की दृष्टि से १९३७ में सबसे महत्वपूर्ण अधिनियम पारित हुआ। इस अधिनियम का उद्देश्य था हिन्दुओं के विभिन्न सम्प्रदायों में मान्य उत्तराधिकार सम्बन्धी मान्यताओं को इस प्रकार संशोधित करना जिससे हिन्दू

---

1. Desai, Neera - Women in Modern India, p. 185.

स्त्रियों को अधिकाधिक अधिकार प्रदान किए जा सकें। इस विधेयक के प्रणेता थे श्री जी०वी० देशमुख। श्री देशमुख ने असेम्बली के सम्मुख उत्तराधिकार सम्बन्धी हिन्दू विधान की आलोचना करते हुए कहा कि विधवा के लिए मृतपति की सम्पत्ति में सीमित व अल्पभागकी धारणा भारत में ब्रिटिश शासकों के साथ प्रविष्ट हुई। अपने विचारों की पुष्टि करने की दृष्टि से उन्होंने कहा कि हिन्दू विधान में यह सिद्धान्त इतना अपरिचित है कि उसके लिए कोई संस्कृत शब्द निर्मित नहीं हुआ है।[1] रूढ़िवादी हिन्दुओं के इस तर्क को कि स्त्री चूंकि जीवन पर्यन्त किसी न किसी (पुरुष) के अधीन रहती है, अत: उसे सम्पत्ति के पृथक अधिकार की आवश्यकता नहीं है, श्री देशमुख का उत्तर था कि इसी तर्क को यदि सम्पूर्ण देश पर लागू करें तो भारत हजारों वर्षों तक अधीन रहा है, अत: किसी भारतीय को सम्पत्ति रखने का अधिकार नहीं होना चाहिए।[2]

श्री देशमुख के मौलिक विधेयक में सेलेक्ट समिति ने कुछ संशोधन भी किए। इन संशोधनों पर विचार व्यक्त करते हुए श्री देशमुख ने कहा कि यद्यपि इस विधेयक के द्वारा स्त्रियों को उतना अधिक अधिकार प्राप्त नहीं हो सका है, जितना मूल हिन्दू विधान के अन्तर्गत उन्हें प्राप्त था, तथापि उनके आर्थिक अधिकारों की रक्षा विभाजन के सम्बन्ध में की गई है।[3] श्री बैजनाथ बाजोरिया स्त्रियों को विभाजन में असीमित अधिकार देने के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि उनके मत में इसके कारण सम्बन्धी लोग अनुचित प्रभाव डालकर उसे इससे वंचित भी कर सकते हैं।[4] सर निपेन्द्र सरकार के मत में नारियों की स्थिति उच्च करने के लिए सरकार सर्वशक्तिशाली नहीं कही जा सकती है, क्योंकि उसे जनमत तथा अन्य विरोधियों

---

1. Proceedings of the Legislative Assembly, Vol. I, 1937, p.488.
2. The Indian Annual Register, Vol. I, 1937 (Jan. to June), p. 101.
3. Proceedings of the Legislative Assembly Vol. I, 1937, pp. 496-97.
4. Ibid, p. 500.

के विचारों का भी ध्यान रखना पड़ता है ।[1] उन्होंने पुन: कहा कि हिन्दू विधान ने पुत्रियों के साथ न्याय संगत व्यवहार नहीं किया है । यदि उसे पुत्रों के बराबर अधिकार न दिए जाएं तो भी उसकी स्थिति सुधारने के योग्य है ।[2]

यह अधिनियम १४ अप्रैल १६३७ को पारित किया गया था तथा इसके अन्तर्गत मूल विधान में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए, विशेषकर मिताक्षरा विधान में । नारी के आर्थिक अधिकारों की रक्षा के हेतु इस अधिनियम के अन्तर्गत दायभाग और मिताक्षरा दोनों प्रकार के मतों को मानने वालों को एक सा अधिकार प्रदान किया गया है । अधिनियम के अन्तर्गत विधवा स्त्री को निम्न अधिकार प्रदान किए गए हैं :-

(१) दायभाग से नियंत्रित परिवार का यदि कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति के बारे में बिना निर्णय किए हुए मर गया हो तो उसकी विधवा स्त्री को लड़के के बराबर हिस्सा मिलेगा ।

(२) अन्य नियमों से नियंत्रित परिवारों में ऐसी स्थिति में पति की व्यक्तिगत सम्पत्ति में विधवा या विधवायें अपने जीवित लड़कों के समान भागीदार होंगी ।

(३) यदि कोई लड़का पिता से पहले मर गया है तो उसकी विधवा को अपने पति के हिस्से का उत्तराधिकार लड़कों और पौत्रों के साथ मिल जाता है ।

(४) यदि एक हिन्दू संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में अपना हिस्सा छोड़कर मर जाता है तो उसकी विधवा स्त्री को उसका उत्तराधिकार मिल जाता है, पर यह उत्तराधिकार सीमित है । वह विधवा केवल अपने जीवनकाल में ही इस सम्पत्ति का उपभोग कर सकती है, न किसी को दे सकती है और न बेच सकती है । परन्तु धार्मिक कर्त्तव्यों को निभाने के लिए ये दोनों कार्य भी किए जा सकते हैं ।

इस प्रकार अधिनियम ने विधवाओं को उत्तराधिकार सम्बन्धी नवीन

---

1. Ibid, p. 501.
2. Ibid, p. 503.

अधिकार दिए ।[१]

भूमि सम्बन्धी सम्पत्ति के विषय में नियम बनाने का अधिकार केन्द्रीय व्यवस्थापिका के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत नहीं था, अतः इस प्रकार की सम्पत्ति के स्वामित्व के विषय में इस अधिनियम में कोई विधान नहीं है । इस विषय में प्रान्तीय सरकारों ने अपने अपने राज्यों में पृथक पृथक कानून पारित किए हैं जैसे युनाइटेड प्राविन्स हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार (खेतिहर भूमि पर विस्तार) अधिनियम १९४२, उड़ीसा, आसाम, मद्रास, बिहार, बम्बई ने क्रमशः १९४४, १९४३, १९४७, १९४८ तथा १९४९ में इस विषय में अधिनियम पारित किए ।

१९३७ में पारित इस अधिनियम का अपना विशिष्ठ महत्व है । श्री मेन के अनुसार इस अधिनियम ने मिताक्षरा द्वारा निर्देशित विधवा स्त्री को संयुक्त परिवार की विभाजित सम्पत्ति में मृतपति के भाग को प्रदान किया है तथा अपने पुत्र के साथ उसकी पृथक सम्पत्ति के उत्तराधिकार का भी अधिकार दिया है । इसी प्रकार दायभाग के द्वारा निर्देशित विधवा को प्रत्येक परिस्थिति में पुत्रों के साथ सम्पत्ति सम्पत्ति के उत्तराधिकार का अधिकार प्रदान किया है ।[२]

इसके अतिरिक्त स्वउपार्जित व्यक्तिगत सम्पत्ति में पत्नी, पुत्री तथा माता को भी उत्तराधिकारियों की श्रेणी में रखा गया है ।[३]

इसी प्रकार इस अधिनियम ने प्रत्येक परिस्थिति में विधवा को उत्तराधिकारी माना है । बम्बई उच्च न्यायालय ने एक निर्णय में घोषित किया कि अधिनियम के तीसरे भाग के द्वारा हिन्दू विधान की यह मान्यता कि पति-हीन स्त्री सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी नहीं है, निर्मूल घोषित कर दी गई ।[४]

---

1. Jodabai V. Purenmal, A.I.R. (1944) Nag. 243-244.
2. Aiyar, Chandra Shekhar, - Mayne's Treatise on Hindu Law and Usage, p. 603.
3. Mulla - D.F. - Principles of Hindu Law, pp. 126-28.
4. I.L.R. 1941 Bombay 438, 1941, Bombay, 204.

इस प्रकार इस अधिनियम ने प्रथम बार न केवल स्त्री के सम्पत्ति के उत्तराधिकार को वैध व कानूनी रूप प्रदान किया है अपितु परित्यक्ता नारी को भी पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी माना है। यह अधिनियम नारी के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों की रक्षा करती है।

<u>हिन्दू स्त्रियों का पृथक निवास-स्थल तथा भरण-पोषण का अधिकार अधिनियम, १९४६</u>

हिन्दू विवाहित स्त्रियों को कुछ विशेष परिस्थितियों में पृथक निवास स्थल तथा भरण-पोषण का अधिकार प्रदान करने के उद्देश्य से एक विधेयक १२ फरवरी १९४६ को प्रस्तुत किया गया।[1] विधेयक के प्रस्तुत करता थे श्री जी०वी० देशमुख। विधेयक के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुये श्री देशमुख ने कहा कि इस विधेयक के द्वारा उन्होंने हिन्दू समाज में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं किया है, अपितु हिन्दू विधान में स्वीकृति प्राप्त परम्परागत सिद्धान्त को और भी अधिक स्पष्ट और व्यापक बनाने की चेष्टा की है।[2]

२ अप्रैल को विधेयक असेम्बली के समक्ष विचारार्थ रखा गया। असेम्बली में विधेयक के विरोधियों की संख्या न्यून होने के कारण अधिक वाद विवाद नहीं हो सका तथा विधेयक सर्वसम्मति से पारित कर दिया गया।[3] विरोधियों में श्री पी०बी० गोल का तर्क था कि चूँकि 'हिन्दू कानून समिति' इस विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए नियुक्त की जा चुकी है, अतः विधेयक को स्थगित कर देना चाहिए।[4] श्रीमती अम्मू स्वामीनाथन् ने विधेयक का पक्ष लेते हुए यहाँ

---

1. Proceedings of the Legislative Assembly, 1946, Vol. II, p. 872.
2. Ibid, Vol. V, p. 3386.
3. Ibid, p. 3416.
4. Ibid, pp.3395-96.

तक कहा कि विधेयक में पृथक भरण-पोषण के अधिकार की कसौटी पत्नी के लिए पतिव्रता होना ही नहीं होनी चाहिए ।[1]

इस अधिनियम के द्वारा हिन्दू पत्नी को, जब तक वह पतिव्रता रहती है तथा हिन्दू धर्म का त्याग नहीं करती, निम्नांकित आधारों पर पति से पृथक निवास रखना तथा भरण-पोषण का अधिकार प्राप्त है :-

(१) यदि वह किसी भयानक रोग से ग्रस्त हो,

(२) यदि उसके निर्दयतापूर्ण व्यवहार के कारण पत्नी का जीवन सुरक्षित न हो,

(३) यदि वह दूसरा विवाह कर लेता है,

(४) यदि वह हिन्दू धर्म का त्याग कर अन्य धर्मावलम्बी हो गया हो,

(५) यदि वह अपने घर में किसी वेश्या को पालता है अथवा उसके साथ रहता है,

(६) अन्य न्याय संगत कारणों में ।

उपरोक्त किसी भी आधार पर पत्नी पृथक रहकर भरण-पोषण की मांग कर सकती है । और अधिनियम के अंतर्गत पति यह मांग पूरी करने पर बाध्य है । परन्तु भरण-पोषण के लिए धनराशि क्या व कितनी दी जाए, इसका निर्णय न्यायालय पति की सामाजिक स्थिति तथा अन्य आर्थिक साधनों को देखते हुए करेगा ।

इस प्रकार इस अधिनियम के माध्यम से हिन्दू पत्नी के अधिकारों की रक्षा की गई है । अब हिन्दू स्त्री चरित्रहीन तथा अत्याचारी पति के नेतृत्व में रहने पर बाध्य नहीं है । हिन्दू विवाह अधिनियम ने पहले ही उसे ऐसी परिस्थिति में विवाह-विच्छेद का अधिकार प्रदान किया है, परन्तु यह अधिनियम बिना विवाह-विच्छेद किए ही स्त्री को पत्नी के रूप में उसके परम्परागत

---

1. Ibid, pp. 3395-96.

अधिकारों को कानूनी मान्यता देता है। पत्नी के भरण-पोषण का यह अधिकार कोई नवीन विचार नहीं है। जैसा कि मद्रास उच्च न्यायालय ने घोषित किया था, कि हिन्दू विधान ने न केवल विशेष परिस्थितियों में पुरुष को दूसरा विवाह करने की अनुमति दी है बल्कि प्रथमपत्नी के जीवन-यापन के लिए भरपूर व्यवस्था का विधान बनाकर दुर्भाग्यशाली स्त्री के साथ न्यायोचित व्यवहार किया है। यहां तक कि चरित्रहीन स्त्री को भी इस प्रकार का अधिकार प्रदान किया गया है।[१]

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, १९५६

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम हिन्दू कोड बिल का एक अभिन्न अंग है। इस अधिनियम के माध्यम से उन दोषों को दूर करने का तथा हिन्दू स्त्रियों को कुछ अन्य आर्थिक अधिकार प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है, जो हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम" १९३७ के अन्तर्गत नहीं प्रदान किए गए थे। इस अधिनियम (हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम) के पारित होने से पूर्व उत्तराधिकार के सम्बन्ध में सुधार की दृष्टि से हुए अन्य प्रयास भी उल्लेखनीय हैं।

१९३७ के अधिनियम के अन्तर्गत पुत्री को उत्तराधिकार में भाग नहीं दिया गया था। इस दोष को दूर करने के लिए श्री अखिलचन्द्र दत्त ने १८ फरवरी १९३९ को" हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम" संशोधित करने की दृष्टि से एक विधेयक प्रस्तुत किया। विधेयक के पक्ष तथा विपक्ष में जनमत संग्रह किया गया। श्री दत्त विधेयक को सेलेक्ट समिति में भेजना चाहते थे, परन्तु सरकार इस विषय में विशेषज्ञों की राय लेना चाहती थी।

तदनुसार २५ फरवरी १९४१ को श्री राव के नेतृत्व में" हिन्दू कानून समिति" का निर्माण किया गया। समिति ने दो विधेयकों की रूपरेखा निर्मित

---

1. 1950, Madras 713.

की । एक विवाह पर तथा दूसरी उत्तराधिकार के सम्बन्ध में । विवाह सम्बन्धी, समिति की कार्यवाही तथा सुझावों का विवरण "हिन्दू विवाह अधिनियम, १९५५" के अन्तर्गत दिया जा चुका है । जहाँ तक उत्तराधिकार का प्रश्न है, समिति ने एक विधेयक की रूपरेखा अवश्य प्रस्तुत की, परन्तु इस विषय में तत्काल ही अधिनियम को संशोधित करने के पक्ष में नहीं थी ।[१] समिति का विचार था कि अधिनियम को अभी ज्यों का त्यों चलने दिया जाए तथा समय आने पर शीघ्र से शीघ्र इस विषय पर एक वृहत् कानून का निर्माण किया जाए जो सभी को मान्य हो ।[२]

राव समिति ने हिन्दू कोड की एक रूपरेखा भी निर्मित की जिसे ११ अप्रैल १९४७ को कानून सदस्य जे०एन० मंडल ने केन्द्रीय असेम्बली के समक्ष प्रस्तुत किया । डा० अम्बेदकर ने विधेयक को सेलेक्ट समिति में भेजने की माँग की तथा विधेयक के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि यह विधेयक "हिन्दू विधान" जो कि उच्च न्यायालयों तथा परिषदों के निर्णयों के रूप में पृथक पृथक बिखरा हुआ है को एक स्थान पर एकत्रित करके संहिताबद्ध करने के उद्देश्य से रखा गया है ।[३] राव समिति-द्वारा निर्मित इस विधेयक में दायभाग सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को अधिक मान्यता दी गई थी । मिताक्षरा का इसमें कोई स्थान नहीं था ।[४] इस विधेयक की विशेषता यह थी कि इसने प्रथम बार हिन्दू परिवार में सम्पत्ति के उत्तराधिकार में पुत्री का भी एक भाग निश्चित किया था । पत्नी के रूप में यह अधिकार हिन्दू स्त्री को १९३७ के "हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत प्राप्त हो चुके थे । इसके अतिरिक्त इस विधेयक में दायभाग तथा मिताक्षरा दोनों सम्प्रदायों द्वारा प्रतिपादित स्त्री उत्तराधिकारियों की

---

1. Report of the Hindu Law Committee (Simla) 1941, p. 24.
2. Ibid, p. 26.
3. Proceedings of the Constituent Assembly of India (Legislature 1948, Vol. V, p. 3629.
4. Ibid.

सूची में वृद्धि की गई थी ।[१] न केवल वृद्धि ही की गई थी, अपितु विधेयक ने उत्तराधिकारी स्त्री की उन निर्योग्यताओं को भी दूर करने का प्रयत्न किया था जो दायभाग तथा मिताक्षरा सम्प्रदायों के अन्तर्गत विवाहित तथा अविवाहित सन्तानहीन तथा सन्तानयुक्त, धनी तथा निर्धन आदि आधारों पर की गई थी ।[२] इस अधिनियम के अन्तर्गत उपरोक्त आधारों पर कोई भेदभाव नहीं रखा गया है । कानून सदस्य श्री मंडल ने परम्परागत हिन्दू विधान में उत्तराधिकार के सम्बन्ध में एक अन्य परिवर्तन की ओर भी निर्देशित किया है । उनके अनुसार विधेयक ने माता को, पिता की तुलना में प्राथमिकता दी है । दायभाग के अन्तर्गत पिता को प्रमुखता प्राप्त थी ।[३] विधेयक ने अन्य अनेक सुझाव रखे जो स्त्री वर्ग के पक्ष में थे ।

इस विधेयक की कठोर आलोचना होना सर्वथा स्वाभाविक ही था । श्री आर० के० चौधरी के मत में इस विधेयक ने समाज के केवल एक ही अंग (स्त्री वर्ग) का ध्यान रखा है । उन्होंने इस कारण विधेयक को "हिन्दू स्त्रियों की संहिता" का नाम दिया ।[४] श्रीमती हंसा मेहता का मत था कि पुत्र और पुत्री में भेदभाव न करने के लिए आवश्यक है कि पिता की सम्पत्ति में पुत्र के बराबर अधिकार पुत्री को भी प्राप्त हो । इस प्रकार माता की सम्पत्ति में भी दोनों समान रूप से उत्तराधिकारी हों ।[५] तत्पश्चात् इस विधेयक को सेलेक्ट समिति के विचारार्थ रखा गया । समिति ने विधेयक में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए । अनेक परिवर्तनों में श्रीमती हंसा मेहता ने माता तथा पिता दोनों की सम्पत्ति में पुत्र और पुत्री को बराबर का अधिकार प्रदान किया था ।[६]

---

1. Ibid, p. 3630.
2. Ibid, p. 3630.
3. Ibid.
4. Ibid, pp. 3648-49.
5. Ibid, p. 3643.
6. Ibid, 1949, Vol. II, Pt. II, pp. 828-29.

विधेयक पुन: लोकसभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया । विधेयक के विरोधियों ने इसकी कठोर आलोचना की । अंत में प्रधानमंत्री के आश्वासन के अनुसार विभिन्न वर्गों तथा विचारों के प्रमुख व्यक्तियों के एक सम्मेलन का आयोजन किया गया । जनता के प्रत्येक वर्ग की राय के अनुसार सरकार ने विधेयक में कुछ परिवर्तन किए । परन्तु दुर्भाग्यवश संसद् के विघटन के कारण विधेयक पारित न हो सका ।

१९५२ में स्वतंत्र भारत का प्रथम सार्वजनिक निर्वाचन हुआ । नवीन संसद् में २२ दिसम्बर १९५४ को "हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम" विधेयक राज-सभा में पेश किया गया । विधेयक के ऊपर पुन: जनमत संग्रह किया गया । शीघ्र ही दोनों सभाओं से पारित होकर विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति से "हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम" बन गया ।

१७ जून १९५६ को लागू यह अधिनियम हिन्दू उत्तराधिकार के सम्बन्ध में विशद व्याख्या करता है । अधिनियम जम्मू और काश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण भारत पर लागू होता है ।[१]

अधिनियम जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, हिन्दुओं पर ही लागू होता है । अधिनियम की प्रस्तावना में ही "हिन्दू" शब्द की विशद् व्याख्या प्रस्तुत की गई है । हिन्दुओं में मुसलमान, ईसाई, पारसी तथा यहूदी को छोड़कर अन्य सभी धर्मावलम्बी सम्मिलित हैं । इस प्रकार जैन, बौद्ध, सिक्ख धर्मावलम्बी तथा आर्य समाज और ब्रह्म समाज के अनुयायी भी अधिनियम के द्वारा निर्देशित होते हैं ।[२] धारा २ हिन्दू, बौद्ध, जैन और सिक्ख की श्रेणी में आने वालों की व्याख्या करती है ।

१९५६ का हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम भारतीय नारी के लिए वरदान स्वरूप है । इसके द्वारा नारी के आर्थिक अधिकारों की सुरक्षा प्रदान की गई है । वास्तव में इसका उद्देश्य था एक ही झटके में हिन्दू स्त्रियों को (सीमित सम्पत्ति के अधिकारों के स्थान पर) उन्हें सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार देना[३]। इस अधिनियम के माध्यम से न केवल परम्परागत हिन्दू उत्तराधिकार सम्बन्धी

---

1. The Hindu Succession Act, 1956 - Preamble, ~~Article 2~~
2. The Hindu Succession Act, 1956, Preamble, Article 2.
3. Commentaries on Hindu Succession Act, 1956,

विधान को संहिताबद्ध करने की चेष्टा की गई है, अपितु अधिनियम ने मूल हिन्दू विधान में महान् परिवर्तन भी किए । अधिनियम की धारा १४ के अनुसार हिन्दू स्त्री को अपनी अधिकृत सम्पत्ति पर, चाहे वह इस अधिनियम के पारित होने के पूर्व अथवा बाद में अधिकृत की गई हो, पूर्ण स्वामित्व है । इस प्रकार यह धारा मूल हिन्दू कानून पर कुठाराघात करती है । परम्परागत हिन्दू विधान के अन्तर्गत स्त्री को सम्पत्ति पर पूर्ण स्वामित्व प्राप्त नहीं था । अर्थात् वह केवल उसका उपभोग कर सकती थी, उसे बेचने व देने का अधिकार हिन्दू स्त्री को प्राप्त नहीं था । धारा १४ के अन्तर्गत प्राप्त की गई चल व अचल सम्पत्ति, जो स्त्री द्वारा अधिकृत तथा प्राप्त की गई है — चाहे वह सम्पत्ति उत्तराधिकार द्वारा मिली हो, चाहे विभाजन के द्वारा, अथवा उपहारस्वरूप, अथवा उसके स्वयं के परिश्रम का फल हो, अथवा उसने खरीदी हो, तथा अन्य सभी वस्तुयें जो स्त्रीधन के अन्तर्गत आती हों, सम्मिलित हैं ।[1] इस प्रकार हिन्दू स्त्री को अपनी सम्पत्ति पर पूर्ण स्वामित्व प्राप्त है । एक प्रकार से यह अनुच्छेद स्त्री के अधिकारों की घोषणा मात्र है, क्योंकि हिन्दू विधान में उसे यह अधिकार प्राप्त था ।[2]

धारा १४ द्वारा स्त्री को उत्तराधिकार तथा विभाजन द्वारा प्राप्त सम्पत्ति पर पूर्ण स्वामित्व की घोषणा की गई है, परन्तु यह अधिकार इसी धारा के दूसरे उप विभाग द्वारा सीमित भी कर दिया गया है । इसके अन्तर्गत पूर्ण स्वामित्व में पूर्वजों द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त अथवा विभाजन द्वारा मिली सम्पत्ति सम्मिलित नहीं है । मूल अधिनियम में स्त्री को उस पर अधिकार दिया गया है, परन्तु उसको स्वामित्व को हस्तान्तरित करने के सम्बन्ध में वही बंधन है, जो कि वैसी ही परिस्थिति में किसी पुरुष उत्तराधिकारी के लिए रखे गए हैं । संक्षेप में इस अधिनियम ने तीन प्रकार की सम्पत्ति को माना है :-

(१) स्त्री की सम्पत्ति, जो कि हिन्दू विधवा की सम्पत्ति के तुल्य है ।

---

1. Hindu Succession Act, 1956, Article 14, Explanation.
2. Dial, Rameshwar, Commentaries on Hindu Succession Act, p. 66.

(२) ऐसी सम्पत्ति जिस पर उसको पूर्ण स्वामित्व प्राप्त है, तथा

(३) ऐसी सम्पत्ति जो कि पुरुष का सम्पत्ति में विभाजन द्वारा उसके अन्य अधिकारी भी हैं ।[1]

इस प्रकार इसका उद्देश्य था कि स्त्री को पुरुष की तुलना में अधिक विस्तृत अधिकार प्राप्त न हो जायें ।[2]

धारा १५ और १६ उत्तराधिकारियों की विशद् व्याख्या प्रस्तुत करती है । धारा १५ (१) के अन्तर्गत उत्तराधिकारियों की एक सूची प्रस्तुत की गई है, जिसमें पांच प्रकार के उत्तराधिकारी वर्णित हैं — पुत्र तथा पुत्रियाँ (इसके अंतर्गत मृत पुत्र और पुत्रियों की सन्तानें भी सम्मिलित हैं । तथा पति, पति के उत्तराधिकारी, माता तथा पिता, पिता के उत्तराधिकारी तथा माता के उत्तराधिकारी धारा १५ (१) (अ) के अनुसार प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त अपनाया गया है । अर्थात् उसके अनुसार मृत पुत्र तथा पुत्रियों की सन्तानें चूंकि अपने पिता और माता का प्रतिनिधित्व करती हैं, अतः उसी प्रकार उत्तराधिकारी हैं, जिस प्रकार उनके माता-पिता । परन्तु इसमें भी सगी सन्तानों को सौतेली सन्तानों की तुलना में प्रश्रय दिया गया है ।

अधिनियम की धारा १६ उत्तराधिकारियों में क्रम का निर्धारण करती है । धारा १६ (१) के अनुसार धारा १५(१) द्वारा निर्धारित प्रथम श्रेणी के उत्तराधिकारियों को अन्य श्रेणियों की तुलना में प्राथमिकता प्राप्त है । अर्थात् जब तक मृत पुत्र या पुत्री के पुत्र, पुत्रियाँ, पति तथा सन्तानें जीवित हैं, तब तक उनका भाग पति तथा उसके उत्तराधिकारी नहीं ले सकते । इस प्रकार पुत्र तथा पुत्रियों को और उनके बाद उनकी सन्तानों को (क्योंकि वह मृत का प्रतिनिधित्व करती हैं (प्रथम स्थान दिया गया है । तत्पश्चात् पति के उत्तराधिकारी आते हैं । इसी प्रकार पति के उत्तराधिकारी के अभाव में माता-पिता का स्थान आता

---

1. Dial, Rameshwar, Commentaries on Hindu Succession Act, p.72.
2. Ibid.

है । माता-पिता के अभाव में उनके उत्तराधिकारी सम्पत्ति के अधिकारी हैं ।

अधिनियम की धारा १७ "मरुमक्कट्टयम तथा "अलियासन्ताना" द्वारा निर्देशित वर्गों के लिए विशेष नियम निर्धारित करती है ।

इस अधिनियम में उत्तराधिकार के सम्बन्ध में कुछ सामान्य अनुच्छेद भी दिए गए हैं, जैसे धारा १८ हिन्दू विधान के एक प्रतिष्ठित नियम को मान्यता प्रदान करता है । इसके अनुसार पूर्ण रक्त का सपिण्ड अर्द्ध रक्त की तुलना में प्राथमिकता प्राप्त करेगा । परन्तु यह नियम सामान्य पूर्वजों के सपिण्डों पर नहीं लागू होता है । प्रिवी परिषद् के एक निर्णय के अनुसार यह नियम मिताक्षरा सम्प्रदाय के अनुयायियों पर लागू होता है ।[1]

एक अन्य नियम के अनुसार जहाँ मृत एक से अधिक विधवाएं छोड़ जाता है, वे सभी सामान्य रूप से उसकी उत्तराधिकारी हैं । इसी प्रकार धारा २० के अनुसार बिना मृत्युलेख लिखे मृत की सन्तान, जो कि उसकी मृत्यु के बाद उत्पन्न हुई हैं, अन्य सन्तानों की भाँति उत्तराधिकारी घोषित की गई हैं ।[2]

हिन्दू विधान में विधवा स्त्री को कुछ विशेष स्थिति में गोद लेने का अधिकार प्रदान किया गया है । यह स्थितियाँ हैं -(१) जबकि पति पुत्रहीन मरा हो तथा (२) यदि पुत्र हो तो वह माता से पहले मर गया हो । प्रथम परिस्थिति के अन्तर्गत वह पति की सम्पत्ति को विधवा के रूप में प्राप्त करती है तथा दूसरी परिस्थिति में पुत्र की उत्तराधिकारिणी के रूप में । दोनों ही रूपों (विधवा और माता) वह अपने भाग को प्राप्त करती है । परन्तु यदि विधवा किसी बालक को गोद लेती है, तो उसका यह अधिकार गोद लिए गए पुत्र के द्वारा खंडित हो जाता है ।

कुछ परिस्थितियों में विधवा स्त्री से गोद लेने का यह अधिकार भी छीन लिया गया है । उदाहरणार्थ यदि विधवा का पुत्र अपनी पत्नी तथा पुत्र को छोड़कर मरता है तो मृत की विधवा माता को गोद लेने का अधिकार नहीं

---

1. Garuddas vs. Laldas (1933) 60.I.A. 189: A.I.R. 1913 P.C. 141.
2. Hindu Succession Act 1956, Article 20.

है। अमरेन्द्र मानसिंह बनाम सनातन सिंह के निर्णय में यह घोषित किया गया कि चूंकि वंश को चलाने के लिए पुत्र अथवा पौत्र और उसकी विधवा जीवित हैं, तो माता के गोद लेने के अधिकार समाप्त हो जाते हैं।[1] इस निर्णय को उच्चतम न्यायालय के गुरुनाथ बनाम कमलाबाई[2] के निर्णय में उद्धृत किया था। इसी प्रकार नागपुर तथा अवध उच्च न्यायालयों ने विधवा पुत्रवधू के मर जाने पर अथवा पुनर्विवाह कर लेने की परिस्थिति में विधवा माता के गोद लेने के अधिकार पर पुनः विचार किया गया था।[3]

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम विधवा के इस प्रकार के अधिकार के विषय में मौन है। अधिनियम के अन्तर्गत स्त्री को सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार दिया गया है तथा उसकी मृत्यु के बाद सम्पत्ति के उत्तराधिकारी इस स्त्री के उत्तराधिकारी हैं, न कि उसके उत्तराधिकारी, जिससे स्त्री ने सम्पत्ति प्राप्त की थी

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के अन्तर्गत स्त्रियों को, विशेषकर पुत्री के रूप में, पिता की सम्पत्ति पर पुत्रों के समान अधिकार दिया गया है। यह अधिकार निवास स्थान योग्य मकान के ऊपर भी लागू होता है। "निवास स्थान योग्य मकान" के अन्तर्गत भूमि[3] इमारत, बाग-बगीचे, दालान, फल वाटिका आदि स्थान, जो रहने योग्य हैं, सम्मिलित हैं।[4] बड़े बड़े नगरों में एक विशाल मकान के अन्तर्गत अनेक छोटे छोटे विभाग होते हैं। इस प्रकार के पृथक पृथक निवास करने योग्य विभागों को पृथक इकाई के रूप में माना जायेगा[5]। धारा २३ के अन्तर्गत अविवाहित पुत्रियों को पुत्रों के समान ही ऐसे मकान में रहने का अधिकार दिया गया है। यह धारा कोई नवीन व्यवस्था नहीं करती है, हिन्दू विधान में अविवाहित बालिकाओं को सदैव से यह अधिकार प्राप्त रहा है

---

1. Amarendra Man Singh vs Sanatan Singh, A.I.R. 1933, P.C.155
2. Gurunath vs. Kamalabai, A.I.R. 1955, S.C. 206.
3. Babuji vs. Ganfaram, A.I.R. 1941 Nag. 116.
4. Sheodhar Prasad vs. Kishan Prasad A.I.R. 1941, Patna 4.
5. Nilkamal vs. Kamakshya chora, A.I.R. Cal. 439.
6. Rameshwar Dial, p. 92.

अधिनियम के अन्तर्गत वह केवल इसमें निवास कर सकती है, उसके विभाजन का प्रश्न तब तक नहीं उठता जब तक कि पुत्र स्वयं विभाजन करने की माँग न करे ।[१] अधिनियम में विवाहित पुत्रियों को भी इस पैतृक सम्पत्ति में कुछ विशेष परि-स्थिति में अधिकार प्राप्त है । उसके अनुसार पुत्री, यदि विधवा है और उसके पति ने इस प्रकार का कोई भी मकान नहीं छोड़ा है, तो वह पिता के घर में निवास करने की अधिकारिणी है । पति परिवार में यदि कोई ऐसा पैतृक मकान पति परिवार के और सदस्यों के साथ पति का भी एक भाग निहित है, ऐसे भाग में विधवा पत्नी को रहने का अधिकार प्राप्त है ।

अधिनियम की धारा २४ के अनुसार यदि विधवा पुत्री पुनर्विवाह कर लेती है तो उसका पिता के मकान में निवास करने का अधिकार समाप्त हो जाता है । यह उल्लेखनीय है कि पुत्री यदि विभाजन के बाद पुनर्विवाह करती है तो उससे विभाजित सम्पत्ति वापस नहीं ली जा सकती है ।

इस प्रकार हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के माध्यम से हिन्दू स्त्रियों के परम्परागत आर्थिक अधिकारों की रक्षा की गई है, अपितु उनमें कुछ मौलिक परिवर्तन करके उसे अधिकाधिक स्वतंत्रता देने का प्रयत्न किया गया है । इस अधि-नियम के द्वारा परम्परागत हिन्दू विधान में निम्नपरिवर्तन किए गए हैं:-

(१) उत्तराधिकार से सम्बन्धित दायभाग और मिताक्षरा नियमों को समाप्त कर दिया गया है ।

(२) अधिनियम के द्वारा दक्षिणभारत में प्रचलित माता के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में अनेक अधिनियमों को संशोधित किया गया है ।

(३) अधिनियम के द्वारा विभिन्न प्रकार के "स्त्रीधन" तथा उसके उत्तराधिकार को समाप्त कर दिया गया है ।

(४) हिन्दू स्त्री की सीमित सम्पत्तिको समाप्त करके उसे सम्पत्ति पर पूर्ण अधि-कार दिया गया है ।

(५) अधिनियम ने विभाजन के अयोग्य सम्पत्ति को समाप्त कर दिया गया है ।

(६) अधिनियम के अनुसार पुरुष की सम्पत्ति के उत्तराधिकार में एक सी व्यवस्था की गई है तथा मरुमक्कट्टयम और इलियासन्तानम नियमों में मौलिक परि-वर्तन किए गए हैं ।

(७) अधिनियम ने स्त्री सम्पत्ति के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में भी एक सी व्यवस्था की है, केवल मरुमक्कट्टायम और अलियासन्ताना नियमों में कुछ मौलिक परिवर्तन किए हैं।

(८) अधिनियम के अन्तर्गत उत्तराधिकार का क्रम स्वाभाविक प्रेम पर आधारित है। दायभाग के पिण्ड का सिद्धान्त और मिताक्षरा का रक्त सम्बन्ध का सिद्धान्त अमान्य कर दिया गया है।

(९) अधिनियम के द्वारा प्राथमिकता के नियम अत्यन्त सरल रखे गए हैं तथा जहाँ प्राथमिकता नहीं है वहाँ सभी उत्तराधिकारी बराबर से भागीदार होते हैं।

(१०) अधिनियम में स्त्री और पुरुष उत्तराधिकारी में किसी प्रकार का भी भेद नहीं किया गया है।

(११) अधिनियम ने कुछ स्त्रियों को पारिवारिक सम्पत्ति में अधिकार प्रदान किया है।

(१२) रोग तथा शारीरिक दोषों को उत्तराधिकार के अयोग्य नहीं माना गया है।[1]

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, १९५६, परम्परागत हिन्दू विधान में इन सुधारों द्वारा महान् परिवर्तन लाकर भारतीय नारी को पुरुष के समकक्ष खड़ा करता है। और इस प्रकार प्रजातंत्र की भावना के अनुकूल व्यवहार करता है। संक्षेप में इस अधिनियम के अन्तर्गत स्त्रियों की आर्थिक स्थिति को पत्नी, माता तथा पुत्री के रूप में ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया गया है तथा उनके आर्थिक अधिकारों को कानूनी सुरक्षा प्रदान की गई है।

पत्नी के रूप में प्रथमबार स्त्री को सम्पत्ति का पूर्ण स्वामित्व प्राप्त हुआ है। इसके पूर्व पारित "हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम" १९३७ विधवा स्त्री को अपने मृत पति की सम्पत्ति में पुत्रों के बराबर हिस्सा देता है, परन्तु यह अधिकार सीमित था। विधवा केवल अपने जीवनकाल में ही इस सम्पत्ति का उपभोग कर सकती थी, दान देने में या उपहार में वह उस संपत्ति को न तो किसी को दे सकती थी और न बेच सकती थी। इस अधिनियम के

---

1. Chaudhary, D.H. - The Hindu Succession Act, 1956, pp. 9-10.

अनुसार विधवा स्त्री को अपने पति की सम्पत्ति पर सीमित नहीं अपितु पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया है । अब वह जिस प्रकार चाहे, अपनी सम्पत्ति के भाग का उपभोग कर सकेगी । सन्तान न होने की दशा में पति की समस्त सम्पत्ति पर विधवा का अधिकार होगा । परन्तु यदि विधवा पुनर्विवाह कर लेती है तो उस सम्पत्ति पर उसका अधिकार समाप्त हो जायेगा और सम्पत्ति पति के परिवार को लौट जायेगी ।

माता के रूप में (पुत्र की उत्तराधिकारी) इस अधिनियम द्वारा प्रथम बार स्त्री को मान्यता दी गई है । इसके पूर्व भारत के दक्षिण पश्चिमी भाग में प्रचलित मरुमक्कट्टयम कानून को छोड़कर भारत की अन्य किसी भी प्रणाली के अन्तर्गत माता को पुत्र की सम्पत्ति में अब तक कोई हिस्सा न था । इससे बहुधा माता को पुत्र की मृत्यु के बाद अनेक आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था । माता को पुत्र-वधू, पौत्र, पौत्रियों की दृष्टि में सम्मानित पद प्रदान करने के उद्देश्य से इस अधिनियम में माता को पुत्र की सम्पत्ति में उनके पत्नी और बच्चों के समान एक भाग मिलेगा ।

इसी प्रकार पुत्री के रूप में भी अधिकार प्रदान कर अधिनियम ने नारी-जाति के साथ महान् उपकार किया है । इस कानून के पारित होने के पूर्व प्रचलित दायभाग और मिताक्षरा प्रणालियों में पिता की सम्पत्ति में पुत्री को भाग प्रदान नहीं किया था । इस अधिनियम के द्वारा दायभाग और मिताक्षरा प्रणालियों को समाप्त कर दिया गया और पुत्री को पुत्र के साथ, पुत्र के समान ही पिता की सम्पत्ति में अधिकार प्रदान किया गया है ।

यह उल्लेखनीय है कि यह अधिनियम कृषितर भूमि पर भी लागू होता है ।[1] और इस प्रकार अधिकारों का क्षेत्र भी विस्तृत हो जाता है ।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम भी आलोचना का पात्र रहा है । यह उल्लेखनीय है कि प्रतिक्रियावादियों के प्रभाव में आकर अधिनियम ने सम्पत्ति को

---

1. Laxmi Debi vs. Surendra Kumar Panda, 1957, Orissa 1.

उत्तराधिकार में देने का पूर्ण अधिकार सम्पत्ति के स्वामी को प्रदान किया है। सम्पत्ति का स्वामी अपनी "इच्छा" मृत्युलेख में लिखकर उत्तराधिकारी घोषित कर जाता है। इस प्रकार इस अधिनियम ने स्त्री को दाहिने हाथ में दी गई शक्ति को बाएं हाथ से छीन लिया है।[१]

इस अधिनियम पर यह भी आरोप लगाया गया है कि इसने हिन्दू सभ्यता और संस्कृति की अवहेलना की है। हिन्दुओं में प्रत्येक प्रथा व विचार को धार्मिक आधार मिला है। सम्पत्ति का उत्तराधिकार भी इस प्रकार "श्राद्ध" और "पिण्ड" के सिद्धान्तों पर आधारित है। परन्तु यह अधिनियम इस भावना के स्थान पर धर्म निरपेक्षता का प्रतिपादन करता है। अतः हिन्दू भावनाओं के विरुद्ध है।[२]

इस अधिनियम को स्त्रियों के आर्थिक अधिकारों को विस्तृत करने का श्रेय प्राप्त है परन्तु व्यवहार में यह इस विचार को स्वयं खंडित करता है। उदाहरण के लिए यदि विवाहित पुत्री, पत्नी के रूप में पिता की सम्पत्ति का एक अंश पतिगृह में ले जाती है, तो पति की बहन भी इसी प्रकार अपने पिता की (अर्थात पतिगृह की) सम्पत्ति को दूसरे घर में ले जाती है। दूसरे शब्दों में पत्नी ने पति की सम्पत्ति में जो कुछ भी वृद्धि की थी, उसी के अनुरूप भाग पति की सम्पत्ति में से, पति की बहन के उसी अधिकार के कारण चला गया। अतः स्थिति पूर्ववत ही रही।[३]

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की विशेषताओं के आगे यह आलोचनाएं नगण्य हैं। वास्तव में अधिनियम ने पुरुष द्वारा नेतृत्व पुरातन हिन्दू समाज को महान् आघात दिया है। अधिनियम ने सदियों की पददलित नारी के प्रति अन्याय, अत्याचार और असमानता के व्यवहार के अध्याय को समाप्त कर, उसकी आर्थिक स्थिति को ऊँचा उठाकर, तथा उसे पुरुष के समान अधिकार

---

1. Desai, Neera - Women in Modern India, p. 189.
2. Sarkar, U.C. - Epochs in Hindu Legal History, p. 408.
3. Ibid, p. 407.

देकर "महिला आन्दोलन" के इतिहास में एक नवीन युग प्रारंभ किया है। इसने २० वर्ष पूर्व प्रारंभ नारी को समान आर्थिक अधिकार प्रदान करने के संघर्ष का अंत कर दिया है।[१] एक तरह से यह हिन्दू कोड बिल का, "हिन्दू विवाह अधिनियम" से भी अधिक महत्वपूर्ण अधिनियम है जब तक आर्थिक दृष्टि से नारी को समानता का व्यवहार नहीं मिलेगा, तब तक विवाह सम्बन्धी स्वतंत्रता भी निरर्थक है।[२] अधिनियम ने स्त्री और पुरुष के साथ आर्थिक क्षेत्र में समानता का व्यवहार करके आधुनिक जनतंत्र की भावना को मान्यता दी है।

उत्तराधिकार के सम्बन्ध में अनेक राज्यों ने समय समय पर विभिन्न अधिनियम पारित किए थे। इन नियमों के अन्तर्गत भी स्त्रियों को किसी न किसी रूप में सम्पत्ति का अधिकार प्रदान किया गया है। यह अधिनियम इस प्रकार है :-

१. मद्रास मरुमक्कट्टयम अधिनियम १९३३
२. मद्रास एलियासन्तना अधिनियम १९४९
३. मद्रास नम्बूदरी अधिनियम १९३२।

हिन्दू गोद लेना तथा भरण-पोषण अधिनियम, १९५६

हिन्दू परिवारों में पुत्र की अनिवार्यता दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण रही है। प्रथम पक्ष धार्मिक है। हिन्दू मान्यता के अनुसार पुत्र पूर्वजों की आत्मा को शान्ति देने के लिए तथा उनको मोक्ष प्रदान करने का उपकरण है। हिन्दुओं की धारणा है कि पुत्रहीन व्यक्ति स्वर्गप्राप्त नहीं कर सकता। प्राचीन काल से ही पुत्र को पिता के श्राद्ध व पिण्डदान आदि धार्मिक अनुष्ठानों का सम्पादन करने वाला माना गया है और यह अनुष्ठान मृतक की आत्मा की शान्ति के लिए आवश्यक है।

---

1. Seeta Paramanand - The Hindu Succession Act (Hindustan Times, Delhi - June 17, 1956).
2. Ibid.

वैदिक समाज में पुत्र एक बहुमूल्य वरदान समझा जाता था, जो कि पितरों के ऋण का भुगतान करता है। एक श्रुति के अनुसार ब्राह्मण जन्म से ही तीन ऋणों को लेकर आता है — ऋषि ऋण, जिसका भुगतान ब्रह्मचर्य आश्रम में होता है, देवऋण, जिसका भुगतान यज्ञों के माध्यम से होता है तथा पितृ ऋण, जिसके लिए सन्तान आवश्यक है। वही तीनों ऋणों को चुकता कर चुका है जिसके पास पुत्र है, जिसने यज्ञों का अनुष्ठान किया है तथा जिसने वेदों का अध्ययन किया है।[1]

मनु ने भी अपनी स्मृति में पुत्र की धार्मिक महत्ता पर प्रकाश डाला है। मनुस्मृति में निहित दो श्लोक १३७[2] तथा १३८[3] के अनुसार पुत्र अपने पूर्वजों को नरकगामी होने से बचाता है। इस प्रकार श्लोक १०६[4] १०७[5] १५९[6]

---

१. जायमानो ह वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैः ऋणवान् जायते।
ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो, यज्ञेन देवेभ्यः, प्रजया पितृभ्यः।
एष वा अनृणो यः पुत्री, यज्वा ब्रह्मचारी च॥
श्रुतिः।

२. पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते।
अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम्॥ मनुस्मृति — ९।१३७

३. पुंनाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा॥ — वही, ९।१३८

४. ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः।
पितॄणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्वमर्हति॥
— वही ९।१०६

५. यस्मिन्नृणं संनयति येन चानन्त्यमश्नुते।
स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः॥ वही, ९।१०७

६. औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च।
गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बान्धवाश्च षट्॥
— वही ९।१५९

१६०,[१] १८८[२] आदि के अनुसार यह सिद्ध हो जाता है कि मनुस्मृति के समय में भी पुत्र की धार्मिक महत्ता सर्वविदित थी । इस धार्मिक भावना की पूर्ति के लिए पुत्र-हीन व्यक्ति ने दूसरे के पुत्र को गोद लेकर उसे वही मान्यता प्रदान करने की थी

पुत्र की अनिवार्यता का दूसरा कारण हिन्दुओं की यह भावना है कि उनका वंश चलता रहे । प्रत्येक व्यक्ति अपने वंश को चलाने के लिए पुत्र की कामना करता है । पुत्रियाँ वंश चलाने के सर्वथा अयोग्य मानी गई हैं, क्योंकि हिन्दू धारणा के अन्तर्गत पुत्रियाँ दूसरे घर की हैं तथा विवाह के बाद वह दूसरे का वंश चलाती हैं ।

इसके अतिरिक्त अत्यन्त प्राचीन काल से ही जाति की निरन्तरता, परिवार की सुरक्षा तथा बाह्य आक्रमणों से रक्षा का भार पुरुष सदस्यों पर ही रहा है । इस तरह पुत्र एक भौतिक आवश्यकता का साधन भी हो गया । इन सब कारणों की वजह से विभिन्न प्रकार के पुत्र समाज में स्थान पा सके । गोद लिया हुआ पुत्र भी इनमें से एक है ।

अमरेन्द्र बनाम सनातन[३] के निर्णय में प्रिवी परिषद् ने न्यायधीश के अनुसार गोद लेने की प्रथा का मूल पुत्र प्राप्ति की स्वाभाविक इच्छा, जिसके प्रति प्रेम प्रदर्शित किया जा सके तथा वृद्धावस्था में एक संरक्षक और अंत में उत्तराधिकारी के रूप में है । साथ ही यह भी सही है कि शताब्दियों तक ब्राह्मणों

---

१. कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा ।
स्वयंदत्तश्च शौद्रश्च षडदायादबान्धवाः ।।

मनुस्मृति ६।१६०

२. सर्वेषामप्यभावे तु ब्राह्मणा रिक्थ भागिनः ।
त्रैविद्याः शुचयो दान्तास्तथा धर्मो न हीयते ।।

वही ६।१८८

३. 60 I.A. 242, 1933 P.C. 155, 35 Bom. L.R. 859, 143 I.C. 441, 37 C W.N. 938, 1933 A L 710, 57 C L J 593, 65 M L J 203.

द्वारा निर्देशित समाज में तथा उन वर्गों में जो ब्राह्मणों के सम्पर्क में रहे हैं, पुत्र का महत्व धार्मिक दृष्टि से माना जाने लगा । न्यायधीश के मत में पुत्रहीन के लिए गोद लेने की ब्राह्मणों द्वारा प्रतिपादित प्रथा एक "कर्तव्य" है, जिसे प्रत्येक हिन्दू को अपने वंश की निरन्तरता के लिए तथा परम्परागत अनुष्ठानों के सम्पादन के लिए पूरा करना आवश्यक है ।

हिन्दू समाज में पुत्र के प्रति इन्हीं भावनाओं के वशीभूत होकर, पुत्रहीन के लिए गोद लेने की प्रथा चली । इस प्रकार गोद लेने की प्रथा का अत्यन्त प्राचीन है । परन्तु इस क्षेत्र में भी नारी के अधिकार नगण्य रहे हैं । हिन्दू विधान स्त्री को, विवाहित होने पर भी गोद लेने का अधिकार प्रदान नहीं करता । यह अधिकार भी पति के पास सुरक्षित है । पत्नी, पति से स्वतंत्र होकर गोद लेने की अधिकारिणी नहीं मानी गई है । इस प्रकार कन्या को गोद लेने का विधान हिन्दू धर्म में नहीं है ।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, जिसने उत्तराधिकार के सम्बन्ध में स्त्री और पुरुष को समानता का अधिकार दिया है, के पारित होने के कारण, गोद लेने के नियम को सरल बनाना संभव हो गया । हिन्दू गोद लेना तथा भरण पोषण अधिनियम हिन्दू कोड बिल का चौथा तथा अन्तिम भाग है । इस विषय में सैलेक्ट समिति ने अपनी रिपोर्ट २३ नवम्बर १९५६ को प्रकाशित कराई ।[1] समिति की प्रथम बैठक १३ सितम्बर १९५६ को हुई कुल आठ बैठकों में समिति ने विधेयक के विभिन्न पक्षों व अंगों पर विचार किया तथा १५ नवम्बर १९५६ को अन्तिम निर्णय प्रदान किया ।

समिति द्वारा संशोधित विधेयक राज्यसभा के समक्ष २६ नवम्बर १९५६ को आया । २१ दिसम्बर १९५६ को " हिन्दू गोद लेना तथा भरण-पोषण अधिनियम पारित कर दिया गया ।

---

1. Gazette of India, Extra Part II, Section 2, dated Nov. 23, 1956.

इस अधिनियम के द्वारा गोद लेने का अधिकार स्त्री और पुरुष दोनों को समान रूप से प्राप्त है। अब तक गोद लेने का अधिकार केवल पुरुष को ही था, परन्तु अब १८ वर्ष की आयु पूरी करने वाली, स्वस्थ मन वाली स्त्री भी लड़का या लड़की को गोद ले सकती है, बशर्ते कि उसके कोई पुत्र या पुत्री न हो। विवाहित स्त्री को गोदलेने के लिए पति की सम्मति आवश्यक है। इस अधिनियम के अन्तर्गत लड़का या लड़की दोनों दत्तक बन सकते हैं। उसके लिए उसका हिन्दू होना, अविवाहित होना तथा १५ वर्ष से कम आयु का होना आवश्यक है। यदि कोई पुरुष लड़की को गोद लेता है तो वह उससे २१ वर्ष छोटी होनी चाहिए। इसी प्रकार यदि कोई स्त्री लड़के को गोद लेती है तो लड़के की आयु उस स्त्री से २१ वर्ष कम होनी चाहिए।

गोद लेने के लिए पुत्र या पुत्री देने का अधिकार केवल उसके माता-पिता को ही है और वे अपनी इकलौती सन्तान भी दे सकते हैं। यदि माता-पिता की मृत्यु हो गई है या वे पागल या सन्यासी हो गए हैं तो बच्चे का वसीयत द्वारा नियुक्त अथवा अदालत द्वारा नियुक्त संरक्षक अदालत की स्वीकृति से बच्चे को गोद लेने के लिए दूसरे को दे सकता है।

गोद लिए गए लड़के या लड़की का सम्बन्ध गोद लेने की तिथि से उसे जन्म देने वाले माता-पिता और उसके वंश से सर्वथा विच्छिन्न हो जाता है और उसका अपने पिता ~~या परिपाटी~~ या परिवार की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं रहता है। वैध रीति से गोद लेने की विधि सम्पन्न होने के बाद इसे गोद लेने वाला व्यक्ति या अन्य कोई व्यक्ति रद्द नहीं कर सकता है और न ही गोद लिया गया व्यक्ति फिर से अपने मूल परिवार या पितृकुल में लौट सकता है।

इस प्रकार इस अधिनियम ने गोद लेने की प्रथा को कानूनी रूप प्रदान किया है। संक्षेप में इस अधिनियम ने पुरातन हिन्दू विधान में, इस सम्बन्ध में जो परिवर्तन किए हैं वे इस प्रकार हैं[1]:—

---

1. Saksena, K.P. - The Hindu adoptions and maintenance Act, 1956, pp. 23-34.

(१) तपस्वी को (योगी) भी गोद लेने का अधिकार है।

(२) स्त्री स्वयं अपने लिए गोद ले सकती है।

(३) कोई भी स्त्री या पुरुष, यदि वह स्वस्थ मन का है तथा नाबालिग नहीं है, गोद ले सकता है।[1]

(४) कोई भी पुरुष अपनी पत्नी की सम्मति के बिना गोद नहीं ले सकता, जब तक कि उसने (स्त्री ने) पूर्णरूप से संसार त्याग न कर दिया हो, अथवा हिन्दू धर्म त्याग दिया हो अथवा अदालत द्वारा अस्वस्थ मन की घोषित की गई हो।[2]

(५) कोई भी स्त्री जो कि अविवाहित है, विधवा है अथवा पत्नी है, परन्तु उसके पति ने पूर्ण रूप से संसार का त्याग कर दिया है, अथवा हिन्दू धर्म छोड़ चुका है अथवा अदालत द्वारा अस्वस्थ्य मन का घोषित किया गया हो तो पत्नी गोद लेने की अधिकारिणी है।[3]

(६) पति अथवा पत्नी, बिना एक दूसरे की सम्मति लिए बच्चे को गोद नहीं ले सकते जब तक कि दूसरे (पति या पत्नी) ने संसार का त्याग कर दिया हो अथवा न्यायालय द्वारा अस्वस्थ्य मन वाला घोषित हुआ हो।[4]

(७) अनाथ बालक का अभिभावक, बच्चे को तभी गोद दे सकता है जब कि अदालत द्वारा उसने आज्ञा ले ली हो तथा गोद देना बच्चे के हित में हो।[5]

(८) गोद लिए जाने वाले लड़के या लड़की के लिए आवश्यक नहीं है कि वह उसी जाति के हों जिस जाति के गोद लेने वाले हैं, परन्तु बच्चे का हिन्दू होना ही पर्याप्त है।[6]

---

1. Section 7 & 8.

2. Section 7.

3. Section 8.

4. Section 9, Clause 2 & 3.
5. Section 9, Clause 4 & 5.

6. Section 10, Clause 1 & 11.

(९) लड़का या लड़की, जिसने १५ वर्ष की आयु पूरी कर ली है तथा अविवाहित है, गोद लिया जा सकता है, यदि कोई प्रथा ऐसी आज्ञा देती हो तो ।[१]

(१०) ऐसे पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र, जिसने संसार छोड़ दिया है अथवा किसी प्रकार की अयोग्यता से युक्त है, की उपस्थिति गोद लेने में बाधक है ।[२]

(११) लड़की को गोद लिया जा सकता है । परन्तु इसके लिए आवश्यक है कि गोद लेने वाले के कोई पुत्री अथवा पौत्री न हो ।[३]

(१२) गोद लिए जाने वाले लड़का या लड़की से गोद लेने वाले स्त्री और पुरुष की आयु २१ वर्ष अधिक होनी चाहिए ।[४]

(१३) देने या लेने का कार्य केवल अभिभावकों द्वारा ही हो सकता है ।

(१४) "दत्तहोम" आवश्यक नहीं है ।[५]

(१५) यदि गोद लेने के पूर्व, गोद लिए जाने वाले बच्चे के नाम कोई सम्पत्ति है, तो गोद देने के उपरांत उससे वह सम्पत्ति छीनी नहीं जा सकती है ।[६]

(१६) विधवा द्वारा गोद लिया बच्चा उसके मृतपति अथवा विधवा दोनों से सम्बन्ध नहीं रखता, अपितु वह केवल गोद लेने की तिथि से गोद लेने वाली माता का ही पुत्र होगा तथा इसी प्रकार पुरुष द्वारा गोद लिया जाने वाला बच्चा केवल गोद लेने वाले पिता का पुत्र माना जायेगा ।

(१७) गोद लिया जाने वाला बच्चा गोद लेने के पूर्व की, किसी भी व्यक्ति की किसी भी प्रकार की सम्पत्ति नहीं छीन सकता है ।[७]

(१८) गोद लेने के उपरांत, गोद लेने वाले स्त्री या पुरुष का अपनी सम्पत्ति से अधिकार नहीं चला जाता है ।[८]

---

1. Section 10, clause iii & iv.
2. Section 11, clause iii & iv.
3. Section 11, clause ii.
4. Section 11, Proviso.
5. Section 11, Proviso.
6. Section 12.
7. Section 13.

(१९) पुरातन हिन्दू विधान के अन्तर्गत व्यक्ति की अनेक पत्नियाँ संयुक्त रूप से गोद लिए गए बच्चे की माता होती थीं, परन्तु इस अनुच्छेद के अन्तर्गत सबसे बड़ी पत्नी ही उसकी माता है।[1]

(२०) विधुर की पत्नी तथा गोद लेने के उपरान्त विवाहित पुरुष की पत्नी बच्चे की सौतेली माता होगी। पुरातन हिन्दू विधान में उसे गोद लिए जाने वाले बच्चे की माता माना जाता था।[2]

(२१) यदि कोई विधवा या अविवाहित स्त्री गोद लेने के उपरान्त विवाह करती है तो उसका पति बच्चे का सौतेला पिता कहलायेगा।[3]

(२२) जहाँ दत्तक पुत्र के लेख पत्र ( ) की रजिस्ट्री करा ली जाती है, किन्तु भौतिक रूप से बच्चे का पिता गोद लेने वाले व्यक्ति को अपने बच्चे को दान देने का कार्य नहीं करता तो यह गोद लेना वैध नहीं होगा।[4]

(२३) गोद लेने के लिए धन देना अथवा पुरस्कार देना गैरकानूनी है। धन लेने वाला दण्डनीय होगा।[5]

इस प्रकार यह अधिनियम परम्परागत हिन्दू विधान में संशोधन करता है तथा हिन्दू स्त्री को भी स्वतंत्र रूप से गोद लेने का अधिकार प्रदान कर अन्य अधिनियमों के अन्तर्गत स्त्री और पुरुष की समानता के सिद्धान्त को मान्यता देता है।

परन्तु इस अधिनियम का सबसे महत्वपूर्ण भाग, अध्याय ३ है, जिसके अनुसार स्त्री को पत्नी, पुत्री तथा पुत्रवधू आदि के रूप में भरणपोषण का अधिकार दिया गया है। हिन्दू समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली हिन्दुओं की सामाजिक व्यवस्था का प्रधान अंग रही है। अतः संयुक्त परिवार के सदस्य भरण-

---

1. Section 14, clause 2.
2. Section 14, clause 3.
3. Section 14, clause 4.
4. Section 16.
5. Section 17.

पोषण के लिए दावा कर सकते हैं। प्रत्येक हिन्दू अपने वृद्ध माता-पिता, पत्नी तथा वैध और अवैध सन्तानों और अविवाहित पुत्रियों के भरण-पोषण के लिए बाध्य है। यह अधिनियम हिन्दू समाज की इसी व्यवस्था का संहिताकरण करके उसे कानूनी रूप प्रदान करता है, तथा स्त्रियों के पक्ष में कुछ अन्य परिवर्तनों को जोड़कर उन्हें अधिकाधिक अधिकार प्रदान करता है।

अधिनियम की धारा १८ के अन्तर्गत हिन्दू विधान का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष लिया गया है जिसके अनुसार पति पर अपनी विवाहिता पत्नी के भरण-पोषण का दायित्व है। पति का पत्नी के प्रति ये दायित्व विवाह के माध्यम से प्राप्त स्वाभाविक सम्बन्ध के कारण हैं, न कि किसी समझौते का परिणाम है।[1] रघुनाथ अमीदास बनाम द्वारका बाई के मामले में भी न्यायालय ने यह घोषित किया था कि पत्नी अथवा विधवा का पति से तथा पति के परिवार से भरण-पोषण का दायित्व मात्र किसी समझौते के आधार पर नहीं है, अपितु हिन्दू संयुक्त परिवार का अविभाज्य सदस्य होने के नाते है।[2] पत्नी का यह अधिकार उसी क्षण से मान्य होता है ~~नाबालिक~~ जिस क्षण विवाह संस्कार संपादित होता है। नाबालिक पत्नी अल्पायु होने के कारण अधिकतर पितृगृह में ही रहती है। पिता स्वाभाविक प्रेमवश उसका भरण-पोषण करता है, परन्तु यदि पिता चाहे तो उसके पति से या पति परिवार से भरण-पोषण का दावा कर सकता है, और पति उसकी पूर्ति के लिए बाध्य है। बड़ी होने पर पतिगृह ही उसका घर है तथा पति, आय का कुछ साधन न होने पर भी उसके पालन के लिए बाध्य है। दायभाग तथा मिताक्षरा दोनों प्रणालियों के अन्तर्गत विवाहोपरांत पत्नी का पति की सम्पत्ति में संयुक्त अधिकार मान्य है।

---

1. Lakshmi Devi vs. Naganna 1925 Mad. 757, 21 MLW 461, Unnamalai vs. Wilson 1927 Mad. 1187, Bai Appipai vs. Khimji 1936 Bom. 138, 38 Bom.L.R. 77, 60 Bom. 455.
2. Raghunath Amidas vs. Dwarkabai 1941, 43 Bom. L.R. 772,774.

हिन्दू विधान की इसी व्यवस्था के अनुरूप इस अधिनियम की धारा १८(१) के अन्तर्गत यह घोषित किया गया है कि हिन्दू पत्नी, चाहे वह इस अधिनियम के पारित होने के पूर्व अथवा बाद में विवाहित हो, पति द्वारा भरण पोषण की अधिकारिणी है।[1] इसी धारा के दूसरे भाग के अन्तर्गत हिन्दू पत्नी, पति से पृथक रह कर भी भरण पोषण की अधिकारिणी है यदि[2] —

(१) पति ने पत्नी को अकारण अथवा बिना उसकी सहमति के अथवा उसकी इच्छा के विरुद्ध त्याग किया हो, अथवा जानबूझ कर उसका ध्यान न रखा हो।

(२) यदि पति ने उसके साथ इस प्रकार की निर्दयता का व्यवहार किया हो, जिसके कारण पत्नी के मन में भय आ गया हो और वह पति के साथ रहना सुरक्षित नहीं समझती हो।

(३) यदि पति कोढ़ से पीड़ित हो,

(४) यदि उसकी कोई अन्य पत्नी जीवित हो।

(५) यदि पति ने अपने घर में, जिसमें पत्नी भी रहती हो, कोई रखैल रखी हो अथवा आदतवश वेश्याओं के घर रहता हो।

(६) यदि उसने हिन्दू धर्म का त्याग कर अन्य धर्म अपना लिया हो।

(७) यदि इसी प्रकार का अन्य तर्क युक्त कारण हो, जो उसे पृथक रहने पर बाध्य करता हो।

अधिनियम की धारा १९ (१) के अन्तर्गत स्त्री को पुत्रवधू के रूप में, पति की मृत्यु के उपरांत भी पतिगृह से भरण-पोषण का अधिकार है। इस अनुच्छेद के अनुसार श्वसुर पर पुत्रवधू के भरण-पोषण का दायित्व है यदि:—

(१) वह स्वयं जीविकोपार्जन में असमर्थ हो, अथवा अन्य किसी प्रकार की सम्पत्ति उसके पास न हो।

---

1. Section 18 (1)
2. Ibid (2).

(२) पति अथवा पिता अथवा माता द्वारा प्राप्त किसी प्रकार की सम्पत्ति न हो,
(३) पुत्र अथवा पुत्री की सम्पत्ति से भरण-पोषण नहीं प्राप्त होता हो ।

भरण-पोषण का यह अधिकार विधवा के पुनर्विवाह करने पर समाप्त हो जाता है । इसका कारण यह है कि पुनर्विवाह के कारण वह पहली पति की विधवा नहीं रह जाती अत: प्रथम पति की सम्पत्ति में उसका कोई भी अधिकार नहीं रह जाता है ।[१] विधवा के रूप में उसकी प्रथम स्थिति पुनर्विवाह के उपरान्त "पत्नी" में परिवर्तित हो जाती है । हिन्दू विधान के अन्तर्गत एक ही स्त्री, एक समय में एक की विधवा तथा दूसरे की पत्नी, दोनों नहीं हो सकती है । विभिन्न उच्च न्यायालयों के निर्णयों के अनुसार पुनर्विवाह के उपरान्त भरण-पोषण का अधिकार छिन जाता है ।[२] परन्तु इलाहाबाद तथा अवध उच्च न्यायालयों के निर्णय इसके विरुद्ध रहे हैं ।[३]

इसी प्रकार धारा १८ (३) के अनुसार दुराचारिणी पत्नी को भरण-पोषण का अधिकार नहीं दिया गया है, यद्यपि वह उन सभी कारणों के अन्तर्गत हो जो धारा १८ (२) में १ से ७ तक बताए गए हैं ।[४]

इस अधिनियम के अन्तर्गत यह भी विधान रखा गया है कि विधवा पत्नी पतिगृह में रहने पर बाध्य नहीं की जा सकती, चाहे परिवार के सदस्य

---

1. Santala vs. Badaswari 50 Cal. 727.27 CWN 669, 1924, Cal.98.
2. Murugayee vs. Viramakali I Mad. 226, Ra Sul vs. Ram Surun 22 Cal. 589; Vithu vs. Govinda 22 Bom. 321 (F.B.) Suraj vs. Attar I Pat. 706, Santala vs. Badaswari 50 Cal. 727.
3. Gajadhar vs. Kaunsilla 31 All 161; Mula vs. Partab 32. All 489; Mangat vs. Bhiro 49 All 22 (F.B.); Ram Lall vs. Mt. Jawala 1948 Oudh 338; Gajadhar vs Mt. Sukdei 1931 Oudh 107.
4. Section 18 (3).

कितनी ही उदार क्यों न हों । और इस परिस्थिति में भी उसके भरण-पोषण का दायित्व श्वसुर पर होगा । परन्तु यह आवश्यक है कि पुत्रवधू ने पतिगृह किसी अनैतिक कार्य अथवा दुराचरण के लिए न छोड़ा हो । ऐसी स्थिति में उसे पतिगृह से भरण-पोषण प्राप्त नहीं हो सकेगा ।[1] इसके विपरीत यदि हिन्दू विधवा पतिगृह छोड़ कर अपने पिता के यहां निवास करती है तथा पतिव्रता रहती है, तो गृह बदलने का कारण बताए बिना भी उसे श्वसुर गृह से भरण-पोषण का अधिकार मिलेगा ।[2]

इस प्रकार इस अधिनियम के अन्तर्गत स्त्री को पत्नी के रूप में जो अधिकार मिलने चाहिए, उनको सुरक्षित किया गया है । वास्तव में अधिनियम ने इस विषय में पुरातन हिन्दू विधान को लगभग वैसा ही संहिताबद्ध कर दिया है, केवल कुछ मौलिक परिवर्तन किए हैं जो इस प्रकार रखे जा सकते हैं :-

(१) भरण-पोषण में अविवाहित कन्या के विवाह का व्यय शामिल नहीं है,

(२) "अवरुद्धा स्त्री" के भरण-पोषण का अधिकार नहीं माना गया है ।

(३) यह अधिनियम अवैध पुत्री को भी भरण-पोषण का अधिकार देता है ।[4]

(४) अधिनियम ने आश्रितों की सूची में वृद्धि की है ।[5]

(५) इस अधिनियम ने हिन्दू स्त्री को सम्बन्धियों की ओर से भरण-पोषण का अधिकार दिया है ।[6]

---

1. Perthee Singh vs. Rani Raj Koer (1873) 12 B.L.R. 238(P.C.).
2. Har Pratab Singh vs. Thakurain Raghuraj 1933, Oudh 550.
3. Hindu Adoptions and Maintenance Act 1956, by K.P.Saksena p. 279.
4. Section 20 & 21.
5. Section 21.
6. Section 20 & 21.

(६) भरण-पोषण की राशि-सम्बन्धी, उसके निर्णय का अधिकार अदालत को दिया गया है ।

इस प्रकार यह अधिनियम स्त्री के आर्थिक अधिकारों की गारंटी देता है । इस विषय में विभिन्न राज्यों ने भी अपने-अपने क्षेत्र में अधिनियम पारित किए थे जो इस प्रकार हैं :-

(१) मद्रास मरुम क्कट्टयम अधिनियम १६३२ (१६३३ का २२)
(२) मद्रास नम्बूदरी अधिनियम (१६३३ का २१) (भरण-पोषण भाग ७ में)
(३) मद्रास अलिया संताना अधिनियम (१६४६ का ६) (भरण-पोषण भाग३१)
(४) मैसूर हिन्दू ला, स्त्रियों का अधिकार अधिनियम १६३३ (१६३३ का १०)
(गोद लेना, भाग ६)

भाग ३ — वेश्यावृत्ति सम्बन्धी अधिनियम

वेश्यावृत्ति का इतिहास अति प्राचीन है । संसार के लगभग प्रत्येक भागों और कालों में प्रचलित रही है ।[१] ऋग्वेद में कई स्थलों पर ऐसा निर्देश मिलता है कि उस काल में भी कुछ ऐसी नारियाँ थीं जो सभी की थीं अर्थात् वेश्या या गणिका । उदाहरण स्वरूप एक स्थल पर मरुद्गण (अन्धड़ के देवता) का बिजली से वही सम्बन्ध माना गया है, जिस प्रकार पुरुष वर्ग का वेश्याओं से[२] । मनु ने वेश्याओं के अन्न का भोजन ब्राह्मणों के लिए वर्जित माना है ।[३] महाभारत में वेश्यावृत्ति एक संस्था के रूप में प्रतिष्ठित प्रतीत होती है । समाज में वेश्याओं को संभवतः स्वीकृति मिल गयी थी, क्योंकि स्मृतियों में उनके भरण-पोषण की व्यवस्था की चर्चा भी है ।

मध्ययुग में तथा उसके बाद के युग में वेश्यावृत्ति अपनी चरमसीमा पर थी । तत्कालीन राजाओं और नवाबों, जिनके पास ऐश्वर्य की अधिकता थी तथा भोग विलास में लिप्त रहने के अतिरिक्त दूसरा कोई कार्य न था ।

---

१. Encyclopedia Americana, V XXVIII, p. 58.
२. परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः । ऋग्वेद १।१६७।४
३ मनु ४।२०६

वेश्यावृत्ति इस विलासिता का प्रमुख अंग थी । इन राजाओं और नवाबों के हरम तथा दरबार में वेश्याएं तथा गणिकाएं स्थायी रूप से रहती थीं । धीरे-धीरे समाज के मध्यवर्ग ने भी उच्च वर्ग का अनुसरण किया जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक नगर में वेश्याओं के "मोहल्ले" स्थापित हो गए थे ।

समाज द्वारा हेय दृष्टि से देखी जाने वाली ये वेश्याएं परिस्थितियों की दास थीं । एक बार इस पेशे में आ जाने के पश्चात् आजीवन इसमें रहने पर बाध्य थीं, क्योंकि एक ओर तो वे "वेश्यालय" चलाने वाले व्यक्तियों की सेविकास्वरूप थीं, अत: उनकी कृपा पर जीवित थीं । दूसरी ओर पुन: सभ्य जीवन व्यतीत करने पर उन्हें समाज द्वारा स्वीकार न किए जाने का भय भी था । स्वयं उनके परिवार के सदस्य उन्हें स्वीकार करने को तैयार नहीं थे । इसके अतिरिक्त कोई भी सभ्य पुरुष उनसे विवाह करने के लिये तत्पर नहीं होता था

यह पेशा वंशानुगत रूप से चलता था । स्वयं वेश्याएं अपनी पुत्रियों से यह कार्य कराने पर विवश थीं । प्रथम तो इस कारण की कोई भी सभ्य पुरुष इन बालिकाओं से, जिनके पिता अज्ञात थे, विवाह करने को तत्पर न होता था । द्वितीय कारण आर्थिक था । वेश्याओं का मूल्य अथवा महत्व वहीं तक होता है जब तक वे युवती रहती हैं । आयु के साथ-साथ उनका मूल्य व मांग भी क्रमश: कम होती जाती है । अत: प्रत्येक वेश्या आय वृद्धि की दृष्टि से अपनी पुत्री पर निर्भर करती है ।[१]

वेश्यावृत्ति के हानिकर परिणामों, वेश्या तथा समाज , दोनों के लिए ही, को देखते हुए भारत सरकार ने इसको समाप्त करने का सदैव प्रयत्न किया है । उदाहरणार्थ १९०४ तथा १९१० में भारत सरकार ने " गोरे गुलाम अनैतिक व्यापार निरोधक अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय पर हस्ताक्षर किए थे ।[२]

---

1. Husain Mazhar - Suppression of Immoral Traffic in Women and girls Act 1956, p. 1.
2. The League of Nations - Traffic in Women and Children - The work of Bondong Conference, Official Document no.C516, M. 357 1937 IV pp. 20-21.

१८६० में निर्मित भारतीय दंड संहिता में अनैतिक व्यापार के सम्बन्ध में कुछ परिच्छेद रखे गए हैं। १९२३ में अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय के अनुरूप इसमें कुछ संशोधन भी किए गए तथा इस सम्बन्ध में दो विभाग और जोड़े गए।[१] इसके द्वारा वैश्यावृत्ति समाप्त नहीं कर दी गई, वरन् वैश्यावृत्ति को चलाने के सम्बन्ध में कुछ बंधन लगाए गए। इसके अतिरिक्त नगर पुलिस के अधिनियम[२], म्युनिस्पैलिटी के अधिनियम[३], कैन्टोन्मैंट के अधिनियम[४] तथा बच्चों से संबन्धित अनेक अधिनियमों के अन्तर्गत भी कुछ परिच्छेद वैश्यावृत्ति सम्बन्धित हैं।

स्त्रियों तथा कन्याओं का अनैतिक-व्यापार निरोधक अधिनियम, १९५६

समाज में व्याप्त वैश्यावृत्ति की इस कुप्रथा को नष्ट करने के लिए समय समय पर विभिन्न राज्यों की सरकारों ने अलग अलग अधिनियम पारित किए थे।

---

1. Section 366 A and 366 B.
2. The Indian Police Act 1861; The Calcutta Police Act 1860, Bombay City Police Act 1887, Madras City Police Act, 1888.
3. The Bombay Municipal Boroughs Act (Sections 188 and 189), The Bombay district Municipalities Act (Sections 152 and 153); The U.P. Municipalities Act (Sections 246 and 247); The C.P. and Berar Municipalities Act (Sections 142 and 143); The Bihar and Orissa Municipal Act (Sections 264C); The Assam Municipalities Act (Sections 254 and 255); The Madhya Bharat Municipalities Act (Section 174 and 175); The Punjab Municipalities Act (Sections 152 and 153); The Ajmer Merwara Municipal Regulation (Sections 167 and 168) and Bhopal Municipal Act (Section 319).
4. The Cantonments Act II of 1924.

परन्तु इससे कोई विशेष लाभ न हुआ और औद्योगिक क्षेत्रों में खुले आम वेश्यावृत्ति व्यापक रूप में चलती रही । साथ ही स्त्रियों और कन्याओं का अनैतिक व्यापार जैसे लड़कियों को भगा ले जाकर बेचना या खरीदना आदि भी चलता रहा । इसे रोकने के लिए केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड ने सन् १९५५ में "सामाजिक तथा नैतिक स्वास्थ्य विज्ञान समिति की स्थापना की जिसका काम स्त्रियों तथा बच्चों के अनैतिक व्यापार के सम्बन्ध में जाँच करके अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करना था । समिति ने अपनी रिपोर्ट सितम्बर १९५५ में प्रकाशित की । इसकी सिफारिशों के आधार पर १९५६ में केन्द्रीय सरकार द्वारा ' स्त्री तथा कन्याओं का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम पास हुआ जो कि १ मई १९५८ से समस्त देश पर लागू किया गया ।

इस अधिनियम ने "वेश्या" और "वेश्यावृत्ति" की परिभाषा इस प्रकार दी है :-"कोई भी स्त्री जो धन या वस्तु के बदले में अवैध यौन-सम्बन्ध के लिए अपने शरीर को अर्पण करती है, वह "वेश्या" है और अपने शरीर को इस प्रकार यौन-सम्बन्ध के लिए अर्पण करना "वेश्यावृत्ति" है ।"[1]

अधिनियम ने धारा ३ से १० के अन्तर्गत वेश्यालय रखने वाले व्यक्ति को विभिन्न दण्ड प्रदान करने का विधान रखा है । धारा ३ के अनुसार वेश्यालय चलाने वाले व्यक्ति को १ से ५ साल तक की कैद तथा २ हजार रुपये का अर्थदण्ड प्रदान किया जा सकता है । यही नहीं, ऐसे व्यक्ति को भी दंडित करने का विधान रखा गया है जो वेश्यालय में रहते हों, अथवा जानबूझ कर अपना मकान उस कार्य के लिए देते हों ।[2] इसी प्रकार अधिनियम की धारा ४ के अन्तर्गत वेश्याओं की आय पर निर्भर रहने वाले व्यक्ति भी दण्ड के पात्र माने गए हैं । इस धारा के अनुसार किसी वेश्या के अपने लड़के या लड़की को छोड़कर यदि कोई १८ वर्ष से अधिक आयु का व्यक्ति पूर्णतः या अंशतः उसकी आय पर निर्भर करता है तो उसे २ वर्ष की कैद तथा १ हजार रुपये तक का जुर्माना किया जा सकता है ।[3]

---

1. Section 2 (e and f).
2. Section 3 (a).
3. Section 4 (1).

यह उल्लेखनीय है कि वेश्याओं की आय दो प्रकार से हो सकती है — एक तो नाच-गाने के माध्यम से और दूसरी शरीर को यौन-सम्बन्ध के लिए अर्पित करने के द्वारा। जहाँ तक नाच-गाने का प्रश्न है, कलकत्ता उच्च न्यायालय ने इसे वेश्यावृत्ति के अन्तर्गत नहीं माना है।[1]

वेश्या की आय पर निर्भर करने वाले भी कई प्रकार के हो सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति अपना मकान "वेश्यालय" के रूप में दे देता है तथा प्रतिदिन वहाँ जाकर वेश्या का मूल्य आने वालों से वसूल करता है, तो इस प्रकार का कार्य भी वेश्या की आय पर निर्भर समझा जा सकता है।[2]

यदि वेश्या के विरुद्ध इस प्रकार का कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि उसका स्वयं का वेश्यालय के प्रबन्ध में कोई हाथ है, तो उसे धारा ५ (१) के अन्तर्गत दंडित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि ऐसी परिस्थिति में यह नहीं समझा जा सकता कि वेश्या किसी दूसरे की आय पर निर्भर है।[3]

इसी प्रकार यदि पति अपनी पत्नी के साथ रहता है और अपनी पत्नी को वेश्या का कार्य करने की अनुमति देता है, तो इससे तात्पर्य यह है कि पति जानबूझ कर वेश्यावृत्ति की आय पर निर्भर रहने के लिए ऐसा कर रहा है[4]। ऐसी परिस्थिति में धारा ४(२) के अनुसार यह सिद्ध हो जाता है कि पति अपनी वेश्या पत्नी के साथ रह रहा है।[5]

अधिनियम की धारा ५ के अनुसार वेश्या के साथ रहना, उस पर नियंत्रण रखना, उसे इस कार्य के लिए बाध्य करना, वेश्यावृत्ति के लिए स्त्रियों या लड़कियों को फुसलाना या उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर वेश्यावृत्ति के लिए ले जाना कैद और जुर्माने के रूप में दण्डनीय होगा।[6]

---

1. Parbati Dasi vs. Emperor 35 cr. LJ 722 A.I.R. 1934 Cal.198.
2. Husain, Mazhar - Supp. of Imm. Trafic in Women and Girls Act, 1956, p. 19.
3. Manonmani Ammal vs. Emperor 41 ~~mk~~ cr. LJ 960 1940 MWN 529
4. Husain Mazhar - p. 19.
5. Som Bachu Lakhman vs. State of Gujrat 1960, Cr.LJ 1585, A.I.R. 1960 Guj. 37.

अधिनियम की धारा ७ के अन्तर्गत सार्वजनिक स्थानों से २०० गज तक की दूरी में "वेश्यावृत्ति" का कार्य करना दंडनीय माना गया है । इस परिच्छेद का उद्देश्य है सार्वजनिक स्थान जैसे मन्दिर, शैक्षिक संस्थाएं, छात्रावास, चिकित्सालय आदि स्थानों से वेश्याओं को दूर रखना । अधिनियम के अनुसार ऐसी वेश्या को जो इन स्थानों से २०० गज की दूरी में वेश्या का पेशा करती है, तीन माह की कैद की सजा दी जा सकती है ।[1] अत: इस प्रकार के कार्य को दंडनीय मानकर विभिन्न सार्वजनिक स्थानों और संस्थाओं को वेश्याओं के कुप्रभाव से बचाने और पवित्र रखने का प्रयत्न किया गया है ।[2] यह उल्लेखनीय है कि इस प्रकार का दण्ड केवल वेश्याओं के लिए ही रखा गया है, और इस प्रकार अनैतिक आचरण को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया है । अधिनियम ने उन व्यक्तियों के ऊपर कोई बंधन नहीं लगाए हैं जो वेश्याओं के पास जाते हैं । इसका कारण संभवत: यह है कि यदि दुकान बन्द करदी जायेगी, तो स्वभावत: कोई भी खरीदार वहां नहीं जायेगा ।[3]

इस अधिनियम के अन्तर्गत वेश्यावृत्ति में लगी स्त्रियों और लड़कियों के पुनर्वास और सुधार के लिए सुरक्षा गृहों की स्थापना का भी प्रस्ताव है ।[4]

स्त्रियों तथा कन्याओं का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम, १९५६ को समय-समय पर चुनौती दी गई है परन्तु इस विषय में सबसे अधिक महत्वपूर्ण मामला है इलाहाबाद की एक वेश्या हुस्नाबाई का ।[5] हुस्नाबाई ने इस अधिनियम को संविधान का विरोधी घोषित करते हुए इलाहाबाद उच्च न्यायालय में यह अपील की कि यह अधिनियम की धारा १९ में प्रदत्त उसके मौलिक अधिकारों

---

1. Section 7 (1).
2. Shama Bai vs. State of U.P. 1959 A.W.R. 509.
3. Husain, Mazhar, p. 26.
4. Section 21.
5. 'National Herald', 27-5-1958, page 7.

पर आघात करता है । इस अधिनियम की धारा २० तथा ४ (अ) वेश्यावृत्ति पर कुछ तर्कहीन बंधन लगाती है, जो संविधान की धारा १९[1](छ) के विरुद्ध है ।

न्यायमूर्ति सहाय ने हुस्नाबाई की अपील को रद्द करते हुए कहा कि कोई भी व्यक्ति तब तक अपील करने का अधिकारी नहीं है जब तक उसके किसी अधिकार पर आक्षेप न हुआ हो ।[2] उनकी अपील के सन्दर्भ में न्यायमूर्ति ने अपने निर्णय में कहा कि "यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी प्रकार का पेशा, कार्य वाणिज्य तथा व्यापार करने का अधिकार है, परन्तु फिर भी यह अधिकार राज्य के इस अधिकार के अधीन है कि राज्य सामान्य जनता के हित के लिए इस प्रकार के पेशे, कार्य, वाणिज्य तथा व्यापार पर तर्कयुक्त बन्धन लगा सकता है ।[3] न्यायमूर्ति ने अपने निर्णय में अधिनियम की वैधता का पक्ष लेते हुए कहा कि इस अधिनियम ने वेश्याओं पर केवल कुछ बन्धन ही लगाए हैं, उनके पेशे को समाप्त नहीं किया गया है । इन बन्धनों की आवश्यकता घोषित करते हुए न्यायमूर्ति ने कहा कि वेश्यावृत्ति मानवीय प्रतिष्ठा पर एक कलंक है तथा मानव-सभ्यता के लिए लज्जाजनक बात है । इसको शनैः शनैः समाप्त करना प्रत्येक सभ्य देशों का उद्देश्य है । जब तक यह पूर्णतः समाप्त नहीं की जाती, तब तक इसे एक 'आवश्यक बुराई' के रूप में सहना पड़ेगा, परन्तु फिर भी इस पेशे के कुप्रभाव से बचने के लिए तथा सामान्य जनता के हित में इसके ऊपर तर्कयुक्त बन्धन लगाना आवश्यक है ।"[4]

वेश्या वृत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न राज्यों ने अपने-अपने क्षेत्रों में अनेक नियम बनाए थे, जो इस प्रकार हैं :-

(१) बंगाल अनैतिक-व्यापार निरोधक अधिनियम १९३३(१९३३ का ६)

---

१. इसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को इच्छानुसार पेशा, कार्य, वाणिज्य तथा व्यापार करने का अधिकार दिया गया है ।

2. 'National Herald', 27.5.1958, page 7.

3. Ibid.

4. Ibid.

(२) बिहार अनैतिक-व्यापार निरोधक अधिनियम १९४७ (१९४८ का ३)

(३) बम्बई वैश्यावृत्ति निरोधक अधिनियम १९२३ (१९२३ का ११)

(४) बम्बई वैश्यावृत्ति निरोधक (संशोधित) अधिनियम १९४८ (१९४८ का २६)

(५) जम्मू तथा काश्मीर जनता वैश्या रजिस्ट्रेशन नियम

(६) मद्रास अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम १९३० (१९३० का ८)

(७) पंजाब अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम १९३६

(८) यू०पी० अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम १९३३

(९) कलकत्ता अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम १९२३ (१९२३ का १३)

भाग ४ -- अन्य विभिन्न विषयों पर अधिनियम

उपरोक्त विषयों के अतिरिक्त अन्य अनेक सुविधाएं राज्य द्वारा स्त्रियों को समय-समय प्राप्त होती रही हैं । उदाहरणार्थ मिलों तथा कारखानों में काम करने के घंटों के सम्बन्ध में, मातृत्व अवकाश के सम्बन्ध में, मजदूरी निर्धारित करने के सम्बन्ध में, तथा संकटमयी नौकरियों में स्त्रियों के कार्य के सम्बन्ध में कुछ अधिनियम पारित किए गए जिन्होंने स्त्रियों को अनेक सुविधाएं व विशेषाधिकार प्रदान किए हैं ।

स्त्रियों का कार्यक्षेत्र सदैव से 'घर' रहा है, परन्तु आधुनिक औद्योगिक युग ने स्त्रियों के इस कार्यक्षेत्र में महान् परिवर्तन कर दिया है । औद्योगिक क्रान्ति ने उत्पादन की प्रक्रिया में परिवर्तन किया है । निर्धनता तथा अनिश्चित आर्थिक स्थिति ने स्त्रियों को मिलों और कारखानों में कार्य करने पर बाध्य किया । कारखानों और मिलों में स्त्रियों के प्रवेश के फलस्वरूप नवीन समस्याओं का जन्म हुआ । सरकार ने इस विषय में स्त्री-मजदूर की सुरक्षा के सम्बन्ध में अधिनियम निर्मित किए । १८८१ में सर्वप्रथम' फैक्टरी अधिनियम' पारित हुआ । परन्तु इस अधिनियम में स्त्रियों की सुविधा के लिए कोई निर्देश नहीं था । १८९१ में पारित अधिनियम, जो कि पूर्व अधिनियम को संशोधित करता है ने प्रथमबार स्त्री-मजदूर के सम्बन्ध में कुछ धाराएं रखीं । इस अधिनियम ने स्त्रियों के लिए मिलों में कार्य करने के लिए ११ घंटे निर्धारित किए । इसमें १।। घंटे का

अवकाश भी निश्चित है ।[1] १९३४ में पारित एक अधिनियम ने कार्य करने के घंटों को घटा कर १० कर दिया था ।[2] इसी वर्ष पारित एक अन्य अधि-नियम द्वारा स्त्रियों के मिलों में कार्य करने के घंटे सप्ताह में ५४ कर दिए गए । इसी प्रकार १९४८ में पुन: इसमें कमी की गई । इस समय कार्य करने के घंटे ५४ से घटा कर ४८ कर दिए गए तथा स्त्रियों को रात के समय कार्य में लगाना निषिद्ध कर दिया गया ।[3] इन सब सुविधाओं के होने पर भी भारत इस क्षेत्र में उस स्तर पर नहीं पहुंच पाया जिस स्तर पर ब्रिटेन था, यद्यपि इस सम्बन्ध में कानून निर्मित करने के लिए उसने ब्रिटेन का अनुकरण करने का प्रयत्न किया था[4]।

प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त आयोजित 'वाशिंगटन लेबर सभा' में भारत में स्त्री-मजदूरों के सम्बन्ध में भी कुछ सुझाव प्रस्तुत किए थे । इस सभा के निर्णय के अनुसार कार्य करने के घंटे प्रति सप्ताह ७२ से घटा कर ६० कर दिए गए । श्री जोशी के मत में काम करने के घंटे ५४ से अधिक नहीं होने चाहिए ।[5]

श्री चैटर्जी के अनुसार इन सुझावों को भारत में लागू करने से तीन अर्थ निकलते हैं प्रथम कार्य करने के ६० घण्टे अधिकतम हैं, द्वितीय अतिरिक्त घंटों में काम करने की धनराशि, कार्य के स्वभावानुकूल नियत होनी चाहिए तथा तृतीय अतिरिक्त काम की अधिकतम आय । सर मानक जी दादाभाय के मत में ६० घंटे अधिक उत्तम हैं और इसी को अन्तिम उचित समझना चाहिए ।[6] श्री एम०एम० जोशी के मत में ६० घंटे का समय स्त्री और पुरुष के लिए समान रूप से नहीं होना चाहिए अपितु स्त्रियों के लिए केवल ५४ घंटे ही पर्याप्त हैं ।[7]

---

1. Desai, Neera - Women in Modern India, p. 193.
2. Ibid.
3. Ibid.
4. Mukherjee - Labour Legislation in British India, p. 41.
5. First International Labour Conference, Washington, D.C.1920 pp. 167-169.
6. Proceedings of the Council of States, 1921, Vol. I, p. 161.
7. Legislative Assembly Debates, 1921 Vol. I, p. 253.

१ मार्च १६२१ में एक नवीन विधेयक प्रस्तुत हुआ। इस अधिनियम के द्वारा स्त्री-मजदूरों के काम करने के घंटे ११ निश्चित किए गए तथा रात्रि-कार्य निषिद्ध कर दिया गया।

१६३४ में रायल कमीशन की रिपोर्ट में स्त्री-मजदूरों के कार्य करने के घंटों को और भी अधिक घटाने का सुझाव रखा गया। उनका तर्क था कि स्त्रियों को घरेलू कार्य भी संपादित करने पड़ते हैं, तथा शारीरिक शक्ति में भी स्त्रियां पुरुषों से कम हैं।[1] इसके अतिरिक्त कमीशन का सुझाव था कि फैक्टरी में कम से कम एक शिक्षित महिला स्त्री मजदूरों के ऊपर अवश्य होनी चाहिए।[2] कमीशन के अनुसार जहां स्त्री मजदूरों की संख्या अधिक है, वहां उनके ६ वर्ष से कम आयु वाले बच्चों के लिए शिशुगृह भी होने चाहिए।[3] रायल कमीशन का यह सुझाव १६३४ के अधिनियम के रूप में मान लिए गए। इस अधिनियम के अनुसार कार्य करने के घंटे प्रतिदिन १० कर दिए गए। १६४५ में पुन: इस अधिनियम में संशोधन किया गया जिसके अनुसार कार्य के घंटे प्रतिदिन ६ हो गए तथा सप्ताह में ४८।

इस अधिनियम में स्त्रियों के स्वास्थ्य और कल्याण के सम्बन्ध में उचित निर्देशों का अभाव था। इस दोष को दूर करने के लिए १६४८ में एक अन्य अधिनियम पारित किया गया जो १ अप्रैल १६४६ से लागू हुआ। इस अधिनियम ने उपरोक्त बातों के अतिरिक्त ७ बजे शाम से ६ बजे सुबह तक स्त्री मजदूरों का काम करना निषिद्ध कर दिया। अधिनियम ने राज्य सरकारों को यह अधिकार प्रदान किया कि वे आवश्यकतानुसार बोझा ढोने वाली स्त्रियों के लिए बोझे की तौल भी नियत कर दें। इसके अतिरिक्त अधिनियम ने स्त्रियों को संकटमयी जगहों पर नियुक्त करना निषिद्ध कर दिया। अधिनियम में स्त्रियों के लिए अवकाश की भी उचित व्यवस्था की गई। इस अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारों ने जो नियम बनाए, वह एक से नहीं हैं।

---

1. Report, p. 51.
2. Ibid, p. 26.
3. Ibid, p. 66.

भाग ५—स्वतंत्र भारत का संविधान और नारी

सामाजिक विधान की श्रेणी में स्वतंत्र भारत का संविधान नारी अधिकारों की सुरक्षा की दृष्टि से एक अपूर्व प्रयास है। संविधान के द्वारा भारत में प्रजातंत्र के आधारभूत सिद्धान्त स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व की स्थापना की गई है। और इस दृष्टि से संविधान का सबसे बड़ा योगदान है देश की नारियों को समान अधिकार प्रदान करना। संविधान ने अधिकारोंकी संरचना और सुरक्षा की गारंटी के सम्बन्ध में स्त्री और पुरुष में भेद नहीं माना है।

अन्य विभिन्न देशों के संविधानों की भाँति भारत ने भी अपने संविधान में एक प्रस्तावना का आयोजन किया है। यह प्रस्तावना भारतीय संविधान के मूलभूत उद्देश्य की ओर इंगित करती है। संविधान-निर्माण के समय स्वर्गीय प्रधान-मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने संविधान सभा में एक "उद्देश्यात्मक प्रस्ताव" प्रस्तुत किया था। उसी प्रस्ताव के सार रूप पारित संविधान में एक प्रस्तावना सम्मिलित की गई है, जिससे भारतीय संविधान के लक्ष्य पर प्रकाश पड़ता है। इस प्रस्तावना में कहा गया है :—

" हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्णप्रभुत्व सम्पन्न, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने,

" तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्रदान करने के लिए,

" तथा सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए ,

" दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख २६ नवम्बर १९४९ ई० को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"[१]

संविधान की इस प्रस्तावना से स्पष्ट है कि संविधान का निर्माण "भारत के लोग" करते हैं अर्थात इसके निर्माण में देश की जनता का हाथ है। "भारत के लोग" में केवल पुरुष वर्ग ही नहीं, वरन् स्त्रियां भी सम्मिलित हैं। यह प्रस्तावना लिंग समता को सिद्धान्त रूप में स्वीकार करती है तथा प्रत्येक नागरिक को, चाहे वह किसी भी लिंग का हो, समान रूप से "सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता" प्रदान करती है।

यद्यपि संविधान की यह प्रस्तावना कानूनी रूप में संविधान का भाग नहीं कही जा सकती है और इसलिए न्यायालय में इसको चुनौती दी जा सकती है ~~ही नहीं~~, परन्तु फिर भी यह संविधान का एक अविच्छिन्न अंग है तथा संविधान की भावना का द्योतक है। श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी ने संविधान सभा में इस विषय में कहा था कि —"...... उद्देश्यात्मक प्रस्ताव...... तथा प्रस्तावना संविधान में कानूनी मान्यता प्राप्त करने के लिए नहीं है। परन्तु वे, वास्तव में, संविधान की जीवन-शक्ति हैं जिसे हम लोगों ने यहाँ निर्मित किया है।"[१] प्रस्तावना इस प्रकार गांधीवाद और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की भावना को परिलक्षित करती है।

संविधान की यह प्रस्तावना न केवल यह सिद्ध करती है कि इसका निर्माण "भारत के लोग" करते हैं, वरन् यह संविधान के "उद्देश्य, योजना की रूपरेखा तथा मार्ग की ओर इंगित करती है, जिस पर हम लोग जा रहे हैं।"[२] और यह मार्ग है प्रजातंत्र की स्थापना, जिसके अन्तर्गत स्त्री और पुरुष, समाज की दो अविच्छिन्न इकाई, समान रूप से अधिकारों का उपभोग करते हैं।

भारतीय संविधान की यह प्रस्तावना निरर्थक नहीं है। इसमें निहित,

---

1. Smt. Purnima Banerji - Constituent Assembly Debate Vol. X, no. 10, p. 451.
2. Pt. J.L. Nehru - Constituent Ass-embly Debate, Vol. I, p.57.

सारगर्भित बातों की पुष्टि तथा कानूनी मान्यता का आवरण देकर संविधान का भाग ३ प्रस्तावना के सत्य को साकार करता है। भारतीय संविधान की नागरिकों को सबसे बड़ी देन उनके मौलिक अधिकार हैं। अधिकार व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक शर्तें हैं। संविधान में इनका समावेश देश के शासन को स्वेच्छाचारी होने से रोकता है। इस प्रकार मौलिक अधिकारों के सिद्धान्त में ही शासन का सीमित होना अन्तर्निहित है।

मौलिक अधिकारों का विचार नवीन नहीं है। इसका जन्म १७ वीं तथा १८ वीं शताब्दी में माना जा सकता है। जॉन लॉक के "प्राकृतिक अधिकारों" के सिद्धान्त में मौलिक अधिकारों की भावना देखी जा सकती है। लॉक के इस सिद्धान्त से प्रभावित सर्व प्रथम संविधान था अमेरिका का। आज संसार के लगभग सभी प्रगतिशील देशों के संविधान में इस प्रकार के अधिकार किसी न किसी रूप में अवश्य वर्णित हैं।

भारतीय संविधान भी इन मानविकीय आवश्यक दशाओं को प्रदान करता है। न केवल इसे संविधान में विधिवत् वर्णित किया गया है, वरन् न्यायालय द्वारा मान्यता भी दी गई है। अर्थात् उनकी रक्षा के लिए न्यायालयों की सहायता ली जा सकती है। श्री दुर्गादास बसु के शब्दों में संविधान में वर्णित मौलिक अधिकार " व्यक्ति के व्यक्तिगत लिखित तथा गारंटीयुक्त अधिकारों और समाज के सामूहिक हित के मध्य संतुलन बनाए रखते हैं।"[1] भारतीय संविधान के भाग ३ में वर्णित यह मौलिक अधिकार इस प्रकार हैं :-

कानून के समक्ष सब नागरिक समान हैं। सबको समान रूप से कानून का संरक्षण प्राप्त है।[2] अनुच्छेद १५ इस समानता को और भी अधिक स्पष्ट करता है। इसके अनुसार राज्य, लिंग, जाति आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा । संविधान में कहा गया है कि सब नागरिकों को दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों, सड़क, कुएं, तालाब आदि

---

1. Basu, D.D. - 'Commentary on the Constitution of India' Vol.I p. 75 (3rd ed.).
2. Article 14 of the Constitution of India.

का उपयोग करने का बराबर अधिकार होगा ।[1] इसी प्रकार सरकारी नौकरियों में भी समानता का अधिकार दिया गया है । कोई भी नागरिक धर्म, जाति और लिंग आदि के आधार पर सरकारी पदों व नौकरियों से वंचित नहीं किया जायेगा[2]। इस प्रकार भारतीय संविधान स्पष्ट रूप से लिंग-समता को स्थापित करता है और नारी को भी विकास की सुविधाएं समान रूप से प्रदान करता है । यही नहीं संविधान में यह भी स्पष्ट किया गया है कि राज्य स्त्रियों तथा बच्चों की सुविधा के लिए विशेष नियम बनाने का अधिकारी है ।

इसके अतिरिक्त संविधान प्रत्येक नागरिक को भाषण और विचार प्रकट करने की, शांति पूर्ण बिना हथियार सभा करने की, संस्था तथा संघ बनाने की, भारत की सीमा में बिना रोक-टोक भ्रमण करने की, भारत की सीमा में कहीं भी निवास करने या बस जाने की, सम्पत्ति के अर्जन, धारण तथा व्यय करने की, किसी भी प्रकार का पेशा, व्यवसाय-व्यापार या अन्य कार्य करने की स्वतंत्रता देता है ।[3] साथ ही असामाजिक तत्त्वों से रक्षा के हेतु यह अधिकार असीमित न होकर सीमित कर दिए गए हैं । उदाहरणार्थ राज्य, ~~[illegible]~~ राज्य की सुरक्षा , विदेशी राज्यों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध शिष्टाचार या सदाचार के हित में भाषण और विचार प्रकाशन की स्वतंत्रता पर न्यायोचित रोक लगा सकता है । इसी प्रकार सार्वजनिक हित की दृष्टि से सम्मेलन तथा सभा करने की स्वतंत्रता पर भी युक्तिसंगत रोक लगायी जा सकती है । राज्य ऐसे संघों और समुदायों को जिनका प्रयोजन राज्य के कार्य में बाधा डालता है, निषेध कर सकता है । व्यवसाय और पेशे की स्वतंत्रता पर भी राज्य को युक्तिसंगत प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार है ।[4] इलाहाबाद की एक वेश्या हुस्न बाई के मामले में न्यायमूर्ति सहाय ने उसके पेशे पर युक्ति संगत प्रतिबन्ध लगाने के आधार पर "स्त्रियों तथा कन्याओं का

---

1. Article 15 of the Constitution of India.
2. " 16 " "
3. " 19 " "
4. Ibid.

मौलिक व्यापार निरोधक अधिनियम" के विरुद्ध , उसकी अपील को रद्द कर दिया था ।[१]

नागरिकों की स्वतंत्रता पर लगाए गए इस प्रकार के बन्धन आलोचना के पात्र बने हैं । संविधान सभा में पंडित कुंजरू, श्री डी०एस० से तथा श्री के०टी० शाह ने इसकी कठोर आलोचना की थी । पं० कुंजरू के मत में" इतने सारे बन्धनों के कारण ये अधिकार न्याय प्राप्त करने के योग्य नहीं रह गए हैं ।"[२] श्री सेठ के अनुसार "सार्वजनिक हित की दृष्टि से" शीर्षक की आड़ में सरकार नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अनुचित बन्धन लगा सकती है । अतः प्रो० शाह का कथन है कि संविधान निर्माताओं ने असाधारण परिस्थिति के भय से इस अनुच्छेद को बन्धनों से लाद दिया है । श्री कुसुम सिंह ने इन बन्धनों में कमी करने के उद्देश्य से एक संशोधन भी प्रस्तुत किया था ।[३]

१५ सितम्बर १९४९ को डा० अम्बेदकर ने मौलिक अधिकारों में कुछ नवीन अधिकारों का समावेश किया जो संविधान के अनुच्छेद २२ के रूप में देखे जा सकते हैं । डा० अम्बेदकर ने उसे चार उप - विभागों[४] के अन्तर्गत इस प्रकार रखा था:—

(१) किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार करने के बाद जितनी जल्दी हो सकेगा उसे गिरफ्तारी का कारण बताया जायेगा तथा उसे अपना वकील करने की स्वतंत्रता दी जायेगी ।

(२) गिरफ्तार करने के बाद २४ घंटे के अन्दर उसे मैजिस्ट्रेट के सम्मुख पेश किया जायेगा, और उसकी अनुमति से ही उसे अधिक समय तक रोका जायेगा ।

---

1. 'National Herald' - 27-5-1958, p. 7.
2. C.A.D. Vol. III, p. 401 (29th April 1947).
3. C.A.D. Vol. VII no. 17 (1st December, 1948).
4. C.A.D. Vol. IX no. 35, pp. 1496-97.

(३) परन्तु यह नियम दो प्रकार के व्यक्तियों के सम्बन्ध में लागू नहीं होगा - १- जो व्यक्ति उस समय भारत के अन्य देशीय घोषित शत्रु होंगे और २- जो किसी नजरबन्दी कानून के अन्तर्गत बन्दी होंगे।

(४) संसद को इसके अन्तर्गत यह अधिकार दिया गया है कि वह ३ महीने के पश्चात् भी अभियुक्त को गिरफ्तार रखने के लिए कानून पास कर सकती है।

संविधान सभा में इस अनुच्छेद के विषय में तीव्र मतभेद रहा। अधिकांश सदस्य इन सुझावों से संतुष्ट नहीं थे।[१]

भारत के संविधान में यह व्यवस्था भी की गई है कि कोई मनुष्य दूसरे का शोषण नहीं कर सकेगा।[२] इस सम्बन्ध में स्त्रियों तथा बच्चों का क्रय-विक्रय या उनका किसी प्रकार से शोषण करना अपराध समझा जायेगा। इस प्रकार संविधान की इस धारा के अन्तर्गत स्त्रियों की सुरक्षा का विशेष ध्यान रखा गया है। प्रो०के०टी० शाह[३] तथा गियानी गुरमुख सिंह मुसाफिर[४] इस धारा को और भी अधिक स्पष्ट करने के लिए इसमें "देवदासी" तथा "वेश्यावृत्ति" शब्दों को जोड़ देना चाहते थे। परन्तु अपने प्रयास में वे सफल न हो सके।

भारत एक धर्मप्रधान देश है। धर्म ही पुरातन सदियों में संघर्ष का कारण भी रहा है। भारतीय संविधान ने देश के विभिन्न धर्मावलम्बियों को अपने धर्म को मानने, प्रचार करने तथा आचरण करने का अधिकार देकर एक धर्म निर-पेक्ष राज्य की स्थापना की है। परन्तु इस प्रकार का अधिकार असीमित नहीं है। धर्म के नाम पर प्रचलित सामाजिक कुरीतियां जो राज्य और सामाजिक उन्नति के मार्ग में बाधक हैं, पर राज्य नियंत्रण लगा सकता है।[५]

---

1. C.A.D. Vol. IX, pp. 705-6.
2. Article 23 of the Constitution.
3. C.A.D. Vol. VII, p. 804.
4. Ibid, p. 805.
5. Sharma, M.P. - The Government of Indian Republic (Kitab Mahal, Allahabad 1955), p. 54.

संविधान की यह धारा भी आपसी मतभेदों का कारण रही थी।[1] प्रो०के०टी० शाह, श्री दुसैन तथा श्री लोकनाथ मिश्रा ने "प्रचार"[1] शब्द को हटाने के पक्ष में कहा। उनके मत में देश के पिछले इतिहास से विदित है कि इस अधिकार का अनुचित प्रयोग किया गया है। श्री मिश्रा ने स्पष्ट कहा कि धर्म प्रचार को मौलिक अधिकार का रूप देकर भारत के "प्राचीन विश्वास और संस्कृति के" साथ अन्याय किया जा रहा है।[2] उनके शब्दों में यह अनुच्छेद" संविधान का काला भाग " तथा "हिन्दुओं की गुलामी का चार्टर" है।[3]

श्री सन्थानम् ने श्री मिश्रा के विरोध में कहा कि यह धारा "धार्मिक स्वतंत्रता " पर नहीं वरन्" धार्मिक सहिष्णुता" पर है।[4] श्री मुन्शी के मत में संविधान में इसका समावेश भारत के ईसाई समुदाय को संतुष्ट करने के लिए किया गया है।[5] जो भी हो, भारत ने संविधान के माध्यम से अपने प्रत्येक नागरिक— नर और नारी, को धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार दिया है।

यही नहीं, धार्मिक अधिकार केवल बहुसंख्यक जाति को ही प्राप्त नहीं होंगे। संविधान में कहा गया है[6] कि अल्पसंख्यक जातियाँ अपने धर्म, भाषा तथा लिपि की रक्षा कर सकेंगी। वह अपनी इच्छानुसार शिक्षा संस्थाओं की स्थापना एवं उनका संचालन कर सकेंगी और सरकार ऐसी संस्थाओं को आर्थिक सहायता देने में भेदभाव नहीं करेगी। अन्त में सरकार द्वारा संचालित शिक्षा संस्थाओं में हर धर्म, जाति के बच्चे बिना किसी रोक-टोक के शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे। संविधान सभा में श्री भार्गव ने" अल्पसंख्य " शब्द के स्थान पर"नागरिक" शब्द को रखने की माँग रखी[7]। जबकि श्री डी०एस० सेठ के मत में इस प्रकार के अधिकार का माध्यम

---

1. Article 25 of the Constitution.
2. C.A.D. Vol. VII, p. 823.
3. C.A.D. Vol. VII, p. 822.
4. Ibid, p. 834.
5. Ibid, p. 837.
6. Article 29, 30 of the Constitution.
7. C.A.D. Vol. VII. p. 897.

केवल भाषा होनी चाहिए, धर्म और जाति नहीं ।[1]

इसके अतिरिक्त संविधान में भारत के नागरिकों को सम्पत्ति का अधिकार[2] भी दिया गया है । सरकार किसी की चल या अचल-सम्पत्ति तब तक नहीं ले सकेगी, जब तक उसे प्राप्त करने के लिए उचित क्षतिपूर्ति न दे दिया जाय । संविधान की इस धारा पर संविधान सभा में विशद वाद-विवाद हुआ । विभिन्न सदस्यों द्वारा लगभग ४४ संशोधन प्रस्तुत किए गए जिनमें से केवल ४ स्वीकृत हुए ।[3] कुछ सदस्य व्यक्तिगत सम्पत्ति के पक्ष में थे तथा अन्य व्यक्तिगत सम्पत्ति का पूर्ण बहिष्कार कर वर्ग विहीन समाज की स्थापना करना चाहते थे । वर्तमान संविधान ने पं० नेहरू के शब्दों में इन दोनों उग्रवादी मतों -- व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार तथा समाज का हित, के मध्य एक अपूर्व सामंजस्य स्थापित किया है ।[4]

संविधान द्वारा प्रदत्त उपरोक्त अधिकार निश्चय ही प्रजातंत्रात्मक समाज की स्थापना करते हैं । परन्तु इन मौलिक अधिकारों के क्षेत्र में संविधान का सबसे महत्वपूर्ण अधिकार है संवैधानिक उपचारों का अधिकार,[5] जिसके अभाव में उपरोक्त सभी अधिकार निरर्थक हो जाते हैं । संविधान द्वारा प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार दिया गया है कि वह अपने मूल अधिकारों की रक्षा के लिए बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा, उत्प्रेषण आदि के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय की शरण ले सकता है । डा० अम्बेदकर ने "संविधान की आत्मा तथा हृदय"[6] कह कर इसका स्वागत किया है ।

उपरोक्त अधिकार असीमित और अमर्यादित नहीं हैं । संविधान-निर्माताओं के समक्ष व्यक्ति का व्यक्तिगत हित तथा राज्य का सामूहिक हित दोनों ही महत्वपूर्ण थे । दोनों के मध्य एक उत्तम मार्ग का प्रतिपादन कर संविधान निर्माताओं ने नागरिकों को इन मौलिक अधिकारों के उपभोग का अधिकार भी दिया है, तथा साथ ही संकटकालीन अवस्था में समाज व राज्य के हित को

---

1. Ibid.

2. Article 31 of the Constitution.

3. C.A.D. Vol. IX no. 31 and 32, 10th and 12th September,1949.

प्राथमिकता देते हुए इन पर न्यायोचित मर्यादाएं व स्थगन की भी अपूर्व व्यवस्था की है।

मौलिक अधिकारों के साथ-साथ "राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों"[१] के एक पृथक अध्याय के रूप में जोड़ कर भारतीय संविधान ने संघ तथा राज्यकीय सरकारों को जनता के प्रति उनके कर्त्तव्यों की स्मरण कराने का विशेष उपबन्ध किया है। कल्याणकारी राज्य की भावना व आदर्श का अधिक प्रचार होने के कारण इस प्रकार के सामाजिक तथा आर्थिक उपबन्धों का संविधान में समावेश सामान्य बात समझी जाने लगी। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् निर्मित अधिकतर संविधानों, जैसे स्पेन (१९३१), आयरलैंड (१९३७), ब्राज़िल (१९४६) तथा इटली (१९४७) ने किसी न किसी रूप में इस प्रकार के राज्य के पथ प्रदर्शक सिद्धान्तों का समावेश किया है। इस प्रकार के सिद्धान्तों के समावेश के पीछे कल्याणकारी राज्य के मानविकीय अधिकारों को संविधान में पिरोने का उद्देश्य है।[२] भारतीय संविधान के निर्माता इन उद्देश्यों के साथ साथ महात्मागांधी के आदर्शों से भी प्रभावित प्रतीत होते हैं।

भारतीय संविधान में वर्णित इन सिद्धान्तों को चार शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है :- आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी, शासन सुधार सम्बन्धी तथा अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा सम्बन्धी। इनके अन्तर्गत विभिन्न सिद्धान्तों के साथ-साथ अनेक ऐसे तत्वों का वर्णन किया गया है जो स्त्री और पुरुष, दोनों पर सामान्य रूप से लागू होते हैं। यह तत्व है :-

राज्य ऐसी व्यवस्था करेगा जिससे प्रत्येक नर और नारी को समान रूप से जीविका के साधन प्राप्त हों।[३] स्त्री और पुरुष को समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था का प्रयत्न होगा।[४]

---

1. Part IV of the Constitution.
2. "Constitutions and Constitutional Trends since world war II" Ed. By C.J. Freidrich, p. 23.

श्रमिक पुरुषों तथा स्त्रियों के स्वास्थ्य और शक्ति तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो, तथा आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे व्यवसायों में न लगाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हों।[1] राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर यह प्रयत्न करे कि सब व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार काम पा सकें, शिक्षा प्राप्त कर सकें, एवं बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी तथा अन्य ऐसी अवस्थाओं में, जब वह किसी कारणवश जीविका कमाने में असमर्थ हों, राज्य की ओर से सहायता प्राप्त हो सके।[2] राज्य ऐसा प्रयत्न करे कि व्यक्तियों को मानवोचित अवस्थाओं में ही काम करना पड़े तथा स्त्रियों को प्रसूतावस्था में सहायता प्राप्त हो सके।[3]

संविधान के भाग ४ में वर्णित ये तत्व अपनी शैशवावस्था में संविधान सभा में आलोचना के पात्र रहे थे। प्रथम तो इस कारण क्योंकि ये सिद्धान्त मौलिक अधिकारों के समान न्यायालयों में अपील करने के योग्य नहीं रखे गए हैं, और इसलिए ये मात्र "पवित्र अभिव्यक्तियाँ"[4] ही हैं। प्रो० के०टी० शाह के शब्दों में "यह एक बैंक का चैक है, जिसे जब चाहे भुनाया जा सकता है।"[5] इन्हें अनिश्चित तथा "व्यर्थ"[6] की संज्ञाएं भी दी गई हैं। श्री महबूब अली बेग के अनुसार ये संसदीय प्रजातंत्र के सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं।"[7]

इसके पक्ष में यह कहा जा सकता है कि ये मात्र "शुभकामनाएं" न होकर महान् सिद्धान्तों का एक अध्याय हैं।[8] श्री कृष्णामूर्ति राव के मत में इनमें समाज-

---

1. Art. 39 (e).
2. Art. 41 of the Constitution.
3. Art. 42 " "
4. Nazimuddin Ahmad, C.A.D. Vol. VII, p. 225.
5. Ibid, p. 479.
6. Kazi Syed Karimuddin, C.A.D. Vol. VII, p. 473.
7. Ibid, pp. 488-89.
8. Prof. Saksena, C.A.D. Vol. VII, p. 482.

वादी सरकार के कीटाणु निहित हैं ।[1] डा० अम्बेडकर के अनुसार यद्यपि इनके पीछे कानून की शक्ति नहीं है परन्तु फिर भी संविधान-निर्माताओं ने आर्थिक प्रजातंत्र के किसी एक आधार को संविधान में न लिख कर यह जनता की सद्इच्छा पर छोड़ दिया है कि वे जैसे चाहें आर्थिक प्रजातंत्र के उद्देश्य पर पहुँचें ।[2] और इस दृष्टि से नीति के निर्देशक तत्व संविधान की अपूर्व व्यवस्था हैं । यह उल्लेखनीय है कि अब तक कई सरकारों ने कुछ सीमा तक इनके अनुसार चलने का प्रयत्न किया है ।

उपरोक्त वर्णित अधिकार व तत्व मानविकीय विकास की आवश्यक दशाएं हैं, जिनको संविधान ने निष्पक्ष रूप से स्त्री और पुरुष दोनों को प्रदान किया है । परन्तु भारतीय संविधान का सबसे बड़ा योगदान है नारी को मतदान देने तथा चुनाव में खड़े होने का अधिकार प्रदान करना । ~~भारत के स्वतंत्र होने तक अनेक प्रजातंत्रात्मक देश, अपने यहाँ के स्त्री वर्ग को यह अधिकार प्रदान करके~~ । भारत के स्वतंत्र होने तक अनेक प्रजातंत्रात्मक देश, अपने यहाँ के स्त्रीवर्ग को यह अधिकार प्रदान कर चुके थे । चूंकि भारत एक परतंत्र देश था तथा यहाँ का नारीवर्ग सामाजिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ था, अतः भारतीय नारियों के मध्य राजनीतिक चेतना बहुत देर में आई ।

भारत के स्वतंत्र होने से पूर्व भी नारी-मताधिकार के लिए प्रयत्न किए गए थे । १९१७ में जब श्री मान्टैग्यू संवैधानिक सुधार के पूर्व परिस्थितियों का अध्ययन करने भारत आए थे, उन्हें एक 'अखिल भारतीय महिला दल' का सामना करना पड़ा था । दल ने अपने मानपत्र में स्पष्ट लिखा था कि "भारतवासी अपने नारीवर्ग को उत्तरदायी एवं मान्य नागरिक समझते हैं, अतः हम अतिआवश्यक दावा करते हैं कि प्रतिनिधित्व सम्बन्धी धाराओं को निर्मित करते समय हमारे लिंग को मतदान तथा जनता की सेवा के अयोग्य न समझा जाए ।"[3] तत्कालीन

---

1. Ibid, p. 382.
2. Dr. Ambedkar, C.A.D. Vol. VII, p. 494.
3. Nehru, Shyam Kumari - Our Cause, p. 352.

महिला नेता श्रीमती हीराबाई टाटा ने भी जोरदार शब्दों में इसी भाव की अभिव्यक्ति की थी जबकि उन्होंने कहा था कि "१६१८ तक के सभी विज्ञप्तियों में आया शब्द "व्यक्ति" तथा "व्यक्तियों" स्त्री और पुरुष दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ था, केवल पुरुषों के लिए नहीं, अतः देश की किसी भी सुधारवादी योजना में स्त्रियों को बच्चों, विदेशियों और पागलों की श्रेणी में नहीं रखना चाहिए ।"[1] इन प्रयत्नों के होते हुए भी जब मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड योजना प्रकाशित हुई, उसमें कहीं भी नारी-मतदान का निर्देश नहीं था ।

१६१६ में श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीमती हीराबाई टाटा तथा श्रीमती एनी बेसेन्ट ने एक दल के रूप में भारतीय नारियों का प्रतिनिधित्व कर इंगलैण्ड में संयुक्त सांसदीय समिति के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत किए । बम्बई ने महिलाओं ने आमसभा करके साउथबर्ग समिति की, जो भारतीय परिस्थितियों के अध्ययन हेतु निर्मित की गई थी तथा जिसमें ८०० महिलाओं के हस्ताक्षरयुक्त विनय ठुकरा दी गई थी, की भर्त्सना की । इन सब प्रयत्नों का परिणाम अन्ततः केवल इतना ही हुआ कि नवीन सुधारवादी योजना में प्रान्तीय सरकारों को अपने अपने प्रान्तों में स्त्रियों के मतदान की समस्या को सुलझाने का अधिकार दे दिया गया । इस क्षेत्र में मद्रास प्रथम राज्य था जिसने १६२१ में अपने प्रदेश के नारीवर्ग को मतदान का अधिकार दिया था । उसी वर्ष बम्बई प्रान्त में भी महिलाओं को यह अधिकार प्राप्त हो गया । तत्पश्चात् १६२३ में युनाइटेड प्राविन्स, १६२५ में बंगाल तथा १६२६ में पंजाब १६२७ में सेन्ट्रल प्राविन्स तथा १६२६ में बिहार ने यह अधिकार प्रदान किया । १६२३ में केन्द्रीय व्यवस्थापिका ने महिलाओं को भारतीय व्यवस्थापिका सभाओं में मतदान का अधिकार दिया ।

परन्तु यह अधिकार निर्मूल सिद्ध हुए और महिलाओं की मांगों की पूर्ति में असमर्थ थे, क्योंकि ब्रिटिश भारत में प्रदत्त इस अधिकार के साथ दो शर्तें जुड़ी थीं —प्रथम यह कि वही व्यक्ति मतदान का अधिकारी है जो अपने नाम

---

1. Herabai Tata - A Short Sketch of Indian Women's Franchise Work, p. 3.

की निश्चित सम्पत्ति का स्वामी है तथा द्वितीय जिसे स्नातक परीक्षा पास किए कुछ सात वर्ष हो गए हों। इन शर्तों ने न केवल सामान्य जनता और मध्य वर्ग को ही, अपितु भारी संख्या में नारियों को मताधिकार से वंचित कर दिया था क्योंकि न तो उनके पास पर्याप्त सम्पत्ति ही थी और न ही शिक्षा।

पुन: १९३१ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने यह घोषित किया कि "प्रत्येक नागरिक बिना धर्म, जाति और लिंग के आधार पर कानून की दृष्टि में समान है। अत: सार्वजनिक नौकरियों, आफिस, शक्ति, सम्मान तथा किसी भी पेशे के सम्बन्ध में धर्म, जाति और लिंग के आधार पर किसी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं किया जायेगा।"[१]

१९३५ के भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत स्त्रियों को कुछ शर्तों के साथ मताधिकार दिया गया था। ये शर्तें इस प्रकार थीं :- कोई भी स्त्री जिसने २१ वर्ष की आयु पूरी कर ली है, वोट देने की अधिकारी है, यदि --

(१) उसके पास कुछ सम्पत्ति है तथा पुरुषों के समान कर देने की योग्यता रखती हो,

(२) वह किसी भी भारतीय भाषा में लिख-पढ़ सकती है अथवा देश के किसी स्थान की भाषा का सामान्य ज्ञान रखती है,

(३) वह जो किसी ऐसे व्यक्ति की पत्नी अथवा विधवा है, जिनके पति सम्पत्ति के स्वामी थे अथवा योग्यता रखते थे।

(४) वह जो ऐसे व्यक्ति की पत्नी अथवा विधवा है, जिनके पति पिछले आर्थिक वर्ष में आवश्यक आयकर देते रहे थे।

(५) वह जो ऐसे व्यक्ति की पत्नी अथवा विधवा है, जिनके पति अवकाश प्राप्त अधिकारी हैं, अथवा राजा की किसी भी सैनिक शक्ति में सिपाही के पद पर रहे हों।

(६) इस ऐक्ट के अनुसार सम्प्रदाय के आधार पर महिलाओं के लिए कुछ सीटें सुरक्षित की गई थीं।

---

1. National Planning Committee - Women's Role in Planned Economy, p. 29.

यद्यपि यह अधिनियम महिलाओं को मतदान का अधिकार प्रदान करता है, परन्तु इसके साथ जुड़ी अनावश्यक शर्तों के कारण महिलाओं में भारी असंतोष था । तत्कालीन महिला आन्दोलन के तीन अग्रगण्य संगठनों - अखिल भारतीय महिला सम्मेलन, भारतीय महिला संगठन, तथा भारत की महिला राष्ट्रीय समिति ने इसकी कठोर आलोचना की । उनका तर्क था कि सम्पत्ति की शर्त भारत जैसे निर्धन देश के लिए अनावश्यक है तथा अनेक महिलाओं को मताधिकार से वंचित करती है । इसी प्रकार सीटों को सुरक्षित करना भी अप्रजातंत्रात्मक है । इसके अतिरिक्त महिलाओं का यह भी तर्क था कि "पत्नी" अथवा "विधवा" शब्दों का अर्थ है कि ऐक्ट स्त्री का पृथक अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता ।[१]

स्वतंत्र भारत का नवीन संविधान इन दोषों को पूर्णतया दूर करता है । भारत ने संविधान के माध्यम से वयस्क मताधिकार का सिद्धान्त अपनाया है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक स्त्री-पुरुष को जिसने २१ वर्ष की आयु पूरी कर ली है, मतदान का अधिकार है । संसद की सदस्यता के लिए भी कुछ शर्तें रखी गई हैं जो स्त्री और पुरुष के लिए सामान्य रूप से लागू होती हैं । ये शर्तें हैं :-

(१) वह भारत का नागरिक हो ।

(२) यदि राज्यसभा के लिए खड़ा हुआ है तो उसने ३० वर्ष की आयु पूरी कर ली हो तथा लोकसभा के लिए २५ वर्ष की आयु पूरी करता हो,

(३) तथा उन सब शर्तों को पूरा करता हो, जिसे इस सम्बन्ध में संसद ने कानून के रूप में बनाया हो ।

इस प्रकार नवीन संविधान लिंग-समानता के सिद्धान्त को स्थापित करता है । यद्यपि नारी-राजनीतिज्ञों की संख्या भारत में अन्य देशों की तुलना में न्यून है, तथापि यह उल्लेखनीय है कि भारत में स्त्रियों ने उत्तरदायित्वपूर्ण उच्च सरकारी

---

1. Nehru, Shyam Kumari - Our Cause (Ed.) pp. 357-358.

पदों को सुशोभित किया है । कांग्रेस में स्वयं चार महिला अध्यक्ष रह चुकी हैं — १९१७ में — डा० एनी बेसेन्ट, १९२५ में — श्रीमती सरोजिनी नायडू, १९३३ में — नीली सेन गुप्ता तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त १९५९ में श्रीमती इन्दिरा — गांधी । राज्यपाल जैसे उच्च सरकारी पद को सुशोभित करने वाली महिलाएं थीं — श्रीमती सरोजिनी नायडू, पद्मजा नायडू तथा विजयलक्ष्मी पंडित । श्रीमती पण्डित राजदूत तथा संयुक्त राष्ट्र की प्रतिनिधि तथा समिति की अध्यक्ष भी रह चुकी हैं । इसी प्रकार महात्मागांधी की अनन्य अनुयायी राजकुमारी अमृत-कौर केन्द्रीय संसद् में स्वास्थ्य मंत्री के पद पर रही थीं तथा श्रीमती अन्ना चांडी (केरल) को उच्च न्यायालय का जज होने वाली प्रथम भारतीय महिला का श्रेय प्राप्त है । आज श्रीमती इन्दिरा गांधी के रूप में प्रधानमंत्री पद पर भी महिला आरूढ़ हैं । नव निर्मित प्रजातंत्र के लिए यह संस्थाएं निश्चित रूप से प्रशंसनीय हैं ।

इस प्रकार भारतीय संविधान, जहां तक अधिकारों का सम्बन्ध है, स्त्री और पुरुष, प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार प्रदान करता है । लक्ष्मी मेनन के अनुसार "भारत की महिलाओं ने अपने प्रथम आन्दोलन के लगभग ३० वर्ष के उपरान्त समान अधिकारों को प्राप्त कर लिया, जबकि अन्य पश्चिमी देशों में इसके लिए अधिक समय लगा ।"[१]

आज नारी पुरुष के समान है । निश्चय ही यह एक महान् उपलब्धि है ।" मानव जाति के दोनों अंगों की, समान मान्यता के वैध और प्राचीन सिद्धान्त को पुन: स्थापित करना, तथा राज्य द्वारा मिल के इस मत को कि एक लड़की उतनी ही गिनी जानी चाहिए, जितना कि एक लड़का, स्वीकार करना अन्य परिवर्तनों के साथ-साथ हमारे युग का सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करता है ।"[२]

---

1. UNESCO - The Status of Women in South Asia, p. 87.
2. Strachey, Ray (Ed.) Our Freedom and its results, p. 243.

अध्याय – ६

बीसवीं शताब्दी के स्वातंत्र्य-संग्राम में नारी का योगदान

अध्याय - ६

बीसवीं शताब्दी के स्वातंत्र्य-संग्राम में नारी का योगदान

उन्नीसवीं शताब्दी सामाजिक सुधारों व पुनर्जागरण की शताब्दी थी। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थीयोसाफिकल सोसाइटी तथा रामकृष्ण मिशन जैसे महान् धार्मिक आन्दोलनों का आविर्भाव, पतित भारत के उत्थान के लिए समर्थ था। ये आन्दोलन, जो कि स्वयं ब्रिटिश सम्पर्क तथा पाश्चात्य शिक्षा की उपज थे, अंग्रेजी शासन के विरुद्ध एक तीव्र प्रतिक्रिया स्वरूप भी समझे जा सकते हैं। तत्कालीन परिस्थिति के संदर्भ में सामाजिक सुधारों का श्रेय इन आन्दोलनों को प्राप्त है। इन निर्माणकारी तत्वों ने बीसवीं शताब्दी में राजनीतिक जागरण के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी, भारत को संगठित होकर संयुक्त मोर्चा लेने के योग्य बना दिया था।

१८५७ की क्रान्ति के अवशेष भी उचित अवसर की खोज में थे। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में कुछ ऐसी घटनाओं का उदय हुआ जिन्होंने इस अग्नि को और भी अधिक भड़का दिया। १८९२ में "इण्डियन काउन्सिल ऐक्ट" के रूप में सरकार ने लगभग ३१ वर्षों के दीर्घ काल के पश्चात् भारत में सुधार करने के लिए कदम उठाया। यह ऐक्ट यद्यपि दीर्घ संघर्ष तथा वर्षों की प्रतीक्षा के बाद प्राप्त हुआ था, परन्तु इसने भारतीयों को कोई ठोस अधिकार नहीं दिए। इस ऐक्ट ने भारतीयों को जो अधिकार प्रदान किए उनके साथ ऐसे बन्धन व शर्तें रखीं जिनके कारण उनका उपभोग नहीं किया जा सकता था। अतः १८९२ के "इण्डियन काउन्सिल ऐक्ट" से भारतीयों को निराशा ही हाथ लगी। १८९५ में लोकमान्य तिलक बन्दी बना लिए गए। १८९६-९७ में अकाल तथा प्लेग का भारी प्रकोप हुआ। शिक्षित परन्तु असंतुष्ट जन-समुदाय शासन में एक भाग चाहता था, उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति अभी नहीं हुई थी। इन सब तत्वों ने मिलकर ब्रिटिश शासन को

अप्रिय बना दिया था ।

लगभग इसी समय भारत के राजनैतिक मंच पर लार्ड कर्ज़न का आगमन हुआ । लार्ड कर्ज़न की भारत के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी । ११ फरवरी १९०५ में कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह का उद्घाटन करते हुए कर्ज़न ने स्पष्ट शब्दों में भारत की भर्त्सना की और भारतीयों को उच्च पदों के अयोग्य ठहराया । कर्ज़न की इस भारत विरोधी-नीति का परिणाम सरकार के प्रति खुल्लम खुल्ला विरोध के रूप में प्रकट हुआ ।

देश का एकमात्र राष्ट्रीय संगठन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस भी इस समय महान् परिवर्तनों से गुज़र रही थी । स्थापना के लगभग २० वर्ष बाद तक कांग्रेस उन्हीं उद्देश्यों पर चलती रही, जिसका निर्धारण उसके संस्थापकों ने किया था । इन प्रारंभिक वर्षों में कांग्रेस का प्रयत्न ब्रिटिश शासन में भारतीय प्रतिनिधित्व प्राप्त करना था, स्वशासन की मांग नहीं ।[1] इस समय कांग्रेस अध्यक्ष फीरोजशाह

---

1. This outlook may be found expressed in the Statement of Romesh Chandra Dutt, President of the Congress in 1890- "The People of India are not found of sudden changes and revolutions. They do not ask for new consitutions, issuing like armed Minervas from the heads of legislative jupiters ......They desire to see some Indian members in the Secretary of State's Council, and in the Viceroy's Executive Council representing Indian agriculture and industries. They wish to see Indian members in an Executive Council for each Province. They wish to represent the interests of the Indian people in the discussion of every important administrative question ....
There is a legislative council in each large Indian Province and some of the members of these councils are elected under the Act of 1892....... A Province with 30 districts and a population of 30 millions may fairly have 30 elected members on its Legislative Council. Each district should feel that it has some voice in the administration of one Province." - Dutt, Romesh Chandra, 1901, Preface to "The Economic History of India", Vol. I, "India under Early British Rule, P. xviii.)

मध्यवर्ग तथा उच्च वर्गों की संस्था थी, जो ब्रिटिश राज्य को अपना शत्रु न समझ कर भारत के उद्धार के लिए उसका सहयोग वांछनीय समझती थी। परन्तु धीरे-धीरे यह धारणा निर्मूल सिद्ध होने लगी। नेताओं का ब्रिटिश शासन में विश्वास कम होने लगा।[१] इस तनाव का कारण था उनकी आशाओं का फलीभूत न होना।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण तक कांग्रेस की पुरातन नीतियों की असफलता स्पष्ट हो चुकी थी। प्रतिक्रिया स्वरूप कांग्रेस के अन्तर्गत नवीनदल का उदय होना स्वाभाविक ही था, जो पुरानी नीति की आलोचना करके प्रगतिवादी, नवीन रचनात्मक उद्देश्यों की एक स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत करता। इस प्रगतिवादी दल का उद्भव उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में हो चुका था, किन्तु परिस्थितियों की अनुकूलता के कारण इसका उत्कर्ष बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में ही हुआ। इस दल के नेता थे बाल गंगाधर तिलक, जिनका कार्यक्षेत्र था महाराष्ट्र। बंगाल में विपिनचन्द्र पाल तथा अरविन्दो घोष और पंजाब में लाला लाजपत राय प्रगतिवादी दल के प्रमुख प्रणेता थे। इस नवीन दल के कारण कांग्रेस में नम्र (पुरातनदल) तथा उग्रवादी (नवीनदल) दो विरोधी तत्वों का प्रादुर्भाव हुआ। उग्रवादी ब्रिटिश साम्राज्यवाद से पूर्ण विच्छेद चाहते थे तथा ब्रिटिश-विरोधी तत्त्वों को बढ़ावा देते थे, विपरीत नरमदलीय नेता, जो पुरानी नीतियों के समर्थक थे अब भी अंग्रेजी शासन की सदुद्देश्यता में आस्था रखते थे।

१९०६ के कांग्रेस अधिवेशन, जिसके ऊपर उग्रवादियों का प्रभाव पड़ा था, में स्पष्ट रूप से प्रगतिवादी विचारों का संकेत मिलता है। इस अधिवेशन में प्रथम

---

1. Gokhale complained that "The bureaucracy was growing frankly selfish and openly ~~xxxxxxx~~ hostile to National aspirations. It was not so in the past." Official "History of the Indian National Congress" 1935, p. 151.

भार कांग्रेस ने अपना उद्देश्य पूर्ण स्वराज्य अर्थात् स्वशासन प्राप्ति रखा। राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रीय उद्योगों की प्रगति, स्वदेशी, बहिष्कार, स्वराज्य आदि को उन्नत करना कांग्रेस की प्रमुख योजनाएं थीं। यह स्थिति तब तक बनी रही जब तक महात्मागांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने जनसंस्था का रूप न ले लिया।

(१) प्रारंभिक प्रयास– १९०० से १९१३ तक

बीसवीं शताब्दी का प्रथम चरण राजनैतिक जागरण की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। इस समय तक देश के विभिन्न भागों में ब्रिटिश विरोधी तत्वों व हिंसात्मक कार्यवाहियों का प्रादुर्भाव हो चुका था। राजनीतिक क्षेत्र में राष्ट्रवादियों का बोलबाला था, जिनका नारा था 'स्वराज्य' तथा स्वदेशी। नारियों के योगदान की दृष्टि से इस समय उनके मध्य कोई जागृति नहीं थी। कुछ अपवाद को छोड़कर इस समय स्त्रियों की कार्यवाही राष्ट्रीय कोष में स्वर्णा-भूषणों का दान देने, लेख लिखने, भाषण देने तथा क्रान्तिकारियों के पास गुप्त रूप से विध्वंसकारी तत्वों को पहुंचाने तक ही सीमित थी।

कुमारी कुमुदिनी मित्रा इनमें से एक थीं। उन्होंने कुछ ब्राह्मण महि-लाओं का एक संगठन बनाया। इसकी सदस्याएं क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार करती थीं। कुमुदिनी मित्रा ने इसके लिए 'सुप्रभात' नामक पत्र को माध्यम बनाया।[1] श्रीमती सुशीला देवी ने अपने भाषणों में सरकार के प्रति विरोध प्रकट किया तथा नारियों को देश की राजनीति में भाग लेने के लिए उत्साहित किया। श्रीमती पुरनानी[2] तथा यशवती[3] अन्य महिलाएं थीं जिन्होंने स्वदेशी व स्वराज्य की मांग की तथा नारियों के मध्य जागरण के लिए प्रभावपूर्ण

---

1. Home Political Confidential Proceeding No. 7-10, December, 1910.
2. Home Political Secret No. 48 - March, 1908.
3. Home Political Proceeding No. 18, October, 1908.

भाषण दिए ।

इस समय की एक महत्वपूर्ण महिला कार्यकर्ता थीं मार्गेट नोबेल, जो भारत में सिस्टर निवेदिता के नाम से प्रसिद्ध हैं । निवेदिता १८९८ में स्वामी विवेकानन्द से प्रभावित होकर भारत आईं तथा भारत को अपनी मातृभूमि के रूप में उन्होंने स्वीकार किया ।[1] स्वामी विवेकानन्द के साथ उन्होंने भारत के अनेक भागों का भ्रमण किया । भारतीयों से शीघ्र ही उनको सहानुभूति प्राप्त कर ली । निवेदिता रामकृष्ण मिशन की सदस्य हो गईं तथा हिन्दू धर्म के उत्थान के लिए उन्होंने एक उपदेशक गुरु की भाँति नहीं, अपितु सेविका की भाँति कार्य किया । यद्यपि उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में खुल कर भाग नहीं लिया और न ही किसी राजनीतिक दल की सदस्य ही बनीं तथापि उन्होंने राष्ट्रवादियों का साथ दिया । १९०५ में लार्ड कर्ज़न के भाषण की भर्त्सना की तथा १३ फरवरी १९०५ के अमृत बाज़ार पत्रिका में उनकी आलोचना प्रकाशित कराई ।

कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर की भतीजी सरला देवी इस समय की एक अन्य महिला थीं, जिन्होंने "भारती" नामक पत्र के माध्यम से हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए अथक प्रयास किया । यही नहीं, उन्होंने स्वदेशी वस्तुओं को प्रोत्साहन देने के लिए "लक्ष्मी भंडार" की स्थापना की तथा १९०४ में उत्तम देशी वस्तुओं के निर्माण के लिए स्वर्ण पदक प्राप्त किया ।[2] १९०५ में उनका विवाह राष्ट्रवादी नेता तथा आर्य समाजी रामभुज दत्त चौधरी से सम्पन्न हुआ । तदुपरान्त उन्होंने महिलाओं के लिए आर्य समाज की अनेक शाखाएँ खोलीं । सरला देवी की "महिला

---

1. "From the day she set foot in India, her life was one consuming effort to one herself ~~kmxixx~~ with the Indian experience..... it was at infinite cost to herself, infinite groping of a way, infinite submerging of prepossession, that she was able to obtain that delicacy of insight, which made her not merely India's champion before the world, but also "a patriot among patriots and a messenger among messengers to the Indian Peoples" - G.A. Natesan & Co. - Sister Nivedita - a sketch of her life and her services to India, p. 4.

2. Modern Review, June 1953, p. 469.

आन्दोलन' के संगठन का श्रेय प्राप्त है । वह' भारत स्त्री महामंडल' की सचिव थीं, जिसकी शाखाएं कलकत्ता तथा इलाहाबाद में थीं । इस मंडल का उद्देश्य विभिन्न - जातियों व वर्गों की स्त्रियों में सामान्य उद्देश्य के लिए एकता की भावना उत्पन्न करना था । १९१९ में वह गांधी जी के सम्पर्क में आईं तथा मृत्युपर्यन्त (१९४५) कांग्रेस की उत्साही कार्यकर्ता रहीं । उनके इन कार्यों के कारण पुलिस की दृष्टि उन पर सदैव रहती थी ।[१]

पारसी महिला मैडम कामा इस समय के आन्दोलन की प्रमुख अंग थीं । भारतीयों की मांगों को उचित ठहराने के लिए विदेशों में प्रचार करने वाली प्रथम भारतीय महिला का श्रेय मैडम कामा को प्राप्त है । उन्होंने लंदन के "हाइड पार्क" तथा "इंडिया हाउस" के सम्मेलनों में अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति की भर्त्सना की। मैडम कामा प्रथम भारतीय महिला थीं जिन्होंने तिरंगे झंडे को प्रथम बार विदेश में फहराया था ।[२] उन्होंने "वन्दे मातरम" नामक पत्र के द्वारा भारतीय जनता को उद्बोधित किया । प्रथम महायुद्ध के बाद वह बन्दी बना ली गईं । १९३५ में भारत लौटने पर उनकी मृत्यु हुई ।[३]

---

१. पुलिस की भर्त्सना करते हुए उन्होंने कहा --

"Here was a boy of my own race and blood corrupt to the core, treacherous to a degree, trying in the meanest cowardly fashion to frighten a lady supposed to be partial to the motherland out of wits to get lift in criminal Intelligence department." Home Political Confidential Proceeding No. 63-70, November, 1908.

2. Home Political Confidential Proceeding No. I, July 1913.

3. Pt. Nehru wrote in his autobiography - "We saw Madam Cama rather fierce and terrifying as she came up to you and peered into your face and pointing at you asked abruptly who you were. The answer made no difference (probably she was too deaf hear to it) for she formed her own impression and struck to them, despite facts to the contrary." Nehru, J.L. - An Autobiography, p. 111.

१९१८ में भारत के राजनीतिक मंच पर अवतरित होने के पूर्व महात्मा-गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में अपने नवीन अस्त्र "सत्याग्रह" का प्रयोग किया था।

दक्षिण अफ्रीका में आन्दोलन का प्रारंभ १४ मार्च १९१३ में केप उच्च-तम न्यायालय के न्यायमूर्ति सीर्ल के एक निर्णय के फलस्वरूप हुआ था। इस निर्णय के अनुसार उन सभी विवाहों को अवैध घोषित किया गया जो ईसाई विधियों द्वारा सम्पन्न नहीं हुए थे तथा जिनका रजिस्ट्रेशन नहीं हुआ था। इस घोषणा के अनुसार साधारण हिन्दू विवाह संस्कार द्वारा विवाहित स्त्रियाँ अपने पति की वैध पत्नी के पद से गिर कर वेश्याओं की श्रेणी में आ गईं। भारतीयों के प्रति इस अन्याय को महात्मा गांधी सहन न कर सके और उन्होंने सत्याग्रह का अनुष्ठान प्रारम्भ किया। नारियों ने इस आन्दोलन में खुल कर भाग लिया तथा जेल जीवन की कठोर यातनाएं प्रसन्नतापूर्वक फेलीं।

सर्वप्रथम टाल्सटाय फार्म की महिलाओं का एक दल निर्मित किया गया जिसे बिना आज्ञा पत्र के ट्रान्सवाल में प्रवेश करने के अपराध में गिरफ्तार होना था। महात्मागांधी ने इस दल को जेल जीवन की यातनाओं के प्रति सजग करा-दिया था, परन्तु यह महिलाएं "अत्यधिक वीर तथा किसी चीज़ से डरने वाली नहीं थीं।"[1] ग्यारह सदस्यों से निर्मित इस दल की साहसी महिलाओं के नाम इस प्रकार हैं :-

(१) श्रीमती थाम्बी नायडू (२) श्रीमती एन० पिल्ले (३) श्रीमती के० मुरुगेसा पिल्ले (४) श्रीमती ए० पेरुमल नायडू (५) श्रीमती पी०के० नायडू (६) श्रीमती के० चिन्नास्वामी (७) श्रीमती एन०एस० पिल्ले (८) श्रीमती ए०आर० मुदा-लिंगम (९) श्रीमती भवानी दयाल (१०) कु० मिनाची पिल्ले तथा (११) कु० बैकुम मुरुगेसा पिल्ले।[2]

इस दल का प्रारंभिक प्रयास असफल रहा और उन्हें गिरफ्तार नहीं किया गया।

१९०४ में महात्मा गांधी ने "फ़ीनिक्स फार्म" की स्थापना की थी।

---

1. Gandhi, M.K. - Satyagraha in South Africa, p. 421.

2. Ibid, p. 422.

सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने में इस काम की नारियाँ भी पीछे नहीं थीं। महात्मागांधी ने १६ सदस्यों के एक दूसरे दल का संगठन किया। इसमें भाग लेने वाली चार महिलाएं भी थीं, जिनके नाम इस प्रकार हैं :—

(१) श्रीमती कस्तूरबा गांधी (२) श्रीमती जयकुँवर मनीलाल डाक्टर
(३) श्रीमती काशी छगनलाल गांधी तथा (४) श्रीमती संतोक मगनलाल गांधी।[1]

भाग्यवश इन महिलाओं को अपने प्रयास में सफलता मिली। २३ सितम्बर १९१३ को इन्हें बन्दी बना लिया गया तथा तीन महीने का कठोर कारावास का दंड प्राप्त हुआ। लगभग इसी समय प्रथम दल की महिलाएं भी पकड़ ली गईं तथा उन्हें भी यही दण्ड प्राप्त हुआ — तीन महीने का कारावास।[2]

सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने वाली इन महिलाओं को कठोर यातनाएं सहनी पड़ीं। इन स्त्रियों में सबसे दुःखदायी कथा है एक १६ वर्षीय बालिका की जो जेल के कठोर जीवन को सहन न कर सकने के कारण, जेल से छूटने के बाद शीघ्र ही चल बसी। इस बालिका का नाम था वैलियाम्मा आर० मुनुस्वामी मुदालियर[3]। महात्मा गांधी ने अपनी पुस्तक में नारी सत्याग्रहियों द्वारा झेली गई यातनाओं का हृदयस्पर्शी विवरण दिया है।[4]

---

1. Ibid, p. 427.
2. Ibid, p. 429.
3. Ibid, p. 431.
4. "The women's bravery was beyond words. They were all kept in Maritzburg jail, where they were considerably harassed. Their food was of the worst and they were given laundry work as their task. No food was permitted to be given them from outside nearly till the end of their term. One sister was under a religious vow to restrict herself to a particular diet After great difficulty the jail authorities allowed her that diet, but the food supplied was unfit for human consumption. The sister badly needed Olive oil. She did not get it at first, and when she got it was old and ranced. She offered to get it at her own expense but was told that jail was no Hotel and she must take what food was given her. When this sister was released she was a mere skeleton and her life was saved only by a great effort." - Ibid, pp. 430-431.

(२) होमरूल आन्दोलन का प्रादुर्भाव-- १९१४ से १९१८ तक

यह काल प्रथम विश्व युद्ध के संदर्भ में हुए अनेक परिवर्तनों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है । इस समय तक कांग्रेस के आन्तरिक संघर्षों का अंत हो चुका था । नरमदलीय अनेक नेता काल का ग्रास बन चुके थे तथा कांग्रेस का नेतृत्व पूर्णरूप से राष्ट्रवादियों के हाथों में पहुंच चुका था । कांग्रेस ने खिलाफत आन्दोलन[१] का पक्ष ग्रहण किया । फलस्वरूप मुस्लिम जनता भी कांग्रेस के फंडे के नीचे आ गई । परन्तु इस काल का महत्त्व सबसे अधिक श्रीमती एनी बैसेन्ट के कारण है, जिनके नेतृत्व में भारतीय महिलाओं ने प्रथम बार संगठित होकर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया ।

श्रीमती बैसेन्ट का जन्म लंदन के एक छोटे से परिवार में १ अक्टूबर १८४७ को हुआ था ।[२] अल्पायु में ही पिता की मृत्यु के कारण परिवार को आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । उनकी प्रारंभिक शिक्षा पैरिस में मारियट के घर पर हुई । मारियट एक कर्मठ महिला थीं, तथा उनका प्रभाव श्रीमती एनी -बैसेन्ट पर आजन्म रहा ।[३] उनका वैवाहिक जीवन भी सुखी नहीं था, तथा शीघ्र

---

१. टर्की मुसलमानों की सबसे बड़ी शक्ति समझी जाती थी । वहां "खलीफा" का राज्य था तथा उसके समर्थक "खिलाफत" कहे जाते थे । प्रथम विश्वयुद्ध में इंगलैण्ड के प्रधानमंत्री ने टर्की की सुरक्षा का आश्वासन दिया था । खलीफा ने इस विषय में अपना प्रतिनिधि मण्डल भेजा, परन्तु १४ मई १९२० को सेवरेस की संधि के द्वारा इजिप्ट,मोरक्को, ट्यूनिसिया का अधिकार ले लिया गया तथा अरब, पैलेस्टाइन, मेसोपोटामिया और सीरिया के प्रदेश छीन लिए गए । फलस्वरूप वहां खिलाफत आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ । भारत के मुसलमान भी इसके पक्ष में थे ।

2. Besant, Annie - An Autobiography, p. 11.

3. Mrs. Besant said:- " No words of mine can tell how much I owe her, not only of knowledge, but of that love of knowledge which has remained with me ever since as a constant spur to study." - An Autobiography, p. 36.

ही (१८७३) उनका विवाह-विच्छेद हो गया ।[1] मैडम ब्लावत्स्की से प्रभावित होकर उन्होंने थीयोसाफिकल सोसाइटी की सदस्यता ग्रहण की तथा १८९१ में मैडम ब्लावत्स्की की मृत्यु के बाद इसकी प्रतिनिधि (कार्यकर्ता) हो गईं । भारतीयों के लिए उनके मन में विशेष श्रद्धा थी ।

१८९३ में श्रीमती एनीबेसेन्ट भारत आईं । वह एक जन्मजात सुधारक थीं तथा भारत में उनका प्रारंभिक प्रयास सुधार कार्य से आरंभ हुआ । भारतीय महिलाओं के लिए उन्होंने अनेक स्कूल खोले जिनमें उल्लेखनीय नाम हैं — सेन्ट्रल हिन्दू गर्ल्स स्कूल, बनारस, मदनपाला हाई स्कूल तथा कालेज, अड्यार नेशनल कालेज आदि । उन्होंने जाति प्रथा को निन्दनीय ठहराया तथा छुआछूत को मिटाने के लिए अथक प्रयत्न किए । बाल-विवाह के प्रति उन्होंने आवाज उठाई । १९०८ में उन्होंने थीयोसाफिकल सोसाइटी के अन्तर्गत "सन्स आफ इंडिया" तथा "डाटर्स आफ इंडिया" नामक दलों की स्थापना की जिनका उद्देश्य सामाजिक सुधार था ।

श्रीमती बेसेन्ट का प्रारंभिक कार्य धर्म के क्षेत्र तक ही सीमित था, परन्तु समय की पुकार ने उन्हें राजनीति में उतरने के लिए बाध्य किया । सर फीरोज शाह मेहता तथा गोपाल कृष्ण गोखले की मृत्यु के कारण देश के राष्ट्रीय आन्दोलन को काफी क्षति पहुँची थी । लाला लाजपत राय अमेरिकी प्रवास में थे तथा महात्मा-गांधी ने अभी आन्दोलन की बागडोर नहीं संभाली थी । बाल गंगाधर तिलक ही एकमात्र नेता थे जो अभी (१९१४) जेल से छूट कर आए थे । श्रीमती बेसेन्ट ने देश की स्थिति के अनुकूल उचित नेतृत्व देने का यथेष्ट प्रयास किया । उन्होंने १९१४ में कांग्रेस की सदस्यता ग्रहण की तथा कांग्रेस को नवीन विचारों, नवीन स्त्रोतों तथा नवीन साधनों से युक्त किया ।[2] उन्होंने भारत पर अंग्रेजी ढंग से शासन करने के लिए अंग्रेजों की निन्दा की । "उन्होंने भारतीयों के उद्धार के लिए एक सुनियोजित आन्दोलन चलाने के लिए अनेक भाषण दिए ।"[3]

---

1. Ibid, p. 117.
2. Sitaramayya, Pattabhi, - The History of Indian National Congress, Vol. I, p. 119 (1946).
3. Aiyer, A. Rangaswami - Dr. Annie Besant and her work for Swaraj, p. 10.

श्रीमती बेसेन्ट ने भारतीयों के लिए स्वशासन की मांग को उचित ठहराया—युद्ध में सक्रिय सहायता के पुरस्कार के रूप में नहीं, अपितु मौलिक अधिकार के रूप में[१]। अपने पत्र "कामनवील" के प्रथम अंक में इस बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा — "राजनीतिक सुधार से तात्पर्य है पूर्ण स्वराज्य से — ग्राम पंचायत से लेकर स्थानीय स्वशासन तथा प्रान्तीय विधान सभाओं से लेकर राष्ट्रीय संसद तक।" तथा इन सभाओं में जनताका प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व भी हो।[२]

इस राजनीतिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने सितम्बर १९१६ में होमरूल लीग की स्थापना की। होमरूल से तात्पर्य "सरकार के किसी प्रकार से नहीं है। इसका अर्थ है कि एक राष्ट्र स्वयंशासन कर रहा है। अपनी स्वतंत्र इच्छा से यदि राष्ट्र किसी "तानाशाह" को शासन सौंप देता है, फिर भी वह स्वशासित राज्य है।"[३]

होमरूल के उद्देश्य निम्नलिखित थे :-

(१) कानूनी तथा संवैधानिक साधन—आन्दोलन तथा प्रचार द्वारा भारत के लिए स्वशासन प्राप्त करना.

(२) क्राउन की अध्यक्षता में रहते हुए, साम्राज्य के अन्तर्गत एक स्वतंत्र राष्ट्र

---

१. Smt. Bessant said: "There had been talk of a reward due to India's loyalty, but India does not chaffer with the blood of her sons and proud tears of her daughters in exchange for so much liberty, so much right. India claims the right as a Nation, to justice among the people of the Empire. India asked for this before the war, India aske for it during the war, India will ask for it after the war, but not as a reward but as a right does she ask for it, on that there must be no mistake." - Sitaramayya, Pattabhi, p. 119.

2. Home Political Confidential Proceeding no. 652-656, Sept. 1915

3. Home Political Proceeding no. 652-656 Sept. 1916.

के रूप में ग्रेट ब्रिटेन से संबंध स्थापित करना,

(३) राष्ट्रीय कांग्रेस की शक्ति के विस्तार में सहयोग देना तथा

(४) होमरूल के लिए निरन्तर प्रयत्न व प्रचार करना ।[1]

श्रीमती बेसेन्ट ने स्वशासन की मांग की क्योंकि उनके लिए "परतंत्रता के साथ "डी लक्स" ट्रेन पर चढ़ने से, स्वतंत्रता के साथ बैलगाड़ी रखना उचित है।"[2] शीघ्र ही होमरूल लीग की शाखाएं अनेक प्रान्तों में फैल गईं । ११ अक्टूबर १९१६ के "न्यू इंडिया" के अनुसार देश में लीग की ५० शाखाएं थीं तथा इसकी सदस्य संख्या २ हजार से ८ हजार तक थी । तिलक ने २३ अप्रैल १९१६ को पुना में इसकी एक शाखा खोली । होमरूल लीग की विशेषता यह थी, कि इसकी सदस्यता सबके लिए सामान्य रूप से खुली थी । अपने उद्देश्य में लीग विभिन्न मतावलम्बियों की एकता चाहता था, जिससे पूर्ण स्वराज्य के उद्देश्य की प्राप्ति किया जा सके । श्रीमती बेसेन्ट ने इसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर श्री जिन्ना को लीग का सेक्रेटरी नियुक्त किया और इस प्रकार हिन्दू तथा मुस्लिम — दो विरोधी जातियों को निकट लाने का प्रयास किया ।

अपने विचारों को देश के कोने-कोने तक फैलाने के लिए उन्होंने दो पत्रों — दैनिक पत्र "न्यू इंडिया" तथा साप्ताहिक पत्र" कामनवील" का संपादन किया । लोकमान्य तिलक का "केसरी" तथा "दी मराठा" पत्रों ने लीग के अनुरूप ही स्वशासन की मांग का बीड़ा उठाया ।

श्रीमती बेसेन्ट एक साहसी महिला थीं, तथा सरकार उनके कार्यों पर विशेष दृष्टि रखती थी । होमरूल लीग की सफलता से शंकित होकर सरकार ने सर्वप्रथम उनके समाचार पत्रों पर हमला किया । १९१० के "प्रेस ऐक्ट" को लागू कर सरकार ने दो हजार रुपये सुरक्षा हेतु मांगे । इसी समय "वासन्ता प्रेस" से जो, जो श्रीमती बेसेन्ट के अधीन था, पांच हजार रुपयों की मांग की गई ।[3] इस आर्थिक

---

1. Ibid.
2. Besant, Annie - India Bond or Free, Great Britain, 1926, p. 4.
3. Home Political Proceeding no. 53, Sept. 1916.

दंड की पूर्ति देश ने (न्यू इंडिया "डिफेन्स फण्ड" के द्वारा की ।

यही नहीं, एक विज्ञप्ति के द्वारा सरकार ने बाम्बे प्रेसीडेन्सी में उनका प्रवेश निषिद्ध कर दिया ।[1] १९१७ में उन्हें क्रान्तिकारी विचारों के प्रतिपादन के कारण बन्दी बना लिया गया । इस समय तक वह देश में ख्याति प्राप्त कर चुकी थी । उनकी रिहाई के लिए जुलूस निकाले जाते थे ।[2]

श्रीमती बेसेन्ट ने "नारी मताधिकार" की प्राप्ति के लिए भी यथेष्ट प्रयत्न किया । १९१७ में राज्य सचिव श्री मान्टेग्यू भारत के लिए नवीन संविधान निर्माण हेतु तत्कालीन परिस्थिति का अध्ययन करने भारत आए । श्रीमती कजिन ने, श्रीमती सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में महिलाओं के एक प्रतिनिधि मण्डल का आयोजन किया यह मंडल १ दिसम्बर १९१७ को श्री मान्टेग्यू से मिला[3] तथा "नारी मता-

---

१. Ibid, no. 652-658, Serial no. 8154.

२. Theosophical Publishing House - Dr. Annie Besant and her work for Swaraj, p. 16.

३. श्री मान्टेग्यू ने अपनी डायरी में उस प्रतिनिधि मंडल के विषय में लिखा है —

"We had an interesting deputation from the women asking asking for education for girls, mor medical colleges, etc. One very nice looking doctor from Bombay, Dr. Joshi, was present, the deputation being led by Mrs. Naidu, the poetess, a very attractive and clever woman, but I beleive a revolutionary at heart. She is connected by marriage with Chattopadhayay of India House fame. They asked also for women's votes. The women who drafted mm the address, Mrs. Cousins, is a well known suffragette from London. Cousins himself is a theosophist and one Mrs. Besant's crowd. Mrs. Besant herself was there. They assured me that the Congress would willingly pass a unanimous request for Women's Suffrage". - Quoted from Indian Women Through the Ages By P. Thomas, p.334.

धिकार की माँग को उनके सामने रखा । श्री मान्टेग्यू ने उनकी माँग को स्वीकार करने का आश्वासन दिया । परन्तु मान्टेग्यू चैम्सफर्ड सुझाव के प्रकाशित होने पर नारी मताधिकार की पूर्ण अवहेलना की गई । श्री मान्टेग्यू ने अपने तर्क में कहा कि "जब तक प्रत्येक वर्ग की महिलाएँ पर्दे के कारण बाहर निकलने में असमर्थ हैं, नारी मताधिकार व्यवहारिक नहीं हो सकेगा ।" इस प्रतिनिधि मंडल की सदस्याएँ श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीमती बैसेन्ट, श्रीमती कज़िन, श्रीमती श्रीरंगम्प्पा, लेडी सदाशिव अय्यर, श्रीमती चन्द्रशेखर अय्यर, श्रीमती हीराबाई टाटा, बेगम हज़रत मौहानी, श्रीमती गुरुस्वामी चैटी आदि ।

१९१७ में श्रीमती बैसेन्ट कांग्रेस की प्रेसीडेन्ट नियुक्त हुईं और इस प्रकार प्रथम महिला कांग्रेस प्रेसीडेन्ट का श्रेय प्राप्त किया । प्रेसीडेन्ट के मंच से अपने भाषण में उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए सच्ची सहानुभूति प्रकट की ।[१]

(३) असहयोग व अवज्ञा आन्दोलन का प्रादुर्भाव प्रथम चरण १९१९ से १९३० तक—

१९१९ से भारतीय परिस्थितियों में महान् परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए । प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति हो चुकी थी, परन्तु आश्वासन के अनुरूप अंग्रेज़ भारत को स्वशासन की स्थिति प्रदान करने में असमर्थ रहे । प्रथम विश्वयुद्ध ने भारतीयों को

---

1. "Today let me Western born but in spirit Eastern, credled in England but Indian by choice and adoption, let me stand as the symbol of union between Great Britain and India, a union of hearts and free choice, not of compulsion and therefore of a tie which can not be broken, a tie of love and mutual helpfulness beneficient to both nations and blessed by God." - Theosophical Publishing House - The Besant Spirit - The Presidential address of Indian National Congress, 1917, Vol. 4, p. 31.

आँखें खोल दीं, फलस्वरूप देश में विद्रोह की लहर फैल गई। वास्तव में इसी समय देश में प्रथम बार जागृति का संचार हुआ जो शीघ्र ही देशव्यापी आन्दोलन के रूप में परिणित होकर ब्रिटिश भारत की जड़ उखाड़ने में समर्थ रहा।

इतिहास के इसी काल में कांग्रेस का नेतृत्व राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, जो दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों का पक्ष लेकर भारतीय राजनीति में अवतीर्ण हो चुके थे, के योग्य हाथों में आया। गांधी जी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन, जो अभी तक शिक्षित जन समुदाय तक ही सीमित था, जन आन्दोलन के रूप में परिवर्तित हो गया। न केवल उसे देशव्यापी रूप ही प्राप्त हो सका अपितु गांधी की धर्म निरपेक्षता ने खिलाफत आन्दोलन का पक्ष लेकर मुसलमानों को भी इस आन्दोलन में सम्मिलित कर लिया।[1] गांधी के हाथों में कांग्रेस इस प्रकार एक ऐसी राजनीतिक संस्था बन गई, जो राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए देश की जनता का

---

1. According to the official Government Report :-
"The noticeable feature of the general excitment was the unprecedented fraternisation between the Hindus and Muslims. Their union between the leaders, had now for long been a fixed plan of the nationlist platform. In this time of public excitment even the lower classes agreed for once to forget the differences. Extraordinary scenes of fraternisation occurred. Hindus publicly accepted water from the hands of Muslims and vice versa. Hindu-Muslim Unity was the watchward of processions indicted both by cries and by banners. Hindu leaders had actually been allowed to preach from the pulpit of a Mosque." -
'India in 1919' - Official Report published every year.

नेतृत्व कर रही थी । और इसी कारण कांग्रेस इस समय एक ऐसी स्थिति पर पहुंच गई जिसे समस्त राष्ट्रीय क्रिया कलापों का केन्द्रबिन्दु माना जाने लगा, एक ऐसी स्थिति जिसके लिए पिछले नेताओं ने कल्पना तक न की थी ।

मान्टेग्यू-चेम्सफर्ड योजना १९१९ में निर्मित हुई, परन्तु व्यवहारिक रूप १९२० में ही प्राप्त हो सका । इस योजना के अन्तर्गत नारियों के प्रतिनिधि-मंडल की अपील को कोई स्थान नहीं दिया गया था । भारतीय महिलाएं मात्र दर्शक बन कर देखने वाली नहीं थी । उन्होंने संघर्ष जारी रखा । १९१९ में यह बिल संसद् के समक्ष विचारार्थ रखा गया । सरकार ने नारियों की मांग के औचित्य के प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए संसद् के दोनों सदनों की एक समिति का निर्माण किया । श्रीमती बेसेन्ट, श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा हीराबाई ने एक समिति के रूप में दोनों सदनों की बैठक में नारी मताधिकार की मांग के औचित्य को सिद्ध किया । संसद् ने यह विषय निर्वाचित असेम्बली के सदस्यों के ऊपर छोड़ दिया ।

अथक प्रयास का फल उन्हें प्राप्त हुआ । नारी मताधिकार प्राप्त करने वाला प्रथम राज्य था ट्रावनकोर, उसके बाद १९२१ में मद्रास , १९२५ में बंगाल, १९२६ में पंजाब, १९२७ में सेन्ट्रल प्राविन्स तथा १९२९ में बिहार में इसको मान्यता प्राप्त हो सकी ।

मताधिकार के अधिकार को निर्वाचित होने के अधिकार के साथ नहीं मिलाया जा सकता । महत्वाकांक्षी महिलाओं ने इस अधिकार के लिए भी आवाज़ उठाई । चूंकि यह विषय भारतीय प्रतिनिधियों के ऊपर छोड़ दिया गया था, इसलिए शीघ्र ही यह अधिकार भी उन्हें प्राप्त हो गया । १९२६ के चुनाव में मद्रास से महिला उम्मीदवार खड़ी किए । श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय तथा श्रीमती हन्नाम एन्जिलो प्रथम महिला उम्मीदवार थीं । दोनों ही पराजित हुई । मद्रास सरकार ने मुथुलक्ष्मी रेड्डी को विधान सभा के लिए मनोनीत किया । नारी मताधिकार की प्राप्ति इस काल की सबसे बड़ी उपलब्धि थी ।

प्रथम विश्व युद्ध में भारतीयों ने अंग्रेजों की सहायता यथाशक्ति धन-जन से की थी, परन्तु बदले में उन्हें प्राप्त हुआ १९१९ का 'रावलट ऐक्ट', जिसने युद्धोपरान्त सुधार के रूप में भारतीयों की स्वतंत्रता का अपहरण सा कर लिया । कांग्रेस ने अपनी अहमदाबाद बैठक में बिल का पूर्ण विरोध करने का सुझाव सर्वसम्मति से

पास किया । महात्मा गांधी ने पुन: दक्षिण अफ्रीका में प्रयुक्त साधनों को दोह-
राया और सत्याग्रह समिति का संगठन किया । ३० मार्च १९१९ का दिन देश भर
में हड़ताल के रूप में मनाया गया । स्थान-स्थान पर जुलूस निकाले गए तथा उत्साही
भीड़ ने सरकारी दफ्तरों, रेलों, तार तथा डाक विभाग तथा सरकारी इमारतों
को भारी क्षति पहुँचाई । पंजाब में सैनिक शासन की घोषणा कर दी गई ।
जिसका भय दीर्घ काल तक बना रहा ।[1]

इतिहास प्रसिद्ध जलियाँवालाबाग का हत्याकांड भी इसी काल में घटित
हुआ । विद्रोहियों के प्रति सरकार की दमनकारी नीति का यह ज्वलंत प्रमाण
था, जिसने क्रांतिकारी अग्नि को शांत करने के स्थान पर और भी अधिक भड़का
दिया । १३ अप्रैल १९१९ को अमृतसर के जलियाँवाले बाग में लगभग २० हजार व्यक्तियों
का शांतिपूर्ण सम्मेलन हो रहा था । जनरल डायर ने १६०० गोलियों की[2] वर्षा
करवा कर निहत्थे, निर्दोष भारतीयों को बड़ी संख्या में काल का ग्रास बना
दिया । हंटर कमिटी की रिपोर्ट के अनुसार लगभग ४०० व्यक्तियों की मृत्यु हुई
तथा १२०० व्यक्ति घायल हुए ।[3] महिलाओं के साथ इस हत्याकाण्ड में अवांछ-
नीय रूप से व्यवहार किया गया । न केवल उन्हें झूठे साक्ष्य देने पर बाध्य किया
गया, अपितु सरकारी कर्मचारियों ने निर्दयतापूर्वक डंडे बरसाए तथा बलपूर्वक उनसे

---

1. Sitaramayya, Pattabhi - History of Indian national congress, Vol. I, p. 164.
2. Dutt, R.P. - India today, p. 279.
3. In view of a British official, "The movement assumed the undeniable character of an organised revolt against the British Raj." - Chirol, Valentine - India, p. 207.

पदों का त्याग करवाया ।[१] जनमत की मांग पर सरकार ने भी हंटर के नेतृत्व में एक कमीशन की नियुक्ति की । डायर को जनरल की उपाधि से वंचित होना पड़ा, परन्तु साम्राज्यवादियों ने उनकी प्रशंसा की तथा डायर को उस घृणित कार्य के लिए पुरस्कृत किया । लार्ड सभा ने भी उनके कार्य को अनुमोदित किया ।[२]

उपरोक्त घटनाओं ने विद्रोही प्रवृत्ति को भड़काने में महत्वपूर्ण योग दिया । देश भर में असंतोष की लहर फैल गई और अंग्रेज़ों के विरुद्ध एक सामूहिक मोर्चे के लिए पृष्ठभूमि तैयार हो गई । भारतीयों ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में असहयोग तथा अवज्ञा आन्दोलन का श्रीगणेश किया । विदेशी माल का बहिष्कार, विदेशी वस्त्रों की होली जलाना, सरकारी पदों से त्याग पत्र देना, शिक्षा संस्थाओं तथा अन्य स्थानों पर पिकेटिंग करना तथा सरकार के विरुद्ध जुलूस, सभा तथा सम्मेलनों का आयोजन करना आम बात हो गई । बड़ी संख्या में सरकार ने क्रान्ति-कारियों को बन्दी बनाया । जेल की कठोर यातनाएं तथा पुलिस की लाठी का प्रहार भी लोगों के उत्साह को शांत न कर सका ।

महात्मा गांधी को राष्ट्रीय आन्दोलन को जन आन्दोलन बनाने का

---

१. श्रीमती नायडू ने श्री मान्टेग्यू के पत्र के उत्तर में अनेक महिला साक्षियों के शब्दों को उद्धृत किया, जिसका एक उदाहरण ये है -

"We were called from our houses wherever we were and collected near the School. We were asked to remove our veils. We were abused and harassed to give out the names of Bhai Mool Singh as having lectured against the government. This incident occurred at the end of Baisakhi last in the morning in Mr. Bosworth Smith's presence. He spat at us adn spoke many bad things. He beat some of us with sticks. We were made to stand in a rows and to hold our ears. He abused us also saying "Flies, what can you do, if I shoot you?" - Quoted from Mitra, H.N., Punjab unrest, Before and after, Calcutta, 1921.

2. According to the Report -

"Dyer's action was dictated by a stern though misconceive sense of duty." - 'India in 1920' - an Official Report published every year, p. 238.

श्रेय प्राप्त है । न केवल उन्होंने इसे साधारण जनता तक पहुँचाया, अपितु उन्होंने देश की नारी वर्ग से भी इस आन्दोलन में भाग लेने की अपील की । गांधी के लिये नारी शक्ति का अवतार है, "यदि वह सही तौर पर कोई काम करने का बीड़ा उठाती है तो वह पर्वत तक को हिला सकती है ।" गांधी के शब्दों में "अहिंसात्मक युद्ध की सुन्दरता इसी में है कि इसमें नारी भी उतना ही भाग ले सकती है जितना कि पुरुष । इसका कारण यह है कि अहिंसात्मक युद्ध कष्टों को निमंत्रित करता है, और स्त्रियों से बढ़ कर कौन अधिक कष्ट सह सकता है ।"[1]

महात्मा गांधी की पुकार ने देश के नारी वर्ग को उद्बोधित किया । हजारों की संख्या में नारियाँ असहयोग आन्दोलन में भाग लेने निकल पड़ीं । उन्होंने जुलूस निकाले, पिकेटिंग की, कानून तोड़े तथा जेल की कठोर यातनाएँ सहीं । महिलाएँ जो बाह्य आन्दोलन में भाग लेने में असमर्थ थीं, घरों पर चर्खे के माध्यम से सूत कात कर ब्रिटिश उद्योग को नष्ट करने में अपना योग दिया । यही नहीं, जब भारत के लगभग सभी वरिष्ठ नेता जेल में थे, नारियों ने आन्दोलन की बागडोर संभाली । उनके इन साहसिक कार्यों ने न केवल अंग्रेजों की आँखें खोल दीं, वरन् देशवासियों के लिए भी उदाहरण प्रस्तुत किया ।

कांग्रेस ने १९२० के अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास किया जिसके द्वारा यह निश्चित किया गया कि "जब तक सरकार उक्त भूलों पर उचित कार्यवाही नहीं करती तथा स्वराज्य की स्थापना नहीं होती तब तक अहिंसात्मक तथा असहयोग आन्दोलन को जारी रखा जायेगा ।"[2] इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए देश व्यापी स्तर पर पिकेटिंग, बहिष्कार आदि का आयोजन किया गया ।

बंगाल भारत का सबसे अधिक जागृत प्रदेश था । स्वतंत्रता संग्राम में बंगाल ने नेतृत्व प्रदान किया था । बंगाल की महिलाओं का योगदान सबसे अधिक उल्लेख-

---

1. Quoted from Kasturba Memorial, a journal published by Kasturba Gandhi memorial trust, Kasturbagram, Indore, p. 12.

2. Post Wheeler - India against the storm, p. 177.

नीय है । उन्होंने बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अन्तर्गत "महिला कर्म संघ" की स्थापना की ।[१] इस संघ की महिलाएं सभाओं का आयोजन करती थीं, तथा भाषण आदि के द्वारा जनता में राजनैतिक चेतना लाने का प्रयत्न करती थीं । इसके अतिरिक्त इस संघ ने अनेक रचनात्मक कार्य भी किए । ढैंकी की एक सभा में, जिसका आन्दोलन इन्दुप्रभा मजुमदार तथा रांदु बीबी ने किया था, बंगाल प्रान्त की महिलाओं ने राष्ट्रीय कोष के लिए भारी संख्या में स्वर्णाभूषणों का दान दिया । विदेशी चूड़ियों को तोड़ कर पुन: उनको धारण न करने की सौगंध खाई ।[२]

बंगाली महिलाओं ने बड़े पैमाने पर पिकेटिंग की । देशबन्धु चितरंजन दास की पत्नी श्रीमती बासन्ती देवी तथा भगिनी उर्मिला देवी बंगाल की महिला आन्दोलनकारिणियों का नेतृत्व कर रही थीं । सड़कों पर खद्दर बेचते हुए तथा विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के नारे लगाते हुए उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया ।[३] उनके साथ पकड़ी जाने वाली अन्य महिलाएं थीं श्रीमती अनुकूल मित्रा, श्रीमती सूर्यसेनी, श्रीमती सत्यदेवी, श्रीमती उमारानी देवी तथा आठ सिख महिलाएं ।[४] कलकत्ता की अनेक महिलाएं सिरामपुर गईं तथा वहां उन्होंने "वालन्टीयर" के रूप में अपना नाम लिखाया ।[५]

श्रीमती कस्तूरबा गांधी, जिन्होंने दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह का प्रथम पाठ पढ़ा था, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भी महत्त्वपूर्ण भाग लिया । उन्होंने "स्वदेशी" के लिए अनेक स्थानों पर भाषण दिए तथा महिलाओं के सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए कहा कि "यदि हमें स्वराज्य चाहिए तो हमें स्वतंत्रता की देवी के कटोरे को भरना होगा ।"[६] पार्वती देवी एक अन्य महिला थीं जिन्हें ब्रिटिश विरोधी भाषण देने के अपराध में मेरठ में कैद कर लिया गया । १६ दिसम्बर १९२२ को महिलाओं ने इसके विरुद्ध जुलूस निकाले ।[७]

---

1. Amrita Bazar Patrika, 7 July, 1922.
2. Amrita Bazar Patrika, 9 July, 1922.
3. Amrita Bazar Patrika, 10 January, 1922.
4. Ibid.
5. The Leader, 11 January, 1922.
6. Amrita Bazar Patrika, 30 May, 1922.
7. Amrita Bazar Patrika, 17 December, 1922.

देश में, विशेषकर महिलाओं के मध्य सरकारी आज्ञाओं के विरोध में कार्य करने का उत्साह फैल चुका था। ११ जनवरी १९२२ को लखनऊ में दफा १४४ के होते हुए भी महिलाओं ने एक सभा आयोजित की। सरकारी आज्ञा का उल्लंघन करने वाली साहसी महिलाएं थीं श्रीमती कृष्णालाल नेहरू, श्रीमती हकीम अब्दुल वली, श्रीमती हकीम अब्दुल खैरी, श्रीमती तेजबहादुर, श्रीमती शिवराज नरायन, श्रीमती गोपाल नरायन, तथा श्रीमती बेनी प्रसाद सिंह। सभा ने खद्दर धारण करने पर बल दिया तथा खिलाफत आन्दोलन पर भाषण दिए।[1]

तारकेश्वर सत्याग्रह के समय की प्रमुख कार्यकर्ता थीं सन्तोषकुमारी देवी जिन्हें हिन्दी, इंगलिश तथा बंगाली भाषाओं पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था। उनके भाषणों ने राष्ट्रवादियों के मध्य नए उत्साह का संचार किया। बंगाल विधान सभा के लिए स्वराज्य दल के प्रथम निर्वाचन में सन्तोषकुमारी देवी ने श्री बी०सी० राय को विजयप्राप्त करने में महत्वपूर्ण योगदिया था।[2]

बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी में अनेक महिलाएं भी निर्वाचित हुई थीं। कमेटी की कार्यकारिणी समिति में उर्मिला देवी, मोहिनी देवी तथा ज्योतिर्मयी गांगुली भी थीं।[3]

मुसलमान महिलाओं का नेतृत्व करने वाली थीं बाई अमन (आबदी बानो बेगम)। उन्होंने मुस्लिम महिलाओं से देश के लिए आगे आने की अपील की। सित-१९२२ को शिमला में आयोजित एक भाषण में बाई अमन ने महिलाओं से खद्दर पहनने की विशेष अपील की।[4] बाई अमन के उत्साही कार्यों को देखते हुए महात्मा गांधी ने मार्च १९२२ में जेल जाने से पहले कहा था —

"बाई अमन से कहो कि वह मेरे लिए तथा अन्य सबके लिये प्रार्थना करे तथा उस कार्य को आगे बढ़ाएं जो हम लोगों ने छोड़ा है। उनकी प्रार्थना तथा कार्य हमारे छुट-

---

1. The Leader, 13 January, 1922.

2. The Modern Review, July 1953, Vol. 94, p. 53.

3. Ibid.

4. Amrita Bazar Patrika, 2 September, 1922.

जाने के लिए समर्थ हैं ।"[1] पंजाब में एक सम्मेलन में भाषण देते हुए बाई अमन ने कहा "स्वराज्य सबसे उत्तम वस्तु है । व्यक्ति अपनी मृत्यु के बाद सन्तानों के लिए मकान तथा धन छोड़ जाते हैं, हम अपने बच्चों के लिए स्वराज्य छोड़ जायेंगे ।"[2] बाई अमन के ये वाक्य उनके एक सच्चे देशभक्त होने का प्रमाण उपस्थित करते हैं ।

ऐसा ही एक प्रभावशाली वाक्य श्रीमती मोतीलाल नेहरू ने विदेशी वस्त्रों के विपक्ष में कहा था — "इन कपड़ों में हमारे भाइयों और बहनों का लहू लगा है । हम इसे किस तरह पहन सकती हैं ।"[3] अपने एकमात्र पुत्र श्री जवाहरलाल नेहरू की जेल-यात्रा के समय उन्होंने महिलाओं से विशेष अपील करते हुए कहा — "हम महिलाएं उनके कार्यों को करेंगी । क्या भारतमाता के जेल केवल पुरुषों के लिए ही बने हैं ?"

श्रीमती सरोजिनी नायडू महात्मागांधी की अनन्य भक्त तथा सहयोगी थीं । १९२४ में गांधी जी ने उन्हें दक्षिण अफ्रीका तथा केन्या, भारत और यूरोपीयों के मध्य उत्तम संबंध स्थापित करने के उद्देश्य से भेजा । अपने उद्देश्य में वह पूर्ण सफल रही थीं । यही नहीं, १९२५ के कानपुर कांग्रेस अधिवेशन में उन्हें कांग्रेस का प्रेसीडेन्ट नियुक्त किया गया ।

१६ जून १९२५ को देशबन्धु चितरंजन दास की मृत्यु से भारत ने एक स्वतंत्र सेनानी खो दिया । उनके अनन्य मित्र सुभाषचन्द्र बोस भी जेल में बन्दी थे । ब्रिटिश सरकार ने दमनकारी नीति जारी रखी । आन्दोलन की बागडोर संभालने के लिये इस समय ही महिला संघों का उद्भव हुआ । प्रथम संघ था ढाका का "दीपाली महिला संघ" जिसकी संगठन कर्त्री थीं लीला नाग (बाद में श्रीमती लीला राय) । संघ का उद्देश्य महिलाओं के मध्य राजनैतिक चेतना का विकास करना तथा महिला राजनैतिक कार्यकर्त्रियों को प्रशिक्षित करना था । "दीपाली संघ" ने इसके लिये

---

1. Amrit Bazar Patrika, 21 March, 1922.
2. Amrit Bazar Patrika, 12 December, 1922.
3. Amrit Bazar Patrika, 23 May, 1922.
4. Amrit Bazar Patrika, 13 January, 1922.

महिलाओं को लाठी तथा तलवार चलाने में भी दक्ष किया ।[१]

इसी संघ की अधीनता में 'बंगाली छात्रा संघ' की नींव भी डाली गई । इसी संघ के नेतृत्व में उत्साही छात्राएं एकत्रित होती थीं तथा राजनीतिक कार्य करने की शिक्षा पाती थीं । चिटगांव रेड में भाग लेने वाली रेणुका सेन तथा प्रीतिलता वाडेदार इसी संघ की प्रशिक्षित छात्राएं थीं ।[२]

फरवरी १९२७ में भारतभूमि पर साइमन कमीशन का आगमन हुआ । चूँकि इस कमीशन में कोई भी भारतीय प्रतिनिधि नहीं था इसलिये क्रांतिकारियों ने इसका जम कर विरोध किया । बंगाल में महिला राष्ट्रवादियों ने पुन: आन्दोलन की बाग-डोर संभाली । विलिंग्टन स्क्वायर, जहाँ राष्ट्रीय सेवा के लिए शपथ ली जा रही थी १००० महिलाओं ने उपस्थित होकर विरोध प्रदर्शन किया । स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास में इतनी बड़ी संख्या में नारियों ने प्रथम बार भाग लिया था । इन महिलाओं का नेतृत्व करने वाली थीं प्रेसीडेन्सी कालेज के प्रसिद्ध प्रोफेसर मनमोहन घोष की पुत्री लतिका घोष ।[३]

१६ मई १९२७ को नेता जी सुभाषचन्द्र बोस ढाई साल बाद जेल से छूट कर आए थे । नेताजी प्रगतिवादी, क्रान्तिकारी विचारों का प्रतिनिधित्व करते थे । उन्होंने क्रांतिकारियों का एक संगठन बनाया । नेताजी के नेतृत्व में ऐसे ही एक नारी संगठन का निर्माण श्रीमती लतिका घोष ने किया । यह संगठन 'महिला राष्ट्रीय संघ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ । संघ की अध्यक्षा थीं नेता जी की माता श्रीमती प्रभावती बोस तथा उप-अध्यक्षा थीं विभावती बोस । श्रीमती लतिका घोष संघ की सैक्रेटरी रहीं ।

यही नहीं, श्रीमती लतिका घोष नेता जी की अधीनता में संगठित महिला सैनिकों की नेता थीं तथा उन्हें 'कर्नल' की उपाधि प्राप्त थी । उन्होंने २०० महिलाओं के दल को उचित शिक्षा दी तथा उनका संगठन इस प्रकार किया कि पुरातन-पंथी भी उनकी प्रशंसा किए बिना न रह सके ।[४]

---

1. Modern Review, Vol. 94, 1953, p. 54 (Article by Jogesh Chandra Bajal.
2. Ibid.
3. Ibid.

सन् १९२८ महिला आन्दोलन की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है । इतिहास प्रसिद्ध बारडोली सत्याग्रह का अनुष्ठान इसी समय किया गया था, जिसमें भारी संख्या में महिलाओं ने भाग लिया था । १९२७ में बम्बई सरकार ने ग्रामीण करों में बिना किसी पूर्व सूचना के वृद्धि कर दी । भारतीयों पर यह आर्थिक अन्याय था । देश की निर्धनता को देखते हुए करों में वृद्धि असंतोष का भारी कारण बनी । सरदार पटेल के नेतृत्व में बारडोली में कर न दो आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ । सरकार ने यहाँ भी दमन कारी चक्र चलाया और लाठी, गिरफ्तारी तथा अर्थदंड आदि के माध्यम से आन्दोलन को शान्त करने का पुराना साधन अपनाया । महिलाओं ने इस आन्दोलन में उत्साहपूर्वक भाग लिया । श्रीमती मिट्ठूबेन पेटीट तथा श्रीमती भक्तिबेन देसाई के प्रयास विशेष सराहनीय थे । श्री देसाई के अनुसार "बारडोली की महिलाओं की वीरता, बारडोली के बाहर अन्य प्रदेशों में भी महिलाओं को प्रेरित करने में समर्थ थी ।"[1]

१९२८ की कांग्रेस स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास में विशिष्ट स्थान रखती है । इसी समय बालिकाओं को सैनिक ढंग पर सेना के रूप में संगठित किया गया । अब तक महिलाओं का कार्यक्षेत्र शांतिपूर्ण निशस्त्र सम्मेलन तक ही सीमित था, परन्तु १९२८ की कांग्रेस के बाद से महिलाओं ने सैनिक संगठन के रूप में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेना प्रारंभ किया । नेता जी सुभाषचन्द्र बोस की इच्छा आगे चलकर आज़ाद हिन्द फ़ौज तथा "झांसी रानी-रेजीमेन्ट" के रूप में साकार हुई । बंगाल कांग्रेस का नेतृत्व नेता जी के हाथों में आ चुका था । भारतीय महिलाओं ने नेताजी के नेतृत्व में क्रान्तिकारी कार्यवाहियों का नवीन अध्याय प्रारम्भ किया । श्रीमती लतिका घोष इनमें प्रमुख स्थान रखती थीं ।

१९२८ की कांग्रेस के बाद एक नए आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ । महात्मा-गांधी ने १२ मार्च १९३० को इतिहास प्रसिद्ध "डांडीयात्रा" का अनुष्ठान किया । भारतीय नारियों ने हजारों की संख्या में भाग लेकर नमक कानून को तोड़ा । इस

---

1. Desai, M. - The Story of Bardoli, p. 154.

आन्दोलन में समुद्रतटीय प्रदेशों जैसे मिदनापुर, चिटगांग, २४ परगना, खुल्ना, बकर-गंज तथा नोआखाली आदि स्थानों की महिलाओं को विशेष सुविधा प्राप्त थी, और उन्होंने इस सुविधा का लाभ उठा कर नमक कानून तोड़ने में विशिष्ट योग-दान दिया । महात्मागांधी के बन्दी होने के बाद आन्दोलन का नेतृत्व श्रीमती सरोजिनी नायडू ने किया । उनके पश्चात् रुक्मणी लक्ष्मीपति ने इसको आगे बढ़ाया । इन नेताओं के बन्दी होने से आन्दोलन देशव्यापी स्तर पर फैल गया, तथा जब देश के लगभग सभी वरिष्ठ नेता जेल में थे महिलाएं आन्दोलन कारी समितियों, जो प्रतिदिन के कार्यों का निर्धारण करती थीं, की एकमात्र तानाशाह हो गईं । इनमें प्रसिद्ध थीं अवन्तिका बाई गोखले, श्रीमती कैप्टन, शान्ताबाई, श्रीमती दुर्गा-बाई, श्रीमती वेदान्तम्, कमलाम सत्यमूर्ति तथा कृष्णाबाई पंजीकर । महिलाओं ने शहरों में जुलूस निकाले तथा कानूनों का उल्लंघन करके पूर्ण हड़ताल की घोषणा की । पुलिस ने निर्दयतापूर्वक महिला जुलूसों पर लाठी बरसाईं । श्रीमती स्वरूप-रानी नेहरू जो एक जुलूस का नेतृत्व करती हुई लाठी का शिकार हुईं जिसके फलस्वरूप वह तत्काल मूर्छित होकर गिर पड़ीं ।[1]

गांधी जी ने अनिच्छा से कुछ महिलाओं को नमक आन्दोलन में भाग लेने के लिए चुना था, परन्तु देशभर में महिलाओं ने बिना किसी अपील के नमक कानून तोड़ा । इसका प्रमाण यहीं से मिल जाता है कि नमक आन्दोलन के अपराध में लगभग ८०,००० व्यक्ति गिरफ्तार किए गए थे, जिनमें १७००० महिलाएं थीं ।[2]

स्कूल तथा कालेजों में पिकेटिंग इस समय चरमसीमा पर थी । श्रीमती लीलिका घोष अन्य छात्र नेताओं के साथ कलकत्ता तथा हावड़ा के स्कूलों में प्रति-दिन जाती थीं तथा छात्र-छात्राओं को उत्साहित करती थीं । चूंकि पिकेटिंग का मुख्य केन्द्र शिक्षा संस्थाएं ही थीं, अत: वहां पुलिस का ~~मुख्य केन्द्र~~ विशेष प्रबन्ध रहता था । स्कूलों के फाटक रणक्षेत्र सा दृश्य प्रस्तुत करते थे जहां हजारों की संख्या में निर्दोष विद्यार्थियों के खून की नदियां बहती थीं । देश के जेल राजनीतिक बन्दियों से भर

---

1. Amrit Bazar Patrika, 10 April, 1930.
2. Thomas, P. - ~~Hindu~~ Indian Women Through the Ages, p. 331.

चुकी थी, अतः गिरफ्तारी का स्थान लाठियों ने ले लिया था । महिलाएं न केवल इन शिक्षा संस्थाओं में पिकेटिंग करती थीं, वरन् धारा १४४ का उल्लंघन कर सम्मेलनों में भाग भी लेती थीं । उनकी वीरता का प्रमाण यही है कि लाठी चार्ज के समय भी महिलाएं नन्हें शिशुओं को लेकर अडिग खड़ी रहती थीं ।

९ जुलाई १९३० में कलकत्ता में "अखिल बंगाल छात्रसंघ" की एक बैठक में छात्रों से पढ़ाई स्थगित करने की अपील की गई, ताकि राष्ट्रीय कार्यवाहियों में वह पूर्ण रूप से भाग ले सकें । इस सभा की अध्यक्षता की थी श्रीमती वासन्तीदेवी ने[1]। वासन्ती देवी देशबन्धु श्रीदास की पत्नी थीं ।

१८ जुलाई १९३० को बेथ्यून कालेज के द्वार पर पिकेटिंग करते हुए पुलिस ने १७ बालिकाओं के एक दल को गिरफ्तार किया । उनकी गिरफ्तारी की सूचना ने छात्रों को उत्तेजित किया तथा विरोधस्वरूप लगभग ८०० छात्रों ने प्रदर्शन किया ।[2]

लगभग इसी समय, १२ अगस्त १९३० को श्रीमती उमा नेहरू तथा उनकी पुत्री, महिला वकील श्यामकुमारी नेहरू के नेतृत्व में बड़ी संख्या में विद्यार्थियों ने प्रयाग विश्वविद्यालय में पिकेटिंग की ।[3]

शिक्षा संस्थाओं के अतिरिक्त विदेशी वस्त्रों की दुकानों में पिकेटिंग का कार्य तीव्रता से चलता था, और महिलाएं इन कार्यों में सबसे आगे थीं । श्रीमती लतिका घोष के अतिरिक्त ऊर्मिला सेनगुप्ता के नेतृत्व में "महिला राष्ट्रीय संघ" की महिलाओं ने विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर पिकेटिंग की । बन्दी होने के तुरन्त पश्चात् ही नया दल पूर्व दल का स्थान प्राप्त कर लेता था । महिला राष्ट्रीय संघ ही एकमात्र तत्कालीन संगठन था जिसने लगभग ६ माह तक निरन्तर ऐसे दल एक के बाद एक भेजे ।[4]

कलकत्ते का बारा बाजार विदेशी वस्त्रों का सबसे बड़ा भंडार था । महिला क्रान्तिकारियों का केन्द्र दीर्घ काल तक यही बाजार बना रहा । ४ जुलाई १९३०

---

1. The Indian Annual Register, Vol. II, 1930, p. I.
2. Ibid, p. 8.
3. Ibid, p. 17.
4. Modern Review, 1953, Vol. 94, p. 56 (Article By Jogesh Chandra Bagal.

को लगभग १०० महिलाओं के एक दल ने इस बाज़ार पर पिकेटिंग की ।[1] इसी प्रकार २४ जुलाई को ७ महिलाएं, २८ जुलाई को २२ महिलाएं, ८ अगस्त को १८ महिलाएं, १० अगस्त को ५ महिलाएं, १२ अगस्त को १२ महिलाएं तथा २२ अगस्त को ६ महिलाएं केवल बारा बाजार में पिकेटिंग करते हुए पकड़ी गयीं ।[2]

महात्मा गांधी द्वारा आयोजित "डांडी यात्रा" के एक दिन पूर्व निर्मित "नारी सत्याग्रह समिति" का सत्याग्रह आन्दोलन में विशिष्ट स्थान है । उर्मिला-देवी इस समिति की अध्यक्ष थीं तथा अन्य सदस्याएं थीं मोहिनी देवी, ज्योतिर्मयी गांगुली, हेमप्रभादास गुप्ता, [illegible], शांतिदास तथा विमलप्रतिभा देवी । "नारी सत्याग्रह समिति" का प्रमुख पिकेटिंग केन्द्र था बारा बाज़ार । इस समिति ने पिछले पिकेटिंग का कार्य, जो पहले कुछ निश्चित समय में होता था, अब प्रातः ६ बजे से संध्याकाल तक बढ़ा दिया । समिति के सदस्य विभिन्न छोटे-मोटे दलों में विभक्त होकर दुकानदारों से विदेशी माल न बेचने के लिए तथा खरीदारों से विदेशी माल न लेने के लिए प्रार्थना करते थे । नारी सत्याग्रह समिति की सेक्रेटरी शांति-दास २४ जुलाई १९३० को बारा बाजार में पिकेटिंग करती हुई पकड़ी गईं । उन्हें ६ मास की कैद हुई ।[3]

"नारी सत्याग्रह समिति" के लगभग ८० सदस्याओं ने २५ जुलाई १९३० में महिलाओं की गिरफ्तारी के विरोध में जुलूस निकाला तथा पुलिस द्वारा रोके जाने पर ८ घंटे तक कलकत्ता की सरकुलर रोड पर धरना दिया ।[4] "नारी सत्याग्रह समिति" के कारण दीर्घकाल तक बारा बाजार का कार्य बन्द रहा तथा कलकत्ता के जेल नारी सत्याग्रहियों से भर गए ।

इनके अतिरिक्त अनेक महिलाओं ने, जो किसी भी समिति की सदस्य नहीं थीं । व्यक्तिगत रूप से विभिन्न स्थानों में सत्याग्रह का अनुष्ठान किया तथा

---

1. The Indian Annual Register, Vol. II, 1930, p. 3.

2. Ibid.

3. The Indian Annual Register, 1930, Vol. II, p. 10.

4. Ibid, p.11.

पिकेटिंग कार्य का आयोजन किया । २ जुलाई १६३० को ५०० सत्याग्रहियों ने श्रीमती गांधी तथा कमिदा तैयबजी के नेतृत्व में सूरत के मोती मन्दिर बाज़ार में पिकेटिंग की, जिसके फलस्वरूप वहाँ की सभी दुकानें बन्द रहीं ।[1] बम्बई में २७ जुलाई १६३० को महिलाओं के एक विशाल जुलूस ने "अधिकार दिवस" मनाया । इस जुलूस का नेतृत्व करने वाली थीं बम्बई की "युद्ध समिति" की अध्यक्ष श्रीमती हंसा मेहता । जुलूस में १०० देश सेविकाओं ने भी भाग लिया था ।[2] इसी प्रकार ६ जुलाई १६३० को शिमला में आयोजित असेम्बली के अधिवेशन के समय लगभग २५ कांग्रेसी महिलाओं ने असेम्बली हाल के समक्ष प्रदर्शन किया । वायसराय के आगमन के समय उन्होंने "क्रान्ति जिन्दाबाद,"झंडा ऊंचा रहे"," भगत सिंह जिन्दाबाद" तथा" गांधी की जय" आदि नारों से उनका स्वागत किया ।[3]

लाहौर में राष्ट्रीय ध्वज उद्घाटन समारोह के समय ५०० महिलाओं के एक दल ने उपस्थित होकर देशभक्ति का परिचय दिया । बम्बई में काउन्सिल के चुनाव के समय अनेक मुस्लिम तथा पारसी महिलाओं ने चुनाव स्थान टाउनहाल में पिकेटिंग की तथा सड़कों के किनारे कतार बनाकर भारी संख्या में उन्होंने मतदाताओं से "देश के प्रति ईमानदार" रहने की अपील की । इस सिलसिले में पुलिस ने ३८२ महिलाओं को गिरफ्तार किया ।[4]

इसी प्रकार उत्कल में चुनाव स्थान पर पिकेटिंग करने के अपराध में उत्कल कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष पण्डित लिंगराज मिश्रा तथा सेक्रेटरी श्रीमती मालतीदेवी, अन्य ५ महिलाओं के साथ गिरफ्तार हुई ।[5] २६ अक्टूबर १६३० को कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने दिल्ली के "क्वीन्स पार्क" में एक विशाल सभा का आयोजन किया । सभा की अध्यक्षता कर रही थीं डा० श्रीमती बैंकी । जिला मैजिस्ट्रेट ने पुलिस निरीक्षक की सहायता से

---

1. Ibid, p. 1.
2. Ibid, p. 11.
3. Ibid, p. 5.
4. Ibid, p. 23.
5. Ibid, p. 24.

एक व्यक्ति को सभा में क्रान्तिकारी कविता का पाठ करने के अपराध में पकड़ लिया। उत्तेजित जनसमूह ने प्रतिकार स्वरूप मैजिस्ट्रेट पर पत्थरों से वार किया। घायल मैजिस्ट्रेट ने भारी संख्या में गिरफ्तारी की आज्ञा दी। श्रीमती सेन गुप्ता के साथ-साथ अनेक महिलाएं भी गिरफ्तार हुईं।[1]

देश के विभिन्न भागों में बड़ी संख्या में महिलाओं को विभिन्न अपराधों के लिए बन्दी बनाया गया। श्रीमती लीलावती मुन्शी तथा श्रीमती पेरीन कैप्टेन क्रमश: बम्बई कांग्रेस कमेटी की उपाध्यक्ष तथा अध्यक्ष ६ जुलाई १९३० को अवैध कांग्रेस बुलेटिन के प्रकाशन के अपराध में पकड़ी गईं। उन्हें ३ महीने का सरल कारावास दण्ड प्राप्त हुआ।[2]

२६ जुलाई १९३० को पटना में श्रीमती हसन ईमाम, श्रीमती दास, श्रीमती शर्मा, गौरीदास, श्रीमती अम्बिका बरन आदि महिलाओं को अवैध जुलूसों में भाग लेने के अपराध में पकड़ा गया। उन्हें आर्थिक दण्ड का भागी होना पड़ा।[3]

बम्बई युद्ध-समिति की अध्यक्षा श्रीमती हंसा मेहता को २ सितम्बर १९३० को कांग्रेस बुलेटिन के प्रकाशन के लिए ३ माह का सरल तथा ५ माह का कठोर कारावास दण्ड प्राप्त हुआ।[4] १ अक्टूबर १९३० को कांग्रेस कार्यकर्ता श्रीमती मीठीबाई को थाणे में ५ महीने का सरल कारावास दण्ड प्राप्त हुआ। लगभग इसी समय दादा भाई नौरोजी की पौत्री खुर्शीदबेन को अहमदाबाद में गिरफ्तार किया गया। उन्हें २५ रुपये अर्थ दण्ड तथा १ माह का कारावास दण्ड प्राप्त हुआ। रेनुका सेन तथा कमला दास गुप्ता बम विस्फोट करने के अपराध में कलकत्ता में गिरफ्तार हुईं।[5]

६ अक्टूबर १९३० को लाहौर के एक स्कूल में पिकेटिंग करने के अपराध में १७ महिलाओं के एक दल को बन्दी बनाया गया। महिलाओं ने विरोध में भूख हड़-

---

1. Ibid, p. 22.
2. Ibid, p. 3.
3. Ibid, p. 12.
4. Ibid, p. 20.
5. Ibid, p. 25.

लाल का अनुष्ठान किया ।[1] २४ अक्टूबर को लाला लाजपतराय की पुत्री श्रीमती पार्वती देवी क्रान्तिकारी कार्यवाहियों के कारण गिरफ्तार हुईं । २८ अक्टूबर को श्रीमती कलन्तिका गोखले गिरफ्तार हुईं । उन्हें ६ महीने का सरल कारावास तथा ४०० रुपये अर्थ दण्ड का भागी होना पड़ा । अर्थ दंड न देने के अपराध में ३ महीने का कारावास दण्ड पुनः प्राप्त हुआ ।[2] श्रीमती श्यामकुमारी नेहरू तथा कृष्णाकुमारी नेहरू ११ नवम्बर १९३० को अवैध अमिमण्डली की सदस्य होने के कारण गिरफ्तार हुईं । उन्हें ५० रुपये अर्थदण्ड देना पड़ा ।[3] श्रीमती सरला देवी अम्बालाल, कु० मृदुला अम्बालाल तथा कुर्शीदबैन नौरोजी "जवाहर दिवस" में भाग लेने के उपलक्ष्य में २४ नवम्बर १९३० को गिरफ्तार हुईं । सरला देवी को १०००) तथा कुर्शीदबैन को ५० रुपये अर्थदण्ड देना पड़ा । इसी प्रकार बम्बई में आयोजित "गांधी दिवस" के उपलक्ष्य में श्रीमती गंगाबैन पटेल तथा श्रीमती शांताबैन पटेल को गिरफ्तार किया गया । श्रीमती स्नेहलता कुज़रत एक अन्य महिला थीं जिन्हें अवज्ञा-परीक्षण के अपराध में २८ दिसम्बर १९३० को गिरफ्तार किया गया ।[4]

इस काल में महिलाओं का राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान शांतिपूर्ण सम्मेलनों तथा सरकारी आदेशों की अवज्ञा द्वारा भारी संख्या में जेल जाने तक ही सीमित रहा ।

(४) असहयोग तथा अवज्ञा आन्दोलन में क्रान्तिकारी प्रवृत्ति का समावेश—

द्वितीय चरण १९३१ से १९३६ तक

१९३१ से भारत की राजनीतिक परिस्थितियों में अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए । १९२९ के लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस ने अपना ध्येय स्वशासन की स्थिति के स्थान पर पूर्णस्वराज्य घोषित कर दिया था । २६ जनवरी १९३० का दिन स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाया गया ।

---

1. Ibid, p. 27.
2. Ibid, p. 32.
3. Ibid, p. 35.
4. Ibid, p. 46.

५ मार्च १९३१ में गांधी-इर्विन समझौते के द्वारा अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया गया तथा समझौते की शर्तों के अनुरूप राजनीतिक बन्दी छोड़ दिए गए ।

१९३१ के अन्तिम दिनों में गांधी, गोलमेज सभा में भाग लेकर भारत लौटे । गोलमेज सभा का कोई उल्लेखनीय परिणाम नहीं निकला । इसी समय सर जान एन्डर-सन बंगाल के गवर्नर नियुक्त हुए । ४ जनवरी १९३२ कांग्रेस के इतिहास में दुखद दिवस था । महात्मा गांधी तथा कांग्रेस के सभी वरिष्ठ नेता बन्दी बना लिये गए कांग्रेस तथा संबंधित प्रत्येक संघ अवैध घोषित कर दिये गए तथा उनके प्रेस बंद हो गए । १९३२-३३ सबसे अधिक कैद का वर्ष था । पंडित मालवीया की २ मई १९३२ की रिपोर्ट के अनुसार प्रथम ४ महीनों में ८०,००० व्यक्ति बन्दी बनाए गए तथा मार्च १९३३ के अन्त तक राजनैतिक कैदियों की संख्या १२०,००० हो गई ।[१]

१९३२ के मध्य तक महात्मा गांधी ने कांग्रेस में तथा देश के आन्दोलन में रुचि लेना छोड़ दिया । इस समय उनका अधिकांश समय हरिजन उद्धार में लगा रहा । सितम्बर १९३२ में उन्होंने भूख हड़ताल का अनुष्ठान किया -तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन को शक्तिशाली बनाने के उद्देश्य से नहीं, अपितु पिछड़ी जाति के लिए पृथक प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में ।" पूना समझौते के द्वारा इस भूख हड़ताल का अन्त हुआ, जिसके द्वारा पिछड़ी जाति के लिए स्थान सुरक्षित कर दिए गए ।

मई १९३३ में गांधी ने पुन: भूख हड़ताल प्रारंभ की जिसका उद्देश्य स्वयं का शुद्धिकरण तथा हरिजनोद्धार था । महात्मा गांधी की अपील पर असहयोग आन्दोलन कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया गया । यह निर्णय क्रान्तिकारियों के लिए असह्य था । महात्मा गांधी के इस कदम की भर्त्सना करते हुए सुभाषचन्द्र बोस ने कहा कि "अवज्ञा आन्दोलन स्थगित करने का महात्मा गांधी द्वारा उठाया गया यह नवीन कदम उनकी पराजय को प्रमाणित करता है । हम लोगों के स्पष्ट विचारों में भी गांधी राजनीतिक नेता के रूप में असफल रहे हैं । कांग्रेस को नए सिद्धान्तों तथा नए साधनों द्वारा पुन: संगठित करने का समय आ गया है, जिसके लिए नए नेता का होना आवश्यक है ।"[२]

---

1. Dutt, R.P. - India today, p. 310.

2. Quoted from 'India Today' By R.P. Dutt, pp. 311-12.

अब तक देश के नेता अवज्ञा तथा असहयोग, जिन्हें शांतिपूर्ण अहिंसात्मक युद्ध की संज्ञा दी जा सकती है, में विश्वास रखते थे । इस नीति की विफलता सामने आ चुकी थी और शांतिपूर्ण उपायों से अपनी मांग सामने रखने का भारतीयों को कोई पुरस्कार नहीं मिला था । नवीन विचारों से ओतप्रोत इस समय के नेताओं ने पुरानी लकीर पर चलने में कोई सार्थकता नहीं देखी । फलस्वरूप इस समय महान् क्रान्तिकारी प्रवृत्ति का तीव्रता से विकास हुआ । राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रवृत्ति शांतिपूर्ण सम्मेलनों तथा सामूहिक हड़तालों से हट कर क्रान्तिकारी तथा सैनिक कार्यवाहियों में परिवर्तित हो गई ।

देश के दो बड़े क्रान्तिकारी दल 'युगान्तर' तथा 'अनुशीलन' महात्मा-गांधी के असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हो चुके थे । परन्तु इन दलों के कुछ सदस्यों ने जो इस नीति से सहमत नहीं थे, गुप्त रूप से क्रान्तिकारी संगठनों का निर्माण कार्य प्रारंभ किया । नवयुवक वर्ग, जिसमें महिलाएं भी थीं ने इन संगठनों में महत्वपूर्ण योगदान दिया । १९२८ की कांग्रेस ने महिलाओं के लिए सैनिक शिक्षा का मार्ग खोल दिया था । छोटे-छोटे क्रान्तिकारी संगठनों का इस समय बोलबाला था, जो कलकत्ता, ढाका, कोमिला तथा चिटागांग आदि स्थानों पर स्थित थे । क्रान्तिकारी विचारों से ओतप्रोत स्कूल तथा कालेज की छात्राओं ने इन दलों में खुल कर भाग लिया । बीना दास, शांति घोष, कल्पना दत्त, प्रीतिलता वोड्देदार, सुनीति-चौधरी आदि इन दलों की प्रशिक्षित प्रमुख क्रान्तिकारी नवयुवतियां थीं । भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में प्रथमबार क्रान्तिकारी कदम उठाने वाली १५ तथा १४ वर्ष की शांति तथा सुनीति नामक दो बालिकाएं थीं । १४ दिसम्बर १९३१ को कोमिला के मैजिस्ट्रेट स्टीवेन्स पर गोली चला कर इन बालिकाओं ने उन्हें तत्काल धराशायी कर दिया । गोली चलाने के तुरन्त बाद उन्हें पकड़ लिया गया । नाबालिग होने के कारण उन्हें आजीवन कारावास का दण्ड घोषित हुआ ।[1] तत्पश्चात् ६ फरवरी १९३२ को, कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के समय बीना दास नामक वीर बाला ने गवर्नर जैक्सन पर पिस्तौल से वार किया ।[2]

---

1. Modern Review, 1953, Vol. 94 - Article By Jogesh Chandra Bagal, p. 57.

2. Ibid.

परन्तु गोली चलने के पूर्व ही उसे पकड़ लिया गया।[1] वीनादास को ९ वर्ष का कठोर कारावास दिया गया।[2]

महिला क्रान्तिकारियों की इस उत्तेजनात्मक घटनाओं ने सरकार को सचेत कर दिया। अनेक क्रान्तिकारी महिलाओं को संदेहमात्र पर ही पकड़ लिया गया। इनमें प्रमुख थीं कमला चटर्जी, विमल प्रतिभा देवी, शोभारानी दत्त, उज्ज्वला देवी, पारुल मुकर्जी, मायादेवी, ज्योतिकाना दत्त, सोनालता दास, रेनुका सेन तथा प्रफुल्ल ब्रह्म।[3] शांति सुधा घोष क्रान्तिकारियों के लिए ग्रिन्डले बैंक में २०००० का जाली चैक भुनाती हुई पकड़ी गई।[4]

---

1. Northern India Patrika, 31 October, 1968 (Article By Arati Sen Gupta).
2. न्यायालय के समक्ष लिखित प्रमाण देते हुए उन्होंने कहा :—
   "I fired at the Governor impelled by my love of one country which is being repressed. I thought that the only way to death was by offering myself at the feet of my country and thus make an end to all my suffering. I invite the attention of all to the situation created by the measure of the Government which unsex even a frail woman like myself, brought up in all the best tradition of Indian womanhood. I can assure all that I have no sort of personal feeling against Sir Stanley Jackson, the man who is just as good as my father and the Hon'ble Lady Jackson who is just as good as my mother. But the Governor of Bengal represents the system which has kept enslaved three hundred millions of my country-men and country women." - Quoted from The Indian Annual Register, Vol. I, Jan - June, 1932, p. 11.
3. Modern Review, 1953, Vol. 94, p. 58.
4. Ibid.

सावित्री देवी तथा सुहासिनी गांगुली दो प्रसिद्ध महिलाएं थीं जो चिटगांग में क्रांतिकारियों को आश्रय देने के अपराध में पकड़ी गईं थीं ।[1] सावित्री देवी का घर क्रान्तिकारियों का अड्डा बना रहता था । जून १९३२ को सावित्री देवी के अड्डे पर एक उत्तेजनात्मक घटना घटित हुई । सूर्यसेन तथा निर्मला सेन ने वहाँ आश्रय लिया था । १३ जून १९३२ को पुलिस तथा सेना ने अप्रत्याशित ढंग से लगभग आधी रात के समय वहाँ छापा मारा । प्रीतिलता तहखाने में छिप चुकी थीं । कैप्टेन कैमरून अपनी पिस्तौल लिये नीचे उतर ही रहे थे कि सूर्यसेन तथा निर्मला सेन ने उन्हें धराशायी कर दिया । उनका मृत शरीर सीढ़ियों पर से लुढ़कता हुआ नीचे आ गिरा । सूर्यसेन तथा प्रीतिलता भाग निकलीं परन्तु अभाग्यवश अपूर्वसेन पुलिस की गोली का शिकार हो गई । सावित्री देवी को आश्रयदाता के रूप में पुत्र-पुत्री सहित पकड़ लिया गया । 2

प्रीतिलता तथा कल्पनादत्त उत्साही तथा निडर महिलाएं थीं । २४ सितम्बर १९३२ को प्रीतिलता ने चिटगांग के निकट पहाड़तली में यूरोपियन क्लब पर हमला किया । यद्यपि क्लब पर पुलिस का पहरा था, तथापि प्रीतिलता के दो सहयोगी सुशील दे तथा महेन्द्र चौधरी मुस्लिम वेश में अन्दर प्रवेश कर चुके थे । इन दोनों ने उपस्थित यूरोपीय जनसमूह पर गोलवर्षा की । लगभग इसी समय प्रीतिलता ने तितर बितर लोगों पर गुप्त रूप से बम फेंके । पुलिस ने तत्काल ही उन्हें पकड़ लिया । बचाव का कोई उपाय न देख प्रीतिलता ने क्रांतिकारी मर्यादा के अनुरूप पोटैशियम साइनाइड खाकर आत्महत्या कर ली[3] ।

क्रान्तिकारी कार्यवाहियों के अतिरिक्त महिलाओं ने इस समय पिकेटिंग के अतिरिक्त सभा तथा सम्मेलनों के आयोजन, जुलूसों के प्रदर्शन आदि में भी अपूर्व उत्साह से भाग लिया । इन कार्यों में भाग लेने वाली साहसी महिलाएं थीं हंसा मेहता, जयश्री रायजी, पेरीन कैप्टेन, लीलावती मुन्शी, मनीबेन पटेल, खुर्शीद बेन, लाडो रानी जुत्शी, मनमोहिनी सहगल, स्वदेश कुमारी, रुक्मिणी लक्ष्मीपति, दुर्गाबाई देश-

---

1. Modern Review, 1953, Vol. 94, p. 58.

2. H.I. Patrika, 31 October, 1968.

3. Ibid.

मुख, सत्यवती तथा नेहरू परिवार की महिलाएं ।

लाड़ोरानी नामक पंजाबी महिला इस समय की प्रसिद्ध आन्दोलनकारी थीं । उन्होंने अन्य सत्याग्रही महिलाओं के साथ विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर, विधान सभा हाल तथा न्यायालयों में पिकेटिंग का कार्य किया । उन्होंने अपने दल के लिए राष्ट्रीय तिरंगे के रंगों में लाल पैंट, हरी कमीज़ तथा सफेद गांधी टोपी के रूप में पोशाक नियत की ।[1] २३ जून १९३० में एक भाषण देते हुए उन्होंने देशवासियों से लाठी तथा बन्दूकों का सामना करने की अपील की । उनका कहना था कि सरकार अब तक इस प्रकार आतंकित कर सकती है ? सम्मेलन के तत्काल बाद उन्होंने क्रान्तिकारी सुझावों से पूर्ण अनेक पर्चे वितरित किये । इस प्रकार के पर्चे बांटना, "भारतीय पेनलकोड" की धारा १२४ "क" तथा १५३ "अ" के अन्तर्गत अवैध माने गए थे । कानूनों के उल्लंघन के अपराध में उन्हें बन्दी बना लिया गया ।[2] १९३१ में गांधी इरविन समझौते के अन्तर्गत वे रिहा हुईं ।

जनक कुमारी जुत्शी तथा स्वदेश कुमारी जुत्शी को स्वदेश प्रेम तथा क्रांति-प्रवृत्ति अपनी मां श्रीमती लाड़ो रानी से विरासत में मिली थी । ९ अक्टूबर १९३१ में १७ महिलाएं गिरफ्तार हुईं, उनमें इन दोनों का नाम भी था ।

श्रीमती मनमोहिनी सहगल, लाड़ोरानीकी तृतीय पुत्री, क्रांतिकारी भगतसिंह द्वारा आयोजित छात्रसंघ की अध्यक्षा थीं ।[3] शिक्षा संस्थाओं में पिकेटिंग करते समय उन्हें गिरफ्तार किया गया था । गांधी-इरविन समझौते के अन्तर्गत उन्हें भी जेल से छोड़ दिया गया ।

लाला लाजपत राय भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अमर सेनानी थे । उनकी पुत्री पार्वती देवी उनकी सच्ची अनुचर थीं । सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने के अपराध में वह भी बन्दी बनाई गईं तथा उन्हें २० हजार रुपये का अर्थदण्ड देना पड़ा[4] ।

---

1. Amrit Bazar Patrika, 16 July, 1930.

2. Amrit Bazar Patrika, 2 September, 1930.

3. Times of India, 5 February, 1930.

4. Amrit Bazar Patrika, 15 October, 1930.

श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख मद्रास राज्य की प्रमुख सत्याग्रही थीं । उन्होंने महात्मागांधी द्वारा आयोजित नमक कानून तोड़ने के समय महत्वपूर्ण भाग लिया था । जुलूसों का नेतृत्व करने के अपराध में उन्हें २५ मई १९३० को गिरफ्तार किया गया था ।[1] अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए उन्होंने आंध्र विश्व-विद्यालय से कानून की परीक्षा पास की तथा वकालत का कार्य आरंभ किया । १९४२ में हत्या के मुकदमें में बहस करने वाली भारत की वह प्रथम महिला थीं ।

सत्यवती एक जन्मजात क्रान्तिकारी महिला थीं । स्वतंत्रता आन्दोलन के उपलक्ष में उन्होंने अनेक जुलूस निकाले, विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर पिकेटिंग की तथा सम्मेलन में उत्तेजनात्मक भाषण दिए ।[2] अप्रैल १९३८ में आयोजित राज-नीतिक सभा में उन्होंने भाग लिया । सरकार उनके ऊपर कड़ी दृष्टि रखती थी । उन्हें २४ घंटे के अन्दर पंजाब छोड़ने का आदेश दिया गया । आदेश का उल्लंघन करने के अपराध में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया ।

अन्य प्रान्तों की भांति, उत्तरप्रदेश का भी स्वतंत्रता आन्दोलन में विशिष्ट भाग रहा है, विशेष कर महिलाओं के योगदान की दृष्टि से । उत्तर-प्रदेश के आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण करने वाली नेहरू परिवार की महिलाएं थीं । श्रीमती स्वरूप रानी नेहरू सत्याग्रह के समय व लाठी का प्रहार सह चुकी थीं । इस समय पण्डित जवाहरलाल नेहरू की बहन कृष्णा हठी सिंह, श्यामकुमारी नेहरू के साथ एक जुलूस में भाग लेती हुई पकड़ी गईं । उन्हें ५० रुपये का अर्थदण्ड दिया गया । अर्थदण्ड की धनराशि किसी अपरिचित ने जमा कर दी, जिसके फलस्वरूप वह रिहा की गईं ।[3] इसी प्रकार की कार्यवाहियों के उपलक्ष में श्रीमती कमला नेहरू भी गिर-फ्तार हुई थीं । गिरफ्तारी के समय उन्होंने कहा था," अपने पति के कदमों का अनुसरण करने में हमें अत्यधिक प्रसन्नता तथा गौरव है । हमें आशा है कि जनता झण्डे को ऊंचा रखेगी ।"[4]

---

1. Amrit Bazar Patrika, 27 May, 1930.
2. Amrit Bazar Patrika, 4 June, 1930.
3. Nehru, J.L. - An Autobiography, p. 210.
4. Ibid, p. 334.

श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल एक अन्य महिला थीं जो १६३२ में आन्दोलन में भाग लेने के अपराध में जेल गई थीं ।[१] श्रीमती सरोजिनी नायडू का भारत की विभूतियों में एक प्रमुख स्थान है । स्वतंत्रता संग्राम में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है । १६३१ में द्वितीय गोलमेजसभा में, भारतीय महिलाओं की एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में महात्मागांधी के साथ लंदन जाने वाली वह प्रथम महिला थीं । भारत में राष्ट्रीय अपराधी के रूप में उन्हें अनेक बार जेल यात्रा करनी पड़ी थी । गान्धी-इरविन समझौते के फलस्वरूप वह छोड़ी गई थीं ।

अमर कौर तथा आदर्श कुमारी ने अंग्रेजी सरकार को तंग करने के नए उपाय निकाले । लायलपुर से लाहौर जाते समय उन्होंने जंजीर खींच कर चलती ट्रेन रुकवा दिया तथा "इन्कलाब जिन्दाबाद", "महात्मा गांधी की जय", "विदेशी माल का बहिष्कार" आदि नारों से आकाश गुंजा दिया । पुलिस द्वारा उन्हें पकड़ लिया गया । उनका साथ देने वाली अन्य महिलाएं थीं — श्रीमती यशोदन कुमारी, तथा कृष्णाकुमारी । प्रत्येक को ४ महीने का कारावास दण्ड मिला, तथा अमर कौर को अकारण जंजीर खींचने के अपराध में एक महीने का कारावास अधिक दिया गया[२]।

इन व्यक्तिगत महिलाओं के अतिरिक्त महिला संगठनों ने भी इस समय की राजनीति में सक्रिय भाग लिया । रचनात्मक कार्यवाही के निमित्त कतिपय नारी संगठनों का निर्माण किया गया जैसे नारी सत्याग्रह समिति, लेडीज पिकेटिंग बोर्ड, राष्ट्रीय महिला संघ । इन संघों की कार्यवाही के विषय में पीछे विचार हो चुका है । उस समय सरकार ने उन्हें अवैध करार दे दिया था ।[३]

मई १६३१ में एक नए संघ का उद्घाटन हुआ । यह संघ था बंगाल की महिलाओं द्वारा निर्मित "लेडीज पिकेटिंग बोर्ड ।"[४] इस बोर्ड का प्रमुख उद्देश्य था स्वदेशी वस्त्रों का प्रचार करना, विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर पिकेटिंग करना,

---

1. Women on March - December, 1957, p. 22.
2. The Tribune, Lahore 30 September, 1932.
3. Amrit Bazar Patrika, 5 January, 1932.
4. Amrit Bazar Patrika, 14 May, 1931.

कुटीर उद्योगों की प्रगति के लिए प्रयत्न करना, अछूत भावना का बहिष्कार करना तथा सभाओं, सम्मेलनों एवं जुलूसों के माध्यम से सरकारी नियमों का उल्लंघन करना। इस बोर्ड ने कार्य की सुविधा के लिए अपने को अनेक छोटे-छोटे उपसंघों में विभाजित कर लिया था, जैसे— बहिष्कार तथा पिकेटिंग समिति, प्रभातफेरी समिति, स्वदेशी प्रचार समिति आदि।

स्वतंत्रता आन्दोलन के संबन्ध में भारतीय महिलाओं ने न केवल लाठियाँ ही सहीं, अपितु राजनीतिक अपराधी के रूप में उन्हें कठोर कारावास का दण्ड भी प्रदान किया गया। जेल में भी अंग्रेजों ने उनके साथ कोई उदारता का व्यवहार नहीं किया। इसके ठीक विपरीत उन्हें कठोर यातनाएं दी गईं, हत्या के अपराधी तथा अन्य इसी प्रकार के अपराधियों के साथ उन्हें एक ही कमरे में रखा गया था तथा निम्न से निम्न कोटि के कार्यों को करने पर बाध्य किया गया।[1] उच्च-

---

१. श्रीमती सौमबाला ने न्यायालय के समक्ष एक अपील में इसे स्पष्ट किया —

"I want to say something about the look up in which we are kept for the last six days. I am in the lock up. I am given a very small room with a small 'chokdi' in it. There is no sort of privacy in it. The doors cannot be closed and the room is open on the road side. Police men walk up and down in front of the room. It is impossible to take path, answer calls of nature or even change clothes without being seen from outside. There is no facility for taking bath. The room is not even fi for dogs and cattle. It is a great shame that you have to kee women in such places. There is no light in the room. I am rea to go to jail for six years...... Have you no sisters and mothers? How would you like them to be treated like this? I a bringing this matter to your notice not for my own sake but for the sake of my sisters who are bound to come after me. If yo want to have experience of the lock up, you go and stay there for a day. If you can not do it at least you can see it." — Amrit Bazar Patrika, 1 November, 1930, p. 9.

कोटि की स्थिति रखने वाली महिलाओं को भी "सी" क्लास में ही रखा गया था। श्रीमती अरुणा आसफअली, श्रीमती दुर्गादास, चन्दी मीरी तथा अम्बा देवी के साथ इतना अधिक दुर्व्यवहार किया गया कि वह भूख हड़ताल करने पर बाध्य हो गईं।[1] स्वदेश प्रेम की भावना से ओत-प्रोत इन स्वतंत्रता सेनानियों ने इन कष्टों को सहर्ष झेला।

१९३५ में "गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट" पास हुआ। इस ऐक्ट के अनुसार महिलाओं को भी मताधिकार तथा निर्वाचित होने का अधिकार प्राप्त हो गया। प्रथम सार्वजनिक निर्वाचन १९३७ में हुआ। महिलाओं के लिये इस निर्वाचन में विशेष केन्द्रों की स्थापना की गई थी। हेमप्रभा मजूमदार बंगाल विधानसभा के लिए निर्वाचित हुईं।[2] उनके अतिरिक्त आठ महिलाएं आम केन्द्रों से, ४२ सुरक्षित केन्द्रों से निर्वाचित हुईं। ५ महिलाओं को उच्च सदन के लिए मनोनीत किया गया। ६ महिलाओं को मंत्रिमंडल में भी स्थान मिला। अनुसूया बाई काले, सिप्पी मिलाई तथा कुदसिया रसूल क्रमश: मध्यप्रदेश, सिन्ध, तथा उत्तर प्रदेश में डिप्टी स्पीकर के पद को सुशोभित किया। श्रीमती हंसा मेहता तथा बेगम शाहनवाज़ संसद सेक्रेटरी निर्वाचित हुईं तथा श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित को स्थानीय स्वशासन सरकार का मंत्रीपद प्राप्त हुआ।

(५) अन्तिम चरण — १९४० से १९४७ तक

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का अन्तिम चरण आधुनिक भारत के इतिहास में विशिष्ट स्थान रखता है। यही वह समय था जब वर्षों के अथक प्रयास के उपरान्त भारत को अपने दृढ़ संकल्प, नि:स्वार्थ बलिदान तथा निरन्तर संघर्ष का पुरस्कार मिला — स्वतंत्रता के रूप में।

१९३७ के चुनाव में कांग्रेस ही एकमात्र संस्था थी जो सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती थी। इस समय तक कांग्रेस की शक्ति में अपूर्व विकास हुआ।

---

1. The Indian Annual Register, Vol. I, January to June 1932, p. 192.
2. Modern Review, 1953, Vol. 94, p. 88.

दिसम्बर १६३६, कांग्रेस के फैजपुर अधिवेशन में सदस्य संख्या ६३६००० थी । १६३७ के निर्वाचन के बाद इसकी संख्या ३ मिलियन हो गई तथा १६३८ में ४ मिलियन थी। १६३६ के त्रिपुरी अधिवेशन में कांग्रेस में ५ मिलियन सदस्य थे ।[१]

यही समय द्वितीय विश्वयुद्ध के विस्फोट का समय था । विश्व युद्ध की घोषणा ने भारतीय राजनीति को, विशेष कर स्वतंत्रता संग्राम को अत्यधिक प्रभावित किया । द्वितीय विश्व युद्ध के संदर्भ में भारत प्रत्यक्ष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सम्पर्क में आया । इसके पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत का भाग ब्रिटिश साम्राज्य की दृष्टि से देखा जाता था । द्वितीय विश्व युद्ध के कारण भारत की स्वतंत्रता के प्रश्न को, भारतीय राजनीति में अग्रगण्य स्थान प्राप्त हो गया ।

१६३६ द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रारम्भिक काल था । ३ सितम्बर १६३६ में इंगलैण्ड ने जर्मनी के विरुद्ध रणभेरी बजा दी । युद्ध घोषणा के कुछ घंटों बाद ही वाइसराय ने भारतीय प्रतिनिधियों की सलाह के बिना ही, भारत को युद्ध में सम्मिलित घोषित कर दिया । ब्रिटिश संसद् ने तत्काल ही" गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया अमेन्डमेन्ट ऐक्ट" पास करके वाइसराय को भारतीय संविधान का एकमात्र संरक्षक बना दिया । ३ सितम्बर १६३६ को" डिफेन्स आफ इण्डिया" विज्ञप्ति ने केन्द्रीय सरकार को सम्पूर्ण देश के ऊपर शासन करने का अधिकार प्रदान कर दिया – युद्ध सम्बन्धी आज्ञा जारी करना, ब्रिटिश भारत की सुरक्षा के लिए किसी भी प्रकार के नियमों का निर्माण करना, सभा, सम्मेलनों तथा जुलूसों पर प्रतिबन्ध लगाना, बिना वारन्ट के बन्दी बनाना तथा कानूनों के उल्लंघन के लिये मृत्युदण्ड तथा आजीवन कारावास दण्ड तक का अधिकार इसमें सम्मिलित था ।

१४ सितम्बर को राष्ट्रीय कांग्रेस कमेटी ने स्थिति पर विचार करते हुए यह आदेश पारित किया – "कमेटी अपने को युद्ध से सम्बन्धित नहीं करेगी तथा ऐसे युद्ध में सहयोग नहीं देगी जो साम्राज्यवादी पथ पर अग्रसर है ।"[२] इसके साथ ही

---

1. Dutt, R.P. - India Today, p. 422.

2. Dutt, R.P. - India Today, p. 449.

कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से अपने युद्ध सम्बन्धी उद्देश्यों को खुले रूप में सामने रखने के लिए अपील की तथा प्रश्न उठाया कि "क्या वे भारत को एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में, जिसकी नीति उसके व्यक्तियों की इच्छाओं द्वारा निर्धारित होती है मान रहे हैं ?"[1] कांग्रेस के इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक था ।

कांग्रेस के नेताओं तथा ब्रिटिश सरकार के मध्य इस संघर्ष का प्रारम्भ आगामी स्वतंत्रता आन्दोलन का पूर्व चिह्न समझा जा सकता है । २ अक्टूबर को बम्बई में ९०,००० कर्मचारियों ने युद्ध घोषणा के विरुद्ध एक दिन की राजनीतिक हड़ताल मनाई । भारत को युद्ध में सम्मिलित करने की घोषणा के विरुद्ध जनता की यह प्रथम हड़ताल थी ।[2]

इस अभियान को प्रभावशाली बनाने के लिए महात्मा गांधी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह का अनुष्ठान किया । यह सत्याग्रह १७ अक्टूबर १९४० को प्रारम्भ किया गया । इसमें लगभग तीस हजार पुरुष तथा महिलाएं बन्दी बनाई गईं ।[3]

---

1. Ibid.
2. हड़ताल के तुरन्त बाद एक बैठक में सभा ने यह विज्ञप्ति घोषित की :—

   "This meeting declares its solidarity with the international working class and the people of the world, who are being dragged into the most destructive war by the imperialist powers. The meeting regards the present war as a challenge to the international solidarity of the working class and declares that it is the task of the workers and people of the different countries to defeat this imperialist conspira against humanity." - Quoted from Dutt's - India Today, p.45(

3. Dimakar, R.R. - Satyagraha in Action, Calcutta, p. 98.

वाइसराय के नकारात्मक उत्तर के विरोध में अक्टूबर १९३९ को कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने अपने-अपने पदों से त्यागपत्र दे दिया ।[1] यही नहीं कांग्रेस ने यह भी घोषित किया कि वह साम्राज्यवादी नीति की समर्थक नहीं है और इसलिए युद्ध में उसका कोई भाग नहीं है ।[2] महात्मा गांधी की घोषणा के अनुसार भारत को किसी शक्ति से वैर नहीं है और उसे युद्ध में सम्मिलित करने का उत्तरदायित्व पूर्णरूप से अंग्रेजों पर है, इसलिए अंग्रेजों को भारत से हट जाना चाहिए । परन्तु अंग्रेज इन पुकारों को सुनने के पक्ष में नहीं थे । फलस्वरूप ८ अगस्त १९४२ को कांग्रेस ने इतिहास प्रसिद्ध 'भारत छोड़ो प्रस्ताव' पास किया ।

सर स्टाफर्ड क्रिप्स नवीन आशा तथा नवीन सुझावों को लेकर भारत की जनता का सहयोग लेने के लिए भारत भेजे गए । परन्तु भारत अब धोखे में आने वाला नहीं था । पिछले महायुद्ध के समय दिए गए झूठे आश्वासनों ने उनकी आँखें खोल दी थीं, फलतः क्रिप्स मिशन भारत में पूर्णतः असफल रहा । शांति स्थापना

---

1. The Working Committee which met in September, 1939 held that "declared wishes of the Indian people.....had been deliberatel ignored by the British Government. The Committee unhesitatingl condemns the latest agression of the Nazi Government in Germany against Poland... The issue of war and peace for India must be decided by the Indian People." - Nehru, J.L. - Towards Freedom, p. 432.
2. १९४० में रामगढ़ अधिवेशन में कांग्रेस ने घोषित किया :-
   "The recent pronouncements made on behalf of the British Government in regard to India demonstrate that Great Britain is carrying on the war fundamentally for imperialist ends... Under these circumstances it is clear that the Congress can n in any way directly or indirectly be a party of the war." - Dutt - India Today, p. 450.

के स्थान पर भारत ने असहयोग तथा क्रान्तिकारी योजनाओं को पुन: जीवित किया किया । वास्तव में यह योजनाएं अनिरन्तर चल रही थीं, और उचित अवसर पाकर इनका विस्फोट अधिक तीव्रता से होता था ।

"भारत छोड़ो प्रस्ताव" के रूप में जनता को नया नारा मिला । हजारों की संख्या में नर-नारी स्वतंत्रता की वेदी पर बलि होने लगे । महिलाएं भी इन कार्यों में पीछे नहीं थीं । इस समय तक अनेक क्रान्तिकारी महिलाओं ने कांग्रेस की सदस्यता स्वीकार कर ली थी । कुछ उत्साही महिलाएं कांग्रेस के नेतृत्व में रह कर महिलाओं का एक पृथक संगठन निर्मित करने की इच्छुक थीं । अनेक महिलाएं अब तक कांग्रेस में महत्वपूर्ण पदों पर आसीन थीं, तथा प्रान्तीय शासन में जहां कांग्रेस का बहुमत था, महिलाएं उच्च पद पर नियुक्त थीं । १६३८ में कांग्रेस अध्यक्ष सुभाषचन्द्र बोस ने "राष्ट्रीय योजना आयोग" का आयोजन किया था । श्रीमती लीला राय (उस समय लीला नाग) को महिलाओं की उप समिति में स्थान मिला था ।

नेता जी के कांग्रेस-अध्यक्ष पद पर आने से कांग्रेस में आपसी मतभेद के कारण दो दलों का निर्माण हुआ । बंगाल कांग्रेस कमेटी ने नेताजी का पक्ष ग्रहण किया और इस कारण कांग्रेस "वर्किंग कमेटी" ने उसे पृथक कर दिया । यह दल प्रगतिवादी दल के नाम से प्रसिद्ध हुआ । श्रीमती हेमप्रभा मजूमदार, जो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी तथा बंगाल प्रदेश कांग्रेस कमेटी की सदस्या थीं, ने सुभाषचन्द्र बोस का पक्ष लिया और प्रगतिवादी दल की प्रमुख कार्यकर्ता हुईं । जनवरी १६४१ में नेता जी के विदेश जाने पर बंगाल कांग्रेस कमेटी की एकमात्र निर्देशिका वही थीं[1]।

श्रीमती लीला राय सुभाषचन्द्र बोस की एक अन्य सहयोगी थीं । २ जुलाई १६४० में नेताजी के बन्दी होने के कारण उन्होंने प्रगतिवादी दल के साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन भार अपने ऊपर ले लिया । नेताजी के सुझाव पर उन्होंने कांग्रेस के इस दल का संगठन देशव्यापी स्तर पर प्रारंभ किया, यद्यपि कांग्रेस ने इसकी अनुमति नहीं दी थी । १६४२ में क्रिप्स मिशन की असफलता के समय उन्हें गिरफ्तार

---

1. Modern Review, 1953, Vol. 94, p. 59.

किया गया था ।[१]

कांग्रेस के दूसरे दल की प्रमुख कार्यकर्त्री थीं बीना दास । अनेक वर्षों तक वह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की सदस्या रहीं तथा दक्षिण कलकत्ता के जिला कांग्रेस कमेटी की सैक्रेटरी नियुक्त हुई थीं ।[२]

१९४२ के आन्दोलन में महिलाओं का भाग विशेष उल्लेखनीय रहा है । इस आन्दोलन का आविर्भाव अगस्त में हुआ । २० सितम्बर १९४२ को ५०० व्यक्तियों के एक दल ने तीलापम थाना पर अधिकार करने के उद्देश्य से उसे घेर लिया । इस दल का नेतृत्व कर रही थीं कनक लता बरुआ । उनके सीने में शीघ्र ही एक गोली लगी जिसके फलस्वरूप वह धराशायी हो गईं । उनके साथ ही अनेक व्यक्ति शहीद हुए ।[३]

आसाम में गोहपुर, नारायणपुर, ढ्योक तथा बराकपुर आदि स्थानों में महिलाओं ने जुलूस निकाले तथा पुलिस की गोलियों का शिकार बनीं ।[४] आसाम में "स्वतंत्र भारत संघर्ष शक्ति" नामक संस्था का आयोजन किया गया । महिलाओं ने इसकी सदस्यता ग्रहण की तथा प्राथमिक चिकित्सा, रेडक्रास आदि का उत्तम प्रबन्ध किया ।[५]

बंगाल स्वतंत्रता संग्राम का अग्रगण्य नेता था । वहाँ की महिलाओं ने पिछले वर्षों में अपूर्व उत्साह का परिचय दिया था । अगस्त आन्दोलन में भी वही क्रम बना रहा । वहाँ महिलाओं ने "भगिनी सेवा संघ" की स्थापना के माध्यम से राजनीतिक कार्यों का संपादन किया । २७ सितम्बर १९४२ को बंगाल की वीर पुत्री मतांगिनी हाजरा एक विशाल दल का नेतृत्व करते हुए पुलिस की गोली का निशाना बनीं, परन्तु मरते दम तक उन्होंने राष्ट्रीय झण्डे के सम्मान

---

1. Ibid.

2. Ibid.

3. Mitra, Bejin and Chakraborty, P. - Rebel India, p. 3.

4. Ibid, p. 5.

5. Ibid.

को भुकने नहीं दिया ।[१]

उत्तर-प्रदेश आन्दोलनकारी कार्यवाहियों का प्रमुख केन्द्र था । सरकारी आज्ञा के अनुसार यहाँ कांग्रेस के कार्यालय पर पुलिस ने अपना अधिकार कर लिया था । १० अगस्त १९४२ को छात्रों के एक दल ने छापामार कर उसे अपने अधिकार में कर लिया ।[२]

'भारत छोड़ो आन्दोलन' के समय श्रीमती इन्दिरा गांधी ने प्रथम बार

---

१. उनके कृत्यों का उल्लेख इस प्रकार है :—

"From the north, enstered another procession under the leadership of the Veteran Congress Worker of the sub-division Smt. Matangini Hazra, aged 73. They encountered the soldiers under the command of Sj. Anil Kumar Bhattacharyya. They had to withdraw to some distance on being attacked by the soldier at the narrow entrance by one side of the 'Ban Pukur'. Then our soldiers of freedom led by Smt. Matangini Hazra again encountered the Government troops, who opened fire and continued showering bullets for a long time. Smt. Matangini Hazra held the national flag firmly and advanced. The Government troops first hit her on both hands. Her hands dropped but not the National Flag, which she still held light and advanced, requesting the Indian troop to cease firing and to give up the jobs and join the Freedom Movement. She received a reply- a bullet which ran right through her forehead and she fell dead. As she lay there in the dust, sanctifi by her blood, the National Flag was still in her grip, yet flying unsullied." - (August Revolution: Two Year's National Government: Midnapore, pp. 22-23).

2. August Struggle Report - Prepared under the aegis of All-Ind Satyagraha council U.P. branch (unpublished) A.I.C.C. Librar

पुलिस की लाठी का अनुभव किया था । ई०सी०सी० कालेज के छात्रों द्वारा आयोजित एक उत्सव में श्रीमती गांधी भी निमंत्रित थीं । कालेज के प्रांगण में राष्ट्रीय भण्डे को फहराने के उपलक्ष्य में अनेक छात्र पुलिस की लाठी का शिकार बन चुके थे और उनके लहु लुहान शरीर भूमि पर पड़े हुए रणक्षेत्र का सा दृश्य प्रस्तुत कर रहे थे । भण्डा उनके हाथों से छूट कर गिर चुका था, परन्तु इससे पहले कि पुलिस के भारी जूते उसको रौंद डालते, इन्दिरा गांधी के हाथों ने उसे पुन: ऊँचा कर दिया । नेहरू परिवार की इस बाला के हाथों में भण्डा देखकर छात्रों का उत्साह पुन: जागृत हो उठा और "भंडा ऊँचा रहे हमारा" के गगनभेदी नारे पुन: गुंजित हो गए । इसी समय युवती इन्दिरा के ऊपर प्रथम लाठी प्रहार हुआ और उसके बाद लाठियों की भड़ी सी लग गई । दर्द से कराहती हुई इन्दिरा ने राष्ट्रीय भण्डे को दांतों से पकड़ कर ऊँचा रखा ।[1]

एक अन्य अवसर पर श्रीमती गांधी ने सार्वजनिक सभा में भाषण देती हुई गिरफ्तार हुई । जेल में उनका स्वागत श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने किया । श्रीमती पण्डित पहले ही गिरफ्तार हो चुकी थीं । इसके कुछ दिनों पश्चात् उनकी पुत्री चन्द्रलेखा भी बन्दी होकर उसी कमरे में आई ।[2]

सन् १९४२ के आन्दोलन में राजकुमारी अमृतकौर तथा अमर कौर का महत्वपूर्ण भाग था । राजकुमारी अमृत कौर महात्मा गांधी द्वारा आयोजित नमक आन्दोलन की प्रमुख कार्यकर्त्री रही थी तथा बम्बई में उन्हें गिरफ्तार भी किया गया था । "भारत छोड़ो " आन्दोलन में उन्होंने प्रतिबंधित जुलूसों का प्रदर्शन किया । ६ अगस्त से १६ अगस्त तक उनके द्वारा आयोजित जुलूस लगभग ग्यारह बार लाठी के शिकार हो चुके थे ।[3]

अमर कौर के कृत्यों का संक्षिप्त विवरण पहले किया जा चुका है । इस समय उन्होंने महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित व्यक्तिगत सत्याग्रह योजना के अंतर्गत

---

1. Abbas, K.A. Indira Gandhi - Return of the Red Rose, p.95-96.
2. Vijay Lakshmi Pandit, Prison Days, Diary (from K.A. Abbas, p. 98)
3. Punjab Congress Committee Report on disturbances in Punjab, p. 8.

लाहौर में 'कसूर' नामक स्थान पर सत्याग्रह का अनुष्ठान किया। उन्होंने अनेक महिला प्रशिक्षण शिविर स्थापित किए जिसके परिणामस्वरूप उन्हें गिरफ्तार होना पड़ा। परन्तु जेल भी उनकी राष्ट्रीय कार्यवाही को न रोक सका। ६ अक्टूबर १६४२ को जेल के फाटक पर उन्होंने अन्य महिलाओं के साथ राष्ट्रीय झंडे को फहराया। इस अपराध में उन्हें अम्बाला जेल में स्थानान्तरित कर दिया गया।[1]

पुष्पा गुजराल एक अन्य महिला थीं जिन्हें ६ मास का कारावास दण्ड दिया गया था। इस समय उनका समस्त परिवार राजनीतिक बन्दी था।[2]

'भारत छोड़ो' आन्दोलन के समय सरकार ने आन्दोलन के जन्मदाता महात्मागांधी को कांग्रेस के अन्य वरिष्ठ नेताओं के साथ बन्दी बना लिया था, श्रीमती सरोजिनी नायडू भी इनमें से एक थीं।[3]

श्रीमती कस्तूरबा गांधी ने सत्याग्रह आन्दोलन का प्रथम अनुभव दक्षिण अफ्रीका में किया था। एक सच्ची सहधर्मिणी के रूप में उन्होंने सदैव महात्मा-गांधी का साथ दिया। भारत आने पर उन्हें अनेक बार बन्दी बनाया गया। १५ जनवरी १६३२ को वह ६ सप्ताह के लघु काल के लिए बन्दी की गईं। तत्पश्चात् बारडोली सत्याग्रह के समय उन्हें ६ मास की कैद हुई तथा १ अगस्त १६३३ को उन्हें साबरमती आश्रम से पुनः गिरफ्तार किया गया। इस समय उन्हें ६ मास का कठोर कारावास दंड प्राप्त हुआ।[4] १६४२ में वह पुनः गिरफ्तार हुईं, परन्तु कारावास अवधि- पूर्ण करने के पूर्व ही २२ फरवरी १६४४ को आगा खाँ पैलेस में उनका देहान्त हो गया।[5]

---

1. 'Brief Account of the National activities of Bibi Amar Kaur Ahluwalia' - a handbill.
2. Women on March, April 1958, p. 7.
3. Modern Review 1953, Vol. 94, p. 59.
4. Kasturba Memorial - a journal published by Kasturba Gandhi national memorial trust, Kasturbagram, Indore, 1962, p. 126.
5. Ibid, p. 140.

श्रीमती सुचेता कृपलानी "भारत छोड़ो" आन्दोलन की प्रसिद्ध कार्यकर्ता थीं। १९४० में व्यक्तिगत सत्याग्रह के अनुष्ठान में भाग लेने का उन्हें अवसर प्राप्त हुआ था और इसी कारण उन्हें बन्दी बनाया गया।[१] जेल से छूटने पर उन्होंने प्रच्छन्न रूप से कार्यवाही प्रारंभ की।[२] १९४३ में कांग्रेस के अन्तर्गत महिलाओं का पृथक विभाग निर्मित हुआ। श्रीमती कृपलानी उसकी सेक्रेटरी नियुक्त हुईं। १९४४ में वह पुनः गिरफ्तार हुईं। जेल से छूटने के पश्चात् उन्होंने देशसेवा का व्रत लिया तथा १९४६ में साम्प्रदायिक झगड़ों के समय उन्होंने बंगाल में महत्वपूर्ण सेवाएं अर्पित कीं।

शांति निकेतन आश्रम की रानी चन्दा तथा गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की पौत्री नन्दिता देवी क्रांतिकारी कार्यवाहियों के लिए गिरफ्तार की गई थीं।[३]

अरुणा गंगोपाध्याय (श्रीमती अरुणा आसफ़अली) इस समय की प्रमुख आन्दोलनकारी महिला थीं। नमक आन्दोलन के समय उन्होंने सभाओं का आयोजन किया था, जुलूस निकाले थे तथा नमक बना कर कानून का उल्लंघन किया था। "भारत छोड़ो" आन्दोलन में उनका भाग विशेष उल्लेखनीय है। ९ अगस्त १९४२ को कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओं के गिरफ्तार हो जाने पर उन्होंने एक सम्मेलन में झंडा समारोह का उद्घाटन किया था। इस सम्मेलन में पुलिस ने लाठियों के अतिरिक्त गोलियों की भी वर्षा की तथा सम्मेलन को भंग करने का असफल प्रयास किया।[४] श्रीमती अरुणा आसफअली ३ वर्षों तक प्रच्छन्न रूप में रहीं तथा वहीं से उन्होंने डा० राममनोहर लोहिया के साथ मिलकर "इन्कलाब" का सम्पादन कार्य किया।[५] सरकार ने उन्हें पकड़ने के लिए ५ हजार रुपये का पुरस्कार घोषित

---

1. Women on march, August, 1957, p. 13.
2. Ibid.
3. Modern Review, 1953, p. 60.
4. "The sight of so much innocent blood and suffering lit out the fire it her. It was Aruna's baptism into the Politics of revolution" - Quoted from "The Tribune" 10 Feb. 1946.
5. Moder Review, 1953, p. 60.

किया । २६ जनवरी १९४६ को वारंट छूट जाने पर वह बाहर आईं ।[१] श्री यूसुफ मेहर अली ने इन शब्दों में उनकी प्रशंसा की है — "१८५७ की क्रांति की वीरांगना झाँसी की रानी थी, और १९४२ के आन्दोलन की अरुणा आसफ अली ।"[२]

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य महिलाएँ भी थीं जिन्होंने अन्य अनेक उपायों द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन को सफल बनाने में योग दिया । डा० मैत्रेयी बोस ने राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए गुप्त रूप से चंदा एकत्र किया था ।[३] मालती चौधरी उड़ीसा प्रदेश कांग्रेस की अध्यक्षा थीं तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में उनका अत्यधिक हाथ था । आशा अधिकारी एक अन्य महिला थीं जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया था ।[४]

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस ने जापानियों द्वारा अधिकृत दक्षिण-पूर्वी एशिया के क्षेत्रों में स्वतंत्र भारत की प्रान्तीय राष्ट्रीय सरकार की नींव डाली । उनकी सेना में महिलाओं का एक पृथक दल था — रानी झाँसी रेजीमेन्ट । इसका नेतृत्व "लेफ्टीनेंट कर्नल" लक्ष्मी स्वामीनाथन्[५] को प्राप्त था । आज़ाद हिन्द फ़ौज के विलीन होने के साथ-साथ रानी झाँसी रेजीमेन्ट भी समाप्त कर दिया गया और डा० लक्ष्मी गिरफ्तार कर ली गईं । उन्हें रंगून जेल में रखा गया । अंत में उन्हें इस चेतावनी के साथ छोड़ा गया कि वह पुन: सार्वजनिक भाषण नहीं देंगी[६]। उन्होंने इस चेतावनी का उल्लंघन करते हुए २१ अक्टूबर १९४५ को आज़ाद हिन्द फ़ौज की वार्षिकी पर भाषण दिया । फलस्वरूप उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया ।[७] परन्तु अगले वर्ष ही वह रिहा की गईं ।

---

१. Pyarelal - Mahatma Gandhi - The last phase, p. 43.

२. The Tribune, 18 February, 1946.

३. Modern Review, 1953, p. 60

४. Ibid.

५. अब डा० श्रीमती लक्ष्मी सहगल । १९३७ में उन्होंने डाक्टरी की परीक्षा उत्तीर्ण की थी । आज़ाद फौज में वह चिकित्सा विभाग की भी आयोजिका थीं । इस समय वह कानपुर में व्यक्तिगत डाक्टर हैं ।

६. Banerjee, Bejoy - Indian War of Independence, p. 116.

७. Ibid.

१९४२ से १९४४ तक भारत के अनेक महान् नेता बन्दी रहे । १९४५ का वर्ष दो दृष्टियों से विशेष महत्वपूर्ण है — द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्त तक तथा ब्रिटेन में लेबर पार्टी की विजय के कारण । युद्धकालीन प्रधानमंत्री चर्चिल के स्थान पर श्री एटली का आगमन हुआ । एटली ने २४ मार्च १९४६ को भारत में कैबिनेट मिशन, संविधान निर्माण हेतु भेजा । मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस के नेताओं के मत-भेद के कारण मिशन अपने उद्देश्य में सफल न हो सका ।

तत्कालीन वाइसराय लार्ड वेवेल ने कांग्रेस अध्यक्ष पण्डित नेहरू को सरकार निर्माण के लिए आमंत्रित किया । ९ दिसम्बर १९४६ को संविधान सभा की प्रथम बैठक दिल्ली में हुई । इसमें महिलाओं ने भी भाग लिया था । मुस्लिम-लीग ने मतभेद के कारण भाग लेना अस्वीकृत कर दिया ।

लगभग इसी समय (२४ मार्च १९४७) लार्ड माउन्टबैटेन वाइसराय के पद पर आसीन हुए । भारत में मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस में मैत्री के कोई चिह्न नहीं थे[1]।

---

1. M.A. Jinnah addressing the Muslim League Legislators Convention in New Delhi, said :-
"So far as Muslim India was concerned, the conception of a united India is impossible. If any attempt is made to force a decision against the wishes of the Muslims, Muslim India will resist it by all means and at all costs.... We are prepared to sacrifice anything and everything, but we shall not submit to any scheme of Government prepared without our consent."
(Quoted from The Indian Annual Register - January to June, 1946, Vol. I, p. 49.

इसके ठीक विपरीत साम्प्रदायिक दंगों का उद्भव हो चुका था। परिस्थिति को देखते हुए ब्रिटिश संसद् ने १८ जुलाई १९४७ को भारत स्वाधीनता ऐक्ट पास कर दिया, जिसके द्वारा अंग्रेजों का राज्य सदा के लिए समाप्त हो गया। भारत स्वतंत्र हो गया, परन्तु उसका विभाजन दो टुकड़ों में हो चुका था -- भारतीय संघ तथा पाकिस्तान के रूप में।

अध्याय - ७

उपसंहार

अध्याय — ७

उपसंहार

बीसवीं शताब्दी के भारत की महत्वपूर्ण उपलब्धियों में नारी जागरण का एक महत्वपूर्ण स्थान है । आधुनिक युग का प्रारम्भ, भारत में महान् परिवर्तनों का युग है । इन परिवर्तनों का उज्ज्वल पहलू भारतीय नारी की स्थिति में अपूर्व सुधार के रूप में देखा जा सकता है । यद्यपि नारी स्थिति में यह परिवर्तन क्रांतिकारी प्रतीत होता है, परन्तु इस परिवर्तन की गति अत्यन्त मन्द थी । इसके अतिरिक्त यह परिवर्तन सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक शक्तियों का परिणाम माना जा सकता है ।

पश्चिम में, नारी की स्थिति में परिवर्तन मानवीय आन्दोलनों तथा औद्योगिक क्रान्ति का परिणाम मात्र था । इसके विपरीत एशिया के तथा अन्य देशों में जहाँ औद्योगिक क्रांति नगण्य थी, यह परिवर्तन वहाँ के सुधारकों के प्रयत्नों का फल था, जिसके पीछे प्रभावशाली धार्मिक पृष्ठभूमि काम कर रही थी । "मुक्ति आन्दोलन" तथा नवोदित विचारधारा साम्यवाद के आह्वान ने इस परिवर्तन में महत्वपूर्ण योगदान दिया । भारत में, नारी स्थिति के सुधार के लिए सुधारकों ने समस्या को मानवीय दृष्टिकोण से देखा । अमेरिका में दासत्व विरोधी आन्दोलनों ने नारी आन्दोलन को भी प्रोत्साहन दिया था । भारत में उन्नीसवीं शताब्दी में प्रचलित अमानुषिक प्रथाओं ने सुधारकों को मानवीय आन्दोलनों का अनुष्ठान करने पर विवश किया । नारी जागरण के विकास में क्रमशः जिन तत्वों ने भाग लिया, उनका विस्तृत विवरण पूर्व अध्यायों में दिया जा चुका है ।

मानव जाति की दो अविच्छिन्न इकाइयों को समानता का अधिकार देकर भारतीय संविधान ने न केवल नारी के मानवोचित अधिकारों की रक्षा ही की है, अपितु प्रजातांत्रिक परम्परा का भी अनुष्ठान किया है । आज नारी प्रत्येक

क्षेत्र में अपनी पुरातन सीमाओं को लांघ आई है -- वैधानिक दृष्टि से वह उन्नत अवस्था में है, राजनीतिक दृष्टि से उसे समानता प्राप्त है, आर्थिक क्षेत्र में उसे समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार है, शैक्षिक क्षेत्र में भी उसके साथ पक्षपात रहित व्यवहार किया गया है ।

उपरोक्त परिस्थितियों का नारी ने भरपूर लाभ उठाया है । स्वतंत्र भारत के विकास में नारी का भी हाथ है । केवल सैनिक शक्तियों को छोड़कर जनजीवन व प्रशासन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में आज नारी का प्रवेश है और वह उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर आसीन है । आज भारत में महिलाएं मंत्री, राज्यपाल, कूटनीतिक प्रतिनिधि, न्यायिक (यद्यपि उनकी संख्या न्यून है) तथा उच्च शैक्षिक पदों पर सुशोभित हैं ।

राजनीति में महिलाएं

राजनीति में भारतीय महिलाओं का प्रवेश स्वतंत्रता से पूर्व ही हो चुका था । १८८५ में अपनी स्थापना के समय से ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपना द्वार महिलाओं के लिए भी खुला रखा था । परन्तु राजनीति में उनके प्रथम प्रवेश का परिचय श्री मान्टेग्यू की "भारतीय डायरी" से मिलता है । १० नवम्बर १९१७ को श्री मान्टेग्यू लिखते हैं कि उन्हें जयपुरी जैसी भाषा में एक पत्र प्राप्त हुआ है जिसमें भारत की महिलाओं से एक साक्षात्कार का अनुरोध है ।[१] यह पत्र भारतीय महिला विश्वविद्यालय सिनेट" की चार सदस्याओं की ओर से लिखा गया था । मार्गेट कजिंस के अतिरिक्त इसमें एक भारतीय महिला रामन बाई एम० नीलकान्था भी थी, जिन्होंने पत्र में अपने हस्ताक्षर के साथ बी०ए० की उपाधि भी लिखी है ।

राजनीतिक दृष्टि से अपने मताधिकार और प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में १८ दिसम्बर १९१७ को श्री मान्टेग्यू के समक्ष श्रीमती सरोजिनी नायडू के नेतृत्व

---

1. Baig, Tara Ali - Women of India (Edited), p. 91.

में १४ महिलाओं के प्रतिनिधि मंडल ने भाग लिया था, उसका उल्लेख किया जा चुका है ।

मार्च १९२१ में मद्रास विधान परिषद् ने महिलाओं को पंजीकृत होने की अनुमति दे दी थी । इस अवसर का लाभ उठाने वाली महिलायें थीं, ६ डा० एनीबेसेन्ट, मार्गेट कसिंन, डा० मुथुलक्ष्मी रेड्डी, श्रीमती टी० सदाशिव आय्यर तथा धनवन्ती रमा राव ।[1] १९२६ में महिलाओं को परिषद् में बैठने का अर्थात् निर्वाचित होने का अधिकार भी मिल गया था । मद्रास में कमलादेवी चट्टोपाध्याय तथा हन्ना एंजिलों का समर्थन "विमेन्स इंडिया एसोसियेशन" ने किया । यद्यपि श्रीमती चट्टोपाध्याय ५०० मतों से पराजित घोषित की गईं, परन्तु उनकी प्रेरणा से "विमेन्स इंडिया एसोसियेशन" की महिलाओं ने परिषद् में एक महिला प्रतिनिधि को मनोनीत करने की माँग रखी । फलस्वरूप मद्रास सरकार ने डा० मुथुलक्ष्मी रेड्डी को मनोनीत किया । डा० मुथुलक्ष्मी रेड्डी को मनोनीत किया । डा० मुथुलक्ष्मी रेड्डी इस प्रकार प्रथम भारतीय महिला थीं जिन्हें भारतीय व्यवस्थापिका में न केवल बैठने का ही श्रेय प्राप्त है, अपितु उसकी प्रथम महिला उपाध्यक्ष होने का सौभाग्य भी मिला था । यही नहीं, डा० रेड्डी मद्रास विश्वविद्यालय की प्रथम महिला स्नातक थीं जिन्हें चिकित्सा के क्षेत्र में उपाधि मिली थी ।[2]

नवम्बर १९२९ में आयोजित गोलमेज सभा के प्रथम सत्र में भारतीय महिलाओं की प्रतिनिधि के रूप में भारत सरकार ने बेगम शाहनवाज तथा राधाबाई सुब्बारायन को मनोनीत किया था । श्रीमती सरोजिनी नायडू महिलाओं की प्रतिनिधि के रूप में द्वितीय सत्र के लिए चुनी गईं थीं । इसके अतिरिक्त लार्ड लोथियन के नेतृत्व में आयोजित "मतदान समिति" में भारतीय महिलाओं ने चार महिला प्रतिनिधि भेजे थे, जिन्होंने सार्वभौम वयस्क मताधिकार की माँग रखी थी । ये महि-

---

1. Ibid, p. 93.

2. Ibid, p. 94.

लाएँ थीं मद्रास से श्रीमती मालाथुपु रामसूर्ती, बम्बई से श्रीमती मानिकलाल प्रेमचन्द, इलाहाबाद से लक्ष्मी मेनन तथा लाहौर से राजकुमारी अमृतकौर[1]। लोथियन समिति के सुझाव पर "आल इंडिया विमेन्स एसोसियेशन" के प्रतिनिधि के रूप में तीन भारतीय महिलाओं ने गोलमेज सभा की "ज्वाइंट सेलेक्ट समिति" के समक्ष प्रमाण दिए थे। ये तीन महिलाएँ थीं राजकुमारी अमृतकौर, मुथुलक्ष्मी रेड्डी तथा बेगम हमीद अली।[2]

१९३६ के चुनावों के पश्चात् श्रीमती अनुसूया बाई काले सेन्ट्रल प्राविन्स, नागपुर तथा श्रीमती सिपाही मालानी सिंध असेम्बली की उपाध्यक्ष चुनी गईं। अक्टूबर १९४६ में स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माण हेतु जिस संविधान समिति का आयोजन किया गया उसमें महिलाओं का प्रतिनिधित्व भी था। इनमें भाग लेने वाली महिलाएँ थीं सरोजिनी नायडू, हन्सा मेहता, दुर्गाबाई देशमुख, रेनुका रे तथा मालती चौधरी।

१५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतंत्र घोषित हुआ। उस समय सरकार के जिन १४ सदस्यों को शक्ति हस्तान्तरित की गई उनमें राजकुमारी अमृतकौर को स्वास्थ्य विभाग प्राप्त हुआ था।[3]

१९५१-५२ में स्वतंत्र भारत में सार्वभौम व्यस्क मताधिकार पर आधारित प्रथम सार्वजनिक निर्वाचन हुआ। महिलाओं ने अत्यन्त उत्साह से भाग लिया - न केवल मतदाताओं के रूप में ही अपितु विभिन्न दलों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के रूप में भी। इन महिला उम्मीदवारों ने पुरुष उम्मीदवारों के समान अपने क्षेत्र का दौरा किया तथा अनेक निर्वाच सभाएँ आयोजित कर प्रभावशाली भाषण दिए। प्रथम सार्वजनिक निर्वाचन में लोक सभा के प्रत्याशी के रूप में जिन महिलाओं ने भाग लिया उनके नाम इस प्रकार हैं :- श्रीमती रेनु चक्रवर्ती, श्रीमती एम० चन्द्रशेखर, श्रीमती गंगादेवी, श्रीमती सुभद्रा जोशी, श्रीमती अनुसूया बाई काले, श्रीमती पी०

---

1. Ibid, p. 98.
2. Ibid.
3. India - A Reference Annual, 1956, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, p. 58.

आगूमैन, श्रीमती सुचैता कृपलानी, कुमारी एनी मस्करीन, श्रीमती इन्दिरा ए० मैदियो, श्रीमती मिनीमाता, श्रीमती शकुन्तला नैयूयर, श्रीमती उमा नैहरू, श्रीमती इलापाल चौधरी, श्रीमती मनीबैन बी० पटैल, श्रीमती जयश्री रायजी, श्रीमती सुषमा सैन, श्रीमती कमलैन्दुमती शाह, श्रीमती तारकैश्वरी सिन्हा तथा श्रीमती अम्मू स्वामीनाथन् ।[1]

संसद् के उच्च सदन राज्य सभा की महिला सदस्याएं थीं --श्रीमती वायलैट मल्वा, श्रीमती कै० भारती, श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल, श्रीमती मौना हैन्समैन, श्रीमती लक्ष्मी एन० मैनन, श्रीमती माया दैवी चैट्टी, श्रीमती सीता परमानन्द श्रीमती पुष्पलता दास, श्रीमती ए० रुक्मनी दैवी (राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत) श्रीमती शारदा भार्गव तथा श्रीमती सुर्यरानी विजयराजे ।[2]

संसदीय प्रणालियों तथा कार्यकलापों में प्रशिक्षण के लिए श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा आयोजित सैमिनार की प्रमुख कार्यकर्मी थीं श्रीमती लक्ष्मीमैनन । श्रीमती मैनन राज्य सभा में प्रश्नों के समय विशेष रूप से उत्साही रहने के लिए प्रसिद्ध हैं ।

१९५७ के सार्वजनिक निर्वाचन में लोक सभा के प्रत्याशी के रूप में भाग लैने वाली महिलाएं थीं :--कुमारी मोहिबैन कुमारी, कौमाराजु अच्म्मा, संगम लक्ष्मी बाई, रानी मंजुला दैवी, मौफिया अहमद, शकुन्तला दैवी, तारकैश्वरी-दैवी, सत्यभामा दैवी, विजय राजे, ललिता राजलक्ष्मी, शारदाबैन, मधुभाई, मनीबैन वल्लभभाई पटैल, अनसूया बाई पुरुषोत्तम काले, विजय राज सिंधिया, मफ्मूना सुल्तान, यशोदरा बाई मुरलीधर, मिनीमाता, पार्वती, सुभद्रा जोशी, सुशीला नैय्यर, गंगा दैवी, उमा नैहरू, रेनुका रै, रैनु चक्रवर्ती, इलापाल चौधरी तथा सुचैता कृपलानी ।[3]

---

1. Report on the First General Elections in India, 1951-52, Vol. II, Election Commission, India, pp. 15-143.
2. India - A Reference Annual, 1955, p. 71-75.
3. Report on the Second General Elections in India, 1957, Vol. pp. 107-211.

१६५६ में राज्यसभा में महिला सदस्याओं के नाम इस प्रकार हैं :- श्रीमती यशोदा रेड्डी, श्रीमती सीता युधवीर, श्रीमती वैदवती बुरागोहेन, श्रीमती पुष्पलता दास, श्रीमती लक्ष्मी मैनन, श्रीमती जहाँनारा जयपाल सिंह, श्रीमती कै० भारथी, श्रीमती कृष्णा कुमारी, श्रीमती रुक्मनी बाई, श्रीमती सीता परमानन्द, श्रीमती अनुस्वामीनाथन, श्रीमती टी० नालामुथु रामकुर्थी, श्रीमती वायलेट अल्वा, श्रीमती अन्नपूर्णा देवी थिम्मारेड्डी, श्रीमती अमृत कौर, श्रीमती शारदा भार्गव, श्रीमती एनिस मिस्क्वी, श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल, श्रीमती सावित्री देवी निगम, श्रीमती मायादेवी छैत्री, श्रीमती लीला देवी तथा श्रीमती रुक्मनी देवी अरुन्डले (राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत)।[1]

२ अप्रैल, १६६० को राज्य सभा के कुछ सदस्य अवकाश प्राप्त हुए, उनके स्थान पर जो नए सदस्य निर्वाचित हुए उनमें महिला सदस्यों के नाम हैं :- श्रीमती वैदवती बुरागोहेन, श्रीमती लक्ष्मी मैनन, श्रीमती जी० पार्था सारथी, श्रीमती वायलेट अल्वा, श्रीमती आभा मैती तथा श्रीमती शान्ता वशिष्ठ।[2]

इस समय संसद् की लोकप्रिय महिला सदस्याएं थीं रेनुका रे - राजनीतिज्ञ तथा समाज सेविका, साम्यवादी सदस्या पार्वतीकृष्णा कुशलवक्ता के रुप में प्रसिद्ध थीं, वायलेट अल्वा, जिनका देहान्त अभी हाल ही में हुआ है, अन्य योग्यताओं के साथ साथ एक कुशल पत्रकार भी थीं, तथा सचीकुमारी राय, जिनका अंग भंग तथा बन्दूक की गोली के निशान उनके उन ऐतिहासिक कार्यों की याद दिलाते थे, जिसमें उन्होंने गोआ के पिछले सत्याग्रह में अहिंसात्मक आन्दोलन के समय पुर्तगालियों के हाथ से गोली खाई थी।

१६६२ में भारत में तृतीय सार्वजनिक निर्वाचन हुआ। इस निर्वाचन में लोकसभा के प्रत्याशी के रुप में भाग लेने वाली महिलाओं के नाम इस प्रकार हैं- मुंडा अम्मन्नाम्मा, वीरम्मन्मी, विमला देवी, कुमारी मोहैं मैद कुमारी, यशोदा रेड्डी, संगमलक्ष्मी बाई, राजलक्ष्मीदेवी, टी० लक्ष्मीकान्तम्मा, ज्योत्स्ना चान्दा, रेनुका देवी बरकैतकी, मोफुदा अहमद, रत्ना देवी, रत्नादेवी (द्वितीय) शकुन्तला देवी, तारकेश्वरी सिन्हा, रामदुलारी देवी, ललिता राजलक्ष्मी, सत्यभामा देवी,

1. India - A Reference Annual - 1959. p. 66.

एम०अलकुमा, ए०एम० बीबी, ए० पौष्कि तथा एस० गोपालन ।[1]

भारत में पाँचवीं लोकसभा का निर्वाचन मध्यावधि चुनावों के रूप में किया गया । मार्च १९७१ में आयोजित इस निर्वाचन के परिणामस्वरूप जिन महिला प्रत्याशियों को सफलता प्राप्त हुई उनके नाम इस प्रकार हैं :–

श्रीमती राजः बाई आनन्दराव, श्रीमती टी० लक्ष्मीकान्तम्मा, श्रीमती ज्योत्सना चंदा, श्रीमती भार्गवी थान कापैन,[2] राजमाता विजयराजे सिंधिया, श्रीमती मिनीमाता, डा० सरोजिनी महिषी, श्रीमती गायत्री देवी, राजमाता कृष्णा कुमारी, श्रीमती शकुन्तला नैयर, श्रीमती सावित्री श्याम, श्रीमती सुशीला रोहतगी, श्रीमती शीला कौल, श्रीमती गंगा देवी, श्रीमती इन्दिरा गांधी, श्रीमती सुभद्रा जोशी, श्रीमती मुकुल बैनर्जी,[3] श्रीमती बीभा घोष, तथा श्रीमती वी०जयालक्ष्मी ।[4]

संसद के अतिरिक्त महिलाओं ने राजकीय व्यवस्थापिकाओं के निर्वाचन में भी भाग लिया है । विभिन्न वर्षों में, विभिन्न राज्यों की व्यवस्थापिका के निर्वाचन में भाग लेने वाली महिलाओं के नाम इस प्रकार हैं :–

बिहार में — श्रीमती सुन्दरी देवी, श्रीमती मनोरमा देवी , श्रीमती सुमित्रा देवी, श्रीमती रामस्वरूप देवी, श्रीमती कैलाशी देवी, श्रीमती पार्वती देवी, श्रीमती राम-दुलारी, श्रीमती कृष्णादेवी, श्रीमती पार्वती देवी, श्रीमती ज्योतिर्मयी देवी, श्रीमती मनोरमा सिन्हा,[5] प्रभावती गुप्ता, अनुसूया, उमा पांडे, सुनामा चौधरी, रामदुलारी शास्त्री, शांति देवी, रामसुकुमारी देवी, श्यामकुमारी सिंधिया, मिश-श्वरी देवी, शैल बाला राय, सरस्वती देवी, विन्ध्यवासिनी देवी, लीला देवी,

---

1. Report on the Fourth General Elections in India - 1967, Vol. II, pp. 23-103.
2. N.I. Patrika, dated March 15, 1971, p. 8.
3. N.I. Patrika, dated March 16, 1971, p. 7.
4. N.I. Patrika, dated March 18, 1971, p. 7.
5. India - A Reference Annual - 1954, pp. 66-69.

लक्ष्मी देवी, सरस्वती चौधरी, ज़ोहरा अहमद, मनोरमा देवी, मनोरमा देवी, पांडे, सुमित्रा देवी, राजकुमारी देवी, विजय राजे, शशांक मंजरी, मनोरमा सिन्हा, राजेश्वरी सरोजदास,[1] प्रभावती गुप्ता, शकुन्तला देवी, सुन्दरी देवी, बनारसी-देवी, मीरा देवी, किशोरी देवी, गिरजा देवी, प्रतिभा देवी, श्यामकुमारी, राम-कुमारी देवी, रामरती देवी, यशोदा देवी, कौशल्या देवी, जाहिरा खातून, कमला-देवी, माया देवी, लीलावती देवी, प्रेमा देवी, गिरीशकुमारी सिंह, सरस्वती चौधरी, भागवती देवी, राजकुमारी देवी, उर्मिला देवी, शारदा देवी, गौरी-बाला दासी, मधु ज्योत्स्ना चकोरी, कमलता देवी, चौधुरा कुनास,[2] आर० देवी, एस० देवी, एम० देवी, एस० देवी, पी० देवी, पी०एल०देवी, ~~के० देवी, एम० देवी~~, एस०देवी, डी० कन्नौजिया, आर० देवी, पी०के० ठाकुर, जे०देवी, बी०बी० देवी, के०देवी, एस०देवी, जे०देवी, बी०के० सिंह, एस०देवी, एम०देवी, जे० अहमद, एस०-देवी, एम० पांडे, के०देवी, बी०देवी, सी०पुरी तथा डी०एफ० केन्नगरा ।[3]

बम्बई में — श्रीमती इन्दुमती चिमनलाल, श्रीमती राधाबाई मधुरी बैयकर, श्रीमती लीलावती धीरजलाल बन्कर, श्रीमती श्रीमतीबाई बारुचद मलानी, श्रीमती राजे निर्मला विजयसिंह भोंसले, श्रीमती मालतीमाधव शिरोले, श्रीमती इन्दुबेन, नाऊभाई देसाई,[4] विलासिनी उषाकान्त मेहता, कीरलक्ष्मीकेशवलाल सेठ, मंजुला बेन, जयन्तीलाल दावे, पुष्पकाबेन, जनार्दन मेहता, कस्तूरबा बेन, ज्योतिसिंह भाई इन्द्राणी, राजबेन मधुकुमार वीरा, कमलाबेन, मगनभाई पटेल, हीराबेन लालचंदभाई मीनाम, मनीबेन बापूभाई पटेल विक्कीबेन उर्फ उर्मिलाबेन प्रेमशंकर, शांता बेन कालीदास पटेल, साफिया कुरैर, कंचन बाई नरहर मागर, विमला भाई बसन्त बागल, निर्मला राजे, रमाबाई नारायन-वैशपांडे, इन्दिरा बेन रामराव कोटमकर, कुसुम आर्य, कोकिला बाई जगन्नाथ व्यास

---

1. Report on the Second General Elections in India- 1957, Vol. II, pp. 262-295
2. Report on the Third General Elections in India - 1962, Vol. II, pp. 137-176.
3. Report on the Fourth General Elections in India - 1967, Vol. II, pp. 181-227.
4. India - A Reference Annual - 1964, pp. 372-76.

मालती बाई वमनराव जोशी, सुशीला बाई केशवराव हंगिल, कंचन बाई, ताराबाई तथा शांताबाई ।[१]

मध्यप्रदेश में — श्रीमती चारनबाई, श्रीमती रानी पद्मावती देवी, श्रीमती कोकिला बेन जगन्नाथ गोवाडे, श्रीमती प्रभावती बाई जयवंत फौजदार, श्रीमती विद्यावतीदेवी बाई पन्नालाल जी देवाड़िया, श्रीमती सरलादेवी द्वारकाप्रसाद पाठक, श्रीमती श्यामकुमारी देवी, श्रीमती राधादेवी किशनलाल, श्रीमती शांताबाई नकलकार।[२] श्रीमती वात्सलकुमारी, श्रीमती मन्दाबाई, श्रीमती गायत्रीकुमार, श्रीमती श्याम-कुमारीदेवी, श्रीमती पद्मावती देवी, श्रीमती सूरजकला सहाय, श्रीमती विद्यावती मेहता, श्रीमती कनककुमारी देवी, श्रीमती फूलमती कुंवर देवी, श्रीमती सरस्वतीदेवी शारदा, श्रीमती सुशीला देवी, श्रीमती गुलाब बाई, अग्निभोज, श्रीमती गंगाबाई, श्रीमती प्रतिभा देवी, श्रीमती मंजुला बेन मांगिल, श्रीमती सूरज कुंवर देवी, श्रीमती हरिराज कुंवर, श्रीमती प्रेमकुमारी राजे, श्रीमती विद्यावती चतुर्वेदी, श्रीमती मरा-वती देवी, श्रीमती चन्द्रकलासहाय, श्रीमती चमेलीबाई सागर, ~~श्रीमती चन्द्रकलासहाय, श्रीमती चमेली बाई सागर~~, श्रीमती सरलादेवी पाठक, श्रीमती देवादेवी, श्रीमती सुमन बेन, कुमारी नन्हूं बाई, श्रीमती चम्पा देवी, श्रीमती रतनकुमारी, श्रीमती यशोदिनी कुमारी देवी, श्रीमती राजकान्त कुंवर किशोरी।[३] मनोरमा, कृष्णकुंवर, मीरा देवी, टंक राजेश्वरी देवी, साजिदा, विनयकुमारी देवी, राजवती बाई, श्यामकुमारी देवी, इन्दिरा, शान्ता नर्मदाप्रसाद, सरला देवी, विद्यावती शिवा-शंकर मेहता, लक्ष्मीबाई बिहारीलाल, सुशीला देवी दीक्षित, राजकुमारी सूरज-कला, कमला बाई, दुर्गाबाई, गंगाबाई।[४] वी०आर० सिंधिया, एस० कुमारी, टी०देवी, बाई०देवी, एन०देवी, राधाबाई, आशा लता, वी०गुप्ता, एस०रानी,

---

1. Report on the Second General Elections in India - 1957, Vol. II, pp. 298-345.
2. India - A Reference Annual - 1964, p. 381.
3. India - A Reference Annual - 1969, p. 430-32.
4. Report on the Third G.E. in India 1962, Vol. II, pp. 201-23

डा०शास्त्री, बी०वर्मा, बी०बी० मेहता, आर० के० देवी, डा०एस०डी० राम-किशोरी, बंसाबेन, एम०वांग्ले तथा प्रमिला वाई ।[1]

मद्रास में—श्रीमती सौन्दरम् रामचन्द्रन्,[2] कुमारी आनन्द नायकी, श्रीमती सावित्री शान्मुगम, श्रीमती लौर्डम्मल सायमन, श्रीमती अम्मालम्मू अमाल गुप्पुडीपुन्डी, श्रीमती पी०के०आर० लक्ष्मीकान्तम्, श्रीमती के० रघुपति देवी, श्रीमती ए०एस० पोन्नम्मल, श्रीमती हेमलथा देवी, श्रीमती साविथ्या धनीगुप्, श्रीमती राजथी कुंजीथापम, श्रीमती टी०एस०सौंदरम् रामचन्दन,[3] टी०एन० अनन्थनायकी, जौथी वेन्कटचलम, एस०विजयलक्ष्मी, के० कमलम भुजम्मल,, राजम्मल, मानीन्थनी, एस० हेमलथा देवी, एस० के० रंगनायकी, पार्वती अर्जुनन, कौलनतयुम्मल सी०, ए० कृष्णावेनी, जानकी-अम्मल, नागम्मल, पी०राजम्मल, राजथी कुन्जीथापाथम,[4] एस०गुपू, डी० सुलोचना, के० वेन्कटचलम, एस०शिवराज,डी० सराउम्मल, एस०कुप्पाम्मल, पलानीअम्मल, ~~पी० अर्जुनन, अमलाम, तथा के०पी० जानकी अम्मल,~~ पी० अर्जुनम, अमलाम तथा के०पी० जानकी अम्मल ।[5]

उड़ीसा में — श्रीमती सरस्वती देवी, श्रीमती बसन्त मंजरी देवी,[6] श्रीमती कमल-लता देवी, श्रीमती कनम मंजरी देवी, श्रीमती रत्नप्रभा देवी,[7] एस०देई, ए०एम०देवी,

---

1. Report on the Fourth G.E. in India-1967, Vol. II, pp.279-317
2. India - A Reference Annual - 1954,p. 383.
3. India - A Reference Annual - 1959, p. 436.
4. Report on the Third General Elections in India, 1962, Vol.II pp. 238-262.
5. Report on the Fourth General Elections in India, 1967, pp. 320-336.
6. India - A Reference Annual - 1954, p. 389.
7. India - A Reference Annual - 1959, p. 445.

एस०मिश्रा, एस०के० कानुनगो, आर० जेना, बी०दास, बी०के०देवी, सी०बैनर्जी, आर०देवी, एस० प्रधान, के०के०देवी, तथा आर० पी०पी०देव[1]।

पंजाब में— श्रीमती प्रकाश कौर,[2] श्रीमती कृष्णा सेठी, श्रीमती सरला देवी, श्रीमती स्नेहलता, श्रीमती हरप्रकाश कौर, श्रीमती आशीष कौर, श्रीमती ओमप्रभा-जैन, श्रीमती सुमित्रा देवी, श्रीमती जसवन्त कौर।[3] सरला देवी, शान्ती देवी, लज्जा शकुन्तला, प्रसन्नी देवी, चन्द्रावती, शीला देव दीदी, ईस्टर, युसुफ जमन बेगम,[4] पी०कौर, आर०कौर, एस०कौर, ए०कंवर, आई० कौर, बी०कौर तथा पी०कौर[5]।

उत्तर प्रदेश में — श्रीमती यशोदा देवी, श्रीमती चन्द्रावती, श्रीमती शिव रानी, श्रीमती विद्यावती, श्रीमती सज्जन देवी महनूत, श्रीमती सैयद जहाँ बी०मुख्की, श्रीमती सावित्री देवी, श्रीमती आशालता व्यास, श्रीमती लक्ष्मी देवी,[6] श्रीमती रामरती देवी, श्रीमती यशोदा देवी, श्रीमती कैलाशवती, श्रीमती सत्यवती देवी रावत, श्रीमती विजय लक्ष्मी कुमन, श्रीमती राजेन्द्रकिशोरी, श्रीमती सुखरानी देवी, श्रीमती शकुन्तला देवी, श्रीमती कमल कुमारी गोईंदी, श्रीमती शिवराजदुलारी, श्रीमती गेंदादेवी, श्रीमती सरलादेवी शास्त्री, श्रीमती प्रभावती देवी, श्रीमती तारा देवी, श्रीमती मैमी आर्ड, श्रीमती सिन्दूमती दास, श्रीमती सुमीता चौहान, श्रीमती विद्यावती वाजपेयी, श्रीमती सज्जनदेवी महनत,[7] गंगादेवी, सौभाग्यवती,

---

1. Report on the Fourth General Elections in India - 1967, Vol. II, pp. 415-430.
2. India - A Reference Annual - 1954, p. 391.
3. India - A Reference Annual - 1959, p. 448.
4. Report on the Third General Elections in India - 1962, Vol. pp. 327-345.
5. Report on the Fourth General Elections in India - 1967, Vol. II, pp. 433-447.
6. India - A Reference Annual - 1954, p. 395-98.
7. India - A Reference Annual - 1959, pp. 456-59.

सावित्री यादव, किश्वर आरा बेगम, सरोज कुमारी, राधारानी, कला रानी, गुणराज कुमारी, विद्यावती, कान्ता कुमारी, दर्शन रानी, कमला देवी, भागीरथी, उमाकान्ती, सुरजरानी, शकुन्तला मैयूर, निर्मलकुमारी, मायादेवी, सुचेता कृपलानी, छुटकी, कैलाशवती, नूरजहाँ, जामुनी, सुशीलादेवी, केशरीदेवी, तारादेवी, राजेन्द्रकुमारी बाजपेयी, श्यामाराय, ताराअग्रवाल, शकुन्तला श्रीवास्तव, सुशीला रोहतगी, मानदेवी, यादव, चम्पावती, महादेवी, प्रकाशवती सूद, इन्दु त्रिवेदी, शकुन्तला देवी[1] बी० देवी, एस०डब्ल्यू० देवी, आई० मोहनी, के०डी० गुप्ता, के०ए० बेगम, पी० देवी, डा० एस० सक्सेना, मोहिना, के०राम, जे०देवी, आर०के०देवी, के०एस० चौधरी, कामनी, एम०डी०ए०आर० सालिका, के० देवी, एम०एम० उल्लास, आर०कली, एम०ए० बेगम, बी०बाली, कैलाश, आर०के० देवी, ए० अम्बल, जी०देवी, आई० देवी, मालती, के०देवी, पी० देवी, पी०बाई, के०कुमारी, एस०लता, एम० देवी, एस० देवी, एम० शर्मा तथा शकुन्तला ।[2]

पश्चिमी बंगाल में — श्रीमती मीरादत्त गुप्ता, श्रीमती मरुमती देवी, श्रीमती-मनीकुन्तला सेन, श्रीमती आभा मैती, श्रीमती रेणुका रे.[3] श्रीमती आभालता कुन्डू, श्रीमती सुधार गुहु, श्रीमती माया बनर्जी, श्रीमती अनिमा होरे, श्रीमती कंवलि-ज्ञान, श्रीमती लावण्यप्रभा घोष, श्रीमती सुधारानी दत्त, श्रीमती पुरबी मुखर्जी, श्रीमती बी० पैनान्दाली (मनीमीरा), हेमलता देवी, प्रतिमा बोस, निर्मिला - चौधरी, शांतिदास, तरूबाला मण्डल, शकीला खातून, शांतिलता मण्डल, मैत्रेयी बोस, आशाघोष, विभामिश्रा, मनीकुन्तला सेन, इला मित्रा, निहारिका मजुमदार.[4]

---

1. Report on the Third General Elections in India - 1962, Vol. II, pp. 374-437.
2. Report on the Fourth General Elections in India - 1967, Vol. II, pp. 477-552.
3. India - A Reference Annual - 1954, pp. 403-405.
4. India - A Reference Annual - 1959, p. 464.
5. Report on the Third G.E. in India - 1962, Vol. II, pp.440-46

पी०डी० बोस, टी०सेन, एन०के० बारी, एन० चटर्जी, एस०एस० गुप्ता, एस० सेठ, बी०मिश्रा, पी० मुखर्जी, आई० मिश्रा, एन० चट्टोपाध्याय, एन०आर०बल, पी०-मुखोपाध्याय, पी०मुखोपाध्याय, एस०दत्त, रामा देवी, एन० मजूमदार तथा यू०आर० देवी ।[1]

हैदराबाद में —श्रीमती लक्ष्मीबाई, श्रीमती महादेवम्मा, श्रीमती शांताबाई, श्रीमती शाहजहाँ बेगम, श्रीमती मासूमा बेगम, श्रीमती के०एम० राजमनी देवी, तथा श्रीमती आशाताई वाघम्मरी ।[2]

मध्यभारत में —श्रीमती जमुनाबाई तथा श्रीमती प्रतिभा दत्ताउभाना ।[3]

मैसूर में —श्रीमती लक्ष्मी देवी रामन्ना, श्रीमती बी०एल० सुब्बम्मा, चिकमगलूर, श्रीमती बलेरी सिद्दम्मा,[4] श्रीमती सुशीला बाई हीरा सदराव, श्रीमती के०एस० - नागराथम्मा, श्रीमती रुक्मिणी अम्मा, श्रीमती सिद्धवा मैलार, श्रीमती चम्पाबाई भोगले, श्रीमती अन्नपूर्णा बाई, श्रीमती केम्पम्मा, श्रीमती बल्लू सुमन, श्रीमती बसम्मानी मल्लवा, श्रीमती रत्नम्मा माधवराव, श्रीमती लीलावती वेंकटेश, श्रीमती ग्रेस टुक्कर,[5] ललिता बाई, सुभद्रा बाई, विजयदेवी राजशेखर राव, पी०राजी भोगले, रोहिणी बाई, पाण्डुरंग बांगले, बसन्तलता बी०मीरजकार, यल्वा धरम्मा सम्भ्रानी, शिवम्मा महाबेलाप्पा मैलार, नागम्मा, बसवराजेश्वरी, मुरारीकमला एन०शीरागुला, बालम्मा, रत्नम्मा माधवराव, के०टी० धम्म्मा, तारा पाटिल, बी०एल० सुबम्मा, यशोधम्मा, दयावम्मा मन्नप्पा, जी०डी०भागीरथम्मा, नागरथम्मा हीरेमठ, एन० नीलावेनी, नरायम्मा, बाई०रमाबाई, वेंकम्मा महाबली सीतारमैया, पुत्तम्मुम्मा,

---

1. Report on the Fourth G. E. In India - 1967, Vol. II, pp.556-558

2. India - A Reference Annual - 1954, pp. 408-409.

3. Ibid, p. 413.

4. Ibid, p. 416.

5. India - A Reference Annual - 1959, p. 440.

के० एस० नागरत्नम्मा,[1] ए० वैजनाथ, एल० चन्द्रशेखर, सिद्दाबुरम्मा, के०एल० राय, डब्ल्यू० एफ० फर्नाडीस, के०टी० दनाम्मा, पी० एस० मादेवप्पा तथा बी०डी० पीररागी।[2]

पेप्सू में —श्रीमती मनमोहन कौर तथा श्रीमती चन्द्रावती।[3]

सौराष्ट्र में —श्रीमती जया वजुभाई शाह तथा श्रीमती पुष्पाबेन जनार्दन मेहता।[4]

ट्रावनकोर-कोचीन —श्रीमती के०आर० गौरी।

भोपाल में —श्रीमती कुमारी लीलाराम तथा श्रीमती मयमूना सुल्तान।

दिल्ली में —श्रीमती कृष्णा सेठी, श्रीमती शांति वशिष्ठ, श्रीमती पुष्पा देवी, तथा श्रीमती सुशीला नैय्यर।

विन्ध्य प्रदेश में —श्रीमती सुमित्रा।[5]

आन्ध्रप्रदेश में— शांतिबाई, जयलक्ष्मी देवम्मा, शाहजहाँ बेगम, मासूमा बेगम, सुमित्रा-देवी, टी०एन० सदालक्ष्मी, सीताकुमारी, के०के०रत्नाम्मा, टी०लक्ष्मीकान्थम, कल्ला कमला देवी,[6] वेन्दी लक्ष्मीनरायम्म, के०अमला देवी, गन्ता भारती देवी, मन्थेना सत्यवती, भवानमजयप्रभा, वी०रुक्मनी देवी, वेन्कटेश्वरम्मा, शांतिबाई, तल्पालेकर, कुमुदनीदेवी, जयलक्ष्मी देवम्मा, रौडा एस०पी०मिस्त्री, ललितकुन्निसा बेगम, एस०एल०देवी, केवलअनन्दादेवी, रेड्डी रत्नाम्मा, वेंकटेश्वरीबाई, अनकरत्नाम्मा, पीयालाबानी रमनराव,[6] वी० लक्ष्मी-

---

1. Report on the Third General Elections in India-1962, Vol.II pp. 302-322.
2. Report on the Fourth General Elections in India-1967, Vol.II pp. 387-410.
3. India - A Reference Annual - 1954, p. 419.
4. Ibid, p. 425.
5. Ibid, p. 425.
6. Report on the Second General Elections in India-1957, Vol.II pp. 236-246.

नरायम्मा, आर०के०देवी, के०वी० कान्तीपुडी, एस०वी०राव, एम०के०देवी, आई० डीडा-पानैनी, पी०ज्याप्रादी, पी० विमलादेवी, के०आर० रेड्डी, पी०वी० रेड्डी, आर०भजन, पी०के०देवी, के० देवम्मा, ए०पी० वादीकनी, बी०एस०पी०रेड्डी, एन०बेगम, एस०देवी, एस०देवी, एन०वी०देवी तथा जी०एस०देवी ।[१]

आसाम में- ज्योत्सना चंदा, उषा बरठाकुर, कमलकुमारी बरुआ, पद्मा-कुमारी गोहैन, लिलीडेन गुप्ता,[२] बेगम अकिया अहमद[३] आर०एम० देवी, पी०ताकुकदार, एम०बी०आकुमलारी, पी०दास, बी०ए० अहमद तथा एस०पी०बेलिया ।[४]

केरल में -श्रीमती रोसम्मा पुन्नोज, श्रीमती कुसुम्मा जोसेफ[५] श्रीमती शारदा कृष्णान् , श्रीमती लीला दामोदर, श्रीमती के०आर० गौरी[६] एम०कमलाम, शारदा, ए० भारवी, के०आर०जी० धामस, टी०कृष्णान्, के०आर०एस०अम्म तथा एस०एम० मिल्ला ।[६]

राजस्थान में- श्रीमती आनन्दी देवी, श्रीमती कमला बाई, श्रीमती गौरी पुनिया, श्रीमती सतुवान कौर, श्रीमती चन्द्रा कांत, श्रीमती सुमित्रा, श्रीमती प्रभा, श्रीमती गंगादेवी, श्रीमती शन्नोदेवी,[७] सुरैया बेगम, चन्द्रावती, कमला देवी, उमामाथुर, प्रभा-मिश्रा, भगवान देवी राजपाल, नारंगी, नगेन्द्रबाला, लक्ष्मीकुमारी , निर्मलादेवी, मक्खन कौर, सतवन्त कौर,[८] के० कान्ता० एस० शर्मा, टी०कुमारी, पी० देवी, पी०मिश्रा,

---

1. Report on the Fourth General Elections in India - 1967, Vol. II, pp. 123-156.
2. Report on the Second General Elections in India - 1957, Vol.II, pp. 250-259.
3. Report on the Third General Elections in India - 1962, Vol. II, p. 130.
4. Report on the Fourth General Election in India - 1967, Vol. II, pp. 163-173.
5. India - A Reference Annual 1959, p. 427.
6. Report on the Fourth General Elections in India - 1967, Vol. II pp. 614-625.
7. India - A Reference Annual - 1954, p. 452.
8. Report on the Third General Elections in India, 1962, Vol. II,

एम०बाला, एस०कुमारी तथा एम० कौर ।[2]

गुजरात में — ताराबती प्राणलाल शाह, कल्पना शंकर प्रसाद देसाई, मंजुला बेन जयन्तीलाल दावे, माधवीना बेन ककरभाई नगीरी, शारदा बेन धर्मसिंहभाईपटेल, सुमित्रा बहेन हरीप्रसाद भट्ट, नीरुबेन जीवाराजभाई पटेल, सविता बेन शंभुप्रसाद आचार्या, मधुबेन जीवरदास शाह, शांतिबेन भीलाभाई पटेल, मनोविकारी पूनमचंद शाह, मनोरमा बेन बीमुलराव मेहता, मकावना शीला योगेन्द्रकुमार, नोमामा-हीराबेनलाल चंदभाई, भानुबेन मनुभाई पटेल, गिरिजा कुमारी गोविन्द सिन्ह महीदा, माधव भानुबेन दलपतभाई, दहीबेन भुलाभाई राठौड़, विजकी बेन उर्फ उर्मिला बेन प्रेमशंकर भट्ट, सुवासबेन अरविन्दभाई मजुमदार, एम०एच०गजवानी, बी०जे०शाह, एस०जे० राजा, एस०एन० पनेरी, जे०एल०कपासी, यू०एम०पांचाल, जी०एल०वांग्ले, बी०देवजी भाई, तथा ए०जी०पटेल ।[3]

महाराष्ट्र में — चन्द्रावती कृष्णाराव येन्गेरी, मनीबेन नानूभाई देसाई, तारा-गंगाराम रेड्डी, कामार मेयुर चक्रम, सुल्ताना बेगम अली सरदार जाफरी, सरोजिनी रामचन्द्र शेवदे, हरदेव कौर प्रीतमसिंह मायक, शकुन्तला चिन्तामन शास्त्री, अनुसाया श्रीधरविभाई, कमलाबाई भास्कर भागर, चम्पा गोवर्धन मोकल, सुवभाभाल-चन्द्र पाटिल, गोदावरी शामराव पारुलकर, लक्ष्मीबाई विठ्ठल रन्पीसे, शीवन्ता-बाई पुरुषोत्तम बाउरा, मालती बाई माधवराव शीरोल, विमला बाई बसन्त - बागल, जीवनाकृष्णा रवादे, निर्मलाबाई-बसन्त-बागल, जीवनकृष्णा-रवादे, निर्मला राजे विजयसिंह भोंसले, हीरा बाई प्रभाकर मायकर, शकुन्तला शंकर परान्जपे, रामाबाई नरायन देश पाण्डे, इन्दिरा बाई रामराव कोटाम्बकर, कुसुमताई चमनराव कोपे, बसन्तीबाई शिराम मालमीया, सुशीला बाई बलराज, प्रभावती बाई काशीनाथ-

---

1. Report on the Fourth General Elections in India-1967, Vol.II, pp. 450-474.
2. Report on the Third General Elections in India - 1962, Vol. II, pp. 180-198.
3. Report on the Fourth G.E. in India - 1967, Vol. II, pp. 222-2[illegible]

गजाभी, सुशीला बाई केशवीरावजी इंगिल, शांताबाई होये, नलिनी बाई गोधावी राव मुकारे, ताराबाई मानसिंहराव, शांताबाई रतनलाल, गिरिजाबाई मिश्चन्द्र-नाथ, कमला चन्द्रगुप्त,[1] एल०बी० भुवाय, एल०बी०मैत्योली, ए०एन०नागर, के०एस० कारखन्डे, आर०बी०थापे, एस०डी०हार्मी, एस०डी०भालेराव, एस०एस०भोरे, ए०एस० पंडित, पी०बी० तीदावे, बी०मल्राम तथा पी०एस० वापूकू ।[2]

हिमाचल प्रदेश में – एस० देवी तथा के० देवी ।[3]

हरियाणा में – लक्ष्मी, पी०देवी, बी०प्रभा, सी०वती, के०देवी, एस०देवी, चन्द्रा-वती तथा बेगम ।[4]

जम्मू तथा काश्मीर में – शांता भारती,[5] तथा एल०देवी ।[6]

गोआ, दमन, दीयू में – के०एस० गुरुदत्त,[7]।

त्रिपुरा में – एम०के०के०पी० देवी ।[8]

राजकीय विधान मंडलों के उच्च सदन विधान परिषद् में भी महिलाओं ने प्रतिनिधित्व प्राप्त किया है । विभिन्न वर्षों में विभिन्न राज्यों की विधान परिषदों की सदस्या महिलाएं निम्नलिखित हैं :-

बिहार में – श्रीमती नयमा खातून हैदर,[9] श्रीमती अभिरमा देवी, श्रीमती लक्ष्मीदीक्षत

---

1. Report on the Third General Elections in India-1962, Vol. II, pp. 265-300
2. Report on the Fourth G.E. in India, 1967, Vol. II, pp. 349-377
3. Ibid, pp. 598-99.
4. Ibid, pp. 253-265.
5. Report on the Third G.E. in India-1962, Vol. II, p. 476.
6. Report on Fourth G.E. in India-1967, Vol. II, p. 273.
7. Ibid, p. 592.
8. Ibid, p. 608.
9. India - A Reference Annual 1954, p. 369.

श्रीमती रामप्यारी देवी, श्रीमती किशोरी देवी, श्रीमती पार्वती देवी तथा श्रीमती सावित्री देवी ।[१]

बम्बई में --श्रीमती लीलावती हीरालाल देसाई, श्रीमती रमाबाई नरायन देशपांडे, श्रीमती ज्योत्सना बैन बटुकराम शुक्ला, श्रीमती मनीबैन नन्दूभाई पटेल, श्रीमती सुशीला जयदेव, कुलकर्णी, श्रीमती के०टी० शिवाजी मालिनी,[२] श्रीमती ए०सी०शाह, श्रीमती बी०एम० पारेख, श्रीमती डी०पी० सन्धवी, श्रीमती एम०ए० नगौरी, श्रीमतीएम०आर०हरनायक, तथा श्रीमती एस०परान्जपे ।[३]

पंजाब में-- श्रीमती चम्पा भगत राय,[४] श्रीमती दलाराम बहूजा, श्रीमती बलवन्त कौर, श्रीमती ज्ञान कौर तथा श्रीमती प्रीतपाल कौर।[५]

उत्तरप्रदेश में --श्रीमती शांति देवी (इटावा से), श्रीमती शांति देवी (लखनऊ से) , श्रीमती शिवराजवती नेहरू, श्रीमती महादेवी वर्मा, श्रीमती तारा अग्रवाल,[६] श्रीमती एस०डी०अग्रवाल, श्रीमती सावित्री श्याम, श्रीमती बी०बी०राठौर, श्रीमती कुदसिया बेगम ।[७]

पश्चिमी बंगाल में --श्रीमती शांतिदास, श्रीमती लावण्य प्रोभा दत्त,[८] श्रीमती आभा चैटर्जी, श्रीमती अनिला देवी ।[९]

आन्ध्रप्रदेश में --श्रीमती डी०लक्ष्मी कयाम्मा, श्रीमती फैजुन्निसा, श्रीमती बी० भारती देवी रांगा, श्रीमती एम०ए० कुाम, श्रीमती के०सीता महालक्ष्मी, श्रीमती के०

---

1. India - A Reference Annual 1959, p. 413.
2. " " " 1954, p. 376.
3. " " " 1959, p. 421.
4. " " " 1964, p. 391.
5. " " " 1959, p. 442.
6. " " " 1954, p. 399.
7. " " " 1959, p. 460.
8. " " " 1954, p. 405.
9. " " " 1959, p. 466.

रामानुजम्मा ।[1]

मद्रास में —जीवी हैन्नाट मैल्लम, श्रीमती एस० मंजूनथीनी, श्रीमती मेरी सी० कुलबाला, श्रीमती सरस्वती तथा श्रीमती के०वी०सुन्दरमूवाल ।[2]

मैसूर में —श्रीमती एस०वीरम्मा तथा श्रीमती एम०आर० लक्ष्मा ।[3]

हिमाचल प्रदेश टैरीटोरियल काउंसिल में श्रीमती सत्या हागे, मनीपुर में श्रीमती अन्नानाल बकिम तथा श्रीमती मुजारा देवी, और त्रिपुरा में श्रीमती वासना कमुधौती प्रसिद्ध सदस्या थीं ।[4]

व्यवस्थापिका की सदस्या के अतिरिक्त भारतीय महिलाओं को भारत सरकार के कूटनीतिक प्रतिनिधि के रूप में भी स्थान मिला है । इसकी एकमात्र अधिकारिणी हैं श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित । श्रीमती पंडित आयरलैंड तथा स्पेन में अम्बैसेडर रही हैं । इसके अतिरिक्त उन्हें ब्रिटेन में भारत का हाईकमिश्नर होने का श्रेय भी प्राप्त है ।[5] यही नहीं, श्रीमती पंडित ने संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत का प्रतिनिधित्व किया तथा वह प्रथम तथा अब तक की एकमात्र महिला हैं जिन्होंने संयुक्तराष्ट्र की सामान्य परिषद् की अध्यक्षता ग्रहण की थी ।[6]

अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में महत्वपूर्ण पदों पर आसीन रहने वाली अन्य भारतीय महिलाओं में श्रीमती अन्नाहैन, जिन्होंने संयुक्त राष्ट्र कमीशन के पाँचवे सत्र में, जो "महिलाओं की स्थिति" पर आयोजित किया गया था में उपाध्यक्ष का स्थान ग्रहण किया था । श्रीमती लक्ष्मी मेनन संयुक्त राष्ट्र की "महिलाओं की

---

1. Ibid, p. 404.
2. Ibid, p. 437.
3. Ibid, p. 442.
4. Ibid, pp. 469-473.
5. India - A Reference Annual 1960, p. 509.
6. Women of India By Tara Ali Baig, p. 100.

स्थिति वर्ग की प्रधान चुनी गई थीं, तथा राजकुमारी अमृतकौर अन्तर्राष्ट्रीय रैड क्रास की प्रेसीडैंट रह चुकी हैं।[1]

प्रशासन में महिलायें

व्यवस्थापिका के समान कार्यकारिणी में भी महिलाओं का भाग उल्लेखनीय रहा है। महिलाओं ने प्रधानमंत्री, मंत्री, भारतीय प्रशासनिक सेवाओं, प्रान्तीय सिविल सेवाओं तथा प्रशासन के अन्य स्तरों पर अग्रगामी स्थान प्राप्त कर रखा है। भारत के स्वतंत्र होने के पूर्व ही महिलाओं ने कुछ राज्यों में मंत्रीपद संभाल कर अपनी प्रशासनिक प्रतिभा का परिचय दिया था। उदाहरणार्थ १९३६ के चुनाव के बाद श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति मद्रास के मंत्रिमंडल में थीं। १९३७ में भी राजगोपालाचारी के मंत्रिमण्डल में श्रीमती ज्योति वैन्कटाचलम भी सम्मिलित थीं।

श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित प्रथम महिला थीं जिन्हें प्रान्तीय सरकार में मंत्री पद प्राप्त हुआ था। वह उत्तर प्रदेश सरकार में स्थानीय स्वशासन तथा जन स्वास्थ्य मंत्री रही हैं। इसके पूर्व वह इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड में कार्य कर रही थीं, जहाँ वह शैक्षिक समिति के चेयरमैन पद पर आरूढ़ थीं। तत्पश्चात् उन्हें "विमैन्स इन्टर नेशनल लीग फार पीस एन्ड फ्रीडम" का उपाध्यक्ष रहने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था। १९४० से १९४२ तक वह अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की अध्यक्ष रहीं।

स्वतंत्र भारत के अनेक मंत्रिमंडलों में महिलाओं को भी स्थान प्राप्त होता रहा है। प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू के मंत्रिमण्डल में राजकुमारी अमृतकौर कैबिनेट स्तर पर मंत्री थीं तथा उन्हें स्वास्थ्य विभाग प्राप्त हुआ था। इसी मंत्रिमण्डल में श्रीमती एम० चन्द्रशेखर को उपमंत्री की हैसियत से स्वास्थ्य विभाग प्राप्त हुआ था। इसके अतिरिक्त श्रीमती लक्ष्मी मैनन वैदेशिक मामलों की संसदीय सचिव रही हैं।[2]

---

1. Ibid.
2. India - A Reference Annual 1955, pp. 57-58.

१९५९ के नेहरू मंत्रिमण्डल में पुन: कुछ महिलाओं को स्थान प्राप्त हुआ था। ये महिलायें थीं श्रीमती लक्ष्मी मेनन- वैदेशिक मामलों की उप मंत्री, श्रीमती वायलेट अल्वा- गृह मामलों की उपमंत्री तथा श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा- वित्तीय उपमंत्री।[1]

जनवरी १९६६ में श्रीमती इन्दिरा गांधी के रूप में नवोदित, विशाल प्रजातंत्र का नेतृत्व ग्रहण करने वाली एक भारतीय महिला को संसार ने प्रधानमंत्री के पद पर देखा। इसके पूर्व श्रीमती गांधी स्वर्गीय लालबहादुर शास्त्री के मंत्रिमण्डल में सूचना एवं प्रसार मंत्री पद पर आसीन रही थीं।[2] श्रीमती गांधी १९६६ से आज तक प्रधानमंत्री पद पर आसीन हैं। मार्च १९७१ में हुए लोकसभा के मध्यावधि चुनावों में श्रीमती गांधी को जो भारी बहुमत से विजय मिली, वह इस बात का प्रमाण है कि देश की विशाल जनता आज भी उन्हें इस योग्य समझती है तथा अपना नेता मानती है। प्रधानमंत्री होने के अतिरिक्त श्रीमती गांधी के पास अन्य विभाग भी रहे हैं। १९६६ में वह अणुशक्ति की मंत्री थीं,[3] १९६९ में उनके पास वित्तीय, अणुशक्ति तथा योजना विभाग था।[4] तथा मार्च १९७१ के चुनावों के पश्चात् आज प्रधानमंत्री होने के अतिरिक्त वह गृहयोजना, अणुशक्ति तथा सूचना एवं प्रसार विभाग उनके अधीन हैं।[5]

उपरोक्त विभागों के अतिरिक्त श्रीमती गांधी कुछ अन्य अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय संगठनों की प्रधान, उपप्रधान, तथा सदस्या हैं। वह "इन्टरनैशनल यूनियन फार चाइल्ड वैलफेयर" की डिप्टी चेयरमैन, "इंडियन कौंसिल आफ चाइल्ड वैलफेयर" की कार्यकारिणी समिति की सदस्या तथा संरक्षिका, शिक्षा मंत्रालय द्वारा संचालित "बाल भवन" तथा "बाल संग्रहालय" की चेयरमैन हैं। वह दिल्ली में "बाल सहयोग" नामक एक सदन की संस्थापक हैं जिसमें पिछड़े वर्गों के बालक [illegible]

---

1. India - A Reference Annual 1959, p. 83.
2. N.I. Patrika dated March 18, 1971, p. 4.
3. Cabinet Govt. in India By R.J. Venkatesvaran.
4. Lok Sabha Debate (Eighth Session) Vol.XXX, contains no.1-10, Monday, July 30, 1969, p. X.
5. N.I. Patrika dated March 19, 1971, p. 1.

में रहकर प्रशिक्षित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त श्रीमती गांधी कमला नेहरू मेमोरियल चिकित्सालय, इलाहाबाद के बोर्ड आफ ट्रस्टी की सदस्या तथा "मोतीलाल नेहरू ग्राम भारती", एक ग्रामीण संस्थान की चेयरमैन भी हैं।[1]
श्रीमती गांधी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षिक संस्थाओं की सदस्या भी हैं। वह शिक्षा की "केन्द्रीय सलाहकार समिति" की तथा दिल्ली विश्वविद्यालय कोर्ट की सदस्या हैं। १९६०-६४ तक वह यूनेस्को की कार्यकारिणी समिति की सदस्या तथा संगीत नाटक एकेडेमी की चेयरमैन रही हैं। १९६२ में चीनी हमले के दौरान जो केन्द्रीय नागरिक परिषद् निर्मित हुई थी, श्रीमती गांधी उसकी चेयरमैन नियुक्त हुई थीं। इसके अतिरिक्त वह "राष्ट्रीय सुरक्षा कोष" की कार्यकारिणी की सदस्या भी रही थीं।[2] एक भारतीय महिला का एक समय में इतने पदों पर रहना निश्चय ही भारत के लिए गौरव की बात है। श्रीमती गांधी आज संसार की "अद्वितीय महिला" हैं।

जनवरी १९६६ में श्रीमती गांधी के मंत्रिमण्डल में ४ अन्य महिलाओं को मंत्रीपद प्राप्त हुआ था। यह महिलाएं थीं डा० सुशीला नैयर, - स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन, की राज्यमंत्री, डा० सौंदरम् उपमंत्री - शिक्षा, श्रीमती मारगथम् चन्द्रशेखर उपमंत्री - सामाजिक सुरक्षा तथा नन्दिनी सतपथी उपमंत्री - सूचना तथा प्रसार विभाग।[3]

१९६९ में श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व वाले मंत्रिमण्डल में उपमंत्री नन्दिनी सतपथी के अतिरिक्त कुछ अन्य महिलाएं भी सम्मिलित थीं, उनके नाम इस प्रकार हैं :- डा० फूल रेनु गुहा राज्य मंत्री कानून मंत्रालय तथा सामाजिक कल्याण विभाग, श्रीमती जहाँनारा जयपाल सिंह उपमंत्री-शिक्षा मंत्रालय तथा युवक सेवा, डा० सरोजिनी महिषी उपमंत्री पर्यटन तथा असैनिक विमानन चालन विभाग।[4]

---

1. N.I. Patrika dated March 18, 1971, p. 4.

2. Ibid, p. 4.

3. Venkatesvaran, J. - Cabinet Government in India.

4. Lok Sabha Debate (Eighth Session) Vol. XXX - contains nos.1-1[illegible]
Monday, July 30, 1969, p. X.

मार्च १९७१ में प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में नवनिर्मित मंत्रिमण्डल में श्रीमती नन्दिनी सतपथी राज्य मंत्री सूचना तथा प्रसार मंत्रालय, डा० सरोजिनी महिषी उपमंत्री को पर्यटन तथा असैनिक विमान-चालन विभाग[1] तथा डा० सुशीला रोहतगी को केन्द्रीय उप वित्तीय मंत्रीत्व पद प्राप्त हुआ है ।

केन्द्रीय मंत्रालयों के अतिरिक्त विभिन्न राज्यों के मंत्रिमण्डल में भी महिलाओं को स्थान प्राप्त होता रहा है, यद्यपि उनकी संख्या न्यून रही है । विभिन्न राज्यों में विभिन्न वर्षों के मंत्रिमण्डलों में स्थान पाने वाली यह महिलाएं निम्नलिखित हैं :-

बम्बई राज्य में - श्रीमती इन्दुमती चमनलाल उपमंत्री - शिक्षा,[2]
मध्यप्रदेश में - श्रीमती पी०वी० फकतदार उपमंत्री - वाणिज्य तथा उद्योग[3]
उड़ीसा में - श्रीमती बसन्त मंजरी देवी, उपमंत्री - स्वास्थ्य[4],
पश्चिमी बंगाल में - श्रीमती रेनुका रे - मंत्री शरणार्थी तथा पुनर्वास तथा श्रीमती पूरबी मुखर्जी उपमंत्री-नारी शिक्षा,5
दिल्ली में श्रीमती सुशीला नैय्यर मंत्री-स्वास्थ्य, परिवहन व पुनर्वास तथा श्रीमती शान्ता वशिष्ठ उपमंत्री-नियुक्ति,योजना,शिक्षा तथा सेवा[5] सौराष्ट्र में श्रीमती जय-बेन शाह उपमंत्री-सामाजिक-कल्याण,-ग्रामीण-विकास शिक्षा[6] आसाम में श्रीमती उषा बरठाकुर उपमंत्री - सामाजिक कल्याण, ग्रामीण विकास, मातृत्व तथा बालकल्याण[7], बिहार में श्रीमती मैमा कासूम हैदर तथा श्रीमती ज्योतिर्मयी देवी - उपमंत्री ।[8]

---

1. N.I. Patrika dated March 19, 1971, p. 1.
2. India - A Reference Annual 1954, p. 370.
3. Ibid, p. 377.
4. Ibid, p. 386.
5. Ibid, p. 400.
6. Ibid, p. 434.
7. India - A Reference Annual 1956, p. 471.
8. India - A Reference Annual 1957, p. 627.
9. Ibid, p. 628.

बम्बई में श्रीमती निर्मला राजे भोंसले उपमंत्री;[1] मद्रास में श्रीमती लाउर्डम्मल मंत्री-स्थानीय प्रशासन तथा मछली, मैसूर में श्रीमती ग्रेस टुकर उपमंत्री- शिक्षा,[2] पंजाब में श्रीमती प्रकाश कौर उपमंत्री (मुख्य मंत्री से संबंधित), स्वास्थ्य चिकित्सा तथा सामाजिक कल्याण ।[3] उत्तरप्रदेश में श्रीमती प्रकाशवती सूद उपमंत्री श्रमिक मंत्रालय से संबंधित तथा सामाजिक कल्याण[4], पश्चिमी बंगाल में श्रीमती माया बैनर्जी उपमंत्री-शरणार्थी तथा पुनर्वास,[5] मैसूर में श्रीमती लीलावती बी० मगदी उप-मंत्री- ग्रामीण उद्योग,[6] केरल में श्रीमती के०आर० गौरी मंत्री- लगान भूमि लगान, मद्य निषेध, पंजीकरण तथा दान आदि,[7] मध्यप्रदेश में श्रीमती पद्मावती देवी मंत्री- जनस्वास्थ्य[8] आंध्र प्रदेश में श्रीमती मसूमा बेगम मंत्री- सामाजिक कल्याण, सत्रबंगस्टेट तथा मुस्लिम वाक्फ,[9] बिहार में श्रीमती राजेश्वरी सरोज दास उपमंत्री -कल्याण तथा जंगल ।[10]

इन मंत्रियों के अतिरिक्त महिलाओं को राज्यपाल होने का श्रेय भी प्राप्त हो रहा है । यह महिलाएं हैं श्रीमती सरोजिनी नायडू राज्यपाल- उत्तरप्रदेश,[11], श्रीमती पद्मजा नायडू राज्यपाल पश्चिमी बंगाल ।[12] तथा श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित राज्यपाल महाराष्ट्र । श्रीमती अरुणा आसफअली दिल्ली म्युनिसिपल कार्पोरेशन के मेयर पद पर भी रह चुकी हैं ।[13] आसाम राज्य के लोकसेवा आयोग में श्रीमती

---

1. Ibid, p. 628.
2. Ibid, p. 630.
3. Ibid, p. 631.
4. Ibid, p. 632.
5. Ibid, p. 633.
6. India - A Reference Annual 1959, p. 439.
7. Ibid, p. 426.
8. Ibid, p. 429.
9. India - A Reference Annual 1960, p. 387.
10. Ibid, p. 397.
11. Baig, Tara Ali - Women of India (Ed.), p. 103
12. India - A Reference Annual 1959, p. 462.

जोनिली लांगमैन सदस्या रह चुकी हैं[1]।

दक्षिण भारत में महिलाओं ने स्थानीय सेवाओं में भी भाग लिया है। यहाँ तक कि ग्राम पंचायतों का क्षेत्र भी उनसे अछूता नहीं है। दक्षिण भारत के एक पंचायत बोर्ड की सदस्या मात्र ६ महिलाएं ही हैं।[2] इनके अतिरिक्त विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत निर्मित सामाजिक विकास कार्य में महिलाओं का योगदान सराहनीय कहा जा सकता है।

इस प्रकार प्रशासन के क्षेत्र में महिलाओं ने पूर्ण सहयोग किया है। प्रान्तीय तथा राजकीय स्तर पर सरकारी सेवाओं में संलग्न महिलाओं की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है।

<u>न्याय में महिलाएं</u>

जहाँ व्यवस्थापिका तथा कार्यकारिणी में महिलाओं की संख्या पर्याप्त अनुपात में परिलक्षित होती है, वहाँ न्याय के क्षेत्र में अभी महिला न्यायधीशों की संख्या अपवाद स्वरूप ही है। स्वतंत्रता के पूर्व भारत में न्यायिक पदों पर दो महिलाएं रह चुकी थीं —प्रथम थीं श्रीमती कमलाबाई लक्ष्मनराव— टिन्नीवेली तथा द्वितीय श्रीमती कन्या मेहता —कांथे। यह दोनों महिलाएं अवैतनिक मैजिस्ट्रेट थीं तथा असहयोग आन्दोलन के समय उन्होंने अपने पदों से त्यागपत्र दे दिया था।[3] स्वतंत्रता के उपरान्त केरल उच्च-न्यायालय के एक जज के रूप में मात्र श्रीमती अन्ना चांदी का नाम उपलब्ध है।[4] इसके अतिरिक्त श्रीमती माया कुरेनाइस कोर्ट की मैजिस्ट्रेट रही हैं।

यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि न्यायाधीश के रूप में महिलाएं अभी पीछे हैं, परन्तु वकील के रूप में उनकी संख्या क्रमश: आगे बढ़ रही है। यदि अपने कार्य में उन्हें पर्याप्त सफलता व प्रोत्साहन मिला तो निश्चय ही इस क्षेत्र में भी वे प्रतिष्ठित स्थान बना लेंगी।

---

1. India - A Reference Annual 1959, p. 406.
2. Baig, Tara Ali - Women of India (Ed.), p. 104.
3. Baig, Tara Ali - Women of India (Ed.), p. 96.

शैक्षिक क्षेत्र में महिलाएं

शिक्षा की दृष्टि से भारतीय नारी निश्चय ही पिछड़ी अवस्था में है। नारी-शिक्षा का विकास अभी कुछ ही वर्षों की देन है। स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों के उपरान्त भी भारत में इस क्षेत्र में अभी उतनी प्रगति नहीं हो सकी है जितनी आशा की जाती थी। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार शिक्षित स्त्रियों तथा पुरुषों की संख्या में अभी महान् अन्तर है। परन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं कि भारतीय महिलाएं इस क्षेत्र में नितान्त दयनीय स्थिति में हैं अथवा उनके पास उच्च शिक्षा प्राप्त करने की क्षमता का अभाव है। उपरोक्त दृष्टिकोण सामान्य नारी वर्ग पर लागू होता है। व्यक्तिगत रूप से महिलाओं ने अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है।

आज भारत की लगभग प्रत्येक भाषा में महिलाएं नाटककार, उपन्यास-कार, कवियत्री, कहानी लेखिका तथा पत्रकार आदि अनेक रूपों में अपनी प्रतिभा का परिचय दे रही हैं। इस वर्ग की महिलाओं में आधुनिक युग का आह्वान करने वाली अग्रगण्य महिला थीं ; कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर की बड़ी बहन स्वर्णकुमारी देवी। स्वर्णकुमारी देवी बंगाल की प्रथम उपन्यासकार महिला थीं। इसके साथ ही वह एक संपादिका भी थीं। स्वर्णकुमारी देवी के रूप में बंगाल में प्रथमबार आधुनिकता की उस श्रेणी में गिनी जाने वाली महिला के दर्शन होते हैं, जो आज भारत के प्रत्येक कोने में विद्यमान हैं।[1]

भारत की विभिन्न भाषाओं में लघुकहानी तथा लघु उपन्यास लिखने वाली महिलाओं के नाम इस प्रकार हैं– आशापूर्णादेवी, आशालता सिन्हा, वानी राय तथा लीला मजूमदार बंगाली में, पीताम्बरी देवी, बसन्तकुमारी पटनायक, शकुन्तलादेवी तथा सरस्वती कानूनगो उड़िया भाषा में, स्नेहलता भट्टाचार्या, तथा चन्द्रप्रभा शैकिया आसामी में, सत्यवती मलिक, होमावतीदेवी, कृष्णासावित्य तथा ऊषा देवी मित्रा हिन्दी में, शान्ता हीराचिन्द तथा शान्ता शेलकी

---

1. Baig, Tara Ali - Women of India (Ed.), p. 191.

मराठी में, गौरम्मा, साविनम्मा, तथा कल्याम्मा कन्नड़ी में, बी०एम०कौषल्यागी अम्मल तथा स्वर्णाम्माल सुब्रामनियम गुण्डप्रिया तामिल में, रशीद जहाँ, तथा इस्मत चुगताई उर्दू में, लघुबैन मेहता, विद्याबैन रामभाई नीलकान्था, कुमारिका कपाडिया तथा दीक्षीन पटेल गुजराती में, मालती चन्दूर, चाम्बूरी पद्मावती देवी तथा नन्दागिरि देवी तेलुगु में, और अम्बादीक्षलाबम्मा, अम्बादी कार्तियायनी-अम्मा, टी०सी० कल्यानी अम्मा, बी० कल्यानी अम्मा, बी०आर० श्यामला, एन०सरस्वती, थकम्मा मल्लिक, लीला चाम्बेरी तथा ललिताम्बिका अन्तर्जनम मलयालम में ।[1] निरूपमा देवी अपनी प्रसिद्ध उपन्यास "दीदी" के कारण जनप्रिय हैं । विभावरी शिरूरकर ने मराठी में लगभग ३० वर्ष पहले महिला आन्दोलन की पृष्ठभूमि में कहानियाँ लिखी थीं । उनकी उपन्यास "बली" अपने समय की जनप्रिय कृति रही है । कुसुमावती देशपांडे एक आलोचक तथा लघु कहानी लेखिका मराठी की प्रथम महिला हैं जिन्हें नागपुर में १९५१ में "प्रोफेसर" का पद प्राप्त हुआ था । इसके अतिरिक्त लीलावती मुन्शी आप की एक बहुमुखी प्रतिभा हैं । वह एक संपादिका, नाटककार, तथा कहानीकार के रूप में विख्यात हैं ।[2]
अंग्रेजी भाषा में गद्य लेखिका के रूप में शान्ता रमाराव तथा कमला मार्कण्डेय आधुनिक युग की लेखिका हैं । कमला मार्कण्डेय के उपन्यास विदेशों में भी मान्यता प्राप्त कर चुके हैं ।[3]

कवियत्री के रूप में भी आधुनिक महिलाओं की प्रतिभा प्रस्फुटित हुई है । तेलगू में आधुनिकता का आन्दोलन लाने वाली तीन प्रसिद्ध महिलाएं हैं -- विश्वासुन्दरम्, सौदामिनी तथा बन्गारम्मा।[4] आसाम की नलिनी बाला देवी तथा धर्मेश्वरीदेवी कोमल पद की रचयिता के रूप में प्रसिद्ध हैं । यह उल्लेखनीय है कि धर्मेश्वरीदेवी अन्धी होते हुए भी सुन्दर पदों की रचयिता हैं । कुन्तलाकुमारी साबत १९२० के पश्चात् उड़ीसा में कवियित्री के रूप में सामने आई । वह गद्य लेखिका

---

1. Ibid, p. 192.
2. Ibid.
3. Ibid, p. 196.
4. Ibid, p. 190.

भी हैं तथा "रघु करनी" उनका प्रथम उपन्यास है। राधारानी देवी अपने समय में बंगाल की प्रसिद्ध कवियत्री थीं।[1] बालमनी नैयर मलयालम की एक अन्य कवियित्री हैं जिन्होंने मातृत्व तथा बाल भावनाओं का हृदयस्पर्शी चित्रण किया है।[2] वर्तमान समय की प्रसिद्ध कवियत्री हैं श्रीमती महादेवी वर्मा। आज हिन्दी में छायावादी वर्ग में तीन प्रमुख कवि हैं। श्रीमती महादेवी वर्मा उनमें से एक हैं। सुभद्राकुमारी चौहान देशभक्ति पूर्ण कविताओं की रचयिता हैं। अपनी कविता "झांसी की रानी" के माध्यम से वह आज जनप्रिय हैं। पंजाबी कवियत्री अमृताप्रीतम आज की जानी मानी लेखिका हैं। खंडित पंजाब का दुखदायी चित्रण कर अपनी आंखों देखी दुर्घटनाओं को उन्होंने साकार कर दिया। उनकी सबसे प्रसिद्ध रचना पंजाबी महाकाव्य "हीर" के रचयिता वारिसशाह को सम्बोधित है।

भारतीय महिलाओं ने आंग्लभाषा में भी सुकोमल रचना की है। तोरूदत्त तथा सरोजिनी नायडू इसमें अग्रणी हैं। सरोजिनी नायडू को कवि सुलभ प्रतिभा तथा असामान्य संगीतमय रचना के लिए "भारत कोकिला" की उपाधि प्राप्त है।

महिलाएं उच्च शैक्षिक पदों पर भी कार्यरत हैं। श्रीमती हन्सा मेहता बड़ौदा विश्वविद्यालय तथा श्रीमती शारदा मेहता भारतीय महिला विश्वविद्यालय, पूना की उपकुलपति रही हैं। इसके अतिरिक्त प्रधानाचार्या, शिक्षिका, पुस्तकालयाध्यक्ष, जिला स्कूल निरीक्षिका आदि अनेक शैक्षिक पदों पर आसीन महिलाओं की गिनती नहीं की जा सकती।

सांस्कृतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में महिलाएं

भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं को अक्षुण्ण रखना तथा उन्हें विभिन्न रूपों में पुनर्जीवित करना महिलाओं का विशेष क्षेत्र रहा है। नृत्य, संगीत, नाटक, चित्रकला, मूर्तिकला आदि परम्परागत भारतीय कलाएं महिलाओं की विशेष धरोहर रही हैं। आज भी भारतीय महिलाएं इस धरोहर को निरन्तर रखे हैं।

---

1. Ibid, p. 193.

2. Ibid, p. 194.

बीसवीं शताब्दी की सर्वप्रथम प्रसिद्ध महिला थीं स्वर्गीय मेनका (श्रीमती लीला सोखे) जिन्होंने कत्थक नृत्य में विशेष दक्षता प्राप्त की थी । उन्होंने खंडला (बम्बई) में एक नृत्य स्कूल की स्थापना की थी । बाल सरस्वती दक्षिण भारत के परम्परागत नृत्य भारत नाट्यम की अपूर्व प्रतिभा हैं । गौरी देवी एक अन्य नृत्यांगना, प्रसिद्ध चित्रकार नन्दलाल बोस की पुत्री हैं ।[1] भारत नाट्यम के क्षेत्र में वरालक्ष्मी, गौरी बाई तथा रुक्मनी देवी प्रसिद्ध नृत्यांगनाएं हैं । रुक्मनी देवी ने मद्रास में "कला-क्षेत्र" कलाकेन्द्र के माध्यम से अनेक बालिकाएं प्रशिक्षित की हैं । मृणालिनी साराभाई अहमदाबाद में स्थापित "दर्पण" नृत्य-सभा की निर्देशिका हैं । भारत सरकार द्वारा मृणालिनी दक्षिण पूर्व एशिया के सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व में भाग लेने भेजी गई थीं । शान्ताराव-भारत नाट्यम तथा कत्थक कली, कुमारी कमला-भारत नाट्यम, कुमुदनी लेखन्ती, इन्द्राणी रहमान, ट्रावनकोर बहिनें विजयन्ती माला, सरला सहगल, तारा चौधरी, शिरीन तथा रोशन वजिफदार, मिनू इन्द्राणी, अंजलि वोरा तथा सत्यवती आदि नई पीढ़ी की नृत्यांगनाएं हैं, जो प्रसिद्धी की चरम सीमा पर हैं । रोशनकुमारी, दमयन्ती जोशी तथा रानीकर्णा कत्थक नृत्य में दक्षता प्राप्त हैं । झवेरी बहनें नयना तथा रंजना मनीपुर नृत्य में पारंगत हैं ।[2] श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय प्रथम भारतीय महिला थीं जिन्होंने भारतीय राष्ट्रीय नाट्यशाला तथा बाद में संगीत नाटक एकेडेमी क्षेत्र में भी कार्य किया था । यूनेस्को नाट्यशाला से सम्बन्धित भारतीय नाट्यशाला केन्द्र की प्रधान भी रही हैं । इसके अतिरिक्त वह भारत में प्रथम "इंडियन एकेडेमी आफ ड्रामेटिक आर्ट्स" की नींव डालने वाली तथा उसकी प्रधान रही हैं । निर्माता, निर्देशिका तथा अभिनेत्री के रूप में उन्होंने बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है । शीला भाटिया इस क्षेत्र की अन्य उल्लेखनीय महिला हैं । १९५४ में उन्होंने "दिल्ली आर्ट्स थियेटर" के अन्तर्गत "हीररांझा" का निर्माण किया था । निर्मला जोशी, एक अन्य महिला का नाम भी इस क्षेत्र में उल्लेखनीय रहा है । दिल्ली में मौनिका मिश्रा "हिन्दुस्तानी थियेटर" की निर्देशिका हैं ।[2]

---

1. Ibid, p. 171.

2. Ibid, pp. 172-73.

भारतीय फिल्म जगत में देविका रानी रोरिच अद्भुत प्रतिभा रही हैं । १९३० में भारत की प्रथम फिल्म "किस्मत" में उन्होंने मुख्य अभिनेत्री की भूमिका की थी । देविका रानी ने १९६९ में दादा फाल्के एवार्ड प्राप्त किया है । भारतीय सिनेमा संसार की पहली महिला "देविका रानी को यह एवार्ड मिला क्योंकि उनकी देन सिनेसंसार में महत्वपूर्ण रही है ।[1]

गायन संगीत जगत की प्रसिद्ध प्रतिभाएं निम्नलिखित हैं — दक्षिण भारत की वीणावादक धन्नमा, एम०एस० सुब्बालक्ष्मी दक्षिण भारत की कोकिलकंठी गायिका के रूप में देशभर में विख्यात हैं । बम्बई की हीराबाई बड़ोदकर पक्केराग में पारंगत हैं, केसर बाई करकार राष्ट्रपति पुरस्कार की प्रथम प्राप्तकर्ता थीं ।[2] लखनऊ की विख्यात ठुमरी गायिका बेगम अख्तर, बनारस की ठुमरी गायिका रसूलन-बाई, बंगाल की सुलिका रे तथा संध्या मुखर्जी ख्याल गायिका, तथा मीरा चटर्जी कुछ अन्य गायिकाएं हैं जिन्होंने संगीत गायन के क्षेत्र में भारी प्रसिद्धि पाई है ।[3] सिने-जगत की प्रसिद्ध गायिकाएं लतामंगेशकर तथा आशा भोंसले से आज कौन अपरिचित है ।

पाश्चात्य संगीत में भी कुछ भारतीय महिलाओं के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । इनमें प्रसिद्ध हैं कोमीलता दत्ता । कोमीलता दत्ता ने लंदन, अमेरिका तथा अन्य देशों में भारतीय प्रतिभा का परिचय दिया है । नागपुर विश्वविद्यालय में वह पाश्चात्य तथा भारतीय संगीत बोर्ड की प्रधान रह चुकी हैं । रेडियो के पश्चात् संगीत कार्यक्रम में वह कार्यरत हैं ।[4] फिलोमिना थुम्बू चेट्टी भारत की प्रथम महिला हैं जिन्होंने वायोलिन में विशेषयोग्यता प्राप्त की है । विदेशों में भी उनकी प्रतिभा

---

1. महिला प्रगति के पथ पर, सितम्बर १९७०, पृष्ठ १९
2. Baig, Tara Ali - Women of India (Ed.), p. 175.
3. Ibid, p. 176.
4. Ibid, p. 178.

प्रशंसनीय रही है । शांति हैल्डन, एक अन्य महिला पियानों पर पाश्चात्य संगीत बजाने के लिए प्रसिद्ध हैं । मूल टाटा भी पाश्चात्य संगीत में माहिर हैं तथा उन्होंने अपना एक पृथक आरकेस्ट्रा निर्मित किया है, जिसमें उनकी शिष्याएं भाग लेती हैं । नाजा डी० टाटा, कुसुमदन, मनीमदन, प्रिया हेजर्जी, रोशन पन्डोल तथा अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्तकर्त्री कृष्णाभान इस क्षेत्र की कुछ अन्य प्रतिभाएं हैं । कृष्णाभान ५ यूरोपीयन भाषाओं की गायिका हैं ।[१]

चित्रकला तथा मूर्तिकला के क्षेत्र में यद्यपि महिलाओं की प्रसिद्धि सीमित है, परन्तु नगण्य नहीं । अमृता शेर-गिल भारत की आधुनिक चित्रकर्त्री हैं जो अपनी कला के माध्यम से आज भी जीवित हैं । नई दिल्ली के राष्ट्रीय आधुनिक कला गैलरी में उनकी चित्रकारी भारी संख्या में संग्रहित हैं । प्रसिद्ध चित्रकार अवनीन्द्रनाथ टगोर तथा नन्दलाल बोस की शिष्या ली गौतमी एक कुशल चित्रकर्त्री हैं । सुशीला भाषस्कर मूर्त्यांगना, चित्रकर्त्री तथा मूर्तिकार हैं । शीला सिद्धवा प्रसिद्ध मूर्तिकार हैं । उनके द्वारा निर्मित दादाभाई नौरोजी की एकमूर्ति बम्बई के एक सार्वजनिक स्थान की शोभा है ।[२] मेरी रूप कृष्णा तथा अमीना अहमद कला के क्षेत्र में अन्य उल्लेखनीय नाम हैं ।

भारत सरकार प्रतिवर्ष गणतंत्र दिवस के अवसर पर देश की बहुमुखी प्रतिभाओं को विभिन्न क्षेत्रों में उनके योगदान के लिए उपाधियां प्रदान करती है हर्ष का विषय है कि महिलाएं भी इन उपाधियों की अधिकारिणी रही हैं । अब तक की उपाधियों को प्राप्त करने वाली कुछ उल्लेखनीय महिलाएं निम्नलिखित हैं: पद्मश्री उपाधि की प्राप्तकर्त्री महिलाएं हैं श्रीमती आशादेवी आर्यनायकम्-वर्धा, श्रीमती पेरीन कैप्टेन-ओरियंटल क्लब बिल्डिंग, बम्बई, कु० कमल प्रभादास-गौहाटी(आसाम), श्रीमती अवन्ता मथाई-बम्बई, श्रीमती भाग मेहता-नईदिल्ली, श्रीमती मिनमई रे-जीतेन्द्र नाथ रे शिशुविहार की संस्थापक-कलकत्ता, श्रीमती मेरी क्लबवाला जाधव-मद्रास, श्रीमती जुरीना करीम भाई-बम्बई, श्रीमती रत्नाशास्त्री-वनस्थली विद्यापीठ, जयपुर,[३] श्रीमती नलिनीबाला देवी-लेखिका तथा कवियत्री - आसाम[४], श्रीमती

रत्नाम्मा इसाक सामाजिक कार्यकर्त्री-बंगलौर, श्रीमती शैलबाला दास सामाजिक कार्यकर्त्री-कटक,[1] कुमारी आरती साहा, तैराक-कलकत्ता, श्रीमती बीनादास-सामाजिक कार्यकर्त्री-कलकत्ता, श्रीमती सोफिया वाडिया-सामाजिक कार्यकर्त्री-बम्बई तथा श्रीमती धीरमती-मूर्तिकार-दिल्ली ।[2]

पद्मभूषण उपाधि की प्राप्तकर्त्री महिलाएं हैं श्रीमती एम०एस०सुब्बालक्ष्मी गायिका-मद्रास, श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय-सामाजिक तथा सार्वजनिक कार्यकर्त्री, श्रीमती रामेश्वरी नेहरू-सामाजिक तथा सार्वजनिक कार्यकर्त्री,[3] श्रीमती रुक्मिणी देवी अरुंडेल, श्रीमती पुष्पावती जनार्दन राय मेहता, मुथुलक्ष्मी रेड्डी, श्रीमती महादेवी वर्मा,[4] श्रीमती टी०बाल सरस्वती-भारत नाट्यम, श्रीमती धनवन्थी रमा राव-सामाजिक कार्यकर्त्री-बम्बई, श्रीमती हन्सा मनुभाई मेहता-सामाजिक कार्यकर्त्री-बड़ौदा विश्वविद्यालय की उपकुलपति,[5] श्रीमती लक्ष्मीमेनन, श्रीमती मन्वल वेन्कट सुब्बाराव-मद्रास सेवासदन की संस्थापक ।[6]

पद्मविभूषण की उपाधि श्रीमती जानकीबाई बजाज[7] को १९५६ में प्राप्त हुई थी । इसी प्रकार संगीत नाटक एकेडमी एवार्ड की प्राप्तकर्त्री महिलाएं हैं श्रीमती बाल सरस्वती-भारत नाट्यम,[8] शिरमा देवी, एस० सुब्रामन शास्त्री-वीणा[9] मदुराई मनी अय्यर गायन तथा इन्दी विश्वास फिल्म अभिनय ।[10] संगीत नाटक

---

1. India - A Reference Annual 1959, p. 511.
2. " " " 1960, p. 503-504.
3. " " " 1955, p. 632.
4. " " " 1956, p. 530.
5. " " " 1959, p. 510.
6. " " " 1957, p. 481.
7. " " " 1956, p. 529.
8. " " " 1955, p. 665.
9. " " " 1960, p. 537.
10. " " " 1960, p. 537.

एकैडेमी की इस वर्ष की पुरस्कार विजेता महिलाएं हैं श्रीमती एम०एल० वासन्था, कुमारी—कर्नाटिक गायन, श्रीमती शान्ता राव-भारत नाट्यम्, श्रीमती मनुकुलम विष्णु नम्बूदरी कथ्थकली, श्रीमती मृणालिनी साराभाई-रचनात्मक तथा प्रयोगात्मक नृत्य तथा श्रीमती सरजूबाला देवी-अभिनय ।[1]

विभिन्न व्यवसायों में महिलाएं

महिलाओं का आर्थिक दायरा जो किसी समय मात्र घर की चारदीवारी तक ही सीमित था, आज इतना व्यापक है कि शायद ही कोई व्यवसाय उनसे अछूता हो । इस क्षेत्र में महिलाओं ने सर्वप्रथम अध्यापिका के रूप में लगभग १०० वर्ष पूर्व प्रवेश किया था । विभिन्न नगरों में अस्पतालों तथा स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना के परिणामस्वरूप महिलाएं चिकित्सक, नर्स तथा स्वास्थ्य निरीक्षिका के रूप में आने लगीं । कृषि, इंजीनियरिंग, कानून तथा इसी प्रकार के अन्य व्यवसायों के द्वार भी महिलाओं के लिए खुले हैं । इस अवसर का भी महिलाओं ने भरपूर लाभ उठाया है । भारतीय संविधान की घोषणा के अनुसार कोई भी नागरिक मात्र लिंग भेद के आधार पर राज्य के अन्तर्गत किसी नौकरी से वंचित नहीं किया जायेगा । इस घोषणा के अनुरूप आज भारत सरकार की सभी नौकरियाँ - शैक्षिक, राजनीतिक प्रशासकीय, वैदेशिक तथा मेडिकल आदि महिलाओं के लिए भी उतनी ही खुली हैं, जितनी पुरुषों के लिए।अतः यदि महिलाओं ने इस क्षेत्र में कदम आगे बढ़ाया है, तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं है ।

यह नहीं, निम्नवर्गीय नौकरियों में महिलाओं को शोषण से सुरक्षित रखा गया है । १९४८ में पारित "न्यूनतम वेतन अधिनियम" ने महिलाओं के लिए पृथक वेतनक्रम निर्धारित नहीं किया था । "अंतर्राष्ट्रीय लेबर संगठन" द्वारा प्रतिपादित "समान मूल्य" का सिद्धान्त भारत सरकार ने स्वीकार किया है । केन्द्रीय वेतन आयोग के सुझावों की आधारशिला यही सिद्धान्त है तथा संविधान के नीति-निर्देशक तत्वों में इसे स्थान देकर इसके महत्व को बढ़ा दिया है ।

---

1. N.I. Patrika dated March 23, 1971, p. 8.

भारतीय मध्यमवर्गीय महिलाओं की आर्थिक स्थिति में जो यह परिवर्तन आया है वह स्वतंत्रोत्तर भारत की एक अपूर्व विशेषता है । मजदूरवर्गीय महिलाएं बहुत पहले से खेतों, कारखानों तथा घरेलू नौकरानियों के रूप में कार्य करती आ रही थीं, परन्तु मध्यमवर्गीय परिवारों की महिलाओं की आर्थिक स्थिति स्वतंत्रता की ओर आज का यह कदम निश्चय ही सराहनीय तथा स्वतंत्र भारत की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि कहा जा सकता है ।

व्यवसाय के क्षेत्र में सर्वप्रथम महिलाओं ने शिक्षिका के रूप में काम करना प्रारंभ किया था । १८७७ में भारतीय महिलाओं को इस क्षेत्र में कार्य करने का प्रथम अवसर प्राप्त हुआ था । इस तरह इस व्यवसाय को महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता की नींव डालने वाला कहा जा सकता है । बेथून कालेज भारत में प्रथम विद्यालय था जिसने महिलाओं को अध्यापिका के पद पर नियुक्त किया था । कु० कुमुदिनी दास प्रथम भारतीय महिला प्रधानाचार्या थीं जिन्हें इस कालेज का प्रधानाचार्य होने का श्रेय प्राप्त है ।[1] इस क्षेत्र की अन्य अग्रगामी महिलाएं हैं -- पंडिता रमा बाई, रमाबाई रानाडे, लेडी बोस, श्रीमती पी०के० रे, सरला देवी चौधरानी, कु० कन्डूस्टर, कु० कारपेन्टर, श्रीमती कमानी अम्मा, श्रीमती पार्वती चन्द्रशेखर, लेडी हरनाम सिंह, श्रीमती कमला सत्यनाथन्, कु० रीगिना गुहा, कु० कौर्नीलिया सोराब जी, मिथान टाटा लाम, डा० मुथुलक्ष्मी रेड्डी, सुब्बालक्ष्मी तथा श्रीमती सुन्दरी हेन्डबैन । पंडिता रमाबाई प्रथम भौतिक महिला थीं जो ईसाई मत में दीक्षित हुई थीं । कमला सत्यनाथन् प्रथम भारतीय महिला संपादिका थीं । रीगिनी गुहा ने १९२२ में कानून का द्वार भी महिलाओं के लिए खोल दिया था । कु० कौर्नीलिया सोराब जी प्रथम भारतीय महिला थीं जिन्होंने इस नवीन क्षेत्र में प्रवेश किया था । मिथान टाटा लाम भारत की प्रथम महिला बैरिस्टर थीं । मुथुलक्ष्मी रेड्डी को वह प्रथम महिला होने का श्रेय प्राप्त है जो किसी राज्य (मद्रास) की व्यवस्थापिका की सदस्य चुनी गई थीं । इसी प्रकार बंगाल की चंद्रमुखी बोस प्रथम भारतीय महिला थीं जिन्होंने मास्टर आफ आर्ट्स की उपाधि प्राप्त की थी । बाद में चन्द्रमुखी बोस को प्रथम

---

1. Baig, Tara Ali - Women of India (Ed.), p. 247.

भारतीय महिला विद्यालय निरीक्षिका होने का श्रेय मिला ।[1] आज महिलाओं को विश्वविद्यालय का उपकुलपति होने का श्रेय भी प्राप्त है । श्रीमती हन्सा मेहता बड़ौदा विश्वविद्यालय तथा श्रीमती शारदा मेहता भारतीय महिला विश्वविद्यालय पूना की उपकुलपति रही हैं । इसके अतिरिक्त श्रीमती एस० पार्थसारथी मद्रास के एक पुरुष कालेज की प्रधानाचार्या हैं ।

अध्यापन कार्य में रत महिलाओं की संख्या बढ़ती ही जा रही है । मार्च १९५० में प्राइमरी स्कूलों में अध्यापकों की संख्या ५१२,००० थी जिसमें १५.४ प्रतिशत महिलाएं थीं । इसीप्रकार १९४९-५० में माध्यमिक शिक्षा स्तर पर ३१००० महिलाएं कार्यरत थीं (सम्पूर्ण संख्या का १६ प्रतिशत भाग) । उसी वर्ष विश्वविद्यालय स्तर पर महिला अध्यापिकाओं की संख्या थी १,७०० (सम्पूर्ण संख्या का ८.९ प्रतिशत भाग) तथा उसी वर्ष अन्य प्रकार के व्यवसायिक टैक्निकल संस्थाओं में उनकी संख्या थी २६,१८ (सम्पूर्ण योग का १४ प्रतिशत)[2] महिला अध्यापिकाओं की संख्या में निरन्तर वृद्धि परिशिष्ट नं० १ से प्रदर्शित होती है । मैडिकल व्यवसाय में महिलाओं की संख्या अपेक्षाकृत न्यून है । इसको बढ़ावा देने के लिए कुछ मैडिकल कालेजों में उनके लिए स्थान सुरक्षित कर दिए गए हैं । आज ७७,००० से ऊपर महिलाएं मैडिकल तथा स्वास्थ्य सेवाओं में कार्यरत हैं ।[3] भारत की प्रथम महिला जिसने विदेश (लंदन) से एम०डी० की उपाधि प्राप्त की थी डा० दोस्सी-बाई दादा भाय थीं । उन्होंने बम्बई में एक मातृत्व चिकित्सालय स्थापित किया है । भारत में एम०डी० की उपाधि प्राप्त करने वाली प्रथम महिला थीं वर्जिनिया मेरी मित्रा । भारतीय सैनिक शक्ति मैडिकल सेवाओं में भी महिलाएं चिकित्सक के रुप में कार्य कर रही हैं । मेजर डी' सूजा एम०आर०सी०पी०, लंदन तथा नर्सिंग दीम में ब्रि०डी० माइकेन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । इसके अतिरिक्त कर्नल,मैजर कैप्टेन तथा लेफ्टीनेंट रैंक में आज अनेक महिलाएं कार्यरत हैं ।

---

1. Ibid.
2. Ibid, p. 248.
3. Ibid, p. 249.

भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों के कार्यालयों में विभिन्न पदों पर कार्यरत महिलाओं की संख्या इतनी अधिक है तथा प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है, कि उपयुक्त आंकड़ों का देना असंभव सा है । सेक्रेटरी, स्टेनोग्राफर, रिसेप्शनिस्ट, टाइपिस्ट तथा टेलीफोन संचालिका के रूप में मध्यवर्गीय महिलाएं प्रत्येक कार्यालय में भारी संख्या में देखी जा सकती हैं । व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक का नाम देना संभव नहीं है । इस क्षेत्र में उच्च पदों पर आसीन कुछ महिलाएं इस प्रकार हैं :-कु०वी० कृष्णास्वामी लंदन के "इंडियन टूरिस्ट आफिस" की निदेशिका रही हैं । श्रीमीला परज्योति ने १९५५ में " अखिल भारतीय पर्यटक" का प्रबन्ध कार्य किया था । श्रीमती शुक्ला ने १९५२ में दिल्ली तथा आगरा में " स्कोर्ट लिमिटेड" की स्थापना की जिसका कार्य आगरा तथा दिल्ली में पर्यटक सेवाएं करना था ।[1]

इंजीनियरिंग के क्षेत्र में भी कुछ व्यक्तिगत महिलाओं के नाम उल्लेखनीय हैं । भवन-निर्माण क्षेत्र में श्रीमती बक्शी राष्ट्रीय भवन निर्माण संगठन की उपनिदेशिका रही हैं । पंजाब की नई राजधानी चंडीगढ़ के निर्माण कार्य में श्रीमती चौधरी सहयोगी सलाहकार रही हैं । भारत की प्रथम महिला मैकेनिकल इंजीनियर का श्रेय इला मजूमदार को प्राप्त है । १९५४ में देहरादून की आर्डिनेन्स फैक्टरी में वह सहायक फोरमैन रहीं थीं । बाद में केन्द्रीय लोक सेवा आयोग द्वारा उन्हें पाली टैक्नीक में प्रवक्ता नियुक्त किया गया था । श्रीमती शीला राय तथा श्रीमती मिस्त्री अन्य महिला आर्किटेक्ट हैं । श्रीमती उषा राम सैनानी भारत में प्रथमतथा संभवतः एकमात्र महिला हाइड्रोलिक इंजीनियर हैं । भारत सरकार के सिंचाई तथा शक्ति मंत्रालय द्वारा उन्हें संयुक्त राज्य अमेरिका में बाढ़ नियंत्रण उपायों का अध्ययन करने भेजा गया था ।[2]

श्रीमती सुमतिबेन मोरारजी सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी में निदेशिका रही हैं । भारतीय जहाज स्वामियों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था "इंडियन नेशनल स्टीमशिप ओनर एसोसियेशन" का अध्यक्ष होने का श्रेय भी श्रीमती सुमति बेन

---

1. Ibid, p. 251.

2. Ibid.

की प्राप्त है । भारत में प्रथम बार एक महिला इस पद पर चुनी जा सकी हैं ।[१]
इसके अतिरिक्त श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख योजनाआयोग की प्रथम महिला सदस्या थीं । उनके अतिरिक्त पारिजातम् नायडू एक अन्य महिला इसकी " असिस्टेंट चीफ सोशल वैलफेयर आफिसर" रही हैं ।

१९५१ के सेन्सस रिपोर्ट के अनुसार ५ मिलियन महिलाएं भारत में आत्म निर्भर हैं, जिनमें से ८००,००० उत्पादन तथा आधामिलियन वाणिज्य में हैं ।[२] अब आँकड़े अब निश्चय ही और भी अधिक बढ़ चुके हैं । इस प्रगति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वर्ष १९४७ में केन्द्रीय सरकार की सेवाओं में महिला कर्मचारियों की संख्या कुछ सौ में ही थी, अब बढ़ कर २०,००० से भी अधिक हो चुकी है । राजकीय सेवाओं में भी यही स्थिति है ।[३]

आज व्यापारिक क्षेत्र में भी महिलाएं कार्यरत हैं, और उनकी संख्या न्यून नहीं कही जा सकती । एक बड़ी संख्या में महिलाएं अपनी पृथक दुकानें, कैन्टीन, शोरुम आदि स्थापित किए हैं । सरकारी तथा व्यक्तिगत दुकानों में महिला संचालिकाओं की कमी नहीं है । पुपुल जायाकर, वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालय के अन्तर्गत निर्मित "आल इंडिया व हैंडलूम बोर्ड" की निदेशिका रही हैं । इसके साथ ही उन्हें राष्ट्रीय लघु उद्योग कारपोरेशन तथा बम्बई औद्योगिक कोआ-परेशन एसोसियेशन की निर्देशिका का पद भी प्राप्त है । साथ ही वह" निर्यात बाजार" की सलाहकार भी रही हैं । पिछले वर्षों में उन्होंने विदेश में हैंडलूम प्रदर्शिनी आयोजित की थी ।[४] हैंडलूम बोर्ड की अन्य सहयोगी महिलाएं हैं सीमा रै तथा नलिनी धीमान ।

---

1. Ibid, p. 252.
2. Census of India 1951.
3. Trends in employment of women By Gulzarilal Nanda in Kasturba Memorial - A journal published by Kasturba Gandhi Memorial Trust, Indore (1962), p. 98.
4. Baig, Tara Ali - Women of India (Ed.) p. 255.

कुटीर उद्योगों के क्षेत्र में श्रीमती बी०के० नेहरू तथा कमला देवी चट्टोपाध्याय उत्साही कार्यकर्ता हैं। श्रीमती चट्टोपाध्याय भारतीय सहकारी संघ की चेयरमैन रही हैं। १९५२ में श्रीमती प्रेम बैरी ने कुटीर उद्योग इम्पोरियम दिल्ली में निर्यात विभाग स्थापित किया था। दिल्ली क्लाथ मिल्स की प्रमुख डिज़ाइनकार हैं नन्दिता कृपलानी। कु० कैसर अहमद चाम्बी हाउस मैनूफैक्चरिंग कम्पनी की "परसोनैल आफिसर" रही हैं। कु० के०एम० प्लेट भी टाटा आयरन तथा स्टील कम्पनी की सैक्रेटरी थीं। टाटा फार्म में उच्च पदों पर नियुक्त अन्य महिलाएं हैं गुल काउस्जी-टाटा सन्स की कानूनी सहायिका, पूरू वैद्युर - जे०एन० टाटा एजुकेशन एन्डाउमेन्ट फंड की निर्देशिका, सूना पत्लीवाला -टाटा आयल मिल्स की मुख्य प्रचार कर्मचारी।[1]

महिलाएं पत्रकार के रूप में भी कार्य कर रही हैं, यद्यपि इस क्षेत्र में उनकी संख्या सीमित है। भारत की पहली महिला पत्रकार थीं पद्मिनी सेन गुप्ता।[2] १९३२ में उन्होंने "हिन्दू" पत्र के कार्यालय में प्रवेश किया था। इला सेन भी उनकी समकालीन पत्रकार थीं। मीलिका देवी, कुसुम नैयर आदि अन्य महिला संपादिकाएं हैं। आज अनेक जनरल व पत्रिकाएं मात्र महिलाओं के लिए ही प्रकाशित होती हैं। इन पत्रिकाओं के कार्यालय महिलाओं द्वारा संचालित हो रहे हैं, अथवा उनमें भारी संख्या में महिलाएं काम करती रही हैं।

सूचना-प्रसार, रेडियो, एयर सेवाओं, टेलीविजन में कार्यरत महिलाओं की गिनती नहीं की जा सकती।

निम्नवर्गीय नौकरियों में मजदूर वर्ग की महिलाएं बहुत पहले से काम करती आ रही हैं। गांवों में तथा नगरों के निम्नवर्गीय परिवारों में महिलाएं आर्थिक जीवन का एक भाग रही हैं। इनमें प्रमुख क्षेत्र है कृषि, कारखानों, मिलों तथा फार्मों में मजदूरी करना तथा घरेलू नौकर के रूप में कार्य करना।

जहां तक कृषि पर जीविका आधारित रहने का प्रश्न है, इसमें महिला मजदूरों का प्रतिशत विभिन्न राज्यों में विभिन्न रहा है, उदाहरणार्थ १९५२ में

---

1. Ibid, pp. 255-56.

2. Ibid, p. 253.

यह प्रतिशत इस प्रकार था :—

मध्यप्रदेश - ३४·६ प्रतिशत, मद्रास ३०·७ प्रतिशत, हैदराबाद - ३०प्रति०, पंजाब- १० प्रतिशत, उत्तरप्रदेश १० प्रतिशत, दिल्ली, मनीपुर तथा बिलासपुर में यह प्रतिशत २·३३ तथा ८·१८ के आस पास था ।[1]

भारत की सैन्सस रिपोर्ट के अनुसार देश की जनसंख्या को जीविका के आधार पर इस प्रकार रखा जा सकता है :—[2]

	(जनसंख्या मिलियन में)		
	पुरुष	स्त्री	योग
१. कृषि			
(क) पूर्ण तथा मुख्य रूप से स्वामित्व तथा उनके अधीन —	८५·१	८२·२	१६७·३
(ख) स्वामित्वहीन खेतिहर तथा उनके अधीन	१६·२	१५·४	३१·६
(ग) खेतिहर मजदूर और उनके अधीन	२२·४	२२·४	४४·८
(घ) भूमि को न जोतने वाले स्वामी, भू किराया लेने वाले तथा उनके अधीन	२,४	२·६	५·३
२. कृषि के अतिरिक्त			
(क) खेती के अतिरिक्त उत्पादन	२०·०	१७·६	३७·६
(ख) वाणिज्य	११·२	१०·१	२१·३
(ग) वाहन	३·१	२,५	५·६
(घ) अन्य सेवाएं तथा विविध स्रोत	२२·७	२०·३	४३·०

फैक्टरियों में कार्यरत मजदूर महिलाओं की संख्या १९५० में २८०,९७०, थी, अर्थात् सम्पूर्ण मजदूरों (संख्या २,४७९,३७९) का ११·३३ प्रतिशत ।

---

1. Women of India, p. 241.

2. Census of India, 1951.

निम्नलिखित लघुतालिका १९५० में उन व्यवसायों में महिला मजदूरों की संख्या बताती है जिनमें उनकी संख्या अपेक्षाकृत अधिक रही थी :-

खाद्य उद्योग	३९७,५५६ महिलाएं
कपड़ा उद्योग	१०२,०३३ ,,
काफी उद्योग	७०,११० ,,
खाद्य फैक्टरी	५८,०४८ ,,
कोयले की खानें	५७,३१० ,,
तम्बाकू फैक्टरी	४३,०३३ ,,
बुनाई-कताई	३५,०२९ ,,

मध्यप्रदेश, पश्चिमीबंगाल, उड़ीसा, केरल, मैसूर, बिहार तथा मद्रास जहाँ फैक्ट-रियाँ, मिलों तथा प्लाटों की अधिकता है महिला मजदूर भारी संख्या में हैं। मद्रास में महिला मजदूरों का प्रतिशत सबसे अधिक है अर्थात २५' ४८ प्रतिशत, तदुपरान्त उड़ीसा में २४' ११ प्रतिशत मजदूर महिलाएं कार्यरत हैं।[2]

यह उल्लेखनीय है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत ने इस वर्ग की महिलाओं के लिए अनेक अधिनियम पारित करके उन्हें शोषण से सुरक्षित रखा है। इनमें प्रमुख है १९४८ का "फैक्टरी अधिनियम"। इस अधिनियम के द्वारा महिलाओं से केवल ९ घंटे प्रतिदिन काम लिया जा सकता है तथा कार्य करने के घंटे सुबह ७ से शाम ६ बजे तक ही रखे जा सकते हैं। १९५१ का "माइन्स अधिनियम" महिलाओं को भूमि के नीचे काम पर लगाने की अनुमति नहीं देता है। इसी प्रकार एक अन्य अधिनियम द्वारा मजदूर महिलाओं के बोझा ढोने पर प्रतिबन्ध है। वयस्क महिलाओं से ६५ पौंड से ज्यादा बोझा नहीं उठवाया जा सकता। इसके अतिरिक्त मातृत्व अवकाश का विशेषाधिकार तथा काम के समय अवकाश के सम्बन्ध में भी इस क्षेत्र में पारित अधिनियमों में उपबन्ध रखे गए हैं। "अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन" के आधारभूत सिद्धान्तों को भारत सरकार भी स्वीकार करती है।

---

1. Baig, Tara Ali - Women of India (Ed.), p. 242.

2. Ibid, p. 243.

इस प्रकार आज भारतीय महिलाओं ने अपनी परम्परागत बन्धनों को तोड़कर नवीन युग में प्रवेश किया है । स्वतंत्र भारत के नागरिक के रूप में महिलाओं ने प्रजातांत्रिक समाज का पूर्णलाभ उठाया है, यद्यपि आज भी वह प्रगति की उस सीमा तक नहीं पहुंच सकी हैं, जितनी की आशा की जाती थी अथवा उन्हें पहुंचना चाहिए था । विभिन्न सामाजिक अधिनियमों के पारित होते हुए भी सामान्य महिलाओं की स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती । इसका कारण है भारत में अभी भी महिलाओं के प्रति अनुदारवादी व्यवहार प्रचलित है । जब तक जन साधारण में जागृति नहीं आयेगी, सामाजिक अधिनियम व्यर्थ होंगे, और इस जागृति के लिये सबसे प्रथम तथा प्रमुख तत्व है शिक्षा का प्रसार ।

इसके अतिरिक्त जैसा कि राजकुमारी अमृतकौर लिखती हैं कि भारत की शिक्षित नारी सामाजिक सुधार के लिए राजकीय कानूनों पर अधिक निर्भर कर रही हैं, वे उन व्यवसायों में जहां स्त्री तथा पुरुष समान रूप से प्रत्याशी हैं अपनी योग्यता पर बल नहीं दे रही हैं, तथा अशिक्षितों के मध्य उत्साही कार्य का भी अभाव है ।[१]

श्रीमती लक्ष्मी मेनन के शब्दों में यह कहना अनुचित न होगा कि" आज भारतीय महिलाएं शीशे के मकानों में रह रही हैं, उनके प्रत्येक कार्य आलोचनात्मक दृष्टि से देखे जा रहे हैं तथा उनकी उपलब्धियों को उच्चस्तरों पर आंका जा रहा है । अत: उन्हें अपना प्रत्येक कदम समझ बूझ कर रखना होगा ।"[२]

यदि प्रगति की दिशा में उचित सहयोग तथा निर्देशन मिलता रहा तो निश्चय ही भारतीय नारी का भविष्य उज्ज्वल होगा ।

---

1. Status of Women in India today By Amrit Kaur in Kasturba Memorial, p. 35.
2. Baig, Tara Ali - Women of India (Ed.), p. 64.

APPENDIX NO. 1

Women Teachers (1950 - 65)[1]

Item	1950-51	1955-56	1960-61	1965-66
1. Women teachers in lower primary schools. Total No. of Women teachers.	82,281 (18)	117,067 (20)	126,788 (21)	200,000 (24)
2. Women teachers in higher primary schools. Total No. of women teachers.	12,887 (18)	23,844 (19)	83,532 (32)	140,000 (37)
3. Women teachers in secondary schools. Total No. of women teachers.	19,982 (19)	35,085 (23)	62,347 (27)	95,000 (28)
4. Women teachers in schools for vocational education. Total No. of women teachers.	2,131 (23)	2,966 (22)	3,948 (17)	6,200 (17)
5. Women teachers in institutions for higher education (arts and science). Total No. of women teachers.	1,716 (10)	3,136 (13)	5,645 (16)	8,512 (17)
6. Women teachers in colleges for professional education. Total No. of women teachers.	334 (7)	666 (8)	1,865 (12)	2,750 (11)

N.B. : Figures in parentheses show the number of women teachers for every 100 men teachers

APPENDIX NO. 2

Students on Rolls in Recognised Institutions

By Stage (1951-52)[1]

	Boys	Girls	Total
Collegiate - Education :			
Intermediate	2,19,000	28,000	2,47,000
B.A., B.Sc.	85,000	13,000	98,000
M.A., M.Sc.	14,000	2,000	16,000
Research	1,000	-	1,000
Professional and technical education	1,07,000	9,000	1,16,000
Total	4,26,000	52,000	4,78,000
School - Education :			
Pre-primary	19,000	14,000	33,000
Primary	1,37,74,000	54,66,000	1,92,40,00
Secondary	43,78,000	8,91,000	52,69,00
Professional and technical education	12,15,000	2,63,000	14,78,00
Total	1,93,86,000	66,34,000	2,60,20,00
Grand Total	1,98,12,000	66,86,000	2,64,98,00

---

1. India - An Reference Annual 1954 (Provisional Figures), p. 276.

APPENDIX NO. 3

LITERACY IN INDIA[1]

(1951 census)

State/Union Territory	Literates			Percentage of Literacy		
	Persons	Males	Females	Persons	Males	Females
India	59261114*	45610431*	13650683*	16.61*	24.88*	7.87*
Andhra Pradesh	4106060	3099803	1006257	13.14	19.69	6.48
Assam ...	1633753	1303087	330666	18.07	27.08	7.81
Bihar ...	4721411	3992141	729270	12.17	20.48	3.78
Bombay ...	10448350	7870186	2578164	21.65	31.71	11.00
Kerala ...	5518908	3357175	2161733	40.73	50.24	31.48
Madhya Pradesh	2563786	2151338	412448	9.83	16.23	3.22
Madras ...	6255018	4740242	1514776	20.87	31.75	10.07
Mysore ...	3742283	2867486	874797	19.29	29.06	9.17
Orissa ...	2313431	1978705	334726	15.80	27.32	4.52
Punjab ...	2457496	1825953	631543	15.23	21.03	8.47
Rajasthan ..	1425416	1197209	228207	8.93	14.40	2.98
Uttar Pradesh	6825072	5753580	1071492	10.80	17.38	3.56
West Bengal	6309159	4824134	1485025	23.99	34.20	12.18
Andaman & Nicobar Islands	7980	6513	1467	25.77	34.18	12.31
Delhi ...	669073	424118	244955	38.36	42.99	32.34
Himachal Pradesh	85509	72972	12537	7.71	12.59	2.37
Laccadive, Minicoy & Amindivi Islands	3204	2635	569	15.23	25.59	5.30
Manipur ...	65895	58932	6963	11.41	20.77	2.37
Tripura ...	99197	74975	24222	15.52	22.34	7.98

1. India - A Reference Annual 1960, page 113.

* Includes figures for Sikkim.

APPENDIX NO. 4

LITERACY IN INDIA[1]

State/Union Territory	Number of Persons Enumerated			Percentage of Literac[y]		
	Persons	Males	Females	Persons	Males	Females
INDIA ...	77,933	40,435	37,498	40.7	51.7	28.8
Andhra Pradesh	5,818	3,008	2,810	36.6	47.2	25.2
Assam ...	1,491	740	751	49.8	60.3	39.5
Bihar ...	8,285	4,222	4,063	31.7	43.5	19.5
Bombay ...	5,632	2,943	2,689	42.8	55.4	29.0
(Bombay City)	(331)	(183)	(148)	(29.0)	(46.4)	(7.4)
Kerala ...	5,234	2,531	2,703	66.1	72.7	60.0
Madhya Pradesh	2,130	1,149	981	22.3	35.5	6.8
Madras ...	8,366	4,196	4,170	48.4	62.0	34.7
(Madras City)	(553)	(286)	(267)	(66.7)	(74.1)	(58.8)
Mysore ...	6,552	3,336	3,216	43.5	53.7	32.9
Orissa ...	6,382	3,347	3,035	46.8	59.7	32.5
Punjab ...	3,514	1,904	1,610	34.9	44.3	23.7
Rajasthan ...	4,707	2,495	2,212	31.8	43.2	18.9
Uttar Pradesh	3,457	1,855	1,602	31.8	42.2	19.5
West Bengal ..	5,398	2,847	2,551	39.5	48.6	29.3
(Calcutta City)	(455)	(257)	(198)	(68.8)	(79.8)	(54.5)
Delhi ...	6,500	3,461	3,039	37.8	51.1	22.7
Himachal Pradesh	4,467	2,401	2,066	35.8	45.6	24.2

1. India - An Reference Annual, 1960, page 530.
Based on results of the sorting and compilation of the first pre-tes[t] of the first draft of the 1961 enumeration schedule.

APPENDIX NO. 6

Memorial Presented to His Excellency The Viceroy

To,

His Excellency The Earl of Willingdon
G.C.S.I., G.C.M.C., G.C.I.E., G.B.E.,
Viceroy & Governor-General of India.

Your Excellency,

We are most grateful for your kindness in granting us and interview and we interpret it as a sign that you appreciate the importance of our object.

We feel sure that one of the most remarkable changes that you must have realised on your return to India is the strength and growth of the Women's movement which has been well said to hold the key of progress and the results of which are bound to be incalculably great. We believe this to be without parallel in any time or country.

It was because of the growth of this movement that the appointment of two women to the last session of the Round Table Conference was, though unprecedented in itself, still totally inadequate to represent the situation; and it is on this that we base our claim that more women should be invitedto take part in the deliberation of the next session.

India's women, as Your Excellency is doubtless aware, have become more and more politically conscious, while they have absorbed the culture of all ages adapting it with innate fellicity to a truer Indian development than perhaps has been the case on the part of the men.

and that is the primary reason of our deputation to-day.

We desire at the outset to make it clear that nothing is further from our intention than to criticise the choice made of the two ladies who so ably served at the last session of the Round Table Conference. At the same time, however, we feel strongly that in order to carry the opinion of Indian women with them their, representatives should include women chosen by themselves. Nor do we desire to disparage the representative character of other bodies of women that may approach Your Excellency's Government on this subject. We merely desire to bring to Your Excellency's notice that the All India Women's Conference has been in existence for five years and so to assure you that we can lay claim to bring the most representative body of women in the country. We have organisations in all the capital cities and in most of the important towns of every Province as well as in a number of Indian States. And we belong to no "party" of any kind, our membership is drawn from every race, class and creed and it has been proved by experience that the common ideals of women have produced a remarkable degree of harmony in every sphere of work that we have undertaken. Our conference has inaugurated social and educational work in very many districts and has trained women in the habit, year by year, of evolving a considered and decisive opinion out of a mass of resolutions sent in form of every part of India.

So the valuable work of its yearly conferences, of its local initiatives, it has added the formation of All India Women's Education Fund Association which is concerned with the foundation of an All-India College for women based on a new appreciation of Indian women's development.

Our conference feels very strongly that in the new constitution which is now on the anvil the future position and fundamental rights of Indian womanhood need very special attention for we cannot regard any constitution as perfect which will not give to women that freedom and equality of status without which our country's progress must inevitably be greatly retarded.

Claiming, as we do, to be an All-India organisation in the fullest sense of the term and standing, as we do, on principle, for election as the best method of representation we sincerely trust that our request that women should be further represented at the Round Table Conference, which is shortly to shape the destinies of our beloved land will meet with Your Excellency's approval.

There is another point which we desire to make. It will be the duty of the members of the Round Table Conference not merely to assist His Majesty's Government to arrive at decisions in England but to commend those decisions to the public in India. It is clear that women chosen by a representative body of their own sex will be in a much stronger position to carry out this important task than persons simply nominated by Government. Your Excellency can rely on us that we will lend the most sympathetic consideration to the decision in which our representatives have had a share and will thus be able to influence a very powerful body of educated opinion.

We realise that it may not be possible for Your Excellency to recommend more than a very limited number of names, but we do trust that at least three ladies from amongst our number will be sent to England. Should you be pleased to consider our demand

favourably, we shall gladly submit a panel of names which Your Excellency can make a selection.

We rely on Your avowed sympathy with India and Indian aspirations and we feel that the recognition on Your Excellency's part of the need for adequate representation of Indian womanhood will be a happy augury for the success of the Round Table Conference, which we all so ardently desire.

We have the honour to be,
Your Excellency's
Obedient Servants

Quoted from 'All India Women's Conference' sixth session - Madras, page 32.

APPENDIX NO. 6

Letter to the Premier from Mrs. Naidu and Begum Shah Nawaz -

St. James Palace,
S.W.I.
16th November, 1931.

The Prime Minister,

Chairman of the Minorities Committee,

Downing Street, S.W.

Dear Prime Minister,

We herewith beg to submit the official Memorandum jointly issued on the status of Indian women in the proposed new constitution by the All India Women's Conference on Education and Social Reform, the women's Indian Association and the Central Committee of the National Council of women in India. These three primier organizations include the great majority of progressive and influential women of all communities, creeds and ranks, who are interested in social, education, civic or political activities, and are accredited leaders of organised public opinion amongst women.

This manifesto, signed by the principal office bearers of these important bodies, may be regarded as an authoritative statement of representative opinion, duly considered and widely endorsed, on the case and claim of Indian women.

We have been entrusted with the task of presenting to the Round Table Conference their demand for a complete and immediate recognition of their equal political status, in theory and practic by the grant of full adult franchise or an effective and acceptabl alternative, based on the conception of adult suffrage.

We are further enjoined to resist any plea that may be advanced by small individual groups of people, either in India or

in this country, for any kind of temporary concessions or adventitious methods of securing the adequate representation of women in the Legislatures in the shape of reservation of seats, nomination, co-option, whether by status, convention or at the discretion of the provincial and central Governments. To seek any form of preferential treatment would be to violate the integrity of the Universal demand of Indian women for absolute equality of political status.

We are confident that no untoward difficulties will interven in the way of women of the right equality, capacity, political equipment and record of public service in seeking the suffrages of the nation to be returned as its representatives in the various Legislatures of the country.

We asked that there should be no sex discrimination either against or in favour of women under the new constitution.

Will you be so good as to treat our covering letter as part of the official document submitted to you on behalf of our organizations.

Yours Sincerely

(Sd.) Sarojini Naidu

(Sd.) J.A. Shah Nawaz

---

quoted from 'All India Women's Conference' sixth session - Madras, December 28, 1931 to January 1932, page 31.

APPENDIX NO. 7

His Excellency the Viceroy's reply to the deputation of 'The All-India Women's Conference'.

Ladies,

May I, in the first place, assure you of the very real pleasure that it affords me to receive a deputation of the All India Women's Conference this morning when I first received your request to present an address to me, I asked to see the articles of your constitution, from which I discovered that you are a strictly non-political body working "to promote in India the education of the both sexes at all stages," and "to deal with all questions affecting the welfare of women and children." My first instinct, therefore, was to suggest to my wife that she alone should receive your address, but, after more mature consideration, I thought it would be a very pleasant change, may I say almost a relaxation, for the Viceroy to discuss with you charming ladies matters of a strictly non-political character and that for a few moments I should be allowed to forget the existence of the Round Table Conference and other such matters with which I am kept so fully occupied. Imagine, therefore, the mixed feelings with which I listened to your address. You have driven me once more into a vortex of committees and constitutions rather than, as I had hoped into the smoother spheres of cribs and creches.

But now, to turn to more serious matters, it is perfectly true, as you have said, Madam President, that the extraordinary growth of women's Movement in India during the few years my wife and I have been away, from you has been a source of great surpris and also pleasure to us both, for we feel that the increasing influence of women in the public affairs of India can not but hav

a beneficial effect upon the country and so you may rest assured that we both will do what we can to support and assist the women of India in their efforts to take a more active part in public life.

I was particularly glad to hear the appreciative remarks you made with regard to the splendid work which was done by the two ladies, who were delegates at the last session of the Round Table Conference. When I was recently in England, I heard nothing but praise for the able manner in which they had pleaded their cause, and I feel that the women of India can safely leave their case in the hands of Begum Shah Nawaz and Mrs. Subbarayan. I fully appreciate, however your desire for further representation, and when the question of additional delegates for the next session of the Round Table Conference comes up for discussion, I will bear in mind your request and shall be delighted to receive any names you may suggest. In any event I trust that I may count upon your suppo[rt] and assistance in implementing the decisions of the Conference, which I sincerely hope will prove a considerable stepping-stone towards the goal of Dominion Status for India.

May I thank you once again for your address today, and may I repeat that, so long as my wife and I arein India we shall do what we can to help the admirable aims and objects of All India Women's Conference.

Quoted from 'All India Women's Conference' Sixth Session, Madras.

APPENDIX NO. 8

Mrs. Sonawala's Statement before the Court on Conditions in the lock up.

I want to say something about the lock up in which we are kept for the last six days. I am in the lock up. I am given a very small room with a small "Chokdi" in it. There is no sort of privacy in it. The doors cannot be closed and the room is open on the road side. Policemen walk up and down in front of the room. It is impossible to take bath, answer calls of nature or even change clothes without being seen from outside. There is no facilit for taking bath. The room is not even fit for dogs and cattle. It is a great shame that you have to keep women in such places. There is no light also in the room. I am ready to go to Jail for six years..... Have you no sisters and mothers? How would you like them to be treated like this? I am bringing this matter to your notice not for my own sake but for the sake of many of my sisters who are bound to come after me. If you want to have experience of the lock up, you go and stay there for a day. If you cannot do it at least you can see it.

(Amrit Bazar Patrika, I November, 1930, p. 9)

APPENDIX NO. 9

Women In Employment

(From the Times of India Year Book 1957)

Industry	Total	Employers	Employees	Independent workers
Stock Raising ...	70178	1813	10743	57622
Plantation Industry	403971	1107	382605	20259
Forestry and Woodcutting	38043	357	5748	31938
Fishing ...	37936	1143	2919	33874
Mining and Quarrying	101903	426	82290	19187
Coal Mining ...	63063	114	61383	1566
Iron Ore Mining ...	2877	6	2789	82
Metal Mining (Except Iron Ore)	7247	23	4440	2784
Crude Petroleum & Natural Gas	200	13	50	137
Stone-quarrying, Clay and Sand Pits.	15718	198	5981	9539
Mica ...	6632	19	4896	1717
Salt, Saltpetre & Saline Substances	2742	26	883	1833
Vegetable Oil & Dairy Products	38452	1354	4782	32316
Sugar Industry ...	7417	200	2813	4404
Beverages ...	6257	351	1267	4639
Tobacco ...	67898	1610	23154	43134
Cotton Textiles ...	227994	4719	79968	143307
Wearing Apparel and Made up Textiles	51225	1592	6003	43630
Textile Industries Otherwise unclassified	162661	1142	82631	78888
Leather, Leather Products & Foot wear	36780	898	4143	31739

Contd.....

Processing and Manufacture-Metals,Chemicals & Products thereof	52465	1398	24028	27039
Manufacture of Metal Products, otherwise unclassified	27997	817	5143	22037
Iron and Steel (Basic Manufacture)	7479	71	6533	875
Non-Ferrous Metals (Basic Manufacture)	246	7	76	163
Transport Equipment	3720	108	2717	895
Electrical Machinery and Apparatus	773	8	535	230
Machinery (other than electric Machinery)	2291	24	1816	391
Basic Industrial Chemicals, Fertilizers- and Power Alcohol	1111	31	695	385
Medical and Pharmaceutical Preparations	715	17	481	217
Manufacturing Industries otherwise unclassified	22173	692	5198	16283
Products of Petroleum and Coal	745	13	247	485
Bricks, Tiles and other Structural Clay Products	29391	392	14207	14792
Cement, Pipes and other cement Products	2992	24	1901	1067
Non-Metallic Mineral Products	59991	1429	5258	53304
Rubber Products ...	508	23	306	179
Wood & Wood Products other than Furniture and Fixtures	102594	1765	9878	90951
Furniture and Fixtures	2494	159	478	1857
Paper and Paper Products	2075	55	1256	764
Printing and Allied Industries	2877	199	1614	1064
Construction & Utilities	269811	2072	114658	153081
Construction and Maintenance-Buildings	87395	1114	29700	56581

Construction and Maintenance- Roads, Bridges and Transport works	21105	240	9579	11286
Construction and Maintenance- Telegraph & Telephone Lines	558	2	316	240
Construction and Maintenance Operations- Irrigation and other Agricultural works	18167	83	10457	7622
Works and Services- Electrical Power & Gas Supply	1479	10	1243	226
Works & Services- Domestic and Industrial Water Supply	14861	293	5357	9211
Sanitary Works & Services (including Scavengers)	112611	228	53774	58609
Commerce ...	561975	30732	48228	482965
Retail Trades otherwise Unclassified	175383	10818	16517	148048
Retail Trades in Foodstuffs (including Beverages and Narcotics)	289616	12382	17405	259829
Retail Trade in fuel (including Petrol)	34855	1750	2922	30183
Retail Trade in Textile & Leather Goods	21595	2236	2928	16431
Wholesale Trade in Foodstuffs	11776	822	1387	9567
Wholesale Trade in Commodities other than Foodstuffs	11030	846	3498	6686
Real Estate ...	3438	438	290	2710
Insurance ...	1847	107	836	904
Money-lending, Banking and other Financial Business	12435	1333	2505	8597
Transport Storage & Communications	62964	3606	36557	22801
Transport and Communications (otherwise unclassified) and incidental services	2986	68	1738	1540

Transport by Road	33784	3026	12841	17917
Transport by water	5349	377	2959	2013
Transport by Air ...	295	11	263	21
Railway Transport ...	14459	96	13200	1163
Storage and Warehousing	938	28	771	139
Postal Services ...	2047	-	2043	4
Telegraph Services	416	-	415	1
Telephone Services	2623	-	2620	3
Wireless Services ...	67	-	67	-
Health, Education and Public Administration	272483	2608	234129	35746
Medical and other Health Services	79625	1383	50283	27959
Educational Services and Research	118491	1221	109634	7636
Police (other than village Watchmen)	4129	-	4129	-
Village Officers and Servants (including Village Watchmen)	5433	4	5278	151
Employees of Municipalities and Local Boards (not persons classifiable under any other division)	25839	-	25839	-
Employees of State Govts (not persons classifiable under any other division)	26340	-	26240	-
Employees of non-Indian Govts.	762	-	762	-
Services not elsewhere specified	1451528	13755	644870	792903
Services otherwise unclassified	786483	5941	271563	508879
Domestic Services ...	391075	906	324300	65869
Barbers and Beauty Shops	30401	607	3607	26187
Laundries and Laundry Services	125506	2807	14367	109052
Hotels, Restaurants & Eating Houses	33348	2820	8810	21727
Recreation S-ervices	32780	445	5027	27308
Legal and Business Services	8959	185	5596	3178
Arts. Letters & Journalism	1720	112	464	1144
	41256	652	11145	29459

APPENDIX NO. 10

Pattern of Voting by men and women in the last four General Elections

and

an estimate for the Fifth General Election

(The figures are in thousands)[1]

General Elections	Electorate		No. of Votes Polled		Percentage of Votes Polled		Difference
	Men	Women	Men	Women	Men	Women	
1952	94461	77286	51128	28132	55	37.1	17.9
1957	99968	89443	55924	35405	56	39.6	16.4
1962	113944	102428	70703	47764	62.1	46.1	15.5
1967	129569	119434	86460	68264	66.7	55.5	11.2
1971 Estimated :	145000	135000	101600	81000	69.7	60.0	9.7

---

1. N.I. Patrika, dated 19.2.1971.

APPENDIX NO. 11

Chronology of Countries and Years when voting Rights were granted to Women[1].

1893 ... New Zealand

1902 ... Australia

1906 ... Finland

1913 ... Norway

1915 ... Iceland, Denmark

1917 ... U.S.S.R., Byelorussian S.S.R., Netherlands, Ukrainian S.S.R.

1918 ... United Kingdom, Canada, Ireland, Luxembourg

1919 ... Austria, Czechoslovakia, Germany, Poland, the Saar.

1920 ... Hungary, the United States of America

1921 ... Sweden

1924 ... Mongolia

1929 ... Ecuador

1930 ... Union of South Africa

1931 ... Ceylon

1932 ... Thailand, Uruguay, Brzil

1934 ... Cuba, Turkey

1935 ... India, Burma

1937 ... Philippines

1942 ... Dominican Republic

1944 ... France

1945 ... Italy, Liberia, Portugal[2], Guatemala[3], Monaco

1946 ... Albania, El Salavador, Japan, Panama, Rumania, Yugoslavia

1947	...	Argentina, Bulgaria, China, Venejuela, Pakistan
1948	...	Israel, Korea, Belgium
1949	...	Costa Rica, Indonesia, Chile, Syria
1950	...	Malta[4]
1952	...	Bolivia, Greece, Lebanon
1953	...	Mexico
1954	...	Columbia
1955	...	Hondurus, Peru, Viet-nam
1956	...	Egypt

---

1. Taken from 'Women of India' By Tara Ali Baid (Ed.), p. 72.

2, 3 & 4. - Restricted vote.

BIBLIOGRAPHY

Primary Sources

(A) Official Publications

All-India Women's Conference, Cultural Section, Education of Women in Modern India, Aundh Publishing Trust, 1946.

All-India Women's Conference, Report, 1927.

All-India Women's Conference, 22nd Session, Bangalore, 1951.

Activities of the First Lok Sabha in brief, 1952-57.

Age of Consent Committee, Report, 1928-1929, Calcutta, Government of India, central publication branch, 1929.

August Struggle, Report. Prepared under the aegis of All-India Satyagraha Council, U.P. Branch (unpublished A.I.C.C. Library, New Delhi.

Bengal Regulations and Acts, Vol. II, 1806-34, London, 1854.

Bombay Educational Record, Vol. II, Bombay Educational Department, Vols. 1-30, 1861-94.

Bureau of Education, A review of education in India (1951-52). Submitted to the XVth International Conference on Public Education, Geneva, July 1952. Publication no. 118, Ministry of Education, New Delhi, 1952.

"Brief account of the national activities of Bibi Amar Kaur Ahluwalia." - a hand bill.

Central Advisory Board of Education, Education of Girls and Women in India, submitted to the XVth International Conference on Public Education, Geneva, July 1952, Delhi, Manager of publications, 1952.

Central Advisory Board of Education. Notes on Schemes for the Advancement of Female Education in India since 1900, Calcutta, Superintendent Printing Press, 1906.

Central Advisory Board of Education, Post-war Education Development in India, 4th ed. Delhi, Manager of Publications, 1944 (also known as the Sargent Report).

Census of India, 1931.

Census of India, 1951.

Census for 1881, Vol. I.

Census of Punjab, 1891, Vol. XIX, Part I.

The Case of Arya Samaj in Hyderabad State - Published by International Aryan League, Delhi, 1938.

The Constitution of India, Government of India, 1950.

Draft Constitution of Indian Republic, Bombay Socialist Party, 1948.

The Eighteen Year of Freedom - 1964-65. An Indian National Congress Publications, All India Congress Committee, 7, Jantar Mantar Road, New Delhi.

Education Commission Report, 1964-66, Education and National Development Ministry of Education, Government of India, published by Manager of publications, Delhi, 1966 (also known as Kothari Commission).

Education in India - Annual Report 1949-50, 1950-51, 1951-52, 1955-56, 1960-61, 1962-63. All are Vol. I, Ministry of Education, Government of India.

First Parliament - a Souvenir, 1952-57, Parliament Secretariat, New Delhi, 1957.

The Indian Year Book of Education, 1961 - First Year Book. A review of Education in India (1947-61 revised ed.) Part I, National Review And Central Programmes, publishe by National Council of Educational Research and Training, New Delhi, 1965.

The Indian Year Book of Education, 1964 - Second Year Book, Elementary Education, published by National Council of Educational Research and Training, New Delhi, 1964.

India - A Reference Annual 1954, 1955, 1956, 1957, 1959 and 1960.

"India" in 1919 - Official Report published every yea

"India" in 1920 - Official Report published every year.

Indian Education Commission, Report, 1882-83.

Indian Statutory Commission, Interim Report, 1929.

Jawahar Lal Nehru's Speeches, Vol. I, (September 1946-May 1949) published by Publication Division, Ministry of Information and Brodcasting, Government of India, 1967.

League of Nations - Traffic in Women and Children, The Work of Bondong Conference Official Document No. C.516 M. 357, 1937 IV.

Lok Sabha Debate (Eighth Session), Vol. XXX contains nos. 1-10, Monday, July 30, 1969, Lok Sabha Secretariat New Delhi.

National Committee on Women's Education, Report (May 1958 - Jan. 1959), Ministry of Education, Government of India, 1959.

Official "History of Indian National Congress", 1935.

Progress of Education in India, Quinquinnial review, 1922-27, 1927-32 and 1932-37, Delhi Bureau of Education : 1886-1937, II Vols.

'Problems in Education' - V Women and Education - published by United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization, 19 Avenue Kleber, Paris-16, (1953).

Second Five Year Plan (1956), Government of India, Planning Commission.

Satyagraha in Gandhiji's own words (1910-1935), Congress Golden Jubilee Brochure no. I, published by All-India Congress Committee, Swaraj Bhawan, Allahabad, 1935.

Secondary Education Commission Report Oct. 1952 - June 1953, Ministry of Education, Government of India.

Shreemati Nathibai Damodar Thackersey Indian Women's University, Poona, Silver Jubilee Souvenir, 1942, Bombay 1942.

The Thirteen Year of Freedom, 1959-60, An Indian National Congress publication, All-India Congress Committee, New Delhi.

The Times of India Year Book, 1957.

Third Five Year Plan, Government of India, Planning Commission.

University Education Commission, Report Dec. 1948 - Aug. 1949, Vol. I, published by the Manager of Publications, Delhi, 1949.

Women in Employment (1964), Ministry of Labour and Employment, Government of India.

(B) <u>Proceedings</u>

Abstracts of the proceeding of the Council of Governor-General of India, 1870, Vol. IX.

Home Political Confidential proceeding no. 7-10, December, 1910.

Home Political Secret no. 48, March 1908.

Home Political proceeding no. 18, October, 1908.

Home Political Confidential proceeding no. 63-70, November, 1908.

Home Political Confidential proceeding No. 1, July 1913.

Home Political Confidential proceeding, no. 656, September 1915.

Home Political Confidential proceeding no. 652-656, September, 1916.

Home Political proceeding no. 53, September, 1916.

Home Political proceeding no. 652-658, Serial no.8154, September 1916.

Proceedings of the Legislative Council, 1907-10.

Proceedings of the Legislative Assembly, 1922, Vol.II.

Proceedings of the Legislative Assembly, 1923, Vol.V.

Proceedings of the Legislative Assembly, 1925, Vol.V.

Proceedings of the Legislative Assembly, 1927, Vol.IV.

Proceedings of the Council of States, 1928, Vol. I.

Proceedings of the Legislative Assembly, 1929, Vol. I.

Proceedings of the Legislative Assembly, 1931, Vol. I.

Proceedings of the Legislative Assembly, 1936, Vol. V.

Proceedings of the Council of States, 1936, Vol. V.

Proceedings of the Legislative Assembly, 1936, Vol. V.

Proceedings of the Legislative Assembly, 1937, Vol. I.

Proceedings of the Legislative Assembly, 1941, Vol. II.

Proceedings of the Legislative Assembly, 1941, Vol.III.

Proceedings of the Legislative Assembly, 1946, Vol. II.

Proceedings of the Legislative Assembly, 1946, Vol. V.

Proceedings of the Constituent Assembly, 1948, Vol. V.

Proceedings of the Constituent Assembly of India (Legislative) Vol. III, Part II.

(C) Indian Accounts

Aitareya Brāhmana : Asiatic Society of Bengal.

Āpastamba Dharma Sūtra : Bombay Sanskrit Series.

Aṣṭādhyāyī : Nirnaya Sagar Press.

Atharva Veda : Swadhyaya Mandal, Oundh (Distt. Satara).

Baudhāyana Dharma Sūtra : R. Chinna Swami Shastri, Kashi Sanskrit, Series, Banaras.

Bṛhādaranyaka Upaniṣad : O. Bohtlingk Leipzig.

Chhāndogya Upaniṣad : Nirnaya Sagar Press.

Commentary on Dhammapada: H.C. Norman, P.T.S. London.

Dāyabhāga : Jivananda, Calcutta.

Gautama Dharma Sūtra : Ananda Ashram Press.

Gobhila Gṛhya Sūtra : Chandrakant Tarkalankar.

Harsacarita of Bāṇabhaṭṭa with the Commentary Marmāvabōdhinī of Raṅganātha : Sūranād Kuñjan Pillai, University Manuscripts Library, Trivandrum.

Jatakas : Fausboll, London

Kautilya's Arthaśāstra : Mahabharat Karyalaya, Delhi.

Kādambarī : Nirnaya Sagar Press.

Kumarasambhava : Nirnaya Sagar Press.

Manu Smriti : Chaukhamba Sanskrit Series, Varanasi.

Maitrayāni Samhita : Von Schroder Leipzig.

Mitākṣarā : Nirnaya Sagar Press.

Malatīmādhava : R.G. Bhandarkar, Bombay.

Parasāra Smriti : Venkatashvar Press.

Rgveda : Swadhyaya Mandal, Oundh (Distt. Satara).

Raghuvanmśa : Nirnaya Sagar Press.

Rājatarangini of Kalhana : Pandeya Ramtej Shastri (Tr.) Kashi.

Sāmyuttaanikāya : P. a T.S. ed. London.

Sākuntala : Nirnaya Sagar Press.

Therīgathā : Mrs. Rhys Davids (Tr.) London.

Vāsistha Dharma Sutra : Bombay Sanskrit Series.

Yājnā Valkya Smriti : Shri Manmatha Nath Dutt, Calcutta.

(D) <u>Foreign Accounts</u>

Barani, Ziauddin - Tarikh-i-Firozshahi, Tr. by S.A.A. Rizvi in Khilji Kaleen Bharat, Aligarh, 1955.

Ferishta, Mullah Muhammad Qasim Hindu Shah - Tarikh-i-Ferishta, Tr. by J.Briggs entitled History of the Rise of Mohammadan Power in India till the year A.D. 1612, London, 1829.

Minhaj-us-Siraj - Tabqat-i-Nasiri, Tr. by H.G. Raverty, London, 1881.

Shirazi - Phatehnama Nurjahan Begum.

Tavernier, J.B. - Travels in India, Tr. by V. Ball, London, 1899.

(E) Journals

Allahabad Law Journal, Allahabad, 1957.

All-India Reporter, Nagpur, 1928, 1933, 1941, 1944, No. 9 and 1955.

Bulletin of the Ram Krishna Mission, Institute of Culture. Issued by Swami Nitya Swarupananda, Vol. VII, Jan. 1956 (no. I), Vol. IX - Jan. 1958, (no. I) and Vol. X - Jan. 1959.

Bulletin of Ram Krishna Mission, Institute of Culture. Published by the Ram Krishna Vedanta Centre, London, Sudhansu Mohan Bannerjee, Vol. VIII, Jan. 1957.

Bureau of Education, India. Pamphlet no. 40, General Educational Tables for British India (1942-43), Printed in India for the Manager of Publications, Delhi, by the Manager Government of India Press, Simla, 1947.

Bureau of Education, India. Pamphlet no. 39, Educational Statistics, British India (1942-45), published by Manager of publications, Delhi, 1947.

Bengal Past and Present : Journal of the Calcutta Historical Society 1929, Vol. 37 & 1957, Vol. 76.

Bureau of Edu. India, Education in Universities in India, 1947-48, published by Manager of Publication, Delhi, 1950.

Calcutta Journal, Calcutta, March 11, 1822.

Calcutta Review, Calcutta, 1855 no. 25.

Encyclopaedia Britannica (11th ed.) Vol. XXVI, 1789-90, S.V. Theosophy.

Encyclopaedia Americana, V, XXVIII.

Education in India: Progress of education in India 1922-27 by R. Littlehailes, Ninth quinquinnial review, Vol. I, Government of India, Central publication branch, Calcutta, 1929.

Government Gazette; June 25, 1829, Jan. 18, 1830, Vol. XVI, no. 858, Supplement for Feb. 20, 1826 & Jan. 18, 1830 Vol. XVI no. 858.

Gazette of India, Extra part II dated Nov. 23, 1956.

House of the People who's who, 1952, Parliament Secretariat, New Delhi.

Indian Journal of Political Science, October - December 1958, Vol. XIX, no. I, no. 2 and no. 4, Model House, Lucknow.

The Indian Quarterly Register : Being a quarterly Journal of Indian Public Affairs in matters Political, Social and Economic etc., Vol. II, 1929. Ed. by

N.N. Mitra, Published by Annual Register Office, College Street Market, Calcutta.

The Indian Annual Register: An Annual Digest of Public Affairs of India, Recording the nation's activities each year in matters Political, Economic, Industrial, Educational etc. Being issued in two six monthly volumes. Ed. by N.N. Mitra, published by Annual Register Office, Lower Circular Road, Calcutta, Vol. II, 1930; Vol. I, 1932; Vol. I, 1936; Vol. I, 1937; Vol. I, 1939; and Vol.I, 1946.

Indian Education : A monthly record, Vol. I, Aug. 1902 to June 1903, and Vol. VII, Aug. 1908 to July 1909.

Indian Quarterly: A Journal of International Affairs, Vol. XVI, no. 2, 1960, Asia Publishing House, New Delhi.

Indian Law Reporter : Punjab, 1941.

Indian Reporter : 1933.

Journal of the Andhra Historical Research Society, Vol. XXII, 1952-54.

Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, Vol. the twentieth, London, Vol. 3, 1868 & 1923.

Journal of the House: Sessional from 1950.

Kasturba Memorial : Published by Kasturba Gandhi National Memorial Trust, Kasturbagram, Indore (M.P.), 1962.

Law Reports: England (London), 1933.

Modern Review: June 1953 & July 1953, Vol. 94, Calcutta.

Mahila Pragati ke path per; December, 1970, published by All-India Congress Committee; Women's Section, (Hindi).

Parliament of India who's who, 1950 & 1951 (2nd ed.).

Parliament of India: Council of States who's who, 1952 & 1953.

'Shiksha', The Journal of Education Department, U.P.

Social Reform Annual, 1939 & 1940.

'Visva Jyoti', Mahatma Gandhi edition, April 1969.

Women on March: All-India Congress Committee, December 1957, August 1957 & April 1958.

(F) <u>News Papers</u>

Amrit Bazar Patrika : Calcutta, 1922, 1930, 1931, 1932.

Friend of India : Calcutta, March 30, 1865.

Harijan : A weekly, the first copy of which was issued in Poona on February 11, 1933. It was published by and for the servants of untouchables Society, at Gandhi's request.

Hindustan Times : Delhi, June 17, 1956.

The Leader : Allahabad, 1922.

Northern India Patrika : Allahabad, 1968, 1971.

National Herald : Delhi, May 27, 1958.

The Reformer : Edited by Prasanna Kumar Tagore, December 19, 1831.

Times of India : Bombay, February 5, 1930.

The Tribune : Ambala, 1932, 1946.

Young India : A weekly in English, The first issue under Gandhi's editorship was published in Ahmedabad on October 8, 1919. Mahadev Desai was the publisher and Shankerlal Banker was the printer.

(G) Social Legislation

The Arya Marriage Validation Act, 1937; Act no. 19 of 1937.

The Anand Marriage Act, 1909; Act no. 7 of 1909.

The Dissolution of Muslim Marriage Act, 1939; Act No. 8 of 1939.

The Hind Inheritan (Removal of dissabilities) Act,1928; Act no. 12 of 1928.

The Hindu Marriage Act, 1955; Act no. 25 of 1955.

The Hindu Succession Act, 1956; Act no. 30 of 1956.

The Hindu Adoption and Maintenance Act, 1956; Act no. 78 of 1956.

The Indian Matrimonial Causes (War Marriages) Act, 1948; Act no. 40 of 1948.

Naik Girl's Protection Act, 1929; Act no. II of 1929.

The Special Marriage Act, 1954; Act no. 43 of 1954.

The Suppression of Immoral Traffic In Women and Girls Act, 1956; Act no. 104 of 1956.

U.P. Minor Girl's Protection Act, 1929; Act no. VIII of 1929.

U.P. Hindu Women's Right to Property (extention to agricultural land) Act, 1942; Act no. XI of 1942.

Secondary Sources

Abbas, K.A. - Indira Gandhi - return of the Red Rose, Delhi, 1966.

Adam, W. - Report on the State of Education in Bengal (1835 and 1838) ed. by A. Basu, Calcutta, 1941.

Aiyar, Srinivasa - The Child Marriage Restraint Act, Madras, 1930.

Aiyer, A.R.S. - Dr. Annie Besant and her work for Swaraj.

Aiyer, N. Chandra Shekhara - Mayne's Treatise on Hindu Law and Usage, Madras, 1953.

Altekar, A.S. - Position of Women in Hindu Civilisation Banaras, 1956.

Altekar, A.S. - Education in ancient India, Banaras, 1951.

Apte, V.M. - Social and religious life in Grihya Sutra, 1954.

Ashraf, K.M. - Life and Condition of the People of Hindustan.

Banerjêe, S.N. - A Nation in making, 1963.

Banerjee, G.C. - Brahmanand Keshab Chandra Sen, Allahabad, 1934.

Basham, A.L. - The Wonder that was India, London, 1956.

Bagal, J.C. - Women's Education in Eastern India, Calcutta, 1956.

Barbara, E. Ward. - Women in the new Asia (Ed.) Unesco, 1963.

Baig, Tara Ali - Women of India (Ed.) Delhi, 1958.

Basu, Durgadas - Commentary on the Constitution of India, Calcutta, 1962.

Basu, Major B.D. - History of Education in India under the rule of East India Company, Calcutta.

Basu, Anathnath - Education in Modern India - A brief review, Calcutta, 1947.

Becker, W.A. - Gallus or Roman Scenes of the time of Augustus, Tr. by Frederick Metcalfe, London, 1882.

Becker, W.A. - Charicles or illustration of the private life of the ancient Greeks Tr. by Frederick Metcalfe, London, 1899.

Besant, Spirit Series - Annie Besant, Builder of new India, Madras, 1942.

Besant Spirit Series Vol. II - Ideals in Education, Madras, 1939.

Besant, Annie - Higher Education in India, Past and Present (2.Ed.) Madras, 1932.

Besant, Annie - Theosophical Society - Encyclopaedia of religion and Ethics, Vol. XII.

Besant, Annie - Birth of new India, Madras, 1917.

Besant, Annie - Wake up India, Madras, 1913.

Besant, Annie - The Work of Theosophical Society in India, Madras, 1909.

Besant, Annie - How India wrought for freedom, Madras.

Besant, Annie - India bond or free, Great Britain, 1926.

Besant, Annie - An Autobiography, London, 1917.

Benani, G.D. & Rao, T.V. Rama - India at a glance (A Comprehensive reference book on India), 1953.

Bhatnagar, O.P. - Studies in Social History (Modern India), Allahabad, 1964.

Bhatnagar, Suresh - Kothari Commission recommendations and evaluation, Meerut, 1967.

Bhattacharya, Haridas - The Cultural heritage of India (Ed.) Vol. IV - The religion, Calcutta.

Bhanu, Dharma - History and administration of the North Western Provinces, Agra, 1957.

Bhargava, G.S. - Leaders of the left Bombay, 1951.

Bose, N.S. - The Indian awakening and Bengal, Calcutta, 1960.

Bose, N.S. - The Indian National Movement - an outline.

Bose, N.K. - Studies in Gandhism, 1947.

Brown, J.C. - Indian infanticide, its origin, progress and suppression, London, 1857.

Bright, J.S. - President Kripalani and his ideas, 1947.

Burn, Sir Richard - Cambridge history of India, Vol. IV, India, 1963.

Buch, M.A. - Rise and growth of Indian Liberalism, Vol. I, Baroda, 1938.

Buch, M.A. - Rise and growth of Indian Militant Nationalism, Vol. II.

Buch, M.A. - Rise and growth of Indian Nationalism, Vol. III.

Caton, A.R. - The Key of Progress - A Survey of the Status and conditions of Women in India (ed.) London, 1930.

Chand, Dr. Tara - History of freedom movement in India, Vol. I.

Chand, Dr. Tara - History of freedom movement in India, Vol. II, India, 1967.

Chaudhari, J.B. - Women in Vedic rituals.

Chaudhari, D.H. - The Hindu Succession Act, 1956.

Chakladar - Social life in ancient India.

Chopra, P.N. - Society and Culture in Mughul period.

Chintamani, C.Y. - Indian Social reform, Madras, 1901.

Chirol, Valentine - India old and new, London, 1921.

Chirol, Valentine - India.

Chattopadhayay, K.D. - Women of India.

Cousin, M.B. - Indian Womanhood today, Allahabad, 1941.

Cousin, Margaret E. - The awakening of Asian womanhood (Ed.) 1922.

Collect, S.D. - The life and letters of Raja Ram Mohan Roy, Calcutta, 1962.

Cormack, Margaret E. - The Hindu Women, Bombay, 1961.

Cormack, Margaret L. - She who rides a Peacock - Indian students and social change - A research analysis, Bombay, 1961.

Das, R.M. - Women in Manu and his seven commentators.

Das Gupta, Jyoti-prabha - Girl's Education in India in the Secondary and Collegiate stages, Calcutta, 1938.

Datta, K.K. - Education and social amelioration of women in pre-mutiny India, Patna, 1936.

Desai, A.R. - Social background of Indian nationalism, Bombay, 1959.

Desai, N. - Women in Modern India, Bombay, 1957.

Desai, M. - The Story of Bardoli.

Dial, Rameshwar - Commentaries on the Hindu Succession Act, Lucknow, 1956.

Dodwell, H.H. - The Cambridge history of India, Vol.V.

Donaldson, James - Woman, London, 1907.

Dutta, N.K. - Origin and growth of caste in India.

Dutta, R. Palme - India today, India, 1947.

Dutt, R.C. - The Economic history of India, Vol. I, 1901.

Dua, R.P. - Social factors in the birth and growth of the Indian National movement, New Delhi, 1967.

Duverger, Maurice - Political Parties, London, 1954.

Edger, Lilian - Elements of Theosophy, 1903.

Farquhar, J.N. - Modern religious movements in India.

Fick, Richard - The Social organisation in north east India in Buddhas time Tr. by Shishir Kumar Maitra, Calcutta, 1920.

Fisher, W. Margaret - Indian experience with democratic elections, 1956.

Fuller, M. - The Wrongs of Indian Womanhood, 1900.

Gandhi, M.K. - Conquest of self, Bombay, 1946.

Gandhi, M.K. - Women and social injustice, Ahmedabad, 1947.

Gandhi, M.K. - To the women, Vol. II, Karachi, 1946.

Gandhi, M.K. - Hindu Dharma, 1950.

Gandhi, M.K. - Young India, Madras, 1922.

Gandhi, M.K. - India of my dreams, Bombay, 1947.

Gandhi, M.K. - Satyagraha in South Africa, Ahmedabad, 1928.

Ghosh, J.C. - English Works of Raja Ram Mohan Roy (Ed.).

Gibb, H.A.R. - Selections from the travels of Ibnbatuta.

Gidumal, Dayaram - The Status of women in India or A hand-book for Hindu Social reforms, Bombay, 1889.

Gupta, Atul Chandra - Studies in Bengal Renaissance (Ed.) 1958.

Gupta, Padmini Sen - Sarojini Naidu, a biography, 1966.

Hartog, Phillip - Some aspects of Indian Education Past and present, University of London, Institute of Education. 'Studies and Reports', No. 7, London, 1939.

Hari Sundar memorial Series - Brahmanand Keshub - Life and Works, Part I, 1937.

Harrison, S. Salig - India the most dangerous decades, U.S.A., 1960.

Hirschfeld, Magnus - Women East and West, London, 1935.

Husain, Yusuf - Glimpses of medieval Indian Culture, Bombay, 1959.

Husain, Mazhar - The Suppression of immoral traffic in women and girls Act 1956 (with critical commentary, case law and State's Rules), Lucknow, 1961.

Hwuili, Shaman - The life of Hiven-T-Siang Tr. by Samuel Beal, London, 1911.

Indra, Prof. - Status of Women in ancient India.

Inghum, K. - Reformers in India, 1956.

Jafar - Education in Muslim India.

Jones, W.H. Morris - Parliament in India, London, 1957.

Karim, Abdul - Social history of the Muslims in Bengal (Down to A.D. 1538).

Kane, P.V. - History of Dharmashastra, Vol. I.

Kane, P.V. - History of Dharmashastra, Vol. II.

Kangle, R.P. - The Kautilya Arthashastra, Part III, Bombay, 1965.

Karunakaran, K.P. - Religion and Political awakening in India, Meerut, 1965.

Kaur, Manmohan - Role of Women in the freedom movement, Delhi, 1968.

Kaye - History of India under the East India Company.

Kabir, Humayun - Education in new India, London, 1961.

Kapadia, K.M. - Marriage and family in India.

Kharbanda, M.L. - The Uttar Pradesh Local Acts, Vol.II, Allahabad, 1950.

Kindersley, L. - no. XXXI.

Long, James - Handbook of Bengal Missions, 1848.

Mayhew, Arthur - The Education of India, a study of British educational policy in India, 1835-1920, and its bearing on national life and problems in India, London, 1926.

Majumdar, R.C. & Madhavanand, Swami - Great Women of India (ed.)

Majumdar, R.C. - British Paramountcy and Indian Renaissance, Vol. X, Part II., Bombay, 1965.

Majumdar, R.C. - Glimpses of Bengal in 19th Century, Calcutta, 1960.

Majumdar, R.C. - The classical Accounts of India, Calcutta, 1960.

Majumdar, R.C., Roychaudhri and Datta - An advanced history of India, Vol. II.

Majumdar, J.K. - Raja Ram Mohan Roy and progressive movement in India.

Majumdar, S.K. - Jinnah and Gandhi - Their role in India's quest for freedom, Calcutta, 1966.

Malley, O. - Modern India and West.

Mackenzie, W.J.M. - Free Elections, 1958.

Mayne, - Hindu Law.

Meyers, Edward - Sexual life in ancient India.

Mehta, R.N. - Pre-Buddhist India, Bombay, 1939.

Metravx, Guy, S. & Crouzet, Francois - Studies in the cultural history of India, Agra, 1965.

Meherally, Yusuf - Acharya Narendra Deva 'Socialism and national revolution', Bombay, 1946.

Mitra, S.M. - Position of Women in Indian life.

Mitra, H.N. - Punjab unrest, before and after, Calcutta, 1921.

Mitra, S.M. - Indian Problems, London, 1908.

Mitra, B. & Chakraborty, P. - Rebel India.

Morton, E. - Women behind Mahatma Gandhi.

Mookherji, Radhakumud - Ancient Indian Education : Brahmanical and Buddhist, London, 1947.

Mukerji, S.N. - Education in India in the XXth Century, Baroda, 1945.

Mukerjee, D.P. - Diversities, New Delhi, 1958.

Mukerjee, Prof. H. & Uma - The Origin of national Education movement, Calcutta, 1957.

Mukherjee, B.K. - Mulla's Hindu Law (11th ed.).

Murdoch, John - Twelve years of Indian Progress.

Mullik, B. - The Hindu family in Bengal, Calcutta, 1882.

Mulla, D.F. - Principles of Hindu Law.

Natrajan, K. - Sister India.

Natrajan, S. - A Century of social reform in India.

Navjivan publishing house - Bapu's letter to Mira, Ahmedabad, 1949.

Narayan, Jai Prakash - Towards struggle, Bombay, 1947.

Nehru, J.L. - An Autobiography.

Nehru, R. - Gandhi is my star, Patna, 1950.

Nivedita, sister - Web of Indian life.

Niamatullah - Makhzan-i-Afghana.

Noer, Von - The Emperor Akbar, Vol. I.

Nurullah & Naik - A student's history of Education in India, 1955.

Over Street, G.D. & Winmiller, Marshall - Communism in India, 1959.

Pandey, A.B. - Early medieval India, Allahabad, 1965.

Pandey, A.B. - Society and Government in medieval India.

Pannikar, K.M. - The foundations of new India, 1963.

Pannikar, K.M. - Essays on Educational Reconstruction in India, Madras, 1920.

Pandit, Vijaylakshmi - So I became a minister, 1939.

Painter, Sidney - Medieval Society.

Pal, B.C. - Brahmo Samaj and the battle of Swaraj in India, Calcutta, 1926.

Pal, B.C. - Memories of my life and time II.

Panloletramare - 'Theosophy' Encyclopaedia of religion and Ethics, Vol. XII.

Paranjpe, M.R. - A source book of Modern Indian Education, Bombay, 1938.

Park, Richard L. & Tinker, I. - Leadership and Political Institution in India, 1960.

Philips, C.H. - The evolution of India and Pakistan (1858 - 1947) - Select documents, London, 1965.

Poplai, S.L. - 1962 General Elections in India, New Delhi, 1962.

Prabhu, P.N. - Hindu Social organization.

Prasad, Beni - A few aspects of education and literature under the Great Mughuls.

Pinceton, Myron Weiner- Party Politics in India - the development of multi-party system, 1957.

Pyarelal - Mahatma Gandhi - The last phase.

Rai, Lajpat - The Arya Samaj, London, 1915.

Rai, Lala Lajpat - Unhappy India, Calcutta, 1928.

Rai, Lajpat - Young India, New York, 1916.

Rai, Lajpat - The Arya Samaj, an account of its Aims, Doctrine, and Activities with a biographical sketch of the leader, Lahore, 1932.

Rathpone, Eleanor F. - Child Marriage - The Indian minotary. An object lesson from the past to the future, London, 1934.

Raghuvanshi, V.P.S. - Indian Nationalist movement and thought, Agra, 1959.

Rao, M.V.R. - A Short history of the Indian National Congress, New Delhi, 1959.

Radhakrishnan, S. - Mahatma Gandhi, 100 years (Ed.).

Ram, Gopal - Indian Muslims - a political history 1858-1947, New Delhi, 1959.

Rajagopalachari, C. - Social and religious decay, Bombay, undated.

रिज़वी, सैय्यद अतहर अब्बास - आदि तुर्क कालीन भारत, १९५६

Roy, D.N. - The spirit of Indian civilization, Calcutta, 1938.

Roy, K. - Gandhi memorial number, 1949.

Roy, Prithwis Chandra - Life and times of C.R. Das, London, Bombay, Calcutta and Madras, 1927.

Rolland, R. - The life of Vivekanand and the Universal gospel, Mayawati, Almora, Himalayas, 1953.

Rolland, R. - Mahatma Gandhi - the man who became one with the universal being, London, 1943.

Sarkar - Studies.

Sarma, N.A. - Women and Society.

Saksena, K.P. - The Hindu Adoption and maintenace Act, 1956 (with an exhaustive, explanatory and critical commentary complete prior Hindu Law with upto date case-law, comparative study and matters res integra solved), Lucknow, 1957.

Saints of India Series- Sister Nivedita - A sketch of her life and her services in India, Madras.

Shastri, Shakuntala Rao - Women in the Vedic age.

Shastri, Shakuntala Rao - Women in the secret laws.

Shastri, K.A. Neelkant - A Comprehensive history of India, Vol. II, Calcutta, 1957.

Shastri, Shivanath - History of Brahmo Samaj.

Sharma, B.N. - Social life in northern India, Delhi, 1966.

Sharma, R.S. - Aspects of Political Ideas and institutions in ancient India, Patna, 1959.

Sharma, N.A. - Women and Society.

Sharma, Sri Ram - Religious Policy of the Mughul Emperors.

Shessing, M.A. - The History of Protestant Missions in India from their commencement in 1706 to 1881, London - the religious tract society - 1884.

Shrimali, K.L. - Education in changing India, Bombay, 1965.

Shukla, C.S. - Incidents of Gandhiji's life (Ed.).

Sitaramayya B., Pattabhi - The history of Indian national congress, Vol. I, 1946.

Sitaramayya, B. Pattabhi - The history of Indian national congress, Vol. II, Delhi, 1969.

Siqueira, T.N. - Education of India, history and problems, Bombay, 1939.

Sketches - III

Sondhi, G.C. - To the gates of liberty, Congress commernoration volume (ed.)., Calcutta, 1948.

Spear, Percival - India - A modern history.

Thomas, P. - Indian Women through the ages (A historical survey of the position of women and institutions of marriage and family in India from remote antiquity to present day), Bombay, 1964.

Thaper, Romila - Asoka and the decline of the Mauryas, 1961.

Theosophical publishing House - Annie Besant and her work for Swaraj.

Tod - Annals and Antiquities of Rajasthan.

Upadhyaya, B.S. - Women in Rigveda, Banaras, 1941.

Upadhyaya, B.S. - India in Kalidas, Allahabad, 1947.

Upadhyaya, G.A. - Swami Dayanand's contribution to Hindu solidarity, 1939.

Upadhyaya, D.D. - General Election report, Delhi, 1962.

Valentine, C. - Indian unrest.

Venkateshwara, R.J. - Cabinet Government in India.

Vyas, K.C. - The Social Renaissance in India.

Ward, Barbara E. - Women in the new Asia, Unesco, 1963.

Watters, Thomas - On Yuan Chwang's Travels in India (A.D. 629-645), Delhi, 1961.

Walpert, Stanley - India, U.S.A.

Wedderburn, W. - Allan Octavian Hume.

Weiner, Myron - Party politics in India - the development of multi-party system, 1957.

Whealer, Post. - India against the Strom., New York.

Wilson, John - History of the Suppression of infanticide in Western India under the Government of Bombay (Including notices of the provinces and tribes in which the practice has prevailed), Bombay, 1855.

Williams, Monier - Modern India and the Indians (Ed.III) London, 1879.

Yasin, Mohammad - A Social history of Islamic India,1958

Zacharias, H.C.E. - Renascent India (from Raja Ram Mohan Roy to Mahatma Gandhi), London, 1933.